जातक

तृतीय खण्ड

जातक

[तृतीय खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

शकाब्द १८९३ : सन् १९७१ ई०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

जातक कथाएँ विश्व के कथा वाङ्मय की सब से पुरानी कथाएँ हैं। जातक कथाएँ बुद्धकालीन भारत का एक ऐसा मानचित्र प्रस्तुत करती हैं, जिसमे भारतीय सस्कृति का लोकपक्ष उजागर होकर मानवतावाद, आध्यात्मवाद, सयम और तितिक्षा की प्रतिष्ठापना करता है। बहुश्रुत, बहुविद् श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी बौद्ध साहित्य, पालिभाषा के यश प्राप्त ख्यात मनीषी होने के साथ ही हिन्दी साहित्य के प्रथित साहित्यकार है। उनके श्रम और अध्ययन का परिणाम जातक कथाओ का हिन्दी रूपान्तर है जिसे छह भागो मे प्रकाशित करने का सौभाग्य सम्मेलन को प्राप्त हुआ है। तृतीय भाग का यह द्वितीय सस्करण प्रकाशित कर हम हर्ष का अनुभव करते है।

सुरेन्द्रनारायण द्विवेदी
प्रधान मन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्राक्कथन

सन् '४२ मे जब द्वितीय-खण्ड प्रकाशित हुआ, तो स्वप्न मे भी यह ध्यान न था कि द्वितीय और तृतीय खण्ड के बीच इतना अधिक समय गुजर जायगा।

सन् '४२ मे ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) का मन्त्रित्व स्वीकार कर लेने से कुछ तो उधर व्यस्त रहना पडा, कुछ अगस्त आन्दोलन और युद्ध-जनित परिस्थिति इस प्रकार के सभी कार्यो मे बाधक सिद्ध हुई।

तृतीय-खण्ड मे हर तरह से पहले दोनो खण्डो के ही क्रम को जारी रखा गया है। हाँ, पहले दोनो खण्डो मे प्रत्येक गाथा के साथ मूल पाली मे दी गई कठिन शब्दावली और उसके अर्थो का अर्थ भी रहा है। सारी गाथा का स्वतन्त्र अनुवाद देने के साथ वह पुनरुक्ति दोष ही नही, निष्प्रयोजन भी लगता था। इस खण्ड मे उसे छोड दिया। हाँ, यदि कही कोई विशेष काम की बात दिखाई दी तो उसे पाद-टिप्पणी मे दे दिया है।

प्रथम-खण्ड और दूसरे खण्ड के ढाई-सौ जातको के साथ इस खण्ड मे प्रकाशित डेढ सौ जातक मिलकर कुल चार सौ जातक हो जाते है। शेष एकसौ सैतालीस जातक उत्तरोत्तर बढे हैं। आशा है वे सभी तीन खण्डो मे समाप्त होगे।

तृतीय-खण्ड का अधिकाश भाई जगदीश काश्यपजी की सहायता से दोहरा लिया गया था। उन्हे धन्यवाद क्या दूँ?

सत्यनारायण कुटीर
हि॰ सा॰ सम्मेलन
५-३-४६

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

तीसरा परिच्छेद

१. सङ्कप्प वर्ग १

२५१ सकप्प जातक १

[राजा रानी को बोधिसत्व की सेवा की ओर से उदासीन न रहने के लिए कह इलाके मे बगावत दबाने गया। उसकी अनुपस्थिति मे बोधिसत्व का मन राजा की रानी के प्रति विकार-ग्रस्त हो गया।]

२५२ तिलमुट्ठि जातक ६

[आचार्य्य ने बुढिया के तिलो की मुट्ठी खा लेने वाले राजकुमार-शिष्य को पिटवाया। राजकुमार ने बडे होने पर आचार्य्य को जान से मरवा डालना चाहा।]

२५३ मणिकण्ठ जातक ११

[नाग तपस्वी से बडा स्नेह प्रदर्शित करता था। तपस्वी ने नाग से मणि की याचना की। तब नाग ने आने का नाम नही लिया।]

२५४ कुण्डक कुच्छि सिन्धव जातक १५

[सिन्धव बछेरा बुढिया के घर कुछ भी खा लेता था, किन्तु गुणज्ञ व्यापारी के यहाँ पहुँच उसने सामान्य तृण-घास खाने से इनकार किया।]

२५५ सुक जातक २०

[तोता माता पिता का कहना न मान बर्जित द्वीप मे आम्र-रस पान करने गया।]

२५६ जरूदपान जातक २३

[पानी के लिए थोडा खनने पर तो धन की प्राप्ति हुई, किन्तु लोभवश अत्यधिक खनने से विनाश को प्राप्त हुये।]

२५७. गामणीचण्ड जातक २५

[बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-बल से बैल, पुत्र, घोडे, बँस-फोड, ग्राम के मुखिया, गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर, देवता, नाग, तपस्वी और ब्राह्मण-विद्यार्थी के प्रश्नो का उत्तर दिया।]

२५८. मन्धाता जातक ३७

[चातुर्महाद्वीपो तथा चातुर्महाराजिको का राज्य करके भी मन्धाता विषयो मे अतृप्त ही रहा।]

२५९. तिरीटवच्छ जातक ४१

[बोधिसत्व ने कुयें मे गिरे हुये राजा के प्राणो की रक्षा की। राजा भी कृतज्ञ निकला।]

२६०. दूत जातक ४४

[भोजन करते हुये राजा की थाली मे एक आदमी ने 'दूत', 'दूत' कहते हुए आकर हाथ डाल दिया। राजा ने पूछा—तू किसका दूत है? उत्तर दिया—पेट का।]

२ कोसियवर्ग ४७

२६१. पदुम जातक ४७

[तीन सेठ-पुत्रो मे से दो ने एक नकटे की झूठी प्रशसा कर तालाब के कमल लेने चाहे। नकटे ने केवल सच्ची बात कहने वाले को दिये।]

२६२. मुदुपाणी जातक ४९

[राजा लडकी पर अविश्वास कर उसे पास सुलाता था। एक बार उसने रात को भीगती वर्षा मे स्नान करना चाहा तो वह हाथ पकडे रहा। इतने पर भी लडकी राजा के भान्जे के साथ भागने मे सफल हुई।]

२५६ जरूदपान जातक २३

[पानी के लिए थोडा खनने पर तो घन की प्राप्ति हुई, किन्तु लोभवश अत्यधिक खनने से विनाश को प्राप्त हुये।]

२५७. गामणीचण्ड जातक २५

[बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-बल से बैल, पुत्र, घोडे, बँस-फोड, ग्राम के मुखिया, गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर, देवता, नाग, तपस्वी और ब्राह्मण-विद्यार्थी के प्रश्नो का उत्तर दिया।]

२५८. मन्धाता जातक ३७

[चातुर्महाद्वीपो तथा चातुर्महाराजिको का राज्य करके भी मन्धाता विषयो मे अतृप्त ही रहा।]

२५९. तिरीटवच्छ जातक ४१

[बोधिसत्व ने कुयें मे गिरे हुये राजा के प्राणो की रक्षा की। राजा भी कृतज्ञ निकला।]

२६०. दूत जातक ४४

[भोजन करते हुये राजा की थाली मे एक आदमी ने 'दूत', 'दूत' कहते हुए आकर हाथ डाल दिया। राजा ने पूछा—तू किसका दूत है? उत्तर दिया—पेट का।]

२ कोसियवर्ग ४७

२६१. पदुम जातक ४७

[तीन सेठ-पुत्रो मे से दो ने एक नकटे की झूठी प्रशसा कर तालाब के कमल लेने चाहे। नकटे ने केवल सच्ची बात कहने वाले को दिये।]

२६२. मुदुपाणी जातक ४९

[राजा लडकी पर अविश्वास कर उसे पास सुलाता था। एक बार उसने रात को भीगती वर्षा मे स्नान करना चाहा तो वह हाथ पकडे रहा। इतने पर भी लडकी राजा के भान्जे के साथ भागने मे सफल हुई।]

२६३ चुल्लपलोभन जातक ५३.

[जो बचपन मे स्त्री दाई का दूध भी नही पीता था, वह भी बडा होने पर स्त्री के फेर मे आ ही गया।]

२६४. महापणाद जातक ५६

[इसकी सारी कथा सुरुचि जातक (४८६) मे आयेगी।]

२६५. खुरप्प जातक ६०

[सौदागर और उसकी पाँच सौ गाडियो को जगल से पार कराया। डाकुओ से लडना पडने पर भी जगल-रक्षक निर्भय रहा।]

२६६ वातग्ग-सिन्धव जातक ६२

[गधी घोडे पर आसक्त थी, किन्तु जब वह उसकी ओर प्रवृत्त हुआ तो दुलत्ती चलाकर भाग गई।]

२६७. कक्कट जातक ६५

[हथिनी की मधुर वाणी के फेर मे केकडे ने हाथी के पैर मे से अपने अडो को निकाल लिया। हाथी ने छूटते ही केकडे की पीठ पर पैर रख उसका कचूमर निकाल दिया।]

२६८. आरामदूसक जातक ६९

[बन्दरो ने पौदो को उखाड कर उन की जडें नाप-नाप कर पानी सीचा।]

२६९. सुजाता जातक ७१

[सात प्रकार की भार्य्याओ का वर्णन।]

२७०. उलूक जातक ७६

[कौवे ने उल्लू को पक्षी-राज बनाने का विरोध किया।]

२ अरण्य वर्ग ७९

२७१ उदपानदूसक जातक ७९

[शृगाल आकर जलाशय दूषित कर जाता था।]

२७२. व्यग्घ जातक ८१

[मूर्ख वृक्ष-देवता ने सिंह-व्याघ्र को अपने यहाँ से भगा दिया।]

२५६. जरूदपान जातक २३

[पानी के लिए थोडा खनने पर तो धन की प्राप्ति हुई, किन्तु लोभवश अत्यधिक खनने से विनाश को प्राप्त हुये।]

२५७. गामणीचण्ड जातक २५

[बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-वल से बैल, पुत्र, घोडे, बँस-फोड, ग्राम के मुखिया, गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर, देवता, नाग, तपस्वी और ब्राह्मण-विद्यार्थी के प्रश्नो का उत्तर दिया।]

२५८. मन्धाता जातक ३७

[चातुर्महाद्वीपो तथा चातुर्महाराजिको का राज्य करके भी मन्धाता विषयो मे अतृप्त ही रहा।]

२५९. तिरीटवच्छ जातक ४१

[बोधिसत्व ने कुयें मे गिरे हुये राजा के प्राणो की रक्षा की। राजा भी कृतज्ञ निकला।]

२६०. दूत जातक ४४

[भोजन करते हुये राजा की थाली मे एक आदमी ने 'दूत', 'दूत' कहते हुए आकर हाथ डाल दिया। राजा ने पूछा—तू किसका दूत है? उत्तर दिया—पेट का।]

२. कोसियवर्ग ४७

२६१. पदुम जातक ४७

[तीन सेठ-पुत्रो मे से दो ने एक नकटे की झूठी प्रशसा कर तालाब के कमल लेने चाहे। नकटे ने केवल सच्ची बात कहने वाले को दिये।]

२६२. मुदुपाणी जातक ४९

[राजा लडकी पर अविश्वास कर उसे पास सुलाता था। एक बार उसने रात को भीगती वर्षा मे स्नान करना चाहा तो वह हाथ पकडे रहा। इतने पर भी लडकी राजा के भान्जे के साथ भागने मे सफल हुई।]

२७३. कच्छप जातक ८३

[वन्दर ने कछुवे के साथ अनाचार किया।]

२७४. लोल जातक ८५

[मत्स्य-माँस के लोभ मे कौवे ने रसोइये के हाथो जान गवाई।]

२७५. रुचिर जातक ८८

[पूर्व कथा सदृश ही।]

२७६. कुरुधम्म जातक ८९

[कलिंग राज ने इन्द्रप्रस्थ नरेश के पास ब्राह्मणो को कुरु-धर्म सीखने के लिए भेजा।]

२७७ रोमक जातक १०२

[कुटिल जटाधारी तपस्वी को एक दिन कबूतर का माँस खाने को मिला। उसने रस-लोभ से आश्रम पर आने वाले कबूतरो को मार कर खाना चाहा।]

२७८. महिस जातक १०५

[शरारती वन्दर ने एक शान्त भैंसे को बहुत तग किया। एक दूसरे प्रचण्ड भैंसे ने सीग से उसकी छाती चीर डाली।]

२७९. सतपत्त जातक १०७

[पुत्र ने शृगाली को जो उसकी पूर्व जन्म की माता थी शत्रु समझा और कठफोडे को मित्र।]

२८० पुटदूसक जातक १११

[माली जो जो दूने बनाता था, वन्दर उन्हे नष्ट करते जाते थे।]

४. अब्भन्तर वर्ग ११३

२८१. अब्भन्तर जातक ११३

[तोते ने देवी को अन्दर का आम लाकर खिलाया।]

२८२. सेय्य जातक १२०

[महासीलव जातक (५१) की तरह ही।]

२८३. वड्ढकीसूकर जातक १२३

[सूअरो के सगठित दल ने व्याघ्र पर विजय पाई।]

२८४. सिरि जातक १२९

[मुर्गे का मास खाकर लकड़हारा राजा वना और उसकी भार्य्या पटरानी वनी।]

२८५. मणिसूकर जातक १३५

[सूअर मणि को मैला करने के लिए ज्यो-ज्यो रगडते थे त्यो-त्यो वह और भी चमकती थी।]

२८६ सालुक जातक १३९

[सूअर को यवागु-भात खिला-खिलाकर पोसा जाता था कि कुमारी के विवाह के समय इसका जल-पान होगा।]

२८७. लाभगरह जातक १४१

[प्राणियो को वस्तुओ की प्राप्ति कैसे होती है ?]

२८८ मच्छुद्दान जातक १४३

[छोटे भाई ने वडे भाई को धोखा देने के लिए एक हजार कार्षापण की पोटली पानी मे डाल दी।]

२८९ नानच्छन्द जातक १४६

[ब्राह्मण के नक्षत्र-ज्ञान पर प्रसन्न हो राजा ने उसे वर माँगने के लिए कहा।]

२९० सीलवीमंस जातक १४९

[पुरोहित ने शील की परीक्षा करने के लिए सुनार के तख्ते से दो दिन एक एक कार्षापण उठाया।]

५. कुम्भ वर्ग १५१

२९१. भद्रघट जातक १५१

[शक्र ने पुत्र-प्रेम के वशी-भूत हो उसे सब कामनाओ की पूर्ति करने वाला घडा लाकर दिया।]

२९२. सुपत्त जातक १५३

[कौवे ने जान पर खेलकर 'सुफस्सा' के लिए राजा के यहाँ से मत्स्य-मास लाकर दिया।]

२९३. कायविच्छिन्द जातक १५६

[पाण्डु-रोग से पीडित ब्राह्मण प्रव्रजित हुआ।]

२९४. जम्बुखादक जातक १५८

[गीदड ने कौवे की झूठी प्रशसा कर जामुन खानी चाही। उसे निराश होना पडा।]

२९५. अन्त जातक १६०

[जानवरो मे सबसे निकृष्ट शृगाल, पक्षियो मे सब से निकृष्ट कौवा और वृक्षो मे सब से निकृष्ट एरण्ड—तीनो एक जगह इकट्ठे हो गये।]

२९६. समुद्द जातक १६१

[कौवा तृष्णा के वशी-भूत हो स्वय सागर को पी जाने की इच्छा करता था।]

२९७. कामविलाप जातक १६३

[कथा इन्द्रिय-जातक मे आयेगी।]

२९८. उदुम्बर जातक १६४

[दो बानरो ने परस्पर एक दूसरे को ठगने का प्रयत्न किया। पहला सफल हुआ, दूसरा असफल।]

२९९. कोमायपुत्त जातक १६७

[तपस्वियो की सगत से बन्दर ध्यानी हो गया।]

३००. वक जातक १६९

[भेडिये का उपोसथ-व्रत।]

चौथा परिच्छेद

१ विवर वर्ग १७२

२०१. चुल्लकालिङ्ग जातक १७२

[कालिङ्ग और अश्मक-राज के युद्ध मे शक्र ने कालिङ्ग के विजयी होने की भविष्यवाणी की थी। नन्दिसेन आमात्य के हिम्मत न हारने के कारण अश्मक-राज विजयी हुआ।]

२०२ महाअस्सारोह जातक १७९

[प्रत्यन्त देशवासी ने राजा को महा-अश्वारोह समझ उसकी सेवा की। राजा ने महलो मे लौट बदला चुकाया।]

२०३ एकराज जातक १८३

[राजा के मैत्री-बल के आगे चोर-राजा के पशु-बल की हार।]

२०४ दद्दरजातक १८५

[पिता द्वारा नाग-भवन से निर्वासित दद्दर-बन्धु मेण्डक समझे जाकर अनाहत हुये।]

२०५. सीलवीमसन जातक १८८

[आचार्य्य ने शिष्यो के शील की परीक्षा करने के लिये उन्हे अपने घर से सबकी आँख बचाकर वस्त्रालकार आदि लाने के लिये कहा।]

२०६. सुजाता जातक १९०

[राजा ने माली की लडकी को पटरानी बनाया।]

२०७. पलास जातक १९२

[ब्राह्मण ने पलास-निवासी वृक्ष-देवता को अपनी सेवा से प्रसन्न किया।]

२०८ जवसकुण जातक १९५

[कठफोड ने सिंह के मुंह मे फसी हुई हड्डी निकाली।]

३०९. छवक जातक १९७

[अधार्मिक राजा आचार्य्य को नीचे आसन पर बिठा उससे (वेद-) मन्त्र सीखता था।]

३१०. सय्ह जातक २००

[पुरोहित-पद के लिये भी एक बार परित्यक्त गृहस्थ-जीवन फिर स्वीकार नही किया।]

२. पुचिमन्द वर्ग २०३

३११. पुचिमन्द जातक २०३

[नीम के वृक्ष ने भावी भय का अनुमान कर सोते हुये चोर को उठाकर भगा दिया।]

३१२. कस्सप मन्दिय जातक २०५

[बोधिसत्व ने पिता को लडको का उत्पात सहन करने का उपदेश दिया।]

३१३. खन्तिवादी जातक २०८

[जिस राजा ने बोधिसत्व के हाथ-पाँव तथा कान-नाक कटवा दिये, उसे भी बोधिसत्व ने आशीर्वाद दिया।]

३१४. लोहकुम्भी जातक २१२

[ब्राह्मण सर्व चतुष्क यज्ञ कराने जाकर अगणित पशु-घात घात कराने जा रहे थे। बोधिसत्व ने उसकी रक्षा की।]

३१५. मस जातक २१७

[शिकारी ने सेठ-पुत्रो को उनकी वाणी की मधुरता के अनुरूप मास दिया।]

३१६. सस जातक २२०

[चन्द्रमा का शशाक नाम क्यो है ?]

३१७ मतरोदन जातक २२४

[बडे भाई के मरने पर बोधिसत्व तनिक भी नही रोये।]

३१८. कणवेर जातक २२६

[श्यामा ने नगर-कोतवाल को हजार दे डाकू की जान बचाई और उस पर आसक्त होने के कारण उसे अपना स्वामी बनाया। डाकू उसके गहने-कपडे ले चलता बना।]

३१९. तित्तिर जातक २३१

[चिडिमार फँसाऊ-तीतर की मदद से तीतरो को फँसाता था। तीतर को सन्देह हुआ कि वह पाप का भागी है वा नही ?]

३२०. सुच्चज जातक २३३

[रानी ने राजा से पूछा—यदि वह पर्वत सोने का हो जाय, तो मुझे क्या मिलेगा ? राजा ने उत्तर दिया—तू कौन है, कुछ नही दूंगा।]

३. कुटिदूसक वर्ग २३८

३२१. कुटिदूसक जातक २३८

[बन्दर ने बये के सदुपदेश से चिढकर उसका घोसला नोच डाला।]

३२२ दद्दभ जातक २४२

[खरगोश को सन्देह हो गया कि पृथ्वी उलट रही है। सभी अन्ध-विश्वासियो ने उसके अनुकरण मे भागना आरम्भ किया।]

३२३. ब्रह्मदत्त जातक २४५

[ब्राह्मण ने बारह वर्ष के सकोच के बाद राजा से एक छाता और एक जोडा जूता भर मांगा।]

३२४. चम्मसाटक जातक २४९

[मेढा ब्राह्मण पर चोट करने के लिए पीछे की ओर हटा। ब्राह्मण ने समझा मेरे प्रति गौरव प्रदर्शित कर रहा है।]

३४३. कुन्तिनी जातक २९८

[राजकुमारो ने लापरवाही से क्रौंच-पक्षी के बच्चे मार डाले। क्रौंच-पक्षी ने उनकी जान ले ली।]

३४४. अम्ब जातक ३००

[दुष्ट तपस्वी ने सेठ की लडकियो से कसमे खिलवाई कि आम नही चुराये है।]

३४५. गजकुम्भ जातक ३०३

[गजकुम्भ जन्तु ने, जो सारे दिन चलने पर भी एक ही दो अगुल चल सकता था, बताया कि यदि जगल मे आग लग जाय और पास मे कोई छिद्र न हो तो उसका मरण ही समझो।]

३४६. केसव जातक ३०५

[पाँच राज-वैद्य केशव तपस्वी को अच्छा न कर सके। उसके विश्वस्त शिष्य ने अलूना पत्तो के साथ सामाक-नीवार-यवागु देकर अच्छा कर लिया।]

३४७. अयकूट जातक ३०९

[बलि न मिलने से असतुष्ट यक्ष बोधिसत्व को मारने के लिये आया। इन्द्र ने रक्षा की।]

३४८. अरञ्ज जातक ३११

[पिता ने पुत्र को सत्सगति के बारे मे उपदेश दिया।]

३४९ सन्धिभेद जातक ३१२

[गीदड ने चुगल-खोरी कर सिंह और बैल को परस्पर लडा दिया।]

३५०. देवतापञ्ह जातक ३१५

[देवता-प्रश्नावलि उम्मग्ग जातक (५४६) मे आयेगी।]

पाँचवाँ परिच्छेद

१. मणिकुण्डल वर्ग ३१६

३५१ मणिकुण्डल जातक ३१६

[कोशल-राज ने दुष्ट अमात्य के षड्यन्त्र मे काशी-राज को कारागार मे डाल दिया। काशी-राज योग-बल से विजयी हुआ।]

३५२. सुजात जातक ३१८

[पुत्र से मरे हुए बैल को तृण खिलाने के आग्रह का नाटक कर पिता के हृदय से पितामह का मृत्यु-शोक दूर किया।]

३५३. धोनसाख जातक ३२०

[वाराणसी नरेश ने आचार्य्य की बात मान कर हजार नरेशो की आँखे निकलवाई। उसकी अपनी आँखे एक यक्ष निकाल ले गया।]

३५४. उरग जातक ३२४

[पुत्र साँप के डसने से मर गया। न पिता रोया, न माता रोई, न भार्य्या रोई, न बहिन रोई, न दासी रोई। कारण ?]

३५५. घत जातक ३३०

[दुराचारी अमात्य को देश निकाला दिया गया था। उसने श्रावस्ती के धक राजा से मिल राज्य जितवा दिया।]

३५६. कारण्डिय जातक ३३२

[ब्रह्मचारी ने कन्दरा मे बडी-बडी शिलाये फेकने का नाटक कर आचार्य्य को यह शिक्षा दी कि सभी को अपने मत का नही बनाया जा सकता।]

३५७. लटुकिक जातक ३३५

[हाथी ने अपने अभिमान मे चिडिया की प्रार्थना न सुनी उसके बच्चे को मार ही डाला। चिडिया ने भी कौवे, मक्खी और मेढक का सहयोग ले हाथी को मार डाला।]

३५८. चुल्ल धम्मपाल जातक ३३९

[माँ विलखती रह गई, राजा ने निरपराध अपने सात वर्ष के पुत्र के अग-अग कटवा दिये।]

३५९. सुवण्णमिग जातक ३४३

[मृगी ने विनम्र प्रार्थना करके शिकारी के जाल से मृग को छुटाया।]

३६० सुसन्धि जातक ३४७

[गरुड-राज सुसन्धि को अपने गरुड-भवन मे उडा ले गया। अग्र-गन्धर्व ने भरुकच्छ के व्यापारियो के साथ नौका पर जा पता लगाया।]

२. वण्णारोह वर्ग ३५२

३६१. वण्णारोह जातक ३५२

[गीदड ने सिंह और व्याघ्र को परस्पर लडाने की कोशिश की।]

३६२. सीलवीमंस जातक ३५५

[ब्राह्मण मे शील का अधिक महत्व है, वा बहुश्रुत होने का जाँचने के लिए तीन बार कार्षापण उठाये।]

३६३. हिरि जातक ३५७

[पहले आ चुकी है।]

३६४. खज्जोपनक जातक ३५६

[महा-उम्मग्ग जातक मे विस्तार से आयेगी।]

३६५. अहितुण्डिक जातक ३५९

[कथा पूर्वोक्त सालक जातक मे आ गई है।]

३६६ गुम्बिय जातक ३६१

[जिन्होंने लोभ-वश यज्ञ के रखे हुए विष-मिश्रित मधु-पिण्ड खाये उन सब की जान गई।]

३६७. सालिय जातक ३६३

[वैद्य ने लड़कों को साँप से कटवा कर, फिर उनकी चिकित्सा कर कुछ कमाना चाहा था। साँप ने वैद्यराज को ही यम-लोक पहुँचा दिया।]

३६८. तचसार जातक ३६५

[पूर्व-जातक की तरह ही। इस कथा में लड़कों को मनुष्य-हत्यारा समझ कर राजा के सामने ले गये।]

३६९. मित्तविन्दक जातक ३६७

[कथा महामित्तविन्दक जातक में आयेगी।]

३७०. पलास जातक ३६९

[वट वृक्ष का पौदा बढ़कर पलास-वृक्ष के विनाश का कारण हुआ।]

३. अड्ढ वर्ग ३७२

३७१. दीघिति जातक ३७२

[माता पिता के उपदेश के कारण दीर्घायुकुमार वाराणसी राजा की हत्या करने से रुक गया।]

३७२ मिगपोतक जातक ३७४

[साथ रहने से चाहे मनुष्य हो चाहे पशु, हृदय में प्रेम पैदा हो ही जाता है।]

३७३ मूसिक जातक ३७६

[आचार्य्य की चार गाथाओं ने राजा की जान बचाई।]

३७४. चुल्लधनुग्गह जातक ३८०

[स्त्री ने चोर के हाथ में तलवार दे अपने पति की हत्या करवा दी।]

३७५. कपोत जातक ३८५

[मत्स्य-मास के लोभ के कारण कौवे ने जान गँवाई।]

छठा परिच्छेद

१. अवारिय वर्ग ३८८

३७६ अवारिय जातक ३८८

[जिस उपदेश को सुनकर राजा ने लाख की आमदनी का गाँव दिया, उसी उपदेश को सुन कर नाविक ने बोधिसत्व का मुँह पीट दिया।]

३७७ सेतुकेतु जातक ३९२

[क्या वेद-पाठ एकदम निष्फल है?]

३७८ दरीमुख जातक ३९७

[वैभव की अधिकता मे बोधिसत्व ने चालीस वर्ष तक अपने मित्र को याद नही किया।]

३७९. नेरु जातक ४०३

[जहाँ किसी को विशेषता का ख्याल न हो, वहाँ न रहे।]

३८० आसङ्क जातक ४०५

[राजा आसङ्क कुमारी का नाम बताकर उसे ले आया।]

३८१ मिगालोप जातक ४११

[पिता की आज्ञा न मान बहुत ऊँचे उडने वाला गीध झञ्झा-वात मे फस टुकडे-टुकडे हो गया।]

३८२ सिरिकालकण्णि जातक ४१३

[लक्ष्मी किसके पास रहना पसन्द करती है और दरिद्रता किसके पास?]

३८३ कुक्कुट जातक ४१९

[मुर्गा बिल्ली के चकमे मे नही आया।]

३८४ धम्मद्धज जातक ४२२

[ढोंगी कौवे ने धार्मिक बन कौवो के अण्डे-बच्चे खाये।]

३८५. नन्दिय मिगराज जातक ४२४

[नन्दियमृग ने अपने मैत्री वल से सभी प्राणियो की रक्षा की।]

२. सेनक वर्ग ४२९

३८६. खरपुत्त जातक ४२९

[सभी प्राणियो की बोली समझ सकने का मन्त्र।]

३८७. सूची जातक ४३४

[वोधिसत्व एक अद्‌भुत सूई वनाकर अपनी शिल्प चतुराई के बल से लोहार की सुन्दर कन्या ले आये।]

३८८. तुण्डिल जातक ४३८

[महातुण्डिल ने चुल्लतुण्डिल को मृत्यु से निर्भय रहने का उपदेश दिया।]

३८९. सुवण्णकक्कटक जातक ४४३

केंकडे ने साँप और कौवे की गरदन दबोच अपने मित्र की जान बचाई।]

३९० मय्हक जातक ४४८

[दान देने से पहले, देते समय और देने के बाद मन प्रसन्न रहना चाहिये—तभी उसका महाफल होता है।]

३९१. धजविहेठ जातक ४५३

[राजा ने एक साधु के दुराचार के कारण सभी साधुओ को राज्य से निकलवा दिया।]

३९२. भिसपुप्फ जातक ४५७

[देवकन्या ने श्रमण को पुष्प की गन्ध-चोरी करने पर टोका।]

३९३ विघास जातक ४६०

[सच्चे विघासादि कौन है?]

३९४. वट्टक ४६२

[कौवा स्निग्ध पदार्थ खाता हुआ भी कृप रहता है और वटेर सूखे तिनके और दाने खाकर भी मोटा जाता है। क्यो ?]

३९५. काक जातक ४६४

[कौवे ने मत्स्य-मास के लोभ मे जान गँवाई।]

सातवाँ परिच्छेद

१. कुक्कु वर्ग ४६६

३९६. कुक्कु जातक ४६६

[बोधिसत्व ने राजा को उपमा द्वारा उपदेश दिया।]

३९७. मनोज जातक ४६९

[घोडे का मास खाने वाले सिंह दीर्घायु नही होते।]

३९८. सुतनु जातक ४७३

[सुतनु अपने बुद्धि-बल से यक्ष से जान बचाने मे सफल हुआ।]

३९९. गिज्झ जातक ४७८

[सौ योजन ऊपर से मुर्दार देख सकने वाला गीध पास का जाल नही देख सकता।]

४००. दब्भपुप्फ जातक ४८०

[न्यायी-गीदड ने दो ऊद-बिलाऊओ के बीच मे बन्दर-बाँट की।]

तीसरा परिच्छेद

१. सङ्कप्प वर्ग

२५१. सङ्कप्प जातक

"सङ्कप्परागधोतेन" यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय एक उद्विग्नचित्त भिक्षु के बारे मे कही।

क वर्तमान कथा

इस श्रावस्ती-वासी तरुण ने बुद्धधर्म मे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रव्रज्या ग्रहण की। एक दिन श्रावस्ती मे भिक्षार्थ घूमते हुए अलङ्कारो से सजी एक स्त्री को देख कर कामुकता के वशीभूत हो वह अन्यमनस्क घूमने लगा। उसे आचार्य्य उपाध्याय आदि ने देख अन्यमनस्कता का कारण पूछा। उन्हे पता लगा कि यह गृहस्थ होना चाहता है। वे बोले—"आयुष्मान! शास्ता रागादि क्लेश से पीड़ितो के क्लेश को दूर कर उन्हे स्रोतापत्ति फल आदि देते है। आ तुझे शास्ता के पास ले चलें।" इतना कह ले गए।

शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ, इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर क्यो आए हो?" उन्होने कारण बताया। तब शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उद्विग्नचित्त है?"

"सचमुच।"

"किस कारण से?"

उसने कारण बताया।

शास्ता ने कहा—'भिक्षु! इन स्त्रियो ने पूर्व समय मे ध्यान-बल से जिन्होने अपने चित्त-मैल को एक ओर कर दिया ऐसे पवित्र प्राणियो के मन मे भी कामुकता पैदा कर दी। तेरे जैसे तुच्छ आदमी तो क्यो उद्विग्न नही होगे जब कि शुद्ध प्राणी भी उद्विग्न हो गए। उत्तम यशस्वी भी बदनाम हो जाते है, अशुद्धो का तो क्या कहना? सुमेरु पर्वत को हिला देने वाली हवा

क्या पुराने पत्तो के ढेर को नही हिलाएगी ? बोधि (वृक्ष) के नीचे बैठकर बुद्धत्व प्राप्त करने वाले प्राणी को भी इस कामुक्ता ने हिला दिया था। तेरे जैसे को क्यो न चचल करेगी ?"

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन वाले ऊँचे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला मे सब विद्याएँ सीख वाराणसी लौट कर विवाह किया। माता-पिता के मरने पर उनके मृतक सस्कार करवा हिरण्य की ओर ध्यान दिया। जब उसने देखा कि धन तो दिखाई देता है लेकिन जिन्होने यह धन इकट्ठा किया वे नही दिखाई देते तो उसे सवेग हुआ। शरीर से पसीना छूटने लगा।

उसने चिरकाल तक गृहस्थी कर, महादान दे, काम-भोगो को छोड, आसू बहाते-बहाते रिश्तेदारो को त्याग, हिमालय मे प्रवेश कर, रमणीय प्रदेश मे पर्णशाला बना उञ्छाचरिया[1] से जगल के कन्दमूल फल खाते हुए जीवनयापन किया। थोडे ही समय मे अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-रत रह, चिरकाल तक वहाँ रहते हुए सोचा—आबादी मे जाकर निमक-खटाई का सेवन करूँगा। ऐसा करने से मेरा शरीर भी स्वस्थ होगा और घूमना भी हो जायगा। जो मेरे जैसे सदाचारी को भिक्षा देगे अथवा अभिवादन आदि करेंगे वे स्वर्ग जायेंगे।

उसने हिमालय से उतर क्रम से चारिका करते हुए, वाराणसी पहुँच, सूर्य्यास्त के समय निवासस्थान खोजते हुए राजोद्यान देखा। यह सोच कि यह योगाभ्यास के अनुकूल होगा, यहाँ रहूँगा, उसने उद्यान मे प्रवेश कर एक वृक्ष की जड मे बैठ ध्यान-सुख मे ही रात बिता दी। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, पूर्वाह्ण समय जटा, अजिन (चर्म) तथा वल्कल धारण कर, भिक्षापात्र ले, शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त-मन हो, सुन्दर चाल-ढाल से युक्त, युगमात्र देखते हुए, अपने सब तरह के सौन्दर्य से लोगो की

---

१ घूम फिर कर गिरे फल आदि चुग कर खाना।

आँखो को खैंच लेते हुए की तरह, नगर मे प्रवेश कर भिक्षा मागता हुआ, राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा।

राजा ने महातल्ले पर टहलते समय झरोखे मे बोधिसत्व को देख कर उसकी चाल-ढाल से ही प्रसन्न हो सोचा यदि शान्त-धम नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी। उसने एक अमात्य को भेजा—जाओ इस तपस्वी को ले आओ। उसने जाकर प्रणाम किया और भिक्षा-पात्र लेकर कहा—भन्ते! राजा आपको बुलाता है। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महापुण्य! हमे राजा नही पहचानता है। 'तो भन्ते! जब तक मैं आऊँ तब तक यही रहे' कह उसने राजा को खबर दी। राजा बोला—हमारा कोई दूसरा कुल-विश्वासी तपस्वी नही है। जाओ उसे ले जाओ। उसने स्वय भी खिडकी से हाथ निकाल, प्रणाम कर कहा—भन्ते इधर आएँ। बोधिसत्व अमात्य के हाथ मे भिक्षापात्र देकर महातल्ले पर चढे।

राजा ने प्रणाम कर बोधिसत्व को अपने आसन पर बिठा अपने लिए तैयार किये गये यवागु-खाद्य-भोज्य परोस कर भोजन कर चुकने पर प्रश्न पूछा। शका समाधान से और भी अधिक श्रद्धावान हो, प्रणाम कर पूछा—"भन्ते, आप कहाँ के निवासी है? कहाँ से आये है?"

"हम हिमालय के वासी है। महाराज! हम हिमालय से आये है।"

"किस कारण से?"

"महाराज! वर्षाकाल मे स्थिर रूप से रहने के लिए जगह होनी चाहिए।"

"तो भन्ते! राजोद्यान मे रहे। तुम्हे चार प्रत्ययो[1] का अभाव न रहेगा। और मुझे स्वर्ग की ओर ले जाने वाला पुण्य मिलेगा।"

राजा ने बोधिसत्व से वचन ले जलपान के अनन्तर बोधिसत्व के ही साथ उद्यान जा, वहाँ पर्णशाला और चक्रमण-स्थान बनवा, बाकी भी रात और दिन के स्थान बनवाए। फिर प्रव्रजितो की सभी आवश्यकताएँ दे, 'भन्ते! सुख से रहे' कह उद्यानपाल को देख-भाल के लिए कहा। बोधिसत्व तब से बारह वर्ष तक वही रहे।

---

१ भिक्षु की चारो आवश्यकतायें।

क्या पुराने पत्तो के ढेर को नही हिलाएगी ? बोधि (वृक्ष) के नीचे बैठकर बुद्धत्व प्राप्त करने वाले प्राणी को भी इस कामुक्ता ने हिला दिया था। तेरे जैसे को क्यो न चचल करेगी ?”

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन वाले ऊँचे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। वडे होने पर तक्षशिला मे सब विद्याएँ सीख वाराणसी लौट कर विवाह किया। माता-पिता के मरने पर उनके मृतक सस्कार करवा हिरण्य की ओर ध्यान दिया। जब उसने देखा कि धन तो दिखाई देता है लेकिन जिन्होने यह धन इकट्ठा किया वे नही दिखाई देते तो उसे सवेग हुआ। शरीर से पसीना छूटने लगा।

उसने चिरकाल तक गृहस्थी कर, महादान दे, काम-भोगो को छोड, आसू बहाते-बहाते रिश्तेदारो को त्याग, हिमालय मे प्रवेश कर, रमणीय प्रदेश मे पर्णशाला बना उञ्छाचरिया[1] से जगल के कन्दमूल फल खाते हुए जीवनयापन किया। थोडे ही समय मे अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-रत रह, चिरकाल तक वहाँ रहते हुए सोचा—आबादी मे जाकर निमक-खटाई का सेवन करूँगा। ऐसा करने से मेरा शरीर भी स्वस्थ होगा और घूमना भी हो जायगा। जो मेरे जैसे सदाचारी को भिक्षा देंगे अथवा अभिवादन आदि करेंगे वे स्वर्ग जायेगे।

उसने हिमालय से उतर क्रम से चारिका करते हुए, वाराणसी पहुच, सूर्य्यास्त के समय निवासस्थान खोजते हुए राजोद्यान देखा। यह सोच कि यह योगाभ्यास के अनुकूल होगा, यहाँ रहूँगा, उसने उद्यान मे प्रवेश कर एक वृक्ष की जड मे बैठ ध्यान-सुख मे ही रात बिता दी। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, पूर्वाह्न समय जटा, अजिन (चर्म) तथा वल्कल धारण कर, भिक्षापात्र ले, शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त-मन हो, सुन्दर चाल-ढाल से युक्त, युगमात्र देखते हुए, अपने सब तरह के सौन्दर्य से लोगो की

---

१ घूम फिर कर गिरे फल आदि चुग कर खाना।

आँखो को खींच लेते हुए की तरह, नगर मे प्रवेश कर भिक्षा मांगता हुआ, राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा ।

राजा ने महातल्ले पर टहलते समय झरोखो से बोधिसत्व को देख कर उसकी चाल-ढाल से ही प्रसन्न हो सोचा यदि शान्त-धर्म नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी । उसने एक अमात्य को भेजा— जाओ इस तपस्वी को ले आओ । उसने जाकर प्रणाम किया और भिक्षा-पात्र लेकर कहा—भन्ते ! राजा आपको बुलाता है । बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महापुण्य ! हम राजा नही पहचानता है । 'तो भन्ते ! जब तक मै आऊँ तब तक यही रहे' कह उसने राजा को खबर दी । राजा बोला— हमारा कोई दूसरा कुल-विश्वासी तपस्वी नही है । जाओ उसे ले आओ । उसने स्वयं भी खिडकी से हाथ निकाल, प्रणाम कर कहा—भन्ते इधर आएँ । बोधिसत्व अमात्य के हाथ मे भिक्षापात्र देकर महातल्ले पर चढे ।

राजा ने प्रणाम कर बोधिसत्व को अपने आसन पर बिठा अपने लिए तैयार किये गये यवागु-खाद्य-भोज्य परोस कर भोजन कर चुकने पर प्रश्न पूछा । शका समाधान से और भी अधिक श्रद्धावान हो, प्रणाम कर पूछा— "भन्ते, आप कहाँ के निवासी है ? कहाँ से आये है ?"

"हम हिमालय के वासी है । महाराज ! हम हिमालय से आये है ।"

"किस कारण से ?"

"महाराज ! वर्षाकाल मे स्थिर रूप मे रहने के लिए जगह होनी चाहिए ।"

"तो भन्ते ! राजोद्यान मे रहे । तुम्हे चार प्रत्ययो[1] का अभाव न रहेगा । और मुझे स्वर्ग की ओर ले जाने वाला पुण्य मिलेगा ।"

राजा ने बोधिसत्व से वचन ले जलपान के अनन्तर बोधिसत्व के ही साथ उद्यान जा, वहाँ पर्णशाला और चङ्क्रमण-स्थान बनवा, बाकी भी रात और दिन के स्थान बनवाए । फिर प्रव्रजितो की सभी आवश्यकताएँ दे, 'भन्ते ! सुख से रहे' कह उद्यानपाल को देख-भाल के लिए कहा । बोधिसत्व तब से बारह वर्ष तक वही रहे ।

---

१ भिक्षु की चारो आवश्यकतायें ।

क्या पुराने पत्तो के ढेर को नही हिलाएगी ? बोधि (वृक्ष) के नीचे बैठकर बुद्धत्व प्राप्त करने वाले प्राणी को भी इस कामुक्ता ने हिला दिया था। तेरे जैसे को क्यो न चचल करेगी ?"

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व ममय मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन वाले ऊँचे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। वडे होने पर तक्षशिला मे सब विद्याएँ सीख वाराणसी लौट कर विवाह किया। माता-पिता के मरने पर उनके मृतक सस्कार करवा हिरण्य की ओर ध्यान दिया। जब उसने देखा कि धन तो दिखाई देता हे लेकिन जिन्होने यह धन इकट्ठा किया वे नही दिखाई देते तो उसे सवेग हुआ। शरीर से पसीना छूटने लगा।

उसने चिरकाल तक गृहस्थी कर, महादान दे, काम-भोगो को छोड, आसू बहाते-बहाते रिश्तेदारो को त्याग, हिमालय मे प्रवेश कर, रमणीय प्रदेश मे पर्णशाला बना उञ्छाचरिया[1] से जगल के कन्दमूल फल खाते हुए जीवनयापन किया। थोडे ही समय मे अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-रत रह, चिरकाल तक वहाँ रहते हुए सोचा—आबादी मे जाकर निमक-खटाई का सेवन करूँगा। ऐसा करने से मेरा शरीर भी स्वस्थ होगा और घूमना भी हो जायगा। जो मेरे जैसे सदाचारी को भिक्षा देंगे अथवा अभिवादन आदि करेगे वे स्वर्ग जायेंगे।

उसने हिमालय से उतर क्रम से चारिका करते हुए, वाराणसी पहुँच, सूर्य्यास्त के समय निवासस्थान खोजते हुए राजोद्यान देखा। यह सोच कि यह योगाभ्यास के अनुकूल होगा, यहाँ रहूँगा, उसने उद्यान मे प्रवेश कर एक वृक्ष की जड मे बैठ ध्यान-सुख मे ही रात बिता दी। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, पूर्वाह्ण समय जटा, अजिन (चर्म) तथा वल्कल धारण कर, भिक्षापात्र ले, शान्त-इन्द्रिय तथा शान्त-मन ही, सुन्दर चाल-ढाल से युक्त, युगमात्र देखते हुए, अपने सब तरह के सौन्दर्य से लोगो की

---

१ घूम फिर कर गिरे फल आदि चुग कर खाना।

आँखो को खैंच लेते हुए की तरह, नगर मे प्रवेश कर भिक्षा मागता हुआ, राजा के निवास-स्थान पर पहुँचा ।

राजा ने महातल्ले पर टहलते समय झरोखो मे बोधिसत्व को देख कर उसकी चाल-ढाल से ही प्रसन्न हो सोचा यदि शान्त-धर्म नाम की कोई चीज है तो वह इसके अन्दर अवश्य होगी । उसने एक अमात्य को भेजा—जाओ इस तपस्वी को ले आओ । उसने जाकर प्रणाम किया और भिक्षा-पात्र लेकर कहा—भन्ते ! राजा आपको बुलाता है । बोधिसत्व ने उत्तर दिया—महापुण्य ! हमे राजा नही पहचानता है । 'तो भन्ते ! जब तक मैं आऊँ तब तक यही रहे' कह उसने राजा को खबर दी । राजा बोला—हमारा कोई दूसरा कुल-विश्वासी तपस्वी नही है । जाओ उसे ले जाओ । उसने स्वय भी खिडकी से हाथ निकाल, प्रणाम कर कहा—भन्ते इधर आएँ । बोधिसत्व अमात्य के हाथ मे भिक्षापात्र देकर महातल्ले पर चढे ।

राजा ने प्रणाम कर बोधिसत्व को अपने आसन पर बिठा अपने लिए तैयार किये गये यवागु-खाद्य-भोज्य परोस कर भोजन कर चुकने पर प्रश्न पूछा । शका समाधान से और भी अधिक श्रद्धावान हो, प्रणाम कर पूछा—"भन्ते, आप कहाँ के निवासी है ? कहाँ से आये है ?"

"हम हिमालय के वासी है । महाराज ! हम हिमालय से आये है ।"

"किस कारण से ?"

"महाराज ! वर्षाकाल मे स्थिर रूप से रहने के लिए जगह होनी चाहिए ।"

"तो भन्ते ! राजोद्यान मे रहे । तुम्हे चार प्रत्ययो[1] का अभाव न रहेगा । और मुझे स्वर्ग की ओर ले जाने वाला पुण्य मिलेगा ।"

राजा ने बोधिसत्व से वचन ले जलपान के अनन्तर बोधिसत्व के ही साथ उद्यान जा, वहाँ पर्णशाला और चक्रमण-स्थान बनवा, बाकी भी रात और दिन के स्थान बनवाए । फिर प्रव्रजितो को सभी आवश्यकताएँ दे, 'भन्ते ! सुख से रहे' कह उद्यानपाल को देख-भाल के लिए कहा । बोधिसत्व तब से बारह वर्ष तक वही रहे ।

---

१ भिक्षु की चारो आवश्यकतायें ।

किसी दिन राजा के इलाके में बगावत हुई। उसे शान्त करने के लिए जाने के इच्छुक राजा ने देवी को सम्बोधन कर कहा—"भद्र! मुझे या तुझे नगर में पीछे रहना चाहिए।"

"देव! किस कारण कहते है?"

"भद्र! सदाचारी तपस्वी के लिए।"

'देव! मैं इसमें प्रमाद नही करूंगा। अपने आर्य्य की सेवा का भार मुझ पर रहा। तुम निश्चिन्त होकर जाओ।" राजा निकल कर गया। देवी उसी प्रकार से सावधानी से बोधिसत्व की सेवा करती रही। राजा के जाने के बाद से बोधिसत्व नियमित समय पर न जा अपनी मरजी के समय राज-घर जाकर भोजन करते।

एक दिन बोधिसत्व के बहुत देर करने के कारण देवी सब खाद्य-भोज्य तैयार कर, नहा कर, अलकृत हो, छोटी शैय्या बिछवा, बोधिसत्व के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई चिकने कपडे को ढीला करके पहन लेट रही। बोधिसत्व भी समय देख भिक्षा-पात्र ले आकाश मार्ग से आ, बड़ी खिडकी के द्वार पर पहुँचे। उसका वलकल शब्द सुन कर सहसा उठने वाली देवी का पीला चिकना वस्त्र खिसक गया। बोधिसत्व ने विपक्षी-आलम्बन[1] इन्द्रियो को चचल करके शुभ मान कर देखा।

उसका ध्यान-बल से शान्त हुआ भी विकार पिटारी के साप की तरह फण उठा कर खडा हो गया। दूध वाले वृक्ष को वसूले से छील देने की तरह हुआ। विकार उत्पन्न होने के साथ ही ध्यान-बल नष्ट हो गया। इन्द्रियाँ मैली पड गई। उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी उस कौवे की जिसने अपने से अपने पर उखाड लिए हो। वह पहले की तरह बैठ कर भोजन भी नही कर सका। बिठाने पर भी नही बैठा।

देवी ने सब खाद्य-भोज्य भिक्षा-पात्र में ही डाल दिया। जैसे पहले भोजन करके खिडकी से निकल आकाश मार्ग से जाता था, उस तरह से उस दिन न जा सका। भोजन लेकर बडी सीढी से उतर उद्यान गया। देवी भी जान गई कि वह उस पर आसक्त हो गया है। तपस्वी उद्यान पहुँच, भोजन बिना

---

१ स्त्री के लिये पुरुष तथा पुरुष के लिये स्त्री विपक्षी-आलम्बन है।

खाये ही (उसे) चारपाई के नीचे डाल 'देवी के हाथ का सौन्दर्य ऐसा है, पाँवो का सौन्दर्य ऐसा है, कमर के नीचे का हिस्सा ऐसा है, जाँघ ऐसी है' आदि प्रलाप करता हुआ सप्ताह भर पडा रहा। भोजन सड गया। उसमे कीडे पड गये।

राजा इलाके को शान्त कर लौट आया। सजे-सजाये नगर की प्रदक्षिणा कर बिना राजमहल गये बोधिसत्व को देखने की इच्छा मे उद्यान पहुंचा। आश्रम मे कूडा-करकट देख कर सोचा 'चला गया होगा'। पर्णशाला का दरवाजा खोल कर अन्दर प्रवेश करने पर उसे लेटे देख 'कोई रोग होगा' सोच, सडा हुआ भात फिकवा, पर्णशाला साफ करवा पूछा—भन्ते! क्या रोग है?

"महाराज मुझे बीध डाला है।"

राजा ने सोचा—मेरे शत्रुओ ने मुझे हानि पहुँचाने का अवसर न पा 'इसके मर्मस्थल को आघात पहुँचाये' सोच आकर इसे बीध डाला होगा। उसने शरीर को पलट कर बिधा-स्थान देखना चाहा। जब उसे बिधा-स्थान दिखाई न दिया तो पूछा—"भन्ते! तीर कहाँ लगा है?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"महाराज! मुझे किसी दूसरे ने नही बीधा है। मैंने अपने ही अपने हृदय मे तीर मारा है।" इतना कह, उठकर आसन पर बैठ ये गाथायें कही—

सङ्कप्परागधोतेन वितक्कनिसितेन च,
नालङ्कटेन भद्रेन न उसुकारकतेन च॥
न कण्णायतमुत्तेन नपि मोरूपसेविना,
तेनम्हि हृदये विद्धो सब्बङ्गपरिदाहिना॥
आवेधञ्च न पस्सामि यतो रुहिरमस्सवे,
याव अयोनिसो चित्तं सय मे दुक्खमाभत॥

[कामभोग सम्बन्धी सङ्कल्प से रँगे हुए, (उसी) सङ्कल्प (रूपी) पत्थर पर तेज किए हुए, असुन्दर, घृणित, जिसे किसी तीर बनाने वाले ने नही बनाया, जो कान के सिरे की तरह नही, जो मोर के पख की तरह नही, (ऐसे) सारे शरीर को जलाने वाले (तीर) से मैं बिधा हू। कही बिधा-स्थान नही है

जिसमे से रुधिर बहे । मैने अनुचित तौर पर चित्त को बढने देकर स्वय दुख (मोल) लिया है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओ से राजा को धर्मोपदेश दे, राजा को पर्णशाला से बाहर भेज, योगाभ्यास कर, नष्ट हुए ध्यान को प्राप्त किया। फिर पर्णशाला मे निकल आकाश मे ठहर राजा को उपदेश देते हुए कहा— "महाराज ! मैं हिमालय ही जाऊँगा ।" राजा बोला—भन्ते, नही जा सकते । उसके इस प्रकार याचना करते रहने पर भी 'महाराज ! यहाँ रहते हुए मैं इस गडबडी को प्राप्त हुआ । अब मैं यहाँ नही रह सकता' कह आकाश मे ऊपर उठ हिमालय चले गये । वहाँ आयु भर रह ब्रह्मलोकगामी हुए ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य्य) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त मे आसक्त-चित्त भिक्षु अर्हत हुआ । कुछ स्रोतापन्न हुए, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी । उस समय राजा आनन्द था । तपस्वी तो मैं ही था ।

२५२. तिलमुट्ठि जातक

"अज्जापि मे त मनसि " यह गाथा शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक क्रोधी के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु क्रोधी स्वभाव का था । बहुत अस्थिर-चित्त । थोडी-सी बात कहने से भी क्रोध आ गया, चिढ गया, कोप द्वेष तथा गुस्सा प्रकट किया । भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अमुक भिक्षु क्रोधी है, अस्थिर-चित्त है, चूल्हे मे डाले निमक की तरह तटतटाता घूमता है, इस प्रकार के अक्रोधी (बुद्ध) शासन मे प्रव्रजित हो गुस्से तक को नही रोक सकता है ।

शास्ता ने सुना तो एक भिक्षु को भेजकर उस भिक्षु को बुलवा कर पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच क्रोधी है ? "भन्ते ! सचमुच ।" "भिक्षुओ, यह केवल अभी क्रोधी नही है, यह पहले भी क्रोधी ही था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसका ब्रह्मदत्तकुमार नाम का पुत्र था । पुराने राजा अपने लडको को नगर मे प्रसिद्ध आचार्य्यों के रहते हुए भी शिल्प सीखने के लिए दूर परदेश भेजते थे ताकि उनका मान मर्दन हो जाए, सरदी-गरमी सहने की सामर्थ्य आ जाए तथा लोक-व्यवहार के ज्ञाता हो जाये । उस राजा ने भी अपने सोलह वर्ष के पुत्र को बुला उसे एक तल्ले का जूता, पत्तो का छाता और एक हजार कार्षापण दे भेजा—तात ! तक्षशिला जाकर विद्या सीख आ । उसने 'अच्छा' कह माता-पिता को प्रणाम कर विदा ली । चलते-चलते वह तक्षशिला पहुँचा । आचार्य्य का घर पूछकर, आचार्य्य के शिष्यो को पाठ बचवाकर घर के दरवाजे पर टहलते समय वह पहुँचा । जहाँ आचार्य्य दिखाई दिए उसी जगह से जूते उतार, छाता बन्द कर आचार्य्य को प्रणाम करके खडा हुआ ।

आचार्य्य ने उसे थका हुआ जान उसका आतिथ्य कराया । राजकुमार भोजन के बाद थोडा विश्राम करके आचार्य्य के पास जा प्रणाम करके खडा हुआ । तात ! कहाँ से आया ? पूछने पर 'वाराणसी से' उत्तर दिया ।

"किसका पुत्र है ?"

' वाराणसी राजा का ।"

"किस लिए आया है ?"

"शिल्प सीखने के लिए"

"आचार्य्य-भाग (फीस) लाया है वा धर्म-शिष्य[1] बनना चाहता है ?"

उसने 'आचार्य्य-भाग लाया हूँ' कह आचार्य्य के चरणो मे हजार की

---

१ विना फीस चुकाये आचार्य्य की सेवा करके पढने वाले को धर्म अतेवासिक कहते थे ।

थैली रख प्रणाम किया। धर्म-शिष्य दिन में आचार्य्य का काम करके रात को शिल्प सीखते थे। आचार्य्य-भाग देने वाले घर में ज्येष्ठ पुत्र की तरह रह कर केवल शिल्प ही सीखते थे। उस आचार्य्य ने भी योग्य नक्षत्र में राजकुमार को विद्या सिखाना आरम्भ किया।

शिल्प सीखता हुआ कुमार एक दिन आचार्य्य के साथ नहाने गया। एक बुढिया तिलों को साफ कर फैला कर रखवाली करती हुई बैठी थी। कुमार ने साफ तिल देख खाने की इच्छा से एक मुट्ठी तिल उठा कर खा लिये। बुढिया ने सोचा—यह लोभी है। वह कुछ न बोली। चुप रही। उसने अगले दिन भी वैसा ही किया। बुढिया ने तब भी उसे कुछ न कहा। कुमार ने तीसरे दिन भी वैसा ही किया। तब बुढिया हाथ उठाकर रोने लगी—प्रसिद्ध आचार्य्य अपने शिष्यो द्वारा मुझे लुटवा रहा है। आचार्य्य ने रुक कर पूछा—माँ, यह क्या है ?

"स्वामी! तुम्हारे शिष्य ने मेरे द्वारा साफ किए गए तिलो की आज एक मुट्ठी खाई, कल भी एक मुट्ठी खाई और परसो भी एक। क्या इस प्रकार खाते हुए मेरे सब तिल नही नष्ट कर देगा ?"

"माँ, मत रो। तुझे मूल्य दिलवाऊँगा।"

"स्वामी! मुझे कीमत नही चाहिये। इस कुमार को ऐसी शिक्षा दे कि यह फिर ऐसा न करे।"

'तो अम्मा! देख' कह आचार्य्य ने दो लडको से उस राजकुमार को पकडवा कर बाँस की छडी ले तीन बार पीठ पर मारी—फिर ऐसा न करना। कुमार ने क्रोधित हो लाल आँखे कर आचार्य्य को सिर से पैर तक देखा। आचार्य्य जान गया कि उसने क्रोध भरी आँख से देखा है।

कुमार ने सोचा, विद्या समाप्त कर निमन्त्रण देकर मार डालूँगा। उसने आचार्य्य की करतूत मन मे रख जाते समय आचार्य्य को प्रणाम कर स्नेही की तरह कहा—आचार्य्य, मैं वाराणसी पहुँच कर राज्य प्राप्त करने पर तुम्हें बुलवा भेजूँगा। तुम (अवश्य) आना। इस प्रकार प्रतिज्ञा करा चला गया। उसने वाराणसी जा माता-पिता को प्रणाम कर शिल्प दिखाया। राजा ने 'जीते-जी मैंने पुत्र को देख लिया, अब जीते-जी इसे राज्यश्री सौंप दूँ' सोच पुत्र को राज्य दे दिया।

उसने राज्यश्री का उपभोग करते हुए, आचार्य्य की करतूत याद कर क्रोधित हो, सोचा—उसे मरवाऊँगा और आचार्य्य को बुलाने के लिए दूत भेजा। तरुण अवस्था रहते उसे समझा न सकूँगा, सोच आचार्य्य नहीं गया। मध्यम अवस्था होने पर अब उसे समझा सकूँगा सोच, आचार्य्य ने जाकर राजद्वार पर खड़े हो कहलवाया—तक्षशिला का आचार्य्य आया है। राजा ने सतुष्ट हो, ब्राह्मण को बुलाकर उसे अपने पास आया देख, क्रोधित हो, लाल आँखे निकाल, अमात्यो को सम्बोधित कर कहा—भो, जिस स्थान पर आचार्य्य ने मुझे चोट पहुँचाई थी वह आज भी दुखता है। आचार्य्य सिर पर मृत्यु लेकर मरने के लिये आया है। आज यह जीता नही रहेगा। इतना कह पहली दो गाथाएँ कही —

अज्जापि मे त मनसि य म त्व तिलमुट्ठिया,
बाहाय म गहेत्वान लट्ठिया अनुताळयि
ननु जीविते न रमसि येनासि ब्राह्मणागतो,
य म बाहा गहेत्वान तिक्खत्तु अनुताळयि ॥

[आज भी वह बात मेरे मन मे है, जो तूने मुझे तिल की मुट्ठी (ले लेने) के लिए बाहो से पकड कर लाठी से पीटा था। निश्चय से ब्राह्मण! तुझे जीना अच्छा नही लगता, जो तूने मुझे बाहो से पकड कर तीन बार पीटा था और अब (मेरे बुलाने से यहाँ) चला आया है।]

इस प्रकार उसे मृत्यु-भय दिखाते हुए कहा। उसे सुन आचार्य्य ने तीसरी गाथा कही —

अरियो अनरिय कुब्बान यो दण्डेन निसेधति,
सासनत्थ न त वेरं इति न पण्डिता विदु ॥

[जो आर्य अनार्य्य-कर्म करने वाले का अनुशासन करने के लिए उसे दण्ड से दण्डित करता है। पण्डित-जन उस (आर्य) के उस (कर्म) को वैर नही कहते।]

आर्य का मतलब है श्रेष्ठ। आर्य चार प्रकार का होता है—आचार-आर्य दर्शन-आर्य, लिग-आर्य तथा पटिवेध-आर्य। मनुष्य हो अथवा पशु हो

जिसका आचरण श्रेष्ठ है वह आचार-आर्य है। कहा भी गया है —

अरिय वत्तसि वक्कङ्ग ! यो वद्धमपचायसि,
चजामि ते त भत्तार गच्छथूभो यथासुख ॥

[हे वक्कङ्ग ! यह जो तू वयोवृद्धो का आदर करता है, यह तेरा आर्य बरताव है। मैं तेरे भर्तार को छोडता हूँ। दोनो यथा सुख जाओ।]

रूप से वा मन प्रसन्न करने वाले दर्शनीय विहार मे युक्त दर्शन-आर्य है। कहा भी गया है —

अरियावकासोसि पसन्ननेत्तो
मञ्ञे भव पब्बजितो कुलम्हा;
कथन्नु वित्तानि पहाय भोगे
पब्बज्जि निक्खम्म घरा सपञ्ञा

[हे प्रसन्न नेत्र ! आप आर्य प्रतीत होते है। ऐसा लगता है कि आप (श्रेष्ठ) कुल से प्रव्रजित हुए है। हे प्रज्ञावान् ! काम-भोग और धन छोड कर आप कैसे घर से निकल कर प्रव्रजित हुये है ?]

ओढना पहनना चिह्न स्वरूप धारण कर श्रमण की तरह होकर घूमने वाला दुश्शील भी लिंग-आर्य है। इसी के लिए कहा है —

छदन कत्वान सुब्बतान
पक्खन्दी कुलदूसको पगब्भो,
मायावी असञ्ञतो पलापो
पतिरूपेन चर स मग्गदूसी ॥

[सु-व्रतो के वस्त्र पहनकर कुल-दूषक, प्रगल्भ निकला। असयत, मायावी, बेकार सबको दूषित करता हुआ उलटा आचरण करता है।]

बुद्ध आदि परिवेध (=ज्ञान) आर्य है। कहा गया है —बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावक आर्य कहलाते है। चारो प्रकार के आर्यों मे यहाँ आचार-आर्यो से ही मतलब है।

इस प्रकार समझाते हुए आचार्य ने कहा—"इसलिये महाराज तुझे भी इस प्रकार समझ, इस तरह के व्यक्ति से वैर नही करना चाहिये। महाराज ! यदि मैंने तुम्हें इस तरह की शिक्षा न दो होती तो ज्यो-ज्यो समय

गुजरता, तुम पूए, मट्ठी आदि तथा फलाफल चुराते हुए चौर-कर्म के प्रति आसक्त हो, क्रम से सेन्ध लगाना, रास्ता मारना तथा ग्रामघात आदि करते। (फिर) राजापराधी चोर समझे जाकर माल सहित राजा के सम्मुख ले जाए जाते। राजा कहता—जाओ इसे इसके अपराध के अनुसार दण्ड दो। तब तुम राज-दण्ड-भय को प्राप्त होते। तुम्हे इस प्रकार की सम्पत्ति कहाँ से मिलती? क्या मेरे ही कारण तुम्हे इस प्रकार का ऐश्वर्य नही मिला?"

उसे घेर कर खडे अमात्य भी उसकी बात सुन, कहने लगे—देव! तुम्हे यह जो ऐश्वर्य मिला है, तुम्हारे आचार्य से ही मिला है। उस समय राजा ने आचार्य के गुणो का ख्याल कर कहा—आचार्य! सब राज्य ऐश्वर्य आपको देता हूँ। राज्य स्वीकार करे। आचार्य ने अस्वीकृत किया—मुझे राज्य की जरूरत नही।

राजा ने तक्षशिला भेज, आचार्य के स्त्री-बच्चो को मँगवा, बहुत ऐश्वर्य दे तथा उसे ही पुरोहित बना, पिता के स्थान पर स्थापित किया। फिर उसी के उपदेशानुसार आचरण कर, दानादि पुण्य कर्म कर, स्वर्ग-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ। बहुत स्रोतापन्न सकृदागामी तथा अनागामी हुए। उस समय राजा क्रोधी भिक्षु था। आचार्य तो मै ही था।

२५३. मणिकण्ठ जातक

"ममन्नपान " यह शास्ता ने आळवि के पास अग्गाळव चैत्य मे विहार करते समय कुटिकार शिक्षापद के बारे मे कही —

जिसका आचरण श्रेष्ठ है वह आचार-आर्य है। कहा भी गया है —

अरिय वत्तसि वक्कङ्ग ! यो वद्धमपचायसि,

चजामि ते त भत्तार गच्छथूभो यथासुख ॥

[हे वक्कङ्ग ! यह जो तू वयोवृद्धो का आदर करता है, यह तेरा आर्य बरताव है। मैं तेरे भर्तार को छोडता हू। दोनो यथा सुख जाओ।]

रूप से वा मन प्रसन्न करने वाले दर्शनीय विहार मे युक्त दर्शन-आर्य है। कहा भी गया है —

अरियावकासोसि पसन्ननेत्तो

मञ्ञे भव पब्बजितो कुलम्हा;

कथन्नु वित्तानि पहाय भोगे

पब्बज्जि निक्खम्म घरा सपञ्ञा

[हे प्रसन्न नेत्र ! आप आर्य प्रतीत होते है। ऐसा लगता है कि आप (श्रेष्ठ) कुल से प्रव्रजित हुए है। हे प्रज्ञावान् ! काम-भोग और धन छोड कर आप कैसे घर से निकल कर प्रव्रजित हुये है ?]

ओढना पहनना चिह्न स्वरूप धारण कर श्रमण की तरह होकर घूमने वाला दुश्शील भी लिंग-आर्य है। इसी के लिए कहा है —

छदन कत्वान सुब्बतानं

पक्खन्दी कुलदूसको पगब्भो,

मायावी असञ्ञतो पलापो

पतिरूपेन चर स मग्गदूसी ॥

[सु-व्रतो के वस्त्र पहनकर कुल-दूषक, प्रगल्भ निकला। असयत, मायावी, बेकार सबको दूषित करता हुआ उल्टा आचरण करता है।]

बुद्ध आदि परिवेध (=ज्ञान) आर्य है। कहा गया है —बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावक आर्य कहलाते हैं। चारो प्रकार के आर्यों मे यहाँ आचार-आर्यों से ही मतलब है।

इस प्रकार समझाते हुए आचार्य ने कहा—"इसलिये महाराज तुझे भी इस प्रकार समझ, इस तरह के व्यक्ति से वैर नही करना चाहिये। महाराज ! यदि मैंने तुम्हें इस तरह की शिक्षा न दी होती तो ज्यो-ज्यो समय

गुज़रता, तुम पूए, मट्ठी आदि तथा फलाफल चुराते हुए चौर-कर्म के प्रति आसक्त हो, क्रम से सेन्ध लगाना, रास्ता मारना तथा ग्रामघात आदि करते। (फिर) राजापराधी चोर समझे जाकर माल सहित राजा के सम्मुख ले जाए जाते। राजा कहता—जाओ इसे इसके अपराध के अनुसार दण्ड दो। तब तुम राज-दण्ड-भय को प्राप्त होते। तुम्हे इस प्रकार की सम्पत्ति कहां से मिलती? क्या मेरे ही कारण तुम्हे इस प्रकार का ऐश्वर्य नही मिला?"

उसे घेर कर खड़े अमात्य भी उसकी बात सुन, कहने लगे—देव! तुम्हे यह जो ऐश्वर्य मिला है, तुम्हारे आचार्य से ही मिला है। उस समय राजा ने आचार्य के गुणो का ख्याल कर कहा—आचार्य! सब राज्य ऐश्वर्य आपको देता हूँ। राज्य स्वीकार करे। आचार्य ने अस्वीकृत किया—मुझे राज्य की जरूरत नही।

राजा ने तक्षशिला भेज, आचार्य के स्त्री-बच्चो को मँगवा, बहुत ऐश्वर्य दे तथा उसे ही पुरोहित बना, पिता के स्थान पर स्थापित किया। फिर उसी के उपदेशानुसार आचरण कर, दानादि पुण्य कर्म कर, स्वर्ग-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला (आर्य) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ। बहुत स्रोतापन्न सकृदागामी तथा अनागामी हुए। उस समय राजा क्रोधी भिक्षु था। आचार्य तो मै ही था।

२५३. मणिकण्ठ जातक

"ममन्नपान " यह शास्ता ने आळवि के पास अग्गाळव चैत्य मे विहार करते समय कुटिकार शिक्षापद के बारे मे कही —

ममन्नपान विपुल उळार
उप्पज्जतीमस्स मणिस्स हेतु,
तं ते न दस्स अतियाचकोसि
न चापि ते अस्सम आगमिस्स ॥
सुसु यथा सक्खरधोतपाणि
तासेसि म सेल याचमानो,
त ते न दस्स अतियाचकोसि
न चापि ते अस्सम आगमिस्स ॥

[इस मणि के कारण मुझे बहुत अन्न-पान की प्राप्ति होती है । तू अति-याचक है । मैं यह तुझे न दूगा । और मै तेरे आश्रम मे भी नही आऊँगा ।

जैसे कोई तरुण पत्थर पर तेज की हुई तलवार लेकर किसी को डराये उसी तरह तू मुझे यह मणि माँग कर त्रास देता है । तू अति-याचक है । मैं यह तुझे न दूंगा । और मैं तेरे आश्रम में भी नही आऊगा]

ऐसा कह कर वह नाग-राजा पानी में डुबकी मार अपने नाग-भवन पहुँच फिर वापिस नही आया ।

वह तपस्वी उस दर्शनीय नागराज के न देखने से पहले से भी अधिक कृश, रूखा, दुर्वर्ण तथा पाण्डु रग का हो गया और उसकी धमनी गात को जा लगी । ज्येष्ठ तपस्वी ने छोटे भाई का हाल-चाल जानने के लिए उसके पास आकर देखा कि वह पहले से भी अधिक पाण्डु-रोग का रोगी है । क्यो तू पहले से भी अधिक पाण्डु-रोगी हो गया ? उत्तर मिला—उस दर्शनीय नागराज को न देख सकने से । यह तपस्वी नागराज के बिना भी नही रह सकता सोच, तीसरी गाथा कही —

न त याचे यस्स पिय जिगिसे
देस्सो होति अतियाचनाय,
नागो मणि याचितो ब्राह्मणेन
अदस्सनयेव तदज्झगमा ॥

[जो (चीज) मालूम हो कि किसी की प्रिय है, वह उससे न मागे । अतियाचना करने वाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है । ब्राह्मण के द्वारा मणि मागी जाने पर नाग लुप्त ही हो गया ।]

इतना कह और अब इसके बाद चिंता मत करना समझा, बडा भाई अपने आश्रम गया। आगे चलकर वे दोनो भाई अभिञ्ञा तथा समापत्तिया प्राप्त कर ब्रह्म-लोक गामी हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ, इस प्रकार सात रत्नो से पूर्ण नाग-भवन मे रहने वाले नागो को भी याचना अप्रिय होती है, मनुष्यो की तो बात ही क्या ?" धर्म-देशना लाकर जातक का मेल बैठाया।

उस समय छोटा भाई आनन्द था, ज्येष्ठ भाई तो मै ही था।

२५४. कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक

"भुत्वा तिणपरिघास ", यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय सम्यक् सम्बुद्ध के श्रावस्ती मे वर्षावास के बाद चारिका करके लौटने पर मनुष्यो ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को अतिथि सत्कार करने की नीयत से दान दिया। उन्होने विहार मे एक धर्म-घोष[1] भिक्षु को नियुक्त किया। वह, आकर जितने भिक्षु मांगता उसे उतने ही चुन कर देता।

एक दरिद्र वृद्धा ने एक ही भिक्षु के लिए खाद्य-सामग्री तैयार कर उन मनुष्यो को भिक्षु चुन-चुन कर दिये जाने पर दिन चढे धर्म-घोषक भिक्षु के पास जाकर कहा—मुझे एक भिक्षु दें। उसने उत्तर दिया—मैं ने सभी भिक्षु चुनकर दे दिये। सारिपुत्र स्थविर ही विहार मे है। तू उन्हे दान दे।

---

१ वह भिक्षु जो धर्मोपदेश की घोषणा किया करता था।

उसने प्रसन्न चित्त से 'अच्छा' कहा और जेतवन के द्वार-कोठे पर खड़ी हो, स्थविर के आने के समय उन्हे प्रणाम कर, हाथ से पात्र ले घर जाकर बिठाया। एक बुढ़िया ने धर्मसेनापति को घर मे बिठा रखा है, यह बात बहुत से श्रद्धावान् परिवारो ने सुनी। उन मे से कोसल नरेश प्रसेनजित ने सुना तो उसने वस्त्र, एक थैली मे हजार कार्षापण और भोजन भरे बर्तन भेज दिये और कहला भेजा कि हमारे आर्य्य को भोजन परोसते समय यह वस्त्र पहने और यह कार्षापण खर्च करे। जैसे राजा ने, उसी तरह अनाथपिण्डक ने, छोटे अनाथपिण्डक ने तथा महान् उपासिका विशाखा ने भी भेजे। दूसरे परिवारो ने भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक सौ, दो सौ कार्षापण करके भेजे। इस प्रकार एक ही दिन मे उस बुढ़िया को एक लाख (कार्षापण) मिले। स्थविर उसका दिया यवागु ही पी, उसका बनाया खज्जक ही खा तथा उसके बनाये भात ही का भोजन कर दानानुमोदन के अनन्तर उसे स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित कर विहार को ही लौट गये।

धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने स्थविर की प्रशसा करनी आरम्भ की—आयुष्मानो, धर्मसेनापति ने बुढिया को दरिद्रता से छुडा दिया। वह उसका सहारा हो गये। उन्हो ने उसका दिया हुआ भोजन बिना मन मैला किये ही खाया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो? 'अमुक बात-चीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र इस बुढिया के सहायक हुए है, न केवल अभी उसका दिया भोजन बिना मन मैला किये खाया है किन्तु पहले भी खाया ही है। इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उत्तरापथ मे बनियो के कुल मे पैदा हुये। उत्तरापथ जनपद के पाँच सौ घोडो के व्यापारी घोडे लाकर वाराणसी मे बेचते थे। एक दूसरा भी घोडो का व्यापारी पाँच सौ घोडे लेकर वाराणसी के रास्ते पर हो लिया। मार्ग मे वाराणसी के आस-पास ही एक निगम था। पहले वहाँ एक महा

धनवान् सेठ रहता था। उसका बडा भारी मकान था, लेकिन उसका कुल क्रम से नाश को प्राप्त हो गया था। एक बूढी स्त्री बच गई थी। वह उस मकान मे रहती थी।

उस उच्च व्यापारी ने नगर मे पहुँच 'किराया दूंगा' करके उस घर मे निवास-स्थान ग्रहण कर घोडो को एक ओर रखा। उसी दिन उसकी एक श्रेष्ठ घोडी ने बच्चा जना। वह दो दिन रह राजा को देखने के लिए घोडे ले चल दिया।

बूढी ने घर का किराया मांगा। वह बोला—अच्छा माँ, देता हूँ। बुढिया ने कहा—इस बछेरे को भी किराये मे से काटकर दे दे। व्यापारी देकर चला गया। बुढिया उस बछेरे को पुत्रवत् स्नेह करते हुए जला-भात, जूठन तथा घास खिलाकर पालने लगी।

आगे चलकर पाँच सौ घोडो को साथ ले आते हुए बोधिसत्व ने आकर उसी घर मे डेरा डाला। कुण्डकखादक सिन्धव बछेरे के निवास स्थान की गन्ध सूँघ कर एक भी घोडा घर मे प्रवेश नही कर सका। तब बोधिसत्व ने वृद्धा से पूछा—अम्म ! इस घर मे कोई घोडा भी है ?

"तात ! इस घर मे और तो कोई नही, एक बछेरा जिसे मैं पुत्र के समान पालती हूँ रहता है।"

"अम्म ! वह कहाँ है ?"

"तात ! वह चरने गया है।"

"अम्म ! वह कब आयगा ?"

"तात ! दिन रहते ही आयगा।"

बोधिसत्व उसके आने की प्रतीक्षा मे घोडो को बाहर ही रख कर बैठे। सिंधव बछेरा दिन रहते ही चर कर घर आया।

बोधिसत्व ने कुण्डक-कुच्छिक-सिन्धव बछेरे को देख सुलक्षणो से उसे अमूल्य जान बुढिया से खरीद लेने की बात सोची। बछेरा घर मे प्रविष्ट हो अपनी जगह पर ही ठहरा। उसी क्षण वे घोडे भी प्रविष्ट हो सके। बोधिसत्व ने दो-तीन दिन ठहर घोडो को आराम दे, चलते समय वृद्धा से कहा—अम्म ! मूल्य लेकर इस बछेरे को मुझे दे दे।

"तात ! क्या कहते हो, कहीं पुत्र बेचने वाले भी होते है ?"

"अम्म ! तू इसे क्या खिला कर पालती है ?

"तात ! भात की कञ्जी, भात का खुरचन और जूठी घास खिला, धान की भूसी का यवागु पिलाकर पालती हूँ ।"

"अम्म ! मैं इसे पाकर सरस भोजन कराऊँगा, रहने के स्थान पर कपड़े का चँदवा तनवा, नीचे वस्त्र बिछवा कर उस पर रखूँगा ।"

"तात ! ऐसा प्रबन्ध होने पर मेरा पुत्र सुख अनुभव करे, उसे ले कर जा ।"

तब बोधिसत्व ने बछेरे के चार पैर, पूँछ और मुँह प्रत्येक की कीमत एक-एक सहस्र मान कर छ सहस्र की थैली रख बूढ़ी को नए वस्त्र पहना, सजा कर सिंधव बछेरे के सामने खड़ा किया। उसने आँखे खोल माँ को देख आँसू गिराये। बुढ़िया ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—तात ! मैंने अपना पाल-पोसने का खर्च पा लिया, तू जा। वह गया।

बोधिसत्व ने दूसरे दिन बछेरे के लिए सरल भोजन तैयार कर सोचा—आज इसकी परीक्षा करूँगा कि यह अपना बल पहचानता है अथवा नहीं ? इसलिए नाद मे कोना—यवागु डाल कर दिलवाया। बछेरे ने सोचा—मै इस भोजन को नही खाऊँगा। उसने उस यवागु को पाने की इच्छा नही की। बोधिसत्व ने उसकी परीक्षा लेने के लिए पहली गाथा कही —

> भुत्वा तिणपरिघास, भुत्वा आचामकुण्डकं।
> एत ते भोजन आसि, कस्मादानि न भुञ्जसि ॥

[हे बछेरे ! तू जूठी घास खाने वाला है, चावल की कनी खाने वाला है। यह तेरा भोजन है। अब इसे क्यो नही खाता है ?]

इसे सुन सिन्धव बछेरे ने दूसरी दो गाथाएँ कही —

> यत्थ पोस न जानन्ति, जातिया विनयेन वा।
> पहू तत्थ महाब्रह्मे, अपि आचामकुण्डक ॥
> त्वञ्च खो म पजानासि, यादिसाय हयुत्तमो।
> जानन्तो जानमागम्म, न ते भक्खामि कुण्डक ॥

[हे महाब्रह्म ! जिस स्थान मे लोग जाति या गुण नही जानते उस स्थान मे चावल का पसावन ही बहुत है। किन्तु मै कैसा उत्तम घोड़ा हूँ यह

तुम तो जानते हो। अपना बल जानता हुआ मैं तुम जैसे जानकार के साथ आया हूँ, इसलिए मै यह भोजन नही करूँगा।]

बोधिसत्व ने यह सुन कर कहा—अश्वराज! मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए ही ऐसा किया है। क्रोध मत करे। इस प्रकार उसे आश्वासन दे, अच्छा भोजन करा, राजदरबार मे ले जाकर पाँच सौ घोडो को एक तरफ खडा करा, दूसरी तरफ चित्रित कनात घिरवा, नीचे वस्त्र बिछवा, ऊपर कपडे का चन्दवा तनवा सिन्धव बछेरे को उसमे रखा।

राजा ने, आकर घोडो को देखते हुए कहा—इस घोडे को अलग क्यो रखा है?

"महाराज! यह सिन्धव घोडा सब घोडो की चुगी चुका देगा।"

"भो, क्या यह घोडा अच्छा है?"

"हाँ महाराज!"

"तो इसकी चाल देखूँगा।"

बोधिसत्व ने उस घोडे को तैयार कर, उस पर चढ, 'देखे महाराज' कह, मनुष्यो को हटा, राजागण मे चलाया। सारा राजागण घोडो की एक पक्ति से घिरा-सा हो गया। फिर बोधिसत्व ने 'महाराज! इसका वेग देखे' कह घोडे को छोडा। उसे एक व्यक्ति ने भी नही देखा। फिर घोडे के पेट पर लाल वस्त्र लपेट कर छोडा। लोगो ने केवल एक वस्त्र ही देखा। तब उसे नगर के अन्दर एक उद्यान-भूमि मे, एक पोखरी के पानी पर दौडाया। पानी पर दौडते हुए घोडे के खुर का अगला भाग भी पानी से नही भीगा। दूसरी बार कमल के पत्तो पर दौडाया। किन्तु एक पत्ता भी पानी मे नही डूबा। इस प्रकार उसकी चाल दिखा, उतर, ताली बजा हथेली पसारी। घोडा आगे बढ, चारो पैर इकट्ठे कर, हथेली पर जा खडा हुआ।

तब बोधिसत्व ने कहा—महाराज! इस बछेरे की सब प्रकार की चाल दिखाने के लिए समुद्र पर्य्यन्त (भूमि) भी काफी नही। राजा ने सन्तुष्ट हो, बोधिसत्व को आधा राज्य दे दिया। सिन्धव बछेरे को भी अभिषेक कर मगल अश्व बनाया। वह बछेरा राजा का प्रिय और मनोज्ञ हुआ।

उसका सत्कार भी बहुत हुआ। उसका रहने का स्थान भी राजा के निवासस्थान के समान अलकृत सजा-सजाया हो गया। चार प्रकार की सुगन्धि

से भूमि का लेप कराया गया। सुगन्धित मालाएँ लटकाई गई। ऊपर सुवर्ण तारो से खचित चँदवा तना हुआ था। चारो तरफ से चित्रित कनात से घेर दिया गया। नित्य सुगन्धित तेल का प्रदीप जलने लगा। उसके पेशाब-पाखाने के स्थान पर सुवर्ण कड़ाही रखी गई। नित्य राजसी भोजन खाता था। उसके आने के समय से सारे जम्बूदीप का राज्य राजा का अपना राज्य-सा हो गया। राजा बोधिसत्व के उपदेश के अनुसार आचरण कर दान आदि पुण्य-कृत्य कर, स्वर्ग-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, (आर्य्य) सत्यो का प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय बहुत से लोग स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत हुए।

उस समय की बुढिया यही बुढिया थी। सिन्धव बछेरा सारिपुत्र था। राजा आनन्द था। घोडे का व्यापारी तो मै ही था।

२५५. सक जातक

"याव सो मत्तमञ्ञासि" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय बहुत खाकर, अजीर्ण से मरे हुए, एक भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

उसके इस प्रकार मर जाने पर धर्म-परिषद् मे भिक्षुओ ने उसकी निन्दा आरम्भ की—आयुष्मानो! अमुक नाम का भिक्षु अपने पेट का अन्दाज न जान, बहुत खाकर न पचा सकने के कारण मर गया। शास्ता ने आकर पूछा—बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?

"भन्ते! यह बात चल रही है।"

"भिक्षुओ! अभी ही नही पहले भी यह बहुत भोजन के ही कारण मरा है", कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमवन्त-प्रदेश मे तोते की योनि मे पैदा हो, समुद्र की तरफ वाले पर्वत पर रहने वाले अनेक सहस्र तोतो का राजा हुआ। उसका एक पुत्र था। उसके वलवान होने पर, बोधिसत्व की आँखे कमजोर हो गई। तोतो की गति तेज होती है। इसलिए उनके वृद्ध हो जाने पर पहले आँख ही कमजोर होती है। बोधिसत्व का पुत्र माता-पिता को घोंसले मे ही रख, चारा ला, पोसता था।

एक दिन चरने के स्थान मे जा, पर्वत के सिरे पर स्थित हो, समुद्र देखते हुए उसने एक द्वीप देखा। उसमे सुवर्ण वर्ण के मीठे आमो का वन था। दूसरे दिन चुगने के समय उडकर उसी आम्रवन मे उतर, आम्र-रस पी, पका आम ले जाकर माता-पिता को दिया। बोधिसत्व ने फल खा रस को पहचान कर कहा—तात ! क्या यह अमुक द्वीप का पका आम नही है ?

"हाँ तात !"

"तात ! इस द्वीप पर जाने वाले तोते दीर्घायु नही होते। इसलिए पुन उस द्वीप पर मत जाना।"

वह पिता का वचन न मान गया ही। एक दिन बहुत आम्ररस पी, माता-पिता के लिए पका आम ले समुद्र के ऊपर से आता हुआ बहुत दौडने से थक कर निद्रा से अभिभूत हुआ। वह सोते सोते भी आया ही। चोच से पकडा हुआ पका आम गिर पडा। वह क्रमानुसार आया हुआ रास्ता छोड, नीचे उतरता हुआ पानी पर न ठहरा, उसमे गिर पडा। उसे एक मछली ने पकड कर खा लिया। बोधिसत्व ने उसके आने के समय उसे न आया जान, समझ लिया कि समुद्र मे गिर कर मर गया होगा। उसके माता-पिता भी आहार न पा सूख कर मर गये। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक-सम्बुद्ध हो ये गाथाएँ कही :—

यावं से मत्तमञ्ञासी भोजनस्मि विहङ्गमो।
ताव अद्धानमापादि मातरञ्च अपोसयि ॥
यतो च खो बहुतरं भोजनं अज्झुपाहरि।
ततो तत्थेव ससीदि अमत्तञ्ञू हि सो अहु ॥

तस्मा मत्तञ्ञुता साधुभो जनस्मि अगिद्धता ।
अमत्तञ्ञू हि सीदन्ति, मत्तञ्ञू च न सीदरे ॥

[जब तक वह पक्षी भोजन की मात्रा जानता रहा, तब तक जीवन-मार्ग पर चलकर माता-पिता का पालन करता रहा। जब बहुत भोजन किया, तब वही डूब गया, वह मात्रा को न जानने वाला था।

इसलिए भोजन मे लोभ न करके मात्रज्ञ होना अच्छा है। क्योंकि अमात्रज्ञ डूब जाते है मात्रज्ञ नही डूबते।]

अथवा—"पटिसखा योनिसो आहार आहरति नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय । इति पुराणञ्च वेदन पटिहङ्खामि नवञ्च वेदन न उप्पादेस्सामि यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो च।"

[सोच-विचार कर आहार ग्रहण करता है, न क्रीडा के लिए, न मण्डन के लिए, न सजावट के लिए। जब तक शरीर की स्थिति है तब तक इसे चालू रखने के लिए, भूख के निवारण के लिए, श्रेष्ठ जीवन बिताने के लिए। (वह सोचता है) पुरानी (भूखरूपी) वेदना को दूर करता हूँ, (अत्यधिक भोजन से उत्पन्न होने वाली) नई वेदना को उत्पन्न न करूँगा। मेरी जीवन-यात्रा निर्दोष तथा सुखपूर्ण होगी।]

अल्ल सुक्खञ्च भुञ्जन्तो, न बाळ्ह सुहितो सिया।
अनूदरो, मिताहारो, सतो भिक्खू परिब्बजे ॥
चत्तारो पञ्च आलोपे, अभुत्वा उदक पिवे।
अलं फासुविहाराय पहितत्तस्स भिक्खुनो ॥
मनुजस्स सदा सतिमतो, मत्त जानतो लद्धभोजने।
तनु तस्स भवन्ति वेदना सणिक जीरति आयु पालय ॥

[रूखा-सूखा खाने वाला हो, बहुत खाने वाला न हो। पेट निकला हुआ न हो, परिमित आहार करने वाला हो, स्मृतिमान हो, वही भिक्षु प्रव्रजित होवे।

चार-पाँच कौर खाने की जगह रख कर पानी पी ले। आत्मसयमी भिक्षु को सुख से जीने के लिए इतना काफी है।

प्राप्त भोजन की मात्रा जानने वाले स्मृतिमान भिक्षु की वेदना क्षीण होती है, खाना शीघ्र पचता है तथा आयु बढती है।]

निम्न प्रकार से वर्णित मात्रज्ञता भी अच्छी है —

"कन्तारे पुत्तमसव अक्खस्सब्भञ्जन यथा।
एव आहरि आहार, यापनत्थायमुच्छितो॥

[कान्तार मे पुत्र के माम की तरह[1] आँख मे अञ्जन की तरह, केवल जीवन यापन के लिए अमूर्छित हो आहार किया।]

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (आर्य्य) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय बहुत से लोग स्रोतापन्न, बहुत से सकृदागामी, बहुत से अनागामी और बहुत से अर्हत हुए।

भोजन मे अमात्रज्ञ भिक्षु उस जन्म मे सुक-राज-पुत्र था। सुकराज तो मैं ही था।

२५६. जरूदपान जातक

"जरूदपान खणमाना" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय श्रावस्ती-वासी बनियो के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

उन्होने श्रावस्ती से सामान ले, गाडियाँ भर व्यापार के लिए जाते समय तथागत को निमन्त्रित कर, महादान दे, त्रिशरण ग्रहण कर, पञ्चशील धारण कर, शास्ता को नमस्कार कर कहा—भन्ते! हम लोग व्यापार के

---

१ कान्तार मे भोजनाभाव मे माता ने पुत्र माँस खा लिया। न खाती तो माता और पुत्र दोनो की जान जाती। माता ने अपने पुत्र का मास क्या स्वाद लेकर खाया होगा?

लिए बहुत दूर जा रहे है, सामान बेच यात्रा सिद्ध होने पर सकुशल लौट कर पुन आप को नमस्कार करेंगे । वे चल पड़े ।

उन्होने कान्तार मे पुराने जलाशय मे देख सोचा—"इस जलाशय मे पानी नही है, हम लोग प्यासे हैं, इसलिए इसको खनेंगे ।" खनते हुए क्रम से उन्हे लोहा, जस्ता, सीसा, रतन, सोना, मुक्ता और बिल्लौर आदि धातुएँ मिली । वे उन वस्तुओ मे ही सन्तुष्ट हो, रत्नो से गाड़ियों को भर सकुशल श्रावस्ती लौटे । उन्होने प्राप्त धन को संभाल, यात्रा सफल होने पर 'दान देंगे' सोच तथागत को निमन्त्रित कर दान दे, प्रणाम कर एक ओर बैठ, शास्ता को बताया कि उन्होने कैसे धन प्राप्त किया । शास्ता ने कहा— तुम लोगो ने तो हे उपासको ! उस धन से सन्तुष्ट हो, मात्र होने से, धन और जीवन लाभ किया । पुराने लोग तो असन्तुष्ट हो, मात्रा न जानने से, पण्डितो के बचन के अनुसार कार्य्य न कर मृत्यु को प्राप्त हुए । फिर उनके प्रार्थना करने पर अतीत की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व वाराणसी मे बनिए के कुल मे जन्म ले, आयु प्राप्त होने पर काफिलो का मुखिया हुआ । उसने वाराणसी मे सामान ले, गाडियाँ भर, बहुत से बनियो को साथ ले, उसी कान्तार मे प्रविष्ट हो, उसी जलाशय को देखा । उन बनियो ने पानी पीने की इच्छा से उस जलाशय को खनते हुए बहुत-सी लोह आदि धातुओ को प्राप्त किया । बहुत रत्न लाभ कर, उससे असन्तुष्ट हो, 'इसमे और भी इससे सुन्दरतर होगा' सोच, अत्यधिक प्रसन्न हो, खनते ही गये । तब बोधिसत्व ने उनसे कहा—हे बनियो ! लोभ विनाश का मूल है, हमने बहुत धन प्राप्त किया, इतने मे सन्तुष्ट होओ, बहुत मत खनो । वे उसके मना करने पर भी खनते ही गये । वह जलाशय नाग का था । उसके नीचे रहने वाले नाग-राज ने अपने निवासस्थान के टूटने, उसमे ढेला और धूल के गिरने से क्रुद्ध हो, बोधिसत्व को छोड, शेष सब को फुंकार से मारा । (फिर) नाग-भवन से निकल, गाडियो को जुतवा, सात रत्नो से भरवा, बोधिसत्व को आरामदार गाडी पर बैठा, नाग-छात्रो द्वारा गाडियो को खिचवा,

बोधिसत्व को वाराणसी ले जा, घर मे प्रविष्ट करा, धन सँभाल, स्वय नागभवन गया। बोधिसत्व ने उस धन को त्याग, मारे जम्बूदीप को उन्नादित कर, दान दे, शील ग्रहण कर, उपोसथ-कर्म कर, मरने पर स्वर्ग-पद को प्राप्त किया।

शास्ता ने यह अतीत कथा ला, सम्यक् सम्बुद्ध होने पर ये गाथाएँ कही —

जरूदपान खणमाना, वाणिजा उदकत्थिका।
अज्झगमु अयोलोह, तिपुसीसञ्च वाणिजा।
रतन जातरूपञ्च, मुत्ता वेळुरिया बहु॥
ते च ते असन्तुट्ठा, भीयोभीयो अखाणिसु।
ते तत्थासिविसो घोरो तेजसि तेजसा हनि॥
तस्मा खणे, नाति खणे, अति खाण हि पापक।
खातेन च धन लद्ध, अति खातेन नासित॥

[जल प्राप्त करने की इच्छा वाले बनियो ने, जलाशय को खनते हुए उसमे से—ताँवा, लोहा, जस्ता, सीमा, रतन सोना, मुक्ता और बिल्लौर प्राप्त किया।

उससे असन्तुष्ट हो उन्होने बार-बार खना। अतएव उन्हे घोर तेज वाले सर्प ने अपने तेज से मार डाला।

इसलिए खने, किन्तु बहुत न खने, बहुत खनना बुरा है खनने से धन मिला। बहुत खनने से नष्ट हुए।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बिठाया। तब नाग-राजा सारिपुत्र था। काफिले का मुखिया तो मै ही था।

२५७. गामणीचण्ड जातक

"नाय घरान कुसलो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रज्ञा की प्रशसा के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

भिक्षु धर्म-सभा मे बुद्ध की प्रज्ञा की प्रशसा करते हुए बैठे थे। आयुष्मानो! तथागत महाप्रज्ञावान है, विस्तृत-प्रज्ञा वाले है, प्रसन्न-प्रज्ञा वाले हैं, शीघ्र-प्रज्ञा वाले है, तीक्ष्ण-प्रज्ञा वाले है, उनकी प्रज्ञा बीधने वाली है, वे देव सहित लोक को प्रज्ञा मे अतिक्रमण करते है। इसी समय शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ! केवल अभी ही नही, तथागत पहले भी प्रज्ञावान ही थे" कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे जनसन्ध राजा के राज्य करते समय, बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख मे जन्म लिया। उसका मुख अच्छी तरह साफ किये गये सुनहरी काँच के समान था, वह अति सुन्दर था। इसलिए उसके नाम-ग्रहण के दिन, 'आदासमुखकुमार' नाम रखा गया। उसको सात वर्ष की अवस्था मे ही पिता तीनो वेद, लोक मे सब कर्तव्याकर्तव्य सिखा मर गया। अमात्यो ने बडे आदर के साथ राजा का शरीर-कृत्य कर, मृतकदान दे, सातवे दिन राजागण मे इकट्ठे हो सोचा—कुमार अत्यन्त छोटा है, उसका राज्याभिषेक नही किया जा सकता, उसकी परीक्षा लेकर उसे अभिषिक्त करेगे।

एक दिन नगर को अलकृत करा, न्यायालय को सजा राजसिंहासन बिछवा, कुमार के पास जाकर कहा —

"देव! न्यायालय चलना चाहिए।"

कुमार ने 'अच्छा' कहा। बहुत लोगो से घिरा कुमार जाकर सिंहासन पर बैठा। उसके बैठे रहने के समय अमात्यो ने दो पैर से चलने वाले एक बन्दर को वस्तुविद्याचार्य्य[1] का वेष पहना, न्यायालय मे ले आकर कहा—

---

१. इञ्जीनियर।

देव ! यह व्यक्ति पिता-महाराज के समय का वस्तुविद्याचार्य्य है, विद्या में प्रवीण है। भूमि के अन्दर सात रतन तक का दोष देखने वाला है। राजकुल का महल कहाँ बनना चाहिए, उस स्थान को यही चुनता है। इसे अपनी नौकरी मे लेकर इसके पद पर नियुक्त करना चाहिए।

कुमार ने उसे नीचे ऊपर देख, जान लिया कि यह मनुष्य नहीं है, बन्दर है। बन्दर किए कराये को चौपट करना जानते है, नही किये को कुछ नया बनाना या सोचना नही जानते। उसने अमात्यो को पहली गाथा कही —

'नायं घरान कुसलो, लोलो अय वलीमुखो।
कत कत खो दुस्सेय्य, एव धम्ममिदं कुल।।

[यह गृहनिर्माण मे कुशल नही है। यह बन्दर-जाति लोलुप है। यह जाति तो किए कराये को चौपट करना जानती है।]

अमात्यो ने 'देव ऐसा होगा' कहा। उसे हटा, एक-दो दिन बाद पुन उसे ही अलकृत कर, न्यायालय मे ला कहा—देव ! यह पिता-महाराज के समय न्यायामात्य था, न्याय-सूत्र इसको मालूम है, इसे नौकरी मे रख न्याय करवाना चाहिए।

कुमार ने उसे देख, विचारवान मनुष्य के इस प्रकार के बाल नही होते, यह विचार रहित बानर है, न्याय नही कर सकता, जान दूसरी गाथा कही —

न इद चित्तवतो लोम, नाय अस्सासिकोमिगो।
सत्थ म जनसन्धेन, नाय किञ्चि विजानति ।।

[यह बाल किसी विचारवान के नही, यह शासन करने योग्य नही, मेरे पिता ने बताया था कि यह कुछ नही जानता।]

अमात्य यह गाथा भी सुन, 'देव ! ऐसा होगा' कह उसे ले गये। पुन एक दिन उसे ही सजा, न्यायालय मे ला कहा—देव ! यह व्यक्ति पिता-महाराज के समय, माता-पिता की सेवा करने वाला, कुल के अन्य ज्येष्ठ लोगो का आदर करने वाला था। इसे अपने यहाँ रखना चाहिए।

कुमार ने उसे पुन देख, बन्दर चचल होते है, इस प्रकार के काम नही कर सकते, सोच तीसरी गाथा कही —

न मातर वा पितर, भातर भगिणि सक,
भरेय्य तादिसो पोसो, सिट्ठ दसरथेन मे ॥

[मेरे पिता ने यह सिखाया है कि इस प्रकार का व्यक्ति माता-पिता, भाई-बहन का पोषण नहीं करता ।]

अमात्यो ने 'देव ! ऐसा होगा' कह बन्दर को हटा लिया । कुमार पण्डित है, राज्य कर सकेगा, सोच बोधिसत्व को अभिषिक्त किया । ढिंढोरा पिटवाया कि आज से आदाममुख की आज्ञा चलेगी । तब से बोधिसत्व ने धर्मानुसार राज्य किया । उसका पाण्डित्य सारे जम्बूद्वीप मे फैल गया । उसके पाडित्य को प्रकट करने के लिए ही यह चौदह कथाएँ कही गही गई है —

गोणो, पुत्तो, हयो चेव, नळकारो, गामभोजको,
गणिका, तरुणी, सप्पो, मिगो, तित्तिर, देवता,
नागो, तपस्सिनी, चेव अथो ब्राह्मणमाणव ॥

[बैल, पुत्र, घोडा, बँसफोडवा, ग्राम का मुखिया[1], गणिका, तरुणी, सर्प, मृग, तित्तिर, देवता, नाग, तपस्वी और ब्राह्मण-विद्यार्थी ।]

ग प्रसग कथा

बोधिसत्व के राज-अभिषिक्त होने के समय जनसन्ध राजा के एक सेवक गामणीचण्ड ने ऐसा सोचा—यह राज्य समान-आयु वालो के साथ शोभा देता है । मैं वृद्ध हो चला हू । छोटे कुमार की सेवा नही कर सकूँगा । जनपद मे कृषिकर्म करके जीऊँगा । वह नगर से दो योजन जा एक गाँव मे रहने लगा, किन्तु खेती के लिए उसके पास बैल भी नही थे । वर्षा होने पर उसने एक मित्र से दो बैल माँगे । सारे दिन हल चला, बैलो को तृण खिला, उन्हे (उनके) स्वामी को सौंपने (उसके) घर गया । स्वामी उस समय घर मे बैठ, अपनी भार्य्या के साथ भोजन कर रहा था । बैल अभ्यासवश घर मे घुस गये । उनके प्रवेश करने पर गृह-स्वामी ने अपनी थाली उठा ली । भार्य्या ने भी थाली दूर की । गामणीचण्ड मुझे कही भोजन करने को न कहे, सोच बैलो को बिना सौपे ही चला गया ।

---

१ ग्रामभोजक ।

रात को चोरो ने बैलो के स्थान मे घुस उन्ही बैलो को चुरा लिया। प्रात बैलो के स्वामी ने अडार मे बैलो को नही पाया। यह जानते हुए भी कि चोरो ने चुराया है, बैल के स्वामी ने सोचा कि इन्हे गामणी के मत्थे मढूंगा। उसके पास जाकर कहा —

"भो। मेरे बैल दो।"

"क्या बैल घर मे नही घुसे थे ?

"तो क्या तूने मुझे सौंपे थे ?"

"नही सौंपे।"

"तो यह तुम्हारा राजदूत है।"

उन जनपदो मे यह रिवाज था कि किसी के ककर या ठीकरा ले, 'यह तुम्हारा राजदूत है' कहने पर अगर कोई नही जाता, तो राजा उसे दण्ड देता था। इसलिए वह 'दूत' सुनकर उसके साथ चला।

वह उसके साथ राजदरबार जा रहा था। रास्ते मे एक मित्र का घर मिला। 'मैं अत्यन्त भूखा हूँ, जब तक ग्राम मे जा भोजन कर लौटूं, तब तक यही रहो' कह गामणीचण्ड मित्र के घर गया। उसका मित्र घर नही था। मित्र-गृहिणी ने देख कहा—"स्वामी ? पका आहार नही है। मुहूर्तभर ठहरें। अभी पका कर देती हूँ।" चावल के बखार पर बिना सीढियो के चढती हुई वह जमीन पर आ पडी। उसी क्षण उसका सात मास का गर्भ गिर पडा। तत्काल उसके स्वामी ने आकर देख, गामणीचण्ड को कहा—"तुमने मेरी भार्य्या को पटक कर गर्भ-पात किया है। यह तुम्हारा राजदूत है।" वह उसे ले चला। तब दो व्यक्ति गामणी को बीच मे कर चले।

वे एक गाँव की सीमा पर पहुँचे। वहाँ एक घोडे का चरवाहा घोडे को रोक नही सक रहा था। घोडा इन्ही लोगो के साथ भागा आ रहा था। घोडे वाले ने गामणी को देख कहा—मामा गामणी ! इस घोडे को किसी भी चीज से मार कर रोको। उसने एक पत्थर उठा कर मारा। पत्थर पैर मे लगा। घोडे का पैर रेंड के डण्डे के समान टूट गया। घोडे वाले ने—तूने घोडे के पैर को तोडा, यह तेरा राजदूत है—कह उसे पकड लिया। तीन आदमियो द्वारा पकड ले जाये जाते समय उसने सोचा—'यह लोग मुझे राजा के सामने पेश करेंगे। मैं बैलो का मूल्य भी नही दे सकता, फिर गर्भपात-दण्ड

और घोडे का मूल्य देने को कहाँ पाऊँगा। इसलिए मर जाना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।' जाते हुए रास्ते में उसने समीप ही एक प्रपात-युक्त पर्वत देखा। उसकी छाया मे दो पिता-पुत्र नळकार चटाई बुनते थे। गामणीचण्ड बोला— "भो! शौच जाना चाहता हूं। जरा यहीं रहे। आता हूँ।" वह पर्वत पर चढ प्रपात की ओर गिरता हुआ पिता नळकार की पीठ पर गिरा। नळकार एक ही प्रहार से मर गया। गामणी उठकर खडा हो गया। नळकार "तू मेरे पिता की हत्या करने वाला चोर है, यह तुम्हारा राजदूत है" कह हाथ पकड झोड मे निकला।

"यह क्या है?"

"यह मेरे पिता का घातक चोर है।'

तब चार जने गामणी को बीच मे कर चले।

इसके बाद दूसरे ग्रामद्वार पर एक गाँव के मुखिया ने गामणी को देख पूछा—"मामा चण्ड! कहाँ जा रहा है?"

"राजा को देखन के लिए।"

"अगर तू राजा को देखे तो मैं एक सन्देश देना चाहता हूँ। क्या ले जायगा?"

"हाँ ले जाऊँगा।"

"मै स्वभाव से रूपवान, धनवान, यशस्वी और निरोगी हूँ। तो भी मैं अब पाण्डुरोग से पीडित हूँ। क्या कारण है? राजा से पूछना। राजा पडित है। वह तुम्हे इसका कारण बताएगा। उसका उत्तर फिर मुझे सुनाना।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

दूसरे गाँव के द्वार पर पहुंचा। वहाँ एक गणिका ने देखकर कहा— "मामा कहाँ जाता है?"

"राजा को देखने के लिए।"

"राजा पण्डित है, मेरा सन्देश ले जा। मैं पहले बहुत प्राप्त करती थी। अब तो चावल मात्र भी नही मिलता। कोई मेरे पास नही आता। इसका क्या कारण है? राजा से पूछ कर मुझसे कहना।"

दूसरे गाँव की सीमा पर एक तरुणी ने देख उसी भाँति पूछ कर कहा—"राजा पण्डित है। मेरा सन्देश ले जा। मैं न तो स्वामी के घर रह

सकती हूँ न पिता के घर। इसका क्या कारण है? राजा से पूछ कर मुझसे कहना।"

उसके आगे महामार्ग के समीप बाम्बी मे रहने वाले एक सर्प ने देखकर पूछा—"चण्ड! कहाँ जाता है?"

"राजा को देखने।"

"राजा पण्डित है। मेरा सन्देश ले जा। मैं चरने जाने के समय भूखा, म्लान-शरीर बाम्बी मे निकलते समय, शरीर से बिल को भरता हुआ कष्ट से निकलता हूँ। और चर के लौटने पर अच्छी तरह खाया हुआ स्थूल शरीर वाला हो, घुसते समय बिल के किनारो को बिना छूता हुआ जल्दी से प्रविष्ट हो जाता हूँ। इसका क्या कारण है? राजा से पूछकर मुझसे कहना।"

आगे, एक मृग ने देखकर उसी प्रकार पूछ कर कहा—"राजा पण्डित है, मेरा सन्देश ले जा। मैं अन्यत्र तृण नही खा सकता। एक ही वृक्ष की जड के पास खा सकता हूँ। इसका क्या कारण है? राजा मे पूछकर मुझसे कहना।"

उसके आगे एक तित्तिर ने देखकर कहा—"मैं एक ही बाम्बी के पास बैठ कर आवाज लगाने से अच्छी तरह आवाज लगा सकता हूँ। अन्य स्थानो पर बैठकर नही लगा सकता। इसका क्या कारण है? राजा से पूछना।"

उसके बाद एक वृक्ष-देवता ने देखकर पूछा —

"चण्ड! कहाँ जाता है?"

"राजा को देखने।"

"राजा पण्डित है। पहले मेरा बहुत सत्कार होता था, अब तो मुट्ठीभर वृक्ष की कोपलमात्र भी नही मिलती। क्या कारण है? राजा से पूछकर मुझसे कहना।"

उसके आगे एक नाग-राजा ने देखकर उसी भाँति पूछकर कहा—"राजा पण्डित है। पहले इस तालाब का पानी साफ मणिवर्ण था। अब गँदला, मेढक और काई से भरा हुआ है। इसका क्या कारण है? राजा से पूछना।"

आगे नगर के पास आराम मे रहने वाले तपस्वियो ने देख, उसी भाँति पूछ कर कहा—"राजा पण्डित है। पहले इस आराम के फल-फूल

मधुर होते थे। अब ओज रहित कसैले हो गये है। इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना।"

इससे आगे नगर-द्वार के समीप एक शाला के ब्राह्मण-विद्यार्थियो ने देखकर पूछा —

"भो चण्ड ! कहाँ जाता है ?"

"राजा के दर्शनार्थ।"

"तो हमारा सन्देश लेकर जा। पहले जो कुछ पढते थे वह हमे स्पष्ट होता था। अब छेद वाले घडे के पानी के समान नही ठहरता है। समझ मे नही आता है। अन्धकार-सा हो जाता है। इसका क्या कारण है ? राजा से पूछना।"

गामणीचण्ड इन चौदह प्रश्नो को लेकर राजा के पास गया। राजा न्यायस्थान पर बैठा था। बैल-स्वामी गामणीचण्ड को लेकर राजा के पास गया। राजा ने गामणीचण्ड को देखकर ही पहचान लिया कि यह मेरे पिता की सेवा करने वाला था, हमे गोद मे लेकर घुमाता था। अब तक इतने समय कहाँ रहा सोचकर कहा—"हे चण्ड ! इतने समय तक कहाँ रहे ? बहुत समय से दिखाई नही दिये। किस मतलब से आये ?"

"हाँ देव ! हमारे देव (पिता-महाराज) के स्वर्गगामी होने के समय से जनपद मे जाकर कृषिकर्म करके जीवन निर्वाह करता हूँ। यह व्यक्ति बैल के मुकदमे के कारण 'राजदूत' दिखा कर तुम्हारे पास खीच लाया है।"

"बिना खीच कर न लाये जाने से, न आने वाले को, खीच कर लाया जाना ही अच्छा है। अब तुझे देखा है। कहाँ है वह व्यक्ति ?"

"देव ! यह है।"

"भो ! क्या तूने सचमुच हमारे चण्ड को दूत दिखाया है ?"

"सचमुच देव !"

"क्या कारण है ?"

"देव, यह मेरे दो बैल नही देता है।"

"सत्य ही चण्ड ?"

"तो देव ! मेरी भी सुने।"

सारी कथा सुना दी। इसे सुन राजा ने बैल-स्वामी से पूछा —

"भो ! क्या तुमने अपने घर मे घुसते हुए बैलो को देखा ?"

"नही देखा देव !"

"भो ! क्या लोगो को मुझे आदास-मुख राजा कहते नही सुना है ? सच-सच बोलो ।"

"देखे है देव !"

"भो चण्ड ! बैल न सौंपने मे तुम्हारे गले । इस व्यक्ति ने, देख कर भी 'नही देखा' कह जान-बूझ कर झूठ बोला है । इसलिए तुम (राज-) कर्मचारी होकर, इसकी और इसकी स्त्री की आँखें निकाल लो । चौबीस कार्षापण बैल की कीमत दो ।" राजा के ऐमा कहने पर बैल-स्वामी बाहर कर दिया गया ।

उसने सोचा—आँखे निकाल लिए जाने पर कार्षापण लेकर क्या करूँगा । गामणीचण्ड के पैरो पर गिर कर कहा—स्वामी चण्ड ! बैलो की कीमत के कार्षापण तुम्हारे ही पास रहे, इन्हे भी ले । दूसरे भी कार्षापण देकर भाग गया ।

तब दूसरा बोला—"देव इसने मेरी पत्नी को पटक कर गर्भ गिरा दिया है ।"

"सत्य ही चण्ड ?"

"महाराज ! सुने" कह कर चण्ड ने सारी कथा कही ।

"क्या तुमने इसकी स्त्री को पटक कर गर्भ गिराया है ?"

"नही गिराया है देव !"

"भो, तुम इसके गर्भ गिराने की बात सिद्ध कर सकते हो ?"

"नही कर सकता देव !"

"अब क्या चाहते हो ?"

"देव ! मुझे पुत्र मिलना चाहिए ।"

"भो चण्ड ! इसकी स्त्री को अपने घर मे रख, पुत्र पैदा होने पर उसे लाकर दें ।" वह गामणीचण्ड के पैरो पर गिर, बोला—स्वामी ! मेरा घर न बिगाडें । कार्षापण देकर चला गया ।

तीसरे ने कहा—"देव ! इसने मार कर मेरे घोडे का पैर तोड दिया है ।"

"सत्य ही चण्ड ?"

"महाराज ! तो सुनें ?" कह कर चण्ड ने सारी कथा विस्तार से कही।

"घोड़े को मार कर रोक दो' क्या तुमने सचमुच ऐसा कहा था ?"

"नही कहा देव !"

दूसरी बार पूछने पर उसने कहा—"हाँ कहा था देव !"

राजा ने चण्ड को सम्बोधित कर कहा—"हे चण्ड ! इसने कहकर 'नही कहा है' कह झूठ बोला है। इसकी जीभ निकाल लो, घोड़े की कीमत मेरे पास से लेकर एक सहस्र दो।"

अश्व-गोपक दूसरे भी कार्षापण देकर भाग गया। तब बँसफोड़वा के पुत्र ने कहा—

' देव यह मेरे पिता की हत्या करने वाला अपराधी है।"

"सच बात है चण्ड ?"

"देव ! सुने।"

"सुनता हूँ, कह।"

चण्ड ने उस बात को भी विस्तार पूर्वक कहा। राजा ने बँसफोड़वा को सम्बोधित कर कहा—

"अब क्या चाहते हो ?"

"देव मुझे पिता मिलना चाहिए।"

"हे चण्ड ! इसको पिता मिलना चाहिए मरे को लाया नही जा सकता। तुम इसकी माँ को ला, अपने घर मे रख कर इसके पिता बनो।"

बँसफोड़वा के पुत्र ने कहा—स्वामी मेरे मरे हुए पिता का घर न बिगाड़ें। (वह भी) गामणीचण्ड को कार्षापण देकर भाग गया।

मुकदमे मे विजय पाकर, सन्तुष्ट-चित्त गामणीचण्ड ने राजा से कहा—"देव ! किन्ही-किन्हो का दिया हुआ सन्देश है। आपसे कहता हूँ।"

"चण्ड ! कह।"

चण्ड ने ब्राह्मण विद्यार्थियो के सन्देश से आरम्भ करके, उल्टे क्रम से एक-एक करके कहे। राजा ने क्रमश समाधान किया।

कैसे ?

पहला सन्देश सुन कर कहा—पहले उनके निवासस्थान पर समय जान कर बोलने वाला मुर्गा था। उसकी आवाज से उठ, मन्त्र ग्रहण कर स्वाध्याय करते हुए ही अरुणोदय हो जाता था। इसलिए उनका याद किया पाठ नष्ट नही होता था। अब उनके निवासस्थान पर असमय बोलने वाला मुर्गा है। वह कभी बहुत रात रहते बोलता है, कभी बहुत प्रभात होने पर। बहुत रात रहते बोलने से उठ, पाठ पढ, निद्राभिभूत हो, बिना पाठ किए ही सो जाते हैं। बहुत प्रभात मे बोलने से उठ, पाठ नही कर पाते। इसलिए उनके द्वारा ग्रहण किया गया याद नही होता।

दूसरा सुनकर कहा—वे पहले श्रमण-धर्म करते हुए कृषि-कर्म मे लगे थे। अब श्रमण-धर्म को छोड अकर्तव्यो मे लगे है। आराम (विहार) मे पैदा होने वाले फल सेवको को दे, बदले मे भोजन प्राप्त कर, मिथ्या-जीविका से जीवन यापन करते है। इससे उनके फल मधुर नही होते। यदि फिर पहले की तरह एक-चित्त हो, सब श्रमण-धर्म से युक्त होगे तो उनके फल फिर मधुर होगे। वे तपस्वी, राज-कुलो की चतुरता नही जानते। उनको श्रमण-धर्म करने को कहो।

तीसरा सुन कर कहा—वे नागराजा आपस मे एक दूसरे से कलह करते है। इसलिए वह तालाब गँदला हो गया है। यदि वे पहले की भाँति एक होगे, तो पानी फिर स्वच्छ हो जायगा।

चौथा सुन कर कहा—वह वृक्ष-देवता पहले जगल मे से मनुष्यो की रक्षा करता था। इसलिए नाना प्रकार की बलि पाता था। अब रक्षा नही करता। इसलिए बलि नही पाता। यदि पहले की तरह रक्षा करेगा तो फिर अग्र-लाभ होगा। राजा भी होते है इसका उसे पता नही। इसलिए जगल मे मे गुजरने वाले मनुष्यो की रक्षा करने को कहो।

पाँचवाँ सुनकर कहा—जिस बाँबी की जड मे बैठ, वह तित्तिर अच्छी तरह बोलता है, उसके नीचे बडा खजाने का घडा है। उसे निकाल कर ले जा।

छठा सुनकर कहा—जिस वृक्ष-मूल के पास वह मृग तृण खा सकता है, उस वृक्ष के ऊपर बहुत भ्रमर-मधु है। मधु से सने हुए तृण से लोभित,

अन्य तृण नही खा सकता । उस शहद के छत्ते को लेकर, अच्छा मधु मुझे भेज शेष अपने खा ।

सातवाँ सुनकर कहा—जिस बाँबी मे वह सर्प रहता है उसके नीचे खजाने का बडा घडा है । वह उसकी रक्षा करता है । इसलिए निकलते समय धन लोभ से शरीर को शिथिल कर, ऊपर उठता हुआ निकलता है । शिकार के बाद धन के स्नेह से, बिना किनारो को छूए, वेग से सहसा प्रवेश करता है । उस खजाने के घडे को निकाल कर तू ले जा ।

आठवाँ सुन कहा—उस तरुणी के स्वामी और उसके माता-पिता के निवास-ग्राम के बीच एक ग्राम मे उसका यार है । वह उसे याद कर, उसी के स्नेह-वश स्वामी के घर रहने मे असमर्थ हो, 'माता-पिता को देखूंगी' कह यार के घर जाती है । कुछ दिन रह माता-पिता के घर जाती है । वहाँ भी कुछ ही दिन रह, फिर यार के याद आने पर 'स्वामी के घर जाऊगी' कह फिर यार के ही घर जाती है । उस स्त्री को राजाओ का होना जतला, कहना स्वामी के ही घर रह । अगर नही रहती है, तो राजा तुझे पकड मगवाएगा और तू जीवित नही रहेगी । अप्रमाद करना चाहिए ।

नवाँ सुन कहा—वह वेश्या पहले एक से मजदूरी ले बिना उसका काम किए दूसरे से नही लेती थी । इसलिए उसे बहुत प्राप्त होता था । अब अपने धर्म को छोड, एक से मजदूरी ले बिना उसका काम किए दूसरे से लेती है । पहले को अवसर न देकर दूसरे को देती है । इसलिए पैसा नही पाती है । उसके पास कोई नही जाता है । अगर अपने धर्म मे स्थिर होगी तो पहले के सदृश हो जायगी । उसे अपने धर्म मे स्थित होने को कहो ।

दसवाँ सुन कहा—वह मुखिया पहले धर्मानुसार मुकदमो का फैसला करता था । इसलिए लोगो का प्रिय हो गया था । प्रसन्न-चित्त लोग उसके पास बहुत भेंट लाते थे । इसलिये वह सुन्दर था और धन, यश से सम्पन्न । अब रिश्वत लेने वाला हो, अधर्म से मुकदमो का फैसला करता है । इसलिए दुर्गत, दु खी हो पाण्डु-रोग से पीडित हो गया है । अगर पहले की भाँति धर्म से मुकदमो का निर्णय करेगा तो पुन पहले के सदृश हो जायगा । वह राजाओ के होने की बात नही जानता है, उसे धर्म से मुकदमो का फैसला करने को कहो ।

गामणीचण्ड ने राजा से इतने सन्देश निवेदन किए। राजा ने सर्वज्ञ बुद्ध की तरह, अपनी प्रज्ञा से उन सब का उत्तर दिया। गामणीचण्ड को बहुत धन दे, उसके ग्राम को माफी देकर, उसे ही दे दिया। तब विदा किया।

ब्रह्म-नगर से निकल, बोधिसत्व के दिए गये उत्तर को ब्राह्मण विद्यार्थियों, तपस्वियों, नागराजा, वृक्ष-देवता को कहा। तित्तिर के बैठने के स्थान से निधि ले, मृग के तृण खाने के स्थान वाले वृक्ष से भ्रमर-मधु ले, राजा को मधु भेजा। सर्प के रहने वाली बाँबी को तुड़वा, निधि ली। तरुणी, वेश्या और मुखिया को राजा का सन्देश कह महान ऐश्वर्य्य के साथ अपने ग्राम गया। आयुभर जी, कर्मानुसार परलोक सिधारा। आदासमुख राजा भी दान आदि पुण्य कर्म कर मरने पर स्वर्ग गया।

शास्ता ने—भिक्षुओ! तथागत केवल अभी ही महाप्रज्ञावान नही, पहले भी महाप्रज्ञावान थे, कह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

सत्यो का प्रकाशन हो चुकने पर बहुत-से लोग स्रोतापन्न, सकृदागामी और अर्हत हुए।

उस समय गामणीचण्ड आनन्द था। आदास मुख राजा तो मैं ही था।

२५८. मन्धाता जातक

"यावता चन्दिमसुरिया " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही —

क वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती मे पिण्डपात के लिए जाता हुआ एक अलकृत, सजी-सजाई स्त्री को देख उद्विग्न-चित्त हुआ। उसे भिक्षुओ ने सभा मे लाकर शास्ता को दिखा कर कहा —

"भन्ते ! यह भिक्षु उद्विग्न-चित्त है।"

"सच ही भिक्षु तू उद्विग्न-चित्त है ?"

"भन्ते ! सच ही।"

"भिक्षु ! तू घर मे रह कर कब तक काम-तृष्णा की पूर्ति कर सकेगा ? काम-तृष्णा समुद्र के समान न पूरी होने वाली है। पुराने लोगो ने दो हजार द्वीपो से घिरे हुए चार महाद्वीपो पर राज्य किया। मनुष्य शरीर मे ही चातुर्महाराजिक देव-लोक मे शासन किया। त्रयोत्रिंश-देव-लोक मे छत्तीस इन्द्रो के स्थान पर राज्य किया। तो भी अपनी काम-तृष्णा पूरी नही कर सके और मर गये। तू भला इस काम-तृष्णा को कब पूरा कर सकेगा ?" इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे प्रथम कल्पो मे महासम्मत नाम का राजा था। उसके पुत्र का नाम रोज था। उसके पुत्र का नाम वररोज था। उसके पुत्र का नाम कल्याण था। उसके पुत्र का नाम वरकल्याण था। वरकल्याण के पुत्र का नाम उपोसथ था। उपोसथ के पुत्र का नाम मन्धाता था।

उसने सात रत्न और चार ऋद्धियो से युक्त हो चक्रवर्त्ती राज्य किया। उसके बाएँ हाथ सिकोड दाहिने हाथ से ताली बजाने पर आकाश से दिव्य मेघ के समान जाँघ तक सात रत्नो की वर्षा होती थी। इस प्रकार का आश्चर्य्य-मनुष्य था। उसने चौरासी हजार वर्ष बाल-क्रीडा की। चौरासी हजार वर्ष उपराज रहा और चौरासी हजार वर्ष चक्रवर्ती राज्य किया। उसकी आयु असख्य थी।

एक दिन काम-तृष्णा पूरी न हो सकने के कारण वह उद्विग्न-चित्त दिखाई दिया। अमात्यो ने पूछा—

"देव ! क्यो उद्विग्न हैं ?"

"मेरे पुण्य-बल को देखते यह राज्य क्या है ? इससे रमणीय स्थान कौन-सा है ?"

"महाराज देव-लोक।"

वह चक्ररत्न (रथ) चला, परिषद् के साथ चातुर्महाराजिक देवलोक गया। वहाँ देव-गण से घिरे चारो महाराज दिव्य-माला-गन्ध हाथ मे ले स्वागतार्थ आगे आये। उसे ले चातुर्महाराजिक देवलोक ले जा, देवलोक का राज्य दिया। उसे अपनी परिषद् के साथ राज्य करते हुए बहुत समय गुजर गया। वह वहाँ भी तृष्णा की पूर्ति न हो सकने के कारण उद्विग्न-चित्त दिखाई दिया। तब चारो महाराजाओ ने पूछा—

"महाराज! क्यो उद्विग्न है?"

"इस देव लोक से रमणीय कौन-सा स्थान है?"

"हम तो देव! दूसरे (लोको) के सेवको के सदृश है। त्रयोत्रिंश देव लोक रमणीय है।"

मन्धाता चक्ररत्न (रथ) चला अपने परिषद् सहित त्रयोत्रिंश की ओर चला। वहाँ देवगण सहित देवराज शक्र ने दिव्य-माला-गन्ध ले स्वागत किया और उसका हाथ पकड कर कहा—"महाराज इधर चले।"

देवगण से घिरे राजा के जाते समय परिनायक-रत्न, चक्ररत्न ले, परिषद् सहित (चातुर्महाराजिक देव) मनुष्य पथ से उतर अपने नगर मे प्रविष्ट हुए। इन्द्र ने मन्धाता को त्रयोत्रिंश भवन ला, देवताओ को दो भागो मे कर, अपना राज्य बीच से बाँट कर दिया।

तब से लेकर दो राजा राज्य करने लगे। इस प्रकार समय गुजरते हुए इन्द्र तीस करोड साठ हजार वर्ष आयु बिता मर गया। दूसरा इन्द्र पैदा हुआ। वह भी देवराज्य कर आयु समाप्त होने पर मर गया। इस प्रकार छत्तीस इन्द्र मरे। मन्धाता मनुष्य-शरीर से देव-राज्य करता ही रहा। इस तरह समय गुजरते हुए अधिक खुश रहने के कारण उसको काम-तृष्णा उत्पन्न हुई। उसने सोचा—"आधे राज्य से मेरा क्या होता-जाता है? इन्द्र को मार कर एक छत्र राज्य करूँगा।" इन्द्र मारा नही जा सकता। तृष्णा विपत्ति की जड है। इसलिए उसकी आयु घट गई। बुढापे ने शरीर पर आघात किया। मनुष्य शरीर देवलोक मे नही छूटता। इसलिए वह देवलोक से खिसक उद्यान मे उतरा। माली ने राजा के आने का सन्देश राजकुल मे निवेदन किया। राज-कुल ने आ उद्यान मे ही बिस्तर लगवाया। राजा फिर न उठने की शैय्या पर लेटा।

अमात्यो ने पूछा—"देव ! तुम्हारे बाद हम लोगो को क्या सन्देश देगे?"

"मेरे बाद तुम लोगो को यह सन्देश देना—'मन्धाता-महाराजा ने दो हजार द्वीपो से घिरे हुए, चार द्वीपो मे चक्रवर्ती राज्य किया। बहुत समय तक चातुर्महाराजिको मे राज्य किया। छत्तीस इन्द्रो की आयु के बराबर देवलोक मे राज्य किया। फिर भी तृष्णा को बिना पूरा किए मर गया[1]।"

वह इस प्रकार कह, मर कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने की अवस्था मे यह गाथाएँ कही —

यावता चन्दिमसुरिया, परिहरन्ति, दिसाभन्तिविरोचना,
सब्बेव दासामन्धातु, ये पाणा पठविनिस्सिता।
न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति,
अप्पसादा, दुक्खा, कामा, इति विञ्ञाय पण्डितो—
अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति,
तण्हक्खयरत्तो होति सम्मासम्बुद्धसावको॥

[जहाँ तक चन्द्र-सूर्य्य का प्रकाश होता है, वहाँ तक के सभी पृथ्वी-वासी प्राणी मन्धाता के दास है। कार्षापणो की वर्षा होने पर भी काम-भोगो की तृप्ति नही होती। काम वासनाएँ अल्पस्वाद वाली (अधिकाश) दुखद ही होती है। पण्डित आदमी यह जान कर भी दिव्य काम-भोगो मे अनुरक्त नही होता। सम्यक् सम्बुद्ध का शिष्य तृष्णा के क्षय (निर्वाण) मे अनुरक्त होता है।]

---

[1]अश्वघोष रचित बुद्धचरित का एक श्लोक है :—

देवेन वृष्टेऽपि हिरण्यवर्षे, द्वीपा समुद्राश्चतुरोऽपि जित्वा,
शक्रस्य चार्धासनमप्यवाप्य माधातुरासीद्विषयेष्वतृप्ति ॥११-१३॥

[देव के सोना वर्षाने पर भी, चारो समुद्रो के द्वीपो को जीत कर भी और शक्र का आधा राज्य प्राप्त करके भी, मान्धाता विषयो मे अतृप्त ही रहा।]

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, चार आर्यसत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यप्रकाशन के समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापन्न हुआ। अन्य लोगो मे से भी बहुत से स्रोतापन्न हुए।

उस समय मन्धाता महाराजा मै ही था।

२५९. तिरीटवच्छ जातक

"नयिमस्सा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, आयुष्मान आनन्द द्वारा कोशल-राजा को रानियो से पाँच सौ और स्वय राजा से पाँच सौ, इस प्रकार पाये गये एक हजार दुशालो की कथा के बारे मे कही। वह वर्तमान कथा दूसरे परिच्छेद की गुण-जातक[1] मे विस्तार रूप से आ ही चुकी है —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व काशीराष्ट्र मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। नाम-ग्रहण के दिन तिरीट-वच्छ कुमार नाम रखा गया। क्रमश आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीखा। घर मे रहते हुए माता-पिता की मृत्यु मे वैराग्य प्राप्त हो घर से निकल कर ऋषिप्रव्रज्या ली। अरण्य मे फल-मूल आदि खाकर रहने लगा।

उसके वहाँ रहते हुए वाराणसीराष्ट्र के प्रत्यन्तदेश मे बलवा मचा। राजा वहाँ जा, युद्ध मे पराजित हुआ। मरने के भय से हाथी के कन्धे पर चढ, एक ओर भाग। आरण्य मे विचरता हुआ वह पूर्वाह्ण समय मे तिरीटवच्छ के फल-मूल के लिए गये रहने पर उसके आश्रम मे प्रविष्ट हुआ। तपस्वियो का आश्रम जान हाथी से उतरा। हवा-धूप से क्लान्त, प्यासे, पानी खोजते हुए, कही कुछ भी न देख, उसने चक्रमण-स्थान के सिरे पर

---

१. गुणजातक (१५७)।

जलाशय देखा। पानी निकालने के लिए रस्सी-घडा न देख, प्यास रोकने में असमर्थ हो, हाथी के पेट में बँधे जोत को ले, हाथी को जलाशय के पास खडा कर, उसके पैर में जोत बाँध, जोत के सहारे जलाशय में उतरा। जोत के (पानी) तक न पहुँचने पर, बाहर निकल, चादर को जोत के सिरे पर बाँध फिर उतरा। तब भी नही हुआ। उसने अगले पैर से पानी का स्पर्श कर थोडी प्यास बुझा, अत्यन्त प्यासा होने के कारण सोचा—मरना ही हो तो अच्छा, मरना ठीक है। जलाशय में कूद, इच्छा भर पानी पी, फिर निकलने मे असमर्थ हो वही रहा। हाथी भी सुशिक्षित होने से कही न जाकर राजा का इन्तजार करता हुआ वही खडा रहा।

बोधिसत्व शाम के समय फल आदि लेकर आए। हाथी को देख सोचा, राजा आया होगा। हाथी कसाकसाया मालूम पडता है। क्या कारण है? वे हाथी के समीप गये। हाथी उनका आना जान एक ओर खडा हो गया।

बोधिसत्व ने जलाशय के निकट जा राजा को देख कर कहा—"महाराज मत डरे।" आश्वासन दे, सीढी बाँध, राजा को निकाला। उसके शरीर को दबा, तेल मल, स्नान करा, फल आदि दे, हाथी का बन्धन खोला।

दो-तीन दिन विश्राम कर बोधिसत्व से अपने यहाँ आने की प्रतिज्ञा ले राजा गया।

नगर से कुछ दूर तम्बू गाड कर स्थित राज-सेना ने राजा को आता हुआ देख, उसे घेर लिया।

बोधिसत्व भी महीने-आधे महीने बाद वाराणसी जा, उद्यान मे रह, दूसरे दिन भिक्षा के लिए घूमते हुए राज-द्वार पर पहुँचे। बडी खिडकी खोल, राजाङ्गण मे देखते हुए, राजा ने बोधिसत्व को देखा। पहचान कर, प्रासाद से उतर, प्रणाम कर, महाप्रासाद पर ला ऊँचे किए हुए श्वेत-छत्र के नीचे राजसिंहासन पर बैठाया। अपने लिए बने आहार का भोजन कराया। स्वय भी खा, उद्यान मे ला, वहाँ उसके लिए चक्रमण आदि से घिरा हुआ निवास-स्थान तैयार कराया। प्रव्रजितो की सभी आवश्यक चीजे दे, उद्यान-पाल को सौप, प्रणाम कर के गया।

तब से बोधिसत्व राजा-दरबार मे भोजन करने लगे। बहुत आदर-सत्कार हुआ। उस (आदर) को न सह सकने वाले अमात्यो ने इस प्रकार

सोचा—"कोई योद्धा इस प्रकार का सत्कार पाता हुआ क्या नही कर सकता ?" उपराज के पास जाकर कहा—"देव ! हमारा राजा एक तपस्वी से बहुत ममत्व रखता है। उसने उसमे क्या (गुण) देखे ? आप भी राजा के साथ मन्त्रणा करे।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और अमात्यो के माथ राजा के पास जा प्रणाम कर पहली गाथा कही —

नयिमस्स विज्जामतत्थि किञ्चि,
न बान्धवो नो पन ते सहायो,
अथ केन वण्णेन तिरीटवच्छो,
ते दण्डिको भुञ्जति अग्गपिण्ड ॥

[यह कुछ विद्या नही जानता। न आप का बन्धु[1] है ओर न मित्र है, तो किस कारण से यह तिरीटवच्छ त्रिदण्डी (तीन दण्ड धारण करने वाला) श्रेष्ठ-भोजन खाता है ?]

यह सुन राजा ने पुत्र को आमन्त्रित कर कहा—

"तात ? मेरा सीमा के बाहर जा, युद्ध मे पराजित हो, दो-तीन दिन का न आना याद है ?"

"याद है।"

"तो इसी के कारण मुझे जीवन मिला।" इतना कह, सारी वार्ता कह सुनाई।

फिर "तात ! मेरे जीवनदाता के मेरे पास आने पर, राज्य दे देने पर भी मैं उसका बदला नही चुका सकता" कह दो गाथाएँ कही —

आपासु मे युद्धपराजितस्स,
एकस्स कत्वा विवनस्मिं घोरे।
पसारयि किच्छगतस्स पाणिं,
तेनूदतारिं दुक्खसम्परेतो।
एतस्स किच्चेन इधानुपत्तो,
वेसायिनो विसया जीवलोके।

---

1 श्रुत-बन्धु, शिल्प-बन्धु, गोत्र-बन्धु और ज्ञाति-बन्धु।

जलाशय देखा। पानी निकालने के लिए रस्सी-घडा न देख, प्यास रोकने में असमर्थ हो, हाथी के पेट में बँधे जोत को ले, हाथी को जलाशय के पास खडा कर, उसके पैर मे जोत बाँध, जोत के सहारे जलाशय मे उतरा। जोत के (पानी) तक न पहुँचने पर, बाहर निकल, चादर को जोत के सिरे पर बाँध फिर उतरा। तब भी नही छुआ। उसने अगले पैर से पानी का स्पर्श कर थोडी प्यास बुझा, अत्यन्त प्यासा होने के कारण सोचा—मरना ही हो तो अच्छा, मरना ठीक है। जलाशय मे कूद, इच्छा भर पानी पी, फिर निकलने मे असमर्थ हो वही रहा। हाथी भी सुशिक्षित होने से कही न जाकर राजा का इन्तजार करता हुआ वही खडा रहा।

बोधिसत्व शाम के समय फल आदि लेकर आए। हाथी को देख सोचा, राजा आया होगा। हाथी कसाकसाया मालूम पडता है। क्या कारण है ? वे हाथी के समीप गये। हाथी उनका आना जान एक ओर खडा हो गया।

बोधिसत्व ने जलाशय के निकट जा राजा को देख कर कहा—"महाराज मत डरे।" आश्वासन दे, सीढी बाँध, राजा को निकाला। उसके शरीर को दबा, तेल मल, स्नान करा, फल आदि दे, हाथी का बन्धन खोला।

दो-तीन दिन विश्राम कर बोधिसत्व से अपने यहाँ आने की प्रतिज्ञा ले राजा गया।

नगर से कुछ दूर तम्बू गाड कर स्थित राज-सेना ने राजा को आता हुआ देख, उसे घेर लिया।

बोधिसत्व भी महीने-आधे महीने बाद वाराणसी जा, उद्यान मे रह, दूसरे दिन भिक्षा के लिए घूमते हुए राज-द्वार पर पहुँचे। बडी खिडकी खोल, राजाङ्गण मे देखते हुए, राजा ने बोधिसत्व को देखा। पहचान कर, प्रासाद से उतर, प्रणाम कर, महाप्रासाद पर ला ऊँचे किए हुए श्वेत-छत्र के नीचे राजसिंहासन पर बैठाया। अपने लिए बने आहार का भोजन कराया। स्वय भी खा, उद्यान मे ला, वहाँ उसके लिए चक्रमण आदि से घिरा हुआ निवास-स्थान तैयार कराया। प्रव्रजितो की सभी आवश्यक चीजें दे, उद्यान-पाल को सौप, प्रणाम कर के गया।

तब से बोधिसत्व राजा-दरबार मे भोजन करने लगे। बहुत आदर-सत्कार हुआ। उस (आदर) को न सह सकने वाले अमात्यो ने इस प्रकार

सोचा—"कोई योद्धा इस प्रकार का सत्कार पाता हुआ क्या नही कर सकता ?" उपराज के पास जाकर कहा—"देव! हमारा राजा एक तपस्वी से बहुत ममत्व रखता है। उसने उसमे क्या (गुण) देखे ? आप भी राजा के साथ मन्त्रणा करें।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और अमात्यो के साथ राजा के पास जा प्रणाम कर पहली गाथा कही —

नयिमस्स विज्जामतत्थि किञ्चि,
न बान्धवो नो पन ते सहायो,
अथ केन वण्णेन तिरीटवच्छो,
ते दण्डिको भुञ्जति अग्गपिण्ड॥

[यह कुछ विद्या नही जानता। न आप का बन्धु[1] है और न मित्र है, तो किस कारण से यह तिरीटवच्छ त्रिदण्डी (तीन दण्ड धारण करने वाला) श्रेष्ठ-भोजन खाता है ?]

यह सुन राजा ने पुत्र को आमन्त्रित कर कहा—

"तात ? मेरा सीमा के बाहर जा, युद्ध मे पराजित हो, दो-तीन दिन का न आना याद है ?"

"याद है।"

"तो इसी के कारण मुझे जीवन मिला।" इतना कह, सारी वार्ता कह सुनाई।

फिर "तात! मेरे जीवनदाता के मेरे पास आने पर, राज्य दे देने पर भी मैं उसका बदला नही चुका सकता" कह दो गाथाएँ कही —

आपासु मे युद्धपराजितस्स,
एकस्स कत्वा विवनस्मिं घोरे।
पसारयि किच्छगतस्स पाणिं,
तेनूदतारिं दुखसम्परेतो।
एतस्स किच्चेन इधानुपत्तो,
वेसायिनो विसया जीवलोके।

---

1 श्रुत-बन्धु, शिल्प-बन्धु, गोत्र-बन्धु और ज्ञाति-बन्धु।

लाभारहो, तात ! तिरीटवच्छो,
देथस्स भोगं यजतञ्च यञ्ञं ॥

युद्ध मे पराजित होकर जब मैं घोर वन मे अकेला विपत्ति मे पडा था, उस समय इसने मुझ आपत्ति-ग्रसित की ओर (कृपा का) हाथ बढाया। इसी ने मुझ दु खित को जलाशय से निकाला। इसी की कृपा से यहाँ पहुँचा हूँ। सभी जीव यमराज के पास जाने वाले है। हे तात ! तिरीटवच्छ को देना योग्य है। इसे भोग्य वस्तुएँ दो और (दान) यज्ञ करो।]

इस प्रकार राजा के द्वारा आकाश मे उठते हुए चन्द्रमा के समान बोधिसत्व के गुण प्रकाशित किए जाने पर उसका गुण सर्वत्र प्रकट हुआ। उसका लाभ तथा आदर और भी बढा। तब से लेकर उपराज, अमात्य या और कोई राजा से कुछ न कह सका। राजा बोधिसत्व के उपदेश मे स्थित हो, दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ। बोधिसत्व भी अभिज्ञा और समापत्ति को प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने "पुराने पण्डित भी उपकार वश कुछ करते थे" धर्मदेशना ला, जातक का मेल बिठाया।

उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

२६०. दूत जातक

"यस्सत्था दूरमायन्ति" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक अतिलोभी भिक्षु के बारे मे कही। कथा नवे परिच्छेद के काक जातक मे आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रित कर कहा—हे भिक्षु ! अभी ही नही पहले भी तू अतिलोभी था। लोभी होने के कारण ही तलवार से तेरा सिर कटा। यह कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व उसका पुत्र हो, आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख, पिता के मरने पर राजा बना। वह भोजन के बारे मे बहुत शुद्धाशुद्ध विचार करने वाला था। इसलिए उसका नाम भोजन-सुद्धिक-राजा पडा। वह ऐसा भोजन करता था कि उसकी एक थाली का मूल्य एक लाख होता। खाते समय घर के अन्दर बैठकर नही खाता था। अपने भोजन-विधान को देखने वाली जनता को पुण्य देने की इच्छा से वह राज-द्वार पर रतन मण्डप बनवा, भोजन के समय उसे अलकृत करा, उठे हुए स्वर्ण-मय श्वेत छत्र के नीचे राज-सिहासन पर बैठ, क्षत्रिय कन्याओ से घिर कर, एक लाख की सोने की थाली मे सात प्रकार का भोजन करता था।

एक अतिलोभी मनुष्य ने उसके भोजन-विधान को देख, उस भोजन के खाने की इच्छा को न रोक सकने पर सोचा—यह उपाय है। वह वस्त्रो को कस कर पहन, हाथ उठाकर—"भो! मैं दूत हूँ, मैं दूत हूँ," चिल्लाता हुआ राजा के पास पहुँचा।

उस समय उस जनपद मे 'दूत हूँ" कहने वाले को कोई नही रोकता था। इसलिए जनता ने दो हिस्सो मे विभक्त हो उसे रास्ता दे दिया। उसने जल्दी से आ, राजा की थाली से भात का एक कौर लेकर मुँह मे डाल लिया। "इसका सिर काटूँगा" सोच तलवारधारी (अग-रक्षक) ने तलवार उठायी। राजा ने मना किया—मत मारो। "मत डरो, भोजन करो" कह राजा हाथ धोकर बैठा। भोजन कर चुकने पर अपने पीने का पानी तथा पान देकर पूछा—हे पुरुष! तू "दूत हूँ" कहता है, तू किसका दूत है? "महाराज मैं तृष्णा का दूत हू, पेट का दूत हू। तृष्णा ने मुझे आज्ञा दे, दूत बना कर भेजा है—"तू जा"। यह कह उसने पहली दो गाथाए कही —

> यस्सत्था दूरमायन्ति अमित्तम्पि याचितुं,
> तस्सूदरस्सह दूतो, मा मे कुज्झि रथेसभ॥
> यस्स दिवा च रत्तो च वसमायन्ति माणवा,
> तस्सूदरस्सहं दूतो मा मे कुज्झि रथेसभ॥

[मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वशीभूत होकर (लोग) दूर, अपने शत्रु के यहाँ भी माँगने जाते है। हे राजन! मुझ पर क्रोध न करें। मैं उस पेट का दूत हू जिसके वश मे सभी लोग दिन-रात रहते है। हे राजन! मुझ पर क्रोध न करे।]

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—सचमुच प्राणी पेट के दूत है, तृष्णा के वशीभूत हो विचरते हैं। तृष्णा ही प्रणियो को चलाती है। इस व्यक्ति ने ठीक कहा है, सोच सन्तुष्ट हो राजा ने तीसरी गाथा कही —

ददामि ते ब्राह्मण रोहिणीन गव सहस्स सह पुगवेन,
दूतोहि दूतस्स कथंन दज्ज, मयंपि तस्सेवभवाम दूता॥

[हे ब्राह्मण! तुझे बैलो के साथ हजार लाल गौवे देता हू। दूत दूत को कैसे न दे? हम भी उसी तृष्णा के दूत है।]

इस प्रकार कह, 'इस पुरुप द्वारा मुझे अपूर्व बात रूपी धन मिला' सोच उसे धन दिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के अन्त मे अतिलोभी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ। बहुत से (लोग) स्रोतापन्न आदि हुए।

उस समय का लोभी आदमी, इस समय का लोभी भिक्षु है। भोजन-सुद्धिक-राजा तो मैं ही था।

———

तीसरा परिच्छेद

२. कोसिय वर्ग

२६१ पदुम जातक

"यथा केसा च मस्सू च " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, आनन्द-बोधि (वृक्ष) की (पुष्प) माला से पूजा करने वाले भिक्षुओ के बारे मे कही। कथा कालिङ्गबोधि[1] जातक मे आयेगी —

क. वर्तमान कथा

आनन्द स्थविर द्वारा रोपे जाने के कारण वह (वृक्ष) आनन्द-बोधि कहलाया। स्थविर द्वारा जेतवन-दरवाजे पर बोधि (वृक्ष) लगाये जाने की बात सारे जम्बूदीप मे फैल गई। एक बार जनपद के भिक्षुओ ने "आनन्द-बोधि की पुष्प मालाओ से पूजा करेगे" सोच, जेतवन पहुच शास्ता को प्रणाम किया। दूसरे दिन श्रावस्ती मे प्रवेश कर कमल-गली मे जा (पुष्प-) माला न पा, लौट कर आनन्द स्थविर से निवेदन किया। "आयुष्मान्! हम (पुष्प-) माला से बोधि की पूजा करना चाहते है। कमल-गली मे जाने पर हमे एक भी माला नही मिली।" स्थविर ने कहा—'आयुष्मानो! मैं लाऊगा" कमल-गली मे जा नील-कमलो के बहुत-से मुट्ठ उठवा, आकर उन्हे दिये। उन्होने उन (फूलो) को लेकर पूजा की। उस कथा को जान कर धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने स्थविर की गुण-चर्चा चलाई। "आयुष्मानो! जनपद-वासी भिक्षु अल्प-पुण्य होने से कमल-गली मे जाकर माला नही पा सके। स्थविर ने जाकर ला दी।" शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

---

१. कालिङ्गबोधि जातक (४७९)।

"भिक्षुओ! बात करने मे कुशल, कथा-कुशल केवल अभी ही नही माला प्राप्त करते है। पहले भी प्राप्त की है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने सेठ के घर जन्म लिया। नगर मे, एक तालाब मे पुष्प फूले थे। एक नकटा आदमी उस तालाब की रक्षा करता था।

एक दिन वाराणसी मे उत्सव की घोषणा किए जाने पर माला पहन, उत्सव मे क्रीडा करने की इच्छा वाले तीन श्रेष्ठी-पुत्रो ने सोचा—नकटे के रूप की झूठी प्रशसा करके माला माँगेंगे। उसके फूल तोडने के समय वे तालाब के निकट जा, एक ओर खडे हो गये। उनमे से एक ने उसको सम्बोधित कर पहली गाथा कही—

> यथा केसाचमस्सूच, छिन्न छिन्न विरूहति,
> एव रूहतु ते नासा, पदुम देहि याचितो ॥

[जिस प्रकार केश और मूँछ बार-बार कटने पर भी फिर उगती है। उसी भाँति तुम्हारी नासिका बढे। माँगे जाने पर मुझे कमल दे।]

उसने उस पर क्रुद्ध हो, कमल नही दिये। दूसरे ने दूसरी गाथा कही—

> यथा सारदिक बीज, खेत्ते वुत्त विरूहति,
> एव रूहतु ते नासा, पदुम देहि याचितो ॥

[जैसे शरत् काल का बीज खेत मे बोने पर उगता है, उसी भाँति तुम्हारी नासिका बढे। माँगे जाने पर मुझे कमल दे।]

उसने उससे भी क्रोधित हो कमल नही दिये। तब तीसरे ने तीसरी गाथा कही—

> उभोपि पलपन्तेते, अपि पदुमानि दस्सति,
> वज्ज वा ते न वा वज्जं, नत्थि नासाय रूहना,
> देहि सम्म पदुमानि, अहं याचामि याचितो ॥

[कमल देगा, इस आशा से यह दोनो झूठ बोलते है। (तुम्हारी नासिका उग आए) ऐसा चाहे वे कहे या न कहे, नासिका का उगना तो असम्भव है। हे मित्र! मैं माँगता हू माँगे जाने पर कमल दे।]

यह सुन कमल-सर का रक्षक बोला—"इन दोनो ने झूठ बोला। तुमने जैसा है वैसा ही कहा। तुमको कमल मिलना योग्य है।" वह कमल का बड़ा मुट्ठ ले, उसके घर दे, अपने कमल-तालाब गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बिठाया।

उस समय कमल प्राप्त करने वाला श्रेष्ठी-पुत्र मैं ही था।

२६२. मुदुपाणी जातक

"पाणी चे मुदुको चस्स" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

उसके धर्म-सभा मे लाए जाने पर शास्ता ने पूछा—"सचमुच भिक्षु तू उद्विग्न-चित्त है?"

"सचमुच।"

"भिक्षु! स्त्रियाँ कामुकता की ओर जाने से नही रोकी जा सकती। पुराने पण्डित भी अपनी लडकी की रक्षा नहीं कर सके। पिता के हाथ पकड़े रहने पर (भी) लडकी, पिता को बिना खबर होने दिए, कामुकता के वशी-भूत हो, पुरुष के साथ भाग गई।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख मे पैदा हुआ। आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीखा। पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगा। वह लडकी और भाञ्जे दोनो का घर मे पालन-पोषण करता था। एक दिन अमात्यो के

साथ बैठे हुए कहा—"मेरे मरने के बाद मेरा भाञ्जा राजा होगा। मेरी लडकी उसी की पटरानी होगी।"

आगे, उनके आयु प्राप्त होने पर, फिर अमात्यो के साथ बैठे रहने पर उसने कहा—"हम भाञ्जे के लिए दूसरी लडकी लाएँगे। अपनी लडकी भी दूसरे राज-कुल मे देगे। इस प्रकार हमारे बहुत रिश्तेदार हो जाएँगे।" अमात्यो ने स्वीकार किया।

राजा ने भाञ्जे को बाहर घर दिया। अन्त पुर मे प्रवेश बन्द कर दिया। वे एक दूसरे पर आसक्त थे। कुमार ने सोचा—"किस उपाय से राजकुमारी को बाहर निकाला जाय ? उपाय है।" उसने दाई को रिश्वत दी। दाई ने पूछा—"आर्य्य-पुत्र ! क्या करना है ?"

"अम्म ! राजकुमारी को बाहर निकालने का मौका कैसे मिले ?"

"राजकुमारी से बात करके जानूंगी।"

"अम्म ! अच्छा।"

वह गई। "अम्म ! तेरे सिर मे जूं है, निकालूंगी" कह, उसे नीचे आसन पर बिठा, स्वय ऊँचे बैठ, उसके सिर को अपनी जाँघो पर रख कर जूं निकालते समय, राजकुमारी के सिर मे-नख धँसाया। राजकुमारी ने—"यह अपने नख से नही बीधती है, किन्तु पिता के भाञ्जे-कुमार के नख से बीधती है" जान कर पूछा—"अम्म ! तू राजकुमार के पास गई थी ?"

"अम्म ! हाँ ?"

"उसने क्या सन्देश कहा ?"

"अम्म ! तुम्हे निकाल ले जाने का उपाय पूछता है।" राजकुमारी ने—"अगर कुमार पण्डित होगा तो जान जायगा" कह पहली गाथा कही और कहा—"अम्म ! इसे ले जाकर कुमार को कहना।"

पाणी चे मुदुकोचस्स, नागोचस्ससुकारितो,
अन्धकारो च वस्सेय्य, अथ नून तदा सिया ॥

[उसके पास कोमल हाथ हो, सिखाया हुआ हाथी हो, अन्धकार हो, और देव वर्षे, तब निश्चय से (उसका उद्देश्य पूरा) होवे।]

वह उसे सीख कुमार के पास गई।

कुमार ने पूछा—"अम्म ! राजकुमारी ने क्या कहा ?"

"आर्य्य पुत्र ! और कुछ न कह यह गाथा भेजी है।" उसने वह गाथा कही। कुमार ने उसका अर्थ जानकर उसे भेज दिया—"अम्म ! जा।"

कुमार इस बात को भली प्रकार जान, एक रूपवान कोमल हाथ वाले छोटे सेवक को सजा कर, मगल हाथी के फीलवान को घूंस दे, हाथी को सिखा, उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगा।

कृष्णपक्ष की अमावस्या को आधी रात के बाद घनी वर्षा हुई। उसने सोचा, राजकुमारी द्वारा बताया गया दिन आज है। (स्वय) हाथी पर चढ, कोमल हाथ वाले छोटे सेवक को हाथी पर बैठा, जाकर रनिवास के खुले आँगन मे हाथी को बडी दीवार से सटा, खिडकी के समीप भीगता हुआ ठहरा। राजा लडकी की रखवाली करता हुआ, दूसरी जगह सोने नही देता था। अपने पास छोटे बिस्तर पर सुलाता था। "आज कुमार आयेगा" जान, बिना सोये लेटे-लेटे राजकुमारी ने कहा—"तात ! नहाने की इच्छा है।'

"अम्म आ !" कह उसका हाथ पकड खिडकी के समीप लाकर कहा—"अम्म ! नहा।" वह उसे खिडकी के बाहर के छज्जे पर रख एक हाथ पकडे खडा रहा। नहाते हुए उसने कुमार की ओर हाथ बढाया। उसने उसके हाथ से गहने उतार कर सेवक के हाथ मे पहना, उसे उठाकर राजकुमारी के पास छज्जे पर रखा। उसने उसका हाथ ले, पिता के हाथ मे दिया। पिता ने उसका हाथ पकड कर लडकी का हाथ छोड दिया। वह दूसरे हाथ से भी आभरण उतार, उसके दूसरे हाथ मे पहना, पिता के हाथ मे रख कर कुमार के साथ चली गई। राजा "मेरी लडकी ही है" समझ उस लडके को, नहाने के बाद शयन-गृह मे सुला, द्वार बन्द कर, कुण्डी दे, बेवडा लगा, अपने बिस्तर पर जाकर लेटा। उसने प्रात दरवाजा खोल, लडके को देखकर पूछा—"यह क्या है ?" उसने उस (कुमारी) के कुमार के साथ जाने की बात कही।

राजा ने दु खी होकर सोचा—"हाथ पकड कर साथ रखने पर भी स्त्री की हिफाजत नही की जा सकती। स्त्रियाँ इस प्रकार की हिफाजत न की जा सकनेवाली होती हैं।" उसने दूसरी दो गाथाएँ कही —

अनला मुदुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीसमा,
सीदन्ति न विदित्वान, आरका परिवज्जये ॥

यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व सठान खिप्पं, अनुदहन्ति नं ॥

[इनकी इच्छा कभी पूर्ण नही होती। मृदुभाषी होती है (मैथुनादि से) नही पूर्ण होने वाली होती हैं[1]। यह नरक मे डुबोती हैं। यह सब जान कर पण्डित आदमी इन्हे दूर ही रखे।

जिस (पुरुष) से भी वे सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन-लोभ से, उसे वे आग के समान शीघ्र ही जला देती हैं।]

ऐसा कहा भी गया है —

बलवन्तो दुब्बला होन्ति, थामवन्तो पि हायरे,
चक्खुमा अन्धिता होन्ति, मातुगामवसगता।
गुणवन्तो निग्गुणा होन्ति, पञ्ञावन्तो पि हायरे,
पमत्ता बन्धने सेन्ति, मातुगामवसगता।
अज्झेन च तपं, सील, सच्च, चाग, सति, मतिं,
अच्छिन्दन्ति पमत्तस्स, पन्थदूभीव तक्करा।
यसं, कित्ति, धितीं, सूरं, बाहुसच्चं, पजाननं,
खेपयन्ति पमत्तस्स, कट्ठपुञ्जं व पावको ॥

[स्त्रियो के वशीभूत होने वाले (लोग) बलवान भी दुर्बल हो जाते हैं, शक्तिमानो की शक्ति घट जाती है, आँख वाले अन्धे हो जाते हैं।

गुणवान निर्गुण हो जाते है। प्रज्ञावानो की प्रज्ञा भी घट जाती है, प्रमादी लोग बन्धन मे बँध जाते हैं।

जिस प्रकार मार्ग लूटने वाला चोर लोगो को लूटता है। उसी प्रकार मनुष्य का अध्ययन, तप, शील, सत्य, त्याग, स्मृति, मति, सभी लुट जाता है।

जिस प्रकार लकडी के ढेर को आग जला देती है। उसी भाँति प्रमत्त मनुष्य का यश, कीर्ति धृति, शूरता, बहुश्रुतभाव, ज्ञान, सभी नष्ट हो जाता है।]

---

१ "भिक्षुओ! स्त्रियाँ तीन चीजो से अतृप्त हो मर जाती है। कौन-सी तीन? मैथुन-धर्म, बच्चा पैदा करना और शृगार करना। भिक्षुओ! स्त्रियाँ इन तीन चीजों से अतृप्त हो मर जाती हैं।"—अगुत्तर-निकाय, तिकनिपात।

ऐसा कह महासत्व ने सोचा—भाञ्जे को तो मुझे ही पोसना है। बड़े सत्कार के साथ लड़की उसी को दे, उसे उपराज बनाया। वह भी मामा के मर जाने पर राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के बाद उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा मै ही था।

२६३. चुल्लपलोभन जातक

"अभिज्जमाने वारिस्मि" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के ही बारे मे कही .—

क. वर्तमान कथा

उसके धर्म-सभा मे लाए जाने पर शास्ता ने पूछा—

"सचमुच भिक्षु! तू उद्विग्न-चित्त है?"

"सचमुच।"

"भिक्षु! स्त्रियो ने पुराने सच्चरित्र प्राणियो का भी मन डुला दिया" कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा पुत्र-विहीन था। उसने अपनी स्त्रियो को पुत्र प्रार्थना के लिए कहा। वे पुत्र के लिए प्रार्थना करती थी। इस प्रकार समय बीतते हुए बोधिसत्व ब्रह्मलोक से च्युत होकर पटरानी की कोख मे पैदा हुआ। उसे पैदा होते ही नहला-कर स्तन पिलाने के लिए दाई को दिया। वह दूध पिलाए जाने पर रोता था। तब उसे दूसरी को

दिया। स्त्रियो के हाथ मे वह चुप ही नही होता था। तब उसे एक नौकर को सौंपा। उसके हाथ मे लेते ही चुप हो गया। तब से उसे पुरुष ही लिए रहते। स्तन पिलाना होता तो दूह कर पिलाते अथवा पर्दे की ओट से स्तन मुँह मे डालते। उसके बड़े होते जाने पर भी लोग (उसे) स्त्रिया दिखाने मे असमर्थ रहे। इसलिए राजा ने उसके बैठने आदि का स्थान तथा ध्यान-गृह अलग बनवाया।

उसने उसके सोलह वर्षीय होने पर सोचा—मेरे दूसरा पुत्र नही है, यह काम भोग मे रस नही लेता, राज्य की भी इच्छा नही करता। मुझे पुत्र मुश्किल से मिला है। तब नाच, गीत और बजाने मे पटु, पुरुषो की परि-चर्य्या कर उनको वश मे कर सकने वाली एक तरुणी नटी ने जाकर पूछा—"देव ? क्या चिन्ता कर रहे हैं ?" राजा ने उसको कारण बताया।

"अच्छा देव ! मैं उसे लुभा कर काम-रस का ज्ञान कराऊँगी।"

"अगर स्त्री की गन्ध से अपरिचित मेरे कुमार को लुभा सकेगी तो वह राजा होगा और तू उसकी पटरानी।"

"देव ! इसकी जिम्मेवारी मेरी, आप इसकी चिन्ता न करें।"

वह पहरेदारो के पास जाकर बोली—

"मैं प्रात काल आकर आर्य्यपुत्र के शयन-गृह से बाहर ध्यानागार में खड़ी होकर गाऊँगी। अगर (वह) क्रोधित हो तो मुझसे कहना। मैं चली जाऊँगी। अगर सुने, तो मेरी तारीफ करना।" उन्होंने अच्छा कह स्वीकार किया।

वह प्रात काल उस जगह खड़ी होकर, वीणा के स्वर से गीत का स्वर, गीत के स्वर से वीणा का स्वर मिलाकर मधुर स्वर मे गाने लगी। कुमार सुनता हुआ लेटा रहा। दूसरे दिन कुमार ने नजदीक आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन ध्यानागार मे रहकर गाने की आज्ञा दी ? और अगले दिन अपने पास रहकर। इस प्रकार क्रमश तृष्णा उत्पन्न कर, लोक-धर्म सेवन कर, काम-रस से परिचित हो "स्त्री दूसरे को नही दूँगा" कहता हुआ, तलवार ले, गली मे निकल कर पुरुषो के पीछे दौड़ने लगा।

राजा ने उसे पकड़वा, उसे उस कुमारी के साथ नगर से बाहर निक-लवा दिया। दोनो अरण्य मे प्रविष्ट हो, गगा के नीचे जा, एक तरफ गंगा,

दूसरी तरफ समुद्र, दोनो के बीच मे आश्रम बना कर रहने लगे। कुमारी पर्णशाला मे बैठ कर कन्द-मूल आदि पकाती थी। बोधिसत्व अरण्य से फलमूल लाता।

एक दिन उसके फल-मूल के लिए गये रहने पर, एक समुद्र-द्वीप-वासी तपस्वी भिक्षा के लिए आकाश मार्ग से जाता हुआ, धुँआ देख कर आश्रम पर उतरा। तब उसने "जब तक पके तब तक बैठ" कह, बैठा, स्त्री के हाव-भाव से उसे मोहित कर, ध्यान से च्युत कर, ब्रह्मचर्य्य का अन्तर्धान कर दिया। वह पख कटे कौवे के समान, (उसे) छोड कर जाने मे असमर्थ हो, उस दिन वही रहा। फिर बोधिसत्व को आता देख, समुद्र की ओर भागा। बोधिसत्व ने "मेरा शत्रु होगा" सोच तलवार उठा कर उसका पीछा किया। तपस्वी आकाश मे उडने का प्रयत्न करता हुआ समुद्र मे गिर पडा। बोधिसत्व ने सोचा, यह तपस्वी आकाश-मार्ग से आया होगा। ध्यान के नष्ट होने से समुद्र मे गिरा। मुझे अब इसकी सहायता करनी चाहिए सोच, किनारे पर खडे हो, ये गाथाएँ कही —

अभिज्जमाने वारिस्मिं, सय आगम्म इद्धिया,
मिस्सीभाविंत्थिया गन्त्वा, ससीदसि महण्णवे॥
आवट्टनी, महामाया, ब्रह्मचर्य्यं विकोपना,
सीदन्ति नं विदित्वान, आरका परिवज्जये॥
य एता उपसेवन्ति, छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व सठान, खिप्पं अनुदहन्ति न॥

[पानी को बिना भेदे, (आकाशमार्ग से) स्वय ऋद्धि से आकर, स्त्री ससर्ग के कारण समुद्र मे डूबता है।

'ठगने वाली, महामाया,[1] ब्रह्मचर्य्य को प्रकुप्त करने वाली, (स्त्रियाँ) उसे डुबा देती हैं' जान पण्डित आदमी स्त्रियो से दूर ही रहें।

---

१ माया चेता मरीची च सोको, रोगो, चूपद्दवो
खरा च बन्धना चेता, मच्चुपासो गुहासयो।
तासु यो विस्ससे पोसो, सो नरेसु नराधमो॥
[स्त्रियाँ, माया, मरीची, शोक, रोग, उपद्रव, कठोर, बन्धन, मृत्यु पाश तथा गुह्याशय होती हैं। जो पुरुष इनका विश्वास करे वह अधम नर है।]

दिया। स्त्रियो के हाथ मे वह चुप ही नही होता था। तब उसे एक नोकर को सौपा। उसके हाथ मे लेते ही चुप हो गया। तब से उसे पुरुष ही लिए रहते। स्तन पिलाना होता तो दूह कर पिलाते अथवा पर्दे की ओट से स्तन मुंह मे डालते। उसके बडे होते जाने पर भी लोग (उसे) स्त्रिया दिखाने मे असमर्थ रहे। इसलिए राजा ने उसके बैठने आदि का स्थान तथा ध्यान-गृह अलग बनवाया।

उसने उसके सोलह वर्षीय होने पर सोचा—मेरे दूसरा पुत्र नही है, यह काम भोग मे रस नही लेता, राज्य की भी इच्छा नही करता। मुझे पुत्र मुश्किल से मिला है। तब नाच, गीत और बजाने मे पटु, पुरुषो की परि-चर्य्या कर उनको वश मे कर सकने वाली एक तरुणी नटी ने आकर पूछा—"देव ? क्या चिन्ता कर रहे हैं ?" राजा ने उसको कारण बताया।

"अच्छा देव ! मैं उसे लुभा कर काम-रस का ज्ञान कराऊँगी।"

"अगर स्त्री की गन्ध से अपरिचित मेरे कुमार को लुभा सकेगी तो वह राजा होगा और तू उसकी पटरानी।"

"देव ! इसकी जिम्मेवारी मेरी, आप इसकी चिन्ता न करे।"

वह पहरेदारो के पास जाकर बोली—

"मैं प्रात काल आकर आर्य्यपुत्र के शयन-गृह से बाहर ध्यानागार में खडी होकर गाऊँगी। अगर (वह) क्रोधित हो तो मुझसे कहना। मैं चली जाऊँगी। अगर सुने, तो मेरी तारीफ करना।" उन्होने अच्छा कह स्वीकार किया।

वह प्रात काल उस जगह खडी होकर, वीणा के स्वर से गीत का स्वर, गीत के स्वर से वीणा का स्वर मिलाकर मधुर स्वर मे गाने लगी। कुमार सुनता हुआ लेटा रहा। दूसरे दिन कुमार ने नजदीक आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन ध्यानागार मे रहकर गाने की आज्ञा दी ? और अगले दिन अपने पास रहकर। इस प्रकार क्रमश तृष्णा उत्पन्न कर, लोक-धर्म सेवन कर, काम-रस से परिचित हो "स्त्री दूसरे को नही दूँगा" कहता हुआ, तलवार ले, गली मे निकल कर पुरुषो के पीछे दौडने लगा।

राजा ने उसे पकडवा, उसे उस कुमारी के साथ नगर से बाहर निक-लवा दिया। दोनो अरण्य मे प्रविष्ट हो, गगा के नीचे जा, एक तरफ गगा,

दूसरी तरफ समुद्र, दोनो के बीच मे आश्रम बना कर रहने लगे। कुमारी पर्णशाला मे बैठ कर कन्द-मूल आदि पकाती थी। बोधिसत्व अरण्य से फलमूल लाता।

एक दिन उसके फल-मूल के लिए गये रहने पर, एक समुद्र-द्वीप-वासी तपस्वी भिक्षा के लिए आकाश मार्ग से जाता हुआ, धुंआ देख कर आश्रम पर उतरा। तब उसने "जब तक पके तब तक बैठ" कह, बैठा, स्त्री के हाव-भाव से उसे मोहित कर, ध्यान से च्युत कर, ब्रह्मचर्य्य का अन्तर्धान कर दिया। वह पख कटे कौवे के समान, (उसे) छोड कर जाने मे असमर्थ हो, उस दिन वही रहा। फिर बोधिसत्व को आता देख, समुद्र की ओर भागा। बोधिसत्व ने "मेरा शत्रु होगा" सोच तलवार उठा कर उसका पीछा किया। तपस्वी आकाश मे उडने का प्रयत्न करता हुआ समुद्र मे गिर पडा। बोधिसत्व ने सोचा, यह तपस्वी आकाश-मार्ग से आया होगा। ध्यान के नष्ट होने से समुद्र मे गिरा। मुझे अब इसकी सहायता करनी चाहिए सोच, किनारे पर खडे हो, ये गाथाएँ कही —

अभिज्जमाने वारिस्मि, सय आगम्म इद्धिया,
मिस्सीभावित्थिया गन्त्वा, ससीदसि महण्णवे ॥
अवट्टनी, महामाया, ब्रह्मचर्य्य विकोपना,
सीदन्ति नं विदित्वान, आरका परिवज्जये ॥
य एता उपसेवन्ति, छन्दसा वा धनेन वा,
जातवेदो व सठान, खिप्पं अनुदहन्ति न ॥

[पानी को बिना भेदे, (आकाशमार्ग से) स्वय ऋद्धि से आकर, स्त्री ससर्ग के कारण समुद्र मे डूबता है।

'ठगने वाली, महामाया,[1] ब्रह्मचर्य्य को प्रकुप्त करने वाली, (स्त्रियाँ) उसे डुबा देती हैं' जान पण्डित आदमी स्त्रियो से दूर ही रहें।

---

१ माया चेता मरीची च सोको, रोगो, चूपद्दवो
खरा च बन्धना चेता, मच्चुपासो गुहासयो।
तासु यो विस्ससे पोसो, सो नरेसु नराधमो ॥
[स्त्रियाँ, माया, मरीची, शोक, रोग, उपद्रव, कठोर, बन्धन, मृत्यु पाश तथा गुह्याशय होती हैं। जो पुरुष इनका विश्वास करे वह अधम नर है।]

जिस पुरुष से यह सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन-लोभ से, उसे वे वैसे ही शीघ्र जला देती है जैसे आग अपने स्थान को।]

इस प्रकार बोधिसत्व का वचन सुन, तपस्वी समुद्र मे खडे-खडे, नष्ट ध्यान को फिर प्राप्त कर, आकाश मे अपने निवास स्थान को गया।

बोधिसत्व ने सोचा—यह तपस्वी इस प्रकार भारी शरीर वाला है, सो सेमर की रुई के समान आकाश-मार्ग से उड गया। मुझे भी इसकी तरह ध्यान उत्पन्न कर आकाश मे विचरना चाहिए। उसने आश्रम जा उस स्त्री को बस्ती की ओर ले जाकर कहा—"तू जा।" फिर आरण्य मे प्रविष्ट हो, सुन्दर स्थान मे आश्रम बना, ऋषिप्रव्रज्या ले, ध्यान कर, अभिज्ञा तथा समापत्ति प्राप्त कर ब्रह्मलोक गया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के उपरान्त उद्विग्नचित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

स्त्री की गन्ध से अपरिचित कुमार मैं ही था।

२६४. महापणाद जातक

"महापणादो नाम सो राजा " यह शास्ता ने गगा-तीर पर बैठकर भद्दजि स्थविर के प्रताप के बारे मे कही :—

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता श्रावस्ती मे वर्षा-वास कर "भद्दजिकुमार को (सघ मे) शामिल करूँगा" सोच, भिक्षु-सघ के साथ चरिका करते हुए, भद्दिय नगर पहुँचे। जातीय-वन मे तीन मास कुमार का ज्ञान परिपक्व होने तक वास किया।। भद्दजिकुमार महा धनवान अस्सी करोड सम्पत्ति वाले सेठ का एकलौता पुत्र था। उसके पास तीनो ऋतुओ के लिए तीन प्रासाद थे।

एक-एक मे चार-(चार) मास रहता था। एक मे रह कर, नाटकादि से घिर कर बड़े ठाट-बाट के साथ दूसरे प्रासाद मे जाता था। उस क्षण कुमार का ठाट देखने के लिए, सारे नगर-वासी उमट पडते थे। प्रासादो के बीच पहियो पर पहिए तथा मञ्चो पर मञ्च बाँधते थे।

शास्ता ने तीन मास रहकर ग्राम-वासियो से कहा—"हम जाएँगे।" नगर वासियो ने कहा—"भन्ते! कल जायँ।" शास्ता को निमन्त्रित कर, दूसरे दिन बुद्ध-प्रमुख सघ के लिए महादान तैयार कर, नगर के बीच मण्डप बना, सजा, आसन बिछवा कर समय की सूचना दी। भिक्षु सघ के साथ शास्ता वहाँ जाकर बैठे। लोगो ने महादान दिया। शास्ता ने भोजन समाप्त कर, मधुर स्वर से (दान-) अनुमोदन आरम्भ किया। उसी समय, भद्दजि-कुमार (एक) प्रासाद से (दूसरे) प्रासाद को जा रहा था। उस दिन उसका ठाट-बाट देखने के लिए कोई नही गया। उसके अपने लोग ही उसे घेरे रहे।

कुमार ने आदमियो से पूछा—"दूसरे दिन मेरे (एक) प्रासाद से (दूसरे) प्रासाद जाते समय सारा नगर उमड पडता था, पहियो पर पहिए, मञ्चो पर मञ्च बाँधते थे। आज अपने आदमियो के सिवाय और कोई आदमी नही है। क्या कारण है?"

"स्वामी! सम्यक् सम्बुद्ध इस नगर के पास तीन मास रह कर आज जायँगे। भोजन समाप्त कर वे जनता को धर्मोपदेश दे रहे है। सभी नगर-वासी उनका धर्मोपदेश सुन रहे हैं।"

"तो जाओ हम भी सुनेंगे" कह सब आभरणो से मुक्त हो, बहुत लोगो के साथ जाकर, सभा मे पीछे खड़े हो, धर्मोपदेश सुनते हुए उसने सब क्लेशो (बन्धनो) को क्षय कर अर्हत्व प्राप्त किया।

शास्ता ने भद्दियश्रेष्ठी को आमन्त्रित कर कहा—"महासेठ! तुम्हारा बना-ठना पुत्र अर्हत्व को प्राप्त हुआ। इसलिए आज उसकी प्रव्रज्या हो जानी चाहिए, नही तो वह निर्वाण को प्राप्त हो जायगा।"

"भन्ते! मेरे पुत्र को निर्वाण नही प्राप्त करना है। उसे प्रव्रजित करें। लेकिन प्रव्रजित कर उसे साथ लेकर कल हमारे घर पधारें।"

भगवान ने निमन्त्रण स्वीकार कर, कुल-पुत्र को ले, बिहार जा, प्रव्रजित करा, उपसम्पदा दी। उसके माता-पिता ने एक सप्ताह तक बड़ा सत्कार किया।

शास्ता एक सप्ताह रह, कुल-पुत्र को साथ ले, चारिका करते हुए कोटिग्राम पहुँचे। कोटिग्राम-वासियो ने बुद्ध-प्रमुख सघ को महादान दिया। शास्ता ने भोजन समाप्त कर (दान) अनुमोदन आरम्भ किया। कुल-पुत्र अनुमोदन किए जाते समय, ग्राम से बाहर जा "शास्ता के आने के समय ही उठूँगा" निश्चय कर, गगातट पर, एक वृक्ष की छाया मे ध्यान लगाकर बैठा। बडे-बूढे स्थविरो के आने पर भी न उठ, शास्ता के आने पर ही उठा। सामान्य भिक्षुओ ने क्रोध कर कहा—"यह प्रव्रजित होकर भी पहले की भाँति बूढे स्थविरो को आते देख, नही उठता।'

कोटिग्राम-वासियो ने नावे एक साथ बाँधी। शास्ता ने बँधी नावो पर बैठ कर पूछा—

"भद्दजि कहाँ है ?"

"भन्ते ! यहाँ ही।"

"भद्दजि ! आ हमारे साथ इस एक नाव पर ही बैठ।"

स्थविर उछल कर उस नाव मे बैठा।

उसके गगा के बीच पहुँचने पर शास्ता बोले—

"भद्दजि ! जब तुम महापणाद राजा थे तो तुम्हारा निवास-स्थान कहाँ था ?"

"भन्ते ! इस स्थान मे निमग्न है।"

सामान्य (पृथक जन[1]) भिक्षुओ ने कहा—यह (अपना) अर्हत होना प्रगट करता है।

"तो भद्दजि ! साथी ब्रह्मचारियो की शका दूर कर।"

उसी क्षण स्थविर, शास्ता को प्रणाम कर, ऋद्धिबल से जा, प्रासाद के शिखर को अगुली ने पकड कर, पचीस योजन प्रासाद को ले, आकाश मे उडा। उडते हुए प्रासाद के नीचे रहने वालो को प्रासाद टूटता मालूम पडा। उसने एक योजन, दो योजन, तीन योजन, बीस योजन तक पानी से प्रासाद को उठाया।

---

१ पृथकजन—जो स्रोतापत्ति आदि मार्ग, फल प्राप्त नहीं है।

उसके पूर्वजन्म के सम्बन्धी प्रासाद के लोभ से, मच्छ, कच्छप, नाग, मेढक होकर उसी प्रासाद मे पैदा हुए थे। प्रासाद के उठने पर वे कूद-कूद कर पानी मे गिर पडे। शास्ता ने उनको गिरते देखकर कहा—

"भद्दजि! तुम्हारे सम्बन्धी क्लेश पा रहे है।"

स्थविर ने शास्ता का वचन सुन, प्रासाद छोड दिया। प्रासाद यथा-स्थान प्रतिष्ठित हो गया।

शास्ता गगा पार गये। उनका आसन गगा के किनारे ही बिछाया गया। बिछे, श्रेष्ठ बुद्ध-आसन पर वह तरुण सूर्य्य के समान रश्मि छोडते हुए बैठे। तब भिक्षुओ ने पूछा—

"भन्ते! भद्दजि स्थविर इस मकान मे कब रहते थे?"

"महापणाद राजा के समय" कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे विदेह राष्ट्र, मिथिला मे सुरुचि नाम का राजा था। उसका पुत्र भी सुरुचि ही था। उसका पुत्र महापणाद हुआ। उसने यह प्रासाद प्राप्त किया। उसके प्राप्त करने मे पूर्व जन्म का कार्य सहायक हुआ—"दो पिता-पुत्रो ने बाँस और उदुबर की लकडी से प्रत्येक बुद्ध के लिए निवास-स्थान बनाया।" इस जातक की सारी अतीत-कथा पकिण्णक निपात के सुरुचि जातक[1] मे आएगी। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने पर ये गाथाएँ कही —

पणादो नाम सो राजा, यस्स यूपो सुवण्णयो,
तिरीयं सोळस पब्बेधो, उच्चमाहु सहस्सधा।
सहस्सकण्डू सतभेदो, धजालु हरितामयो,
अनच्चु तत्थ गन्धब्बा छ सहस्सानि सत्तधा।
एवमेत तदा आसि, यथा भाससि भद्दजि!
सक्को अहं तदा आसि, वेय्यावच्चकरो तव॥

---

१ सुरुचि जातक (४८९)।

शास्ता एक सप्ताह रह, कुल-पुत्र को साथ ले, चारिका करते हुए कोटिग्राम पहुँचे । कोटिग्राम-वासियो ने बुद्ध-प्रमुख सघ को महादान दिया । शास्ता ने भोजन समाप्त कर (दान) अनुमोदन आरम्भ किया । कुल-पुत्र अनुमोदन किए जाते समय, ग्राम से बाहर जा "शास्ता के आने के समय ही उठूंगा" निश्चय कर, गगातट पर, एक वृक्ष की छाया मे ध्यान लगाकर बैठा । बडे-बूढे स्थविरो के आने पर भी न उठ, शास्ता के आने पर ही उठा । सामान्य भिक्षुओ ने क्रोध कर कहा—"यह प्रव्रजित होकर भी पहले की भाँति बूढे स्थविरो को आते देख, नही उठता ।'

कोटिग्राम-वासियो ने नावें एक साथ बाँधी । शास्ता ने बँधी नावो पर बैठ कर पूछा—

"भद्दजि कहाँ है ?"

"भन्ते ! यहाँ ही ।"

"भद्दजि ! आ हमारे साथ इस एक नाव पर ही बैठ ।"

स्थविर उछल कर उस नाव मे बैठा ।

उसके गगा के बीच पहुँचने पर शास्ता बोले—

"भद्दजि ! जब तुम महापणाद राजा थे तो तुम्हारा निवास-स्थान कहाँ था ?"

"भन्ते ! इस स्थान मे निमग्न है ।"

सामान्य (पृथक जन[1]) भिक्षुओ ने कहा—यह (अपना) अर्हत होना प्रगट करता है ।

"तो भद्दजि ! साथी ब्रह्मचारियो की शका दूर कर ।"

उसी क्षण स्थविर, शास्ता को प्रणाम कर, ऋद्धिबल से जा, प्रासाद के शिखर को अगुली से पकड कर, पचीस योजन प्रासाद को ले, आकाश मे उडा । उडते हुए प्रासाद के नीचे रहने वालो को प्रासाद टूटता मालूम पडा । उसने एक योजन, दो योजन, तीन योजन, बीस योजन तक पानी से प्रासाद को उठाया ।

---

१. पृथकजन—जो स्रोतापत्ति आदि मार्ग, फल प्राप्त नहीं है ।

उसके पूर्वजन्म के सम्बन्धी प्रासाद के लोभ मे, मच्छ, कच्छप, नाग, मेढक होकर उसी प्रासाद मे पैदा हुए थे। प्रासाद के उठने पर वे कूद-कूद कर पानी मे गिर पडे। शास्ता ने उनको गिरते देखकर कहा—

"भद्दजि! तुम्हारे सम्बन्धी क्लेश पा रहे हैं।"

स्थविर ने शास्ता का वचन सुन, प्रासाद छोड दिया। प्रासाद यथा-स्थान प्रतिष्ठित हो गया।

शास्ता गगा पार गये। उनका आसन गगा के किनारे ही बिछाया गया। बिछे, श्रेष्ठ बुद्ध-आसन पर वह तरुण सूर्य्य के समान रश्मि छोडते हुए बैठे। तब भिक्षुओ ने पूछा—

"भन्ते! भद्दजि स्थविर इस मकान मे कब रहते थे?"

"महापणाद राजा के समय" कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे विदेह राष्ट्र, मिथिला मे सुरुचि नाम का राजा था। उसका पुत्र भी सुरुचि ही था। उसका पुत्र महापणाद हुआ। उसने यह प्रासाद प्राप्त किया। उसके प्राप्त करने मे पूर्व जन्म का कार्य सहायक हुआ—"दो पिता-पुत्रो ने बाँस और उदुंबर की लकडी से प्रत्येक बुद्ध के लिए निवास-स्थान बनाया।" इस जातक की सारी अतीत-कथा पकिण्णक निपात के सुरुचि जातक[1] मे आएगी। शास्ता ने यह अतीत-कथा ला, सम्यक्-सम्बुद्ध होने पर ये गाथाएँ कही —

पणादो नाम सो राजा, यस्स यूपो सुवण्णयो,
तिरीय सोळस पब्बेधो, उच्चमाहु सहस्सधा।
सहस्सकण्डू सतभेदो, धजालु हरितामयो,
अनच्चु तत्थ गन्धब्बा छ सहस्सानि सत्तधा।
एवमेत तदा आसि, यथा भाससि भद्दजि!
सक्को अहं तदा आसि, वेय्यावच्चकरो तवं॥

---

१. सुरुचि जातक (४८९)।

[वह पणाद नाम का राजा था। उसका प्रासाद स्वर्णमय था। उसका विस्तार सोलह कन्डे का था। हजार कन्डे जितना ऊँचा था।

वह हजार कन्डे का ऊँचा प्रासाद, सात तल वाला था। (ऊपर) हरी ध्वजा लगी थी। वहाँ सात तलो मे छ हजार गन्धर्व नाचते थे।

जैसा भद्दजि! तू अब कह रहा है, उसी प्रकार का यह था। मै तब तुम्हारी सेवा करने वाला इन्द्र था।]

उसी क्षण सामान्य भिक्षु शका-रहित हो गये। शास्ता ने इस प्रकार धर्मोपदेश दे जातक का मेल विठाया।

तब महापणाद भद्दजि था और इन्द्र तो ही मै था।

२६५. खुरप्प जातक

"दिस्वा खुरप्पे" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक हिम्मत-हार भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या सचमुच न हिम्मत हार गया है।"

"भन्ते! सचमुच।"

"भिक्षु! निर्वाण की ओर ले जाने वाले शासन मे प्रव्रजित होकर तूने कैसे हिम्मत छोडी? पुराने लोगो ने निर्वाण से असम्बन्धित बातो के लिए भी प्रयत्न किया।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व जगल-रक्षक-कुल मे पैदा हुआ। आयु प्राप्त कर जगल-रक्षको का सर्व

प्रमुख हुआ। उसके पाँच सौ आदमी थे। वह जगल के किनारे एक गांव मे रहता और मजदूरी लेकर मनुष्यो को जगल पार कराता था।

एक दिन वाराणसी का एक सौदागर-पुत्र पाँच सौ गाडियाँ लेकर उसके गाव पहुँचा। उसको बुलवाकर कहा—"सौम्य! एक हजार लेकर मुझे जगल पार करा दो।" उसने "अच्छा" कह उसके हाथ के एक हजार ले लिए। मजदूरी लेते ही उसने उसके लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया। वह उसे लेकर जगल मे प्रविष्ट हुआ। जगल मे पाँच सौ चोरो ने हमला किया। चोरो को देखते ही बाकी मनुष्य छाती के बल गिर पडे। जगल-रक्षको के मुखिया ने निनाद करते हुए, गर्जना करते हुए, प्रहार करके पाँच सौ चोरो को भगा कर सौदागर-पुत्र को सकुशल कान्तार पार करा दिया। सौदागर-पुत्र ने कान्तार के पार कारवाँ को रोक, रक्षको के मुखिया को नाना रस वाले श्रेष्ठ-भोजन करा, स्वय जलपान कर, सुख पूर्वक बैठ, उसके साथ बात करते हुए उससे पूछा—"सौम्य! ऐसे भयानक चोरो के अस्त्र-शस्त्र लेकर आक्रमण करने पर भी तुम्हारे चित्त मे कैसे जरा भी त्रास नही पैदा हुआ?" यह पूछते हुए पहली गाथा कही —

दिस्वा खुरप्पे, धनुवेग नुन्ने, खग्गे गहीते तिखिणे तेलधोते,
तस्मि भयस्मि, मरणे वियूळ्हे, कस्मानु ते नाहु छम्भितत्त ॥

[धनुष से वेग से छूटे तीर को देखकर, तेल मे तेज किये तीक्ष्ण खड्गो को लिए देखकर, भय और मरण उपस्थित होने पर, तुम्हे कैसे शरीर-कम्पन नही हुआ?]

इसे सुन रक्षको के मुखिया ने शेष दो गाथाएँ कही —

दिस्वा खुरप्पे, धनुवेग नुन्ने, खग्गे गहीते तिखिणे तेलधोते,
तस्मिभयस्मि मरणे वियूळ्हे वेद अलत्थ विपुल उळार ॥
सो वेदजातो अज्झभाव अमित्ते, पुब्बेव मे जीवितमासि चत्त,
नहि जीविते आलय कुब्बमानो, सूरो कयिरा सूरकिच्च कदाचि ॥

[धनुष से वेग से छूटे तीर देखकर, तेल मे साफ किए गये खड्ग लिए देखकर, भय तथा मरण उपस्थित होने पर (मेरा) मन प्रफुल्लित हो उठा।]

[वह पणाद नाम का राजा था। उसका प्रासाद स्वर्णमय था। उसका विस्तार सोलह कन्डे का था। हजार कन्डे जितना ऊँचा था।

वह हजार कन्डे का ऊँचा प्रासाद, सात तल वाला था। (ऊपर) हरी ध्वजा लगी थी। वहाँ सात तलो मे छ हजार गन्धर्व नाचते थे।

जैसा भद्दजि! तू अब कह रहा है, उसी प्रकार का यह था। मै तब तुम्हारी सेवा करने वाला इन्द्र था।]

उसी क्षण सामान्य भिक्षु शका-रहित हो गये। शास्ता ने इस प्रकार धर्मोपदेश दे जातक का मेल बिठाया।

तब महापणाद भद्दजि था और इन्द्र तो ही मै था।

२६५. खुरप्प जातक

"दिस्वा खुरप्पे" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक हिम्मत-हार भिक्षु के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—"भिक्षु! क्या सचमुच न हिम्मत हार गया है।"

"भन्ते! सचमुच।"

"भिक्षु! निर्वाण की ओर ले जाने वाले शासन मे प्रब्रजित होकर तूने कैसे हिम्मत छोडी? पुराने लोगो ने निर्वाण से असम्बन्धित बातो के लिए भी प्रयत्न किया।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व जगल-रक्षक-कुल मे पैदा हुआ। आयु प्राप्त कर जगल-रक्षको का सर्व

कहे जाने पर स्वीकार कर लिया। उन्होंने "अमुक दिन, अमुक समय आओ" कह, वचन ले उसको कहा। शयन-गृह को सजा, अपने को अलकृत कर वह शैय्या पर बैठी। वह आकर शैय्या के एक सिरे पर बैठा। तब वह सोचने लगी—अगर मैं गम्भीर्य्य न रख अभी ही इसे मौका दूंगी तो मेरी शान घटेगी। आने के दिन ही मौका देना अनुचित है। आज उसे शर्मिन्दा कर दूसरे दिन मौका दूंगी। हाथ पकडना आदि करते हुए खेलना आरम्भ किया। फिर हाथो मे पकड कर कहा—निकल जाओ, तुमसे मेरा कोई मतलब नही।

वह हताश तथा लज्जित हो उठकर अपने घर गया।

दूसरी स्त्रियो ने उसके वैसा करने की बात जान, गृहस्थ के चले जाने पर, उसके पास जाकर कहा—तू इसमे आसक्त-चित्त हो, आहार छोड कर लेटी थी। हम बार-बार याचना कर उसे ले आई। तूने उसे क्यो मौका नही दिया? उसने वह बात बतायी। दूसरी (स्त्रियाँ) "तो मालूम होगा" कह चली गई। गृहस्थ ने लौटकर फिर नही देखा। वह उसे न पा निराहार रह, मर गई।

गृहस्थ उसके मरने की खबर पा, बहुत माला-गन्ध विलेपन ले, जेतवन जा, शास्ता की पूजा कर,' प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

"उपासक। दिखाई क्यो नही देता?"

गृहस्थ ने आप-बीती सुनकर कहा—"भन्ते! इतने समय तक लज्जा के कारण बुद्ध की सेवा मे नही आया।"

"उपासक! इस समय तो उसने कामुकता-वश तुझे बुला कर, आने पर मौका न दे लज्जित किया। पहले पण्डितो (?) मे भी आसक्त हो, बुला कर, आने पर मौका न दे, कष्ट देकर लौटा दिया।" उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे, ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व सिन्धव कुल मे पैदा हो, वातग्गसिन्धव नाम से उस (राजा) का मगल-अश्व हुआ। वह घुड-चरवाहो द्वारा लाया जाकर गगा मे नहाता था। उसे देखकर

[उस प्रसन्नता मे शत्रुओ को जीत लिया। मैंने तो पहले ही जीवन परित्याग कर दिया था। जीने मे आसक्ति रखने वाला शूर कभी बहादुरी का काम नही करता।]

इस प्रकार वह बाणो की वर्षा होते हुए, जीने की तृष्णा छोड देने से अपने द्वारा किया गया बहादुरी का काम प्रकट कर, सौदागर-पुत्र को भेज, अपने गाँव जा, दान आदि पुण्य कर परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय, हारा हुआ (भिक्षु) अर्हत्व को प्राप्त हुआ।

उस समय रक्षको का मुखिया मै ही था।

२६६. वातग्गसिन्धव जातक

"येनासि किसिया पण्डु" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, श्रावस्ती के एक गृहस्थ के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक सुन्दर स्त्री एक सुन्दर गृहस्थ को देख कर उस पर आसक्त हो गई। सारे शरीर को जलाती हुई-सी उसके शरीर मे कामाग्नि पैदा हो गई। उसको न तो शरीर का सुख मिलता, न मन की शान्ति। उसे भात भी नही रुचता था। केवल चारपाई की पाटी पकडकर लेटी रहती। तब उसकी सेविका और सहायिका ने पूछा—"तू चञ्चल-चित्त क्यो है ? चारपाई की पाटी पकड कर क्यो लेटी रहती है ? तुझे क्या कष्ट है ?" उसने एक-दो बार पूछने पर उत्तर नही दिया। बार-बार पूछे जाने पर वह बात कही। तब उन्होने उसे आश्वासन देकर कहा—"तू चिन्ता मत कर। हम उसे ले आएँगी।" उन्होने जाकर गृहस्थ से मन्त्रणा की। उसने इन्कार किया। (लेकिन) बार-बार

कहे जाने पर स्वीकार कर लिया। उन्होने "अमुक दिन, अमुक समय आओ" कह, वचन ले उसको कहा। शयन-गृह को सजा, अपने को अलकृत कर वह शैय्या पर बैठी। वह आकर शैय्या के एक सिरे पर बैठा। तब वह सोचने लगी—अगर मैं गम्भीर्य्य न रख अभी ही इसे मौका दूँगी तो मेरी शान घटेगी। आने के दिन ही मौका देना अनुचित है। आज उसे शर्मिन्दा कर दूसरे दिन मौका दूँगी। हाथ पकडना आदि करते हुए खेलना आरम्भ किया। फिर हाथो मे पकड कर कहा—निकल जाओ, तुमसे मेरा कोई मतलब नही।

वह हताश तथा लज्जित हो उठकर अपने घर गया।

दूसरी स्त्रियो ने उसके वैसा करने की बात जान, गृहस्थ के चले जाने पर, उसके पास जाकर कहा—तू इसमे आसक्त-चित्त हो, आहार छोड कर लेटी थी। हम बार-बार याचना कर उसे ले आई। तूने उसे क्यो मौका नही दिया ? उसने वह बात बतायी। दूसरी (स्त्रियाँ) "तो मालूम होगा" कह चली गई। गृहस्थ ने लौटकर फिर नही देखा। वह उसे न पा निराहार रह, मर गई।

गृहस्थ उसके मरने की खबर पा, बहुत माला-गन्ध विलेपन ले, जेतवन जा, शास्ता की पूजा कर, प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा—

"उपासक। दिखाई क्यो नही देता ?"

गृहस्थ ने आप-बीती सुनकर कहा—"भन्ते ! इतने समय तक लज्जा के कारण बुद्ध की सेवा मे नही आया।"

"उपासक ! इस समय तो उसने कामुकता-वश तुझे बुला कर, आने पर मौका न दे लज्जित किया। पहले पण्डितो (?) मे भी आसक्त हो, बुला कर, आने पर मौका न दे, कष्ट देकर लौटा दिया।" उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे, ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व सिन्धव कुल मे पैदा हो, वातग्गसिन्धव नाम से उस (राजा) का मगल-अश्व हुआ। वह घुड-चरवाहो द्वारा लाया जाकर गगा मे नहाता था। उसे देखकर

कुन्दली नाम की गधी उस पर आसक्त हो गई। यह कामुकता के कारण काँपती हुई तृण नही खाती थी। पानी भी नही पीती थी। सूखकर कृषा, हड्डी-चाम मात्र रह गई।

उसके पुत्र—गर्दभ बच्चे— ने उसको वैसी सूखती हुई देख कर पूछा—

"अम्म ! तू न तृण खाती है, न पानी पीती है, सूखकर जहाँ-तहाँ काँपती पडी रहती है ! तुझे क्या कष्ट है ?"

उसने पहले नही कहा। बार-बार पूछे जाने पर वह बात कही। तब उसके पुत्र ने आश्वासन देकर कहा—माँ चिन्ता मत कर। मैं उसे ले आऊँगा। जब घोडा नहाने गया, उस समय उसके पास जाकर कहा—तात! मेरी माता तुम पर आसक्त है। आहार छोड, सूख-सूख कर मर जायगी। उसे जीवन दान दें।

"अच्छा तात ? दूँगा। घुड-चरवाहे मुझे नहलाकर थोडी देर गगा-किनारे विचरने के लिए छोडते हैं। तुम (अपनी) माँ को लेकर उस स्थान मे आना।"

वह जाकर माँ को ला, उस स्थान मे छोड, एक ओर छिप कर खडा रहा।

घुड-चरवाहे ने वातग्ग-सिन्धव को उस स्थान पर छोड दिया। वह उस गधी को देखकर उसके पास गया।

जब घोडा उस गधी के पास पहुँच उसके शरीर को सूँघने लगा, तब उसने सोचा—अगर मैं गाम्भीर्य्य न रखकर आते ही मौका दूँगी तो मेरा यश और शान घटेगी। ऐसे रहना चाहिए जैसे हमे कोई इच्छा ही नही है। यह सोच सिन्धव के नीचे जबडे मे दुलत्ती मार भाग गई। दाँत की जड टूट जाने जैसी (वेदना) हुई। वातग्गसिन्धव ने सोचा—मुझको इससे क्या प्रयोजन ? शर्मिन्दा होकर वहाँ से भाग गया। वह दुखी हो, वही गिरकर सोचती हुई लेट रही।

उसके पुत्र ने जाकर पूछते हुए पहली गाथा कही—

येनासि किसिया पण्डु, येन भत्त न रुच्चति,
अय सो आगतो तात, कस्मादानि पलायसि ॥

[जिसके कारण शरीर कृष होकर पाण्डु-वर्ण हो गया। जिसके कारण भात नही रुचता, वह यह तात आया है। अब क्यो भागती है ?]

पुत्र का वचन सुन, गदही ने दूसरी गाथा कही—

सचे पनादिकेनेव, सन्थवो नाम जायति,
यसो हायति इत्थीन, तस्मा तात ! पलायह ॥

[अगर आरम्भ मे ही सम्बन्ध हो जाय तो स्त्रियो की शान नष्ट हो जाती है। हे तात ? इसलिए मैं भागी।]

इस प्रकार उसने पुत्र को स्त्रियो का स्वभाव कहा। तीसरी गाथा शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर कही—

यसस्सीन कुले जात, आगत या न इच्छति,
सोचति चिर रत्ताय, वातग्गमिव कुन्दलि ।

[यशस्वियो के कुल मे पैदा हुओ के आने पर जो उनकी इच्छा नही करतो अर्थात् उपेक्षा करती है। वह चिवर काल तक चिन्तित रहती है। जैसे कुन्दलि वातग्ग के लिए।]

शास्ता ने इस अतीत-कथा को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय गृहस्थ स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय गधी वह स्त्री थी। वातग्गसिन्धव तो मैं ही था।

२६७. कक्कट जातक

"सिङ्गीमिगो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक स्त्री के बारे मे कही —

क वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक गृहस्थ अपनी भार्य्या को लेकर कर्ज उगाहने के लिए जनपद जा, कर्ज उगाह कर वापिस आ रहा था। लौटते समय मार्ग मे

चोरो ने पकड लिया। उसकी भार्य्या सुन्दरी मनोरमा थी। चोरो के सरदार ने उस पर आसक्त होने के कारण गृहस्थ को मारना आरम्भ किया। वह स्त्री शीलवती, सदाचारिणी, पति को देवता मानने वाली थी। उसने चोर के पैरो पर गिर कर कहा—स्वामी! अगर मुझे प्रेम करने के कारण मेरे स्वामी को मारेंगे तो मैं भी विष खाकर या सांस रोककर मर जाऊँगी। तुम्हारे साथ नही जाऊँगी। मेरे स्वामी को बे-मतलब न मारें। यह कह उसे छुडा लिया।

वे दोनो सकुशल श्रावस्ती मे जेतवन-विहार के पीछे से गुजर रहे थे। उन्होने सोचा—विहार मे प्रविष्ट हो शास्ता को नमस्कार करके जायें। वे गन्ध-कुटी-परिवेण जा, वन्दना कर, एक ओर बैठे।

शास्ता ने पूछा—

"कहाँ गये थे ?"

"कर्ज उगाहने।"

"मार्ग मे अच्छी तरह आए ?"

"भन्ते! मार्ग मे हमे चोरो ने पकड लिया। जब वे मुझे मार रहे थे तो इसने चोरो के मुखिया से याचना करके छुडाया। इसके कारण मुझे जीवन-दान मिला।"

"उपासक! इस समय तो इसने तुझे जीवन-दान दिया। पहले पण्डितो को भी दिया।" उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय हिमालय प्रदेश मे एक बडा तालाब था। उसमे सुवर्ण वर्ण का एक महान केकडा था। उसके उसमे रहने के कारण वह (तालाब) कुळीर-दह कहलाता था। केकडा विशाल था, बडे भारी चक्के के समान। हाथी पकड, मार कर खा जाता था। हाथी उसके भय के कारण वहाँ उतर कर चारा नही ग्रहण कर सकते थे। तब बोधिसत्व ने कुळीर-दह के पास रहने वाले दल के मुखिया हाथी के सहवास से हथिनी की कोख मे जन्म ग्रहण किया। उसकी माता ने गर्भ की

रक्षा करूँगी, सोच दूसरे पर्वत-प्रदेश मे जाकर, गर्भ की रक्षा कर पुत्र को जन्म दिया।

वह क्रमानुसार बढ कर महाशरीर वाला, शक्तिशाली, सुन्दर, अञ्जन पर्वत के समान हुआ। एक हथिनी के साथ उसने सहवास किया। केकडे को पकडूँगा, सोच अपनी भार्य्या तथा माता को ले, उस हाथी-समूह मे पहुँच, पिता को देख कर कहा—तात! मैं केकडे को पकडूँगा। पिता ने कहा—तात! नही (पकड) सकेगा। उसे रोका। उसके फिर-फिर आग्रह करने पर बोला—(अच्छा) तू ही जानेगा।

उसने कुळीर-दह के पास जाकर वहाँ रहने वाले सभी हाथियो को इकट्ठा किया। (फिर) सब के साथ तालाब के समीप जाकर बोला—क्या वह केकडा तालाब मे उतरते समय पकडता है, अथवा (बाहर) निकलते समय?

"निकलते समय।"

"तो तुम लोग कुळीर-दह मे उतर कर, इच्छा भर चर कर, पहले निकलो। मैं पीछे चलूँगा।"

हाथियो ने वैसा किया। केकडे ने पीछे निकलते हुए बोधिसत्व को दोनो अडो[1] से इस प्रकार दृढता से पकडा, जैसे लोहार महासन्डासी से लोह की छड को पकडता है। हथिनी बोधिसत्व को न छोडकर समीप ही खडी रही। बोधिसत्व केकडे को खीच कर (भी) नही हिला सका। (लेकिन) केकडे ने उसे खीचकर अपने सामने कर लिया। मरने के भय से भय-भीत हो बोधिसत्व ने बँधे हुए (कैदी) की आवाज की। सब हाथी मरने के भय से क्रुञ्चनाद करके मल-मूत्र छोडते हुए भागे। उसकी हथिनी भी ठहरने मे असमर्थ हो भागने लगी। तब उसने अपने बँधे होने की बात कह, उसे न भागने के लिए पहली गाथा कही —

सिङ्गीमिगो आयतचक्खुनेत्तो,
अट्ठित्तचो, वारिसयो, अलोमो,

---

१ अळ=अड। अगले हिस्से के दो चगुल। अड शब्द भोजपुरी मे अब भी बोला जाता है।

तेनाभिभूतो कपण रूदामि
माहेव म पाणसम जहेय्य ॥

[यह स्वर्ण वर्ण का जानवर है। विशाल आँखें हैं। हड्डी ही त्वचा है। जल मे सोने वाला है। लोम-रहित है। ऐसे जानवर द्वारा पकडा जाकर दयनीय अवस्था मे रो रहा हूँ। (हे प्रिये) मुझ प्राण के समान (प्यारे) को मत छोडो।]

तब रुक कर हथिनी ने उसे आश्वासन दे दूसरी गाथा —

अय्य न त जहिस्सामि कुञ्जर सट्ठिहायन,
पठव्या चातुरन्ताय, सुप्पियो होसि मे तुव ॥

[आर्य्य! साठ वर्ष के तुझ को (मैं) नही छोडूँगी। चार कोनो वाली पृथ्वी मे तुमही मेरे प्रिय हो।]

इस प्रकार उसे सहारा देकर बोली—आर्य्य! इस केकडे के साथ थोडी बात-चीत करके छुडवाऊँगी। यह कह कर केकडे से याचना करते हुए उसने तीसरी गाथा कही :—

ये कुळीरा समुद्दस्मि, गगाय नम्मदाय च,
तेस त्व वारिजो सेट्ठो, मुञ्च रोदन्तिया पतिं ॥

[समुद्र में, गगा मे, या नर्मदा मे जितने केकडे हैं उनमे तू श्रेष्ठ है। मुझ रोती हुई के पति को छोड दे।]

केकडे ने उसके स्त्री-शब्द मे रस अनुभव कर, कम्पित मन वाला हो, हाथी के पैर से अडो को निकाल लिया। उसने यह नही समझा कि छोड देने पर वह हाथी ऐसा करेगा।

हाथी पैर उठा उसकी पीठ पर चढ गया। तभी हड्डियाँ टूट गई। हाथी ने सतोष-नाद किया। सब हाथियो ने इकट्ठे हो केकडे को जमीन पर खीच ला, मर्दन कर, चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। उसके दो अड शरीर से टूट कर एक ओर गिर पडे। वह कुळीर-दह गगा से सम्बधित था। गगा मे पानी आने पर गङ्गा के पानी से भर जाता था। जब पानी मन्द पडता तो दह का पानी गङ्गा मे चला जाता। वे दोनो अड आकर गङ्गा मे बह गये। एक समुद्र मे पहुँचा। एक को पानी मे खेलते हुए दस-भाई राजाओ ने प्राप्त कर आणक नाम का मृदग बनवाया। जो समुद्र मे पहुँचा था उसे असुरो ने

लेकर आलम्बर नाम की भेरी बनवाई। दूसरे समय इन्द्र के साथ सग्राम करते हुए वे उस (भेरी) को छोड कर भाग गये। वह इन्द्र ने अपने लिए मँगवाई। आलम्बर मेघ के समान बजती है, इसी कारण उसे (ऐसा) कहते है।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय दोनो पति-पत्नी स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए।

तब हथिनी यह उपासिका थी। हाथी तो मैं ही था।

२६८. आरामदूसक जातक

"यो वे सब्बसमेतान " यह शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद मे एक उद्यानपाल-पुत्र के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

वर्षा-वास के बाद जेतवन से निकल शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद मे चारिका की। एक उपासक ने बुद्ध-प्रमुख सघ को निमन्त्रित कर उद्यान मे बिठा, यवागु, खाजे से तृप्त करा कर कहा—आर्य्य ! उद्यान मे घूमना हो तो इस उद्यान-पाल के साथ टहलें। 'आर्यों को फल आदि देना' कह माली को भेजा।

घूमते हुए भिक्षुओ ने एक वृक्ष-विहीन जगह को देख कर पूछा—यह स्थान वृक्ष-विहीन है, क्या कारण है? माली ने उनसे कहा—माली के लडके ने रोपे हुए पौदो को पानी से सीचते हुए 'जड की लम्बाई के हिसाब से सीचूगा' सोच उखाड कर जड के हिसाब से पानी सीचा। इसलिए वह स्थान वृक्ष-विहीन हो गया है। भिक्षुओ ने शास्ता के पास जाकर वह बात

तेनाभिभूतो कपणं रुदामि
माहेव म पाणसम जहेय्य ॥

[यह स्वर्ण वर्ण का जानवर है। विशाल आँखें है। हड्डी ही त्वचा है। जल मे सोने वाला है। लोम-रहित है। ऐसे जानवर द्वारा पकडा जाकर दयनीय अवस्था मे रो रहा हूँ। (हे प्रिये) मुझ प्राण के समान (प्यारे) को मत छोडो।]

तब रुक कर हथिनी ने उसे आश्वासन दे दूसरी गाथा —

अय्य न तं जहिस्सामि कुञ्जर सट्ठिहायन,
पठव्या चातुरन्ताय, सुप्पियो होसि मे तुव ॥

[आर्य्य! साठ वर्ष के तुझ को (मैं) नही छोडूंगी। चार कोनो वाली पृथ्वी मे तुमही मेरे प्रिय हो।]

इस प्रकार उसे सहारा देकर बोली—आर्य्य! इस केकडे के साथ थोडी बात-चीत करके छुडवाऊँगी। यह कह कर केकडे से याचना करते हुए उसने तीसरी गाथा कही —

ये कुळीरा समुद्दस्मि, गंगाय नम्मदाय च,
तेसं त्व वारिजो सेट्ठो, मुञ्च रोदन्तिया पतिं ॥

[समुद्र मे, गगा मे, या नर्मदा मे जितने केकडे हैं उनमे तू श्रेष्ठ है। मुझ रोती हुई के पति को छोड दे।]

केकडे ने उसके स्त्री-शब्द मे रस अनुभव कर, कम्पित मन वाला हो, हाथी के पैर से अडो को निकाल लिया। उसने यह नही समझा कि छोड देने पर वह हाथी ऐसा करेगा।

हाथी पैर उठा उसकी पीठ पर चढ गया। तभी हड्डियाँ टूट गई। हाथी ने सतोष-नाद किया। सब हाथियो ने इकट्ठे हो केकडे को जमीन पर खीच ला, मर्दन कर, चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। उसके दो अड शरीर से टूट कर एक ओर गिर पडे। वह कुळीर-दह गगा से सम्बधित था। गगा मे पानी आने पर गङ्गा के पानी से भर जाता था। जब पानी मन्द पडता तो दह का पानी गङ्गा मे चला जाता। वे दोनो अड आकर गङ्गा मे बह गये। एक समुद्र में पहुँचा। एक को पानी मे खेलते हुए दस-भाई राजाओ ने प्राप्त कर आणक नाम का मृदग बनवाया। जो समुद्र मे पहुँचा था उसे असुरो ने

लेकर आलम्बर नाम की भेरी बनवाई। दूसरे समय इन्द्र के साथ सग्राम करते हुए वे उस (भेरी) को छोड कर भाग गये। वह इन्द्र ने अपने लिए मँगवाई। आलम्बर मेघ के समान बजती है, इसी कारण उसे (ऐसा) कहते है।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्य प्रकाशन के समय दोनो पति-पत्नी स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए।

तब हथिनी यह उपासिका थी। हाथी तो मैं ही था।

२६८. आरामदूसक जातक

"यो वे सब्बसमेतान " यह शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद मे एक उद्यानपाल-पुत्र के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

वर्षा-वास के बाद जेतवन से निकल शास्ता ने दक्षिण-गिरि जनपद मे चारिका की। एक उपासक ने बुद्ध-प्रमुख सघ को निमन्त्रित कर उद्यान मे बिठा, यवागु, खाजे से तृप्त करा कर कहा—आर्य्यं ! उद्यान मे घूमना हो तो इस उद्यान-पाल के साथ टहलें। 'आर्यों को फल आदि देना' कह माली को भेजा।

घूमते हुए भिक्षुओ ने एक वृक्ष-विहीन जगह को देख कर पूछा—यह स्थान वृक्ष-विहीन है, क्या कारण है ? माली ने उनसे कहा—माली के लडके ने रोपे हुए पौदो को पानी से सीचते हुए 'जड की लम्बाई के हिसाब से सीचूगा' सोच उखाड कर जड के हिसाब से पानी सीचा। इसलिए वह स्थान वृक्ष-विहीन हो गया है। भिक्षुओ ने शास्ता के पास जाकर वह बात

कही। शास्ता ने 'अभी ही नही पहले भी वह कुमार बाग नष्ट करने वाला (आरामदूसक) ही था' यह कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे विस्ससेन के राज्य करते समय, उत्सव की घोषणा होने पर 'उत्सव मे शामिल होऊँगा' सोच माली ने उद्यान मे रहने वाले बन्दरो से कहा—यह बाग आप लोगो के लिए बहुत उपयोगी है। मैं एक सप्ताह उत्सव मनाऊँगा। आप सात दिन तक रोपे हुए पौदो मे पानी दें। उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। वह उन्हे मशकें देकर चला गया।

बन्दरो ने पानी सीचते हुए पौदो को सीचा। उनके मुखिया ने कहा—जरा सबर करो। पानी का हमेशा मिलना कठिन है। उसकी रक्षा करनी चाहिए। पौधो को उखाड कर, जड की लम्बाई जान, बडी जड़ मे अधिक पानी, छोटी जड मे थोडा पानी सीचना चाहिए। उन्होने 'अच्छा' कहा। कुछ पौदो को उखाडते जाते थे, और कुछ उन्हे फिर गाड कर पानी देते जाते।

उस समय बोधिसत्व वाराणसी मे किसी कुल का पुत्र था। वह किसी काम से उद्यान गया, तो उन बन्दरो को वैसा करते देख, पूछा—

"तुमसे ऐसा कौन कराता है?"

"मुखिया बन्दर।"

"मुखिया की ऐसी बुद्धि है तो तुम्हारी कैसी होगी?" इस बात को स्पष्ट करते हुए पहली गाथा कही —

यो वे सब्बसमेतानं, अहुवा सेट्ठसम्मतो,
तस्सायं एदिसी पञ्ञा, किमेव इतरा पजा॥

[जो इन सब मे श्रेष्ठ है, उसकी बुद्धि ऐसी है तो शेष की कैसी होगी?]

उसकी बात सुन कर बानरो ने दूसरी गाथा कही —

एवमेव तुवं ब्रह्मे, अनञ्ञाय विनिन्दसि,
कथं मूलं अदिस्वान, रुक्खं जञ्ञा पतिट्ठितं॥

[हे पुरुष! तुम बिना जाने निन्दा कर रहे हो! भला जड को बिना देखे कैसे जानें कि पौदा जम गया है?]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

नाहं तुम्हे विनिन्दामि, ये चञ्ञे वानरा वने,
विस्ससेनोव गारय्हो यस्सत्था रुक्खरोपका ॥

[मैं आप लोगो की निन्दा नही कर रहा हूँ, और न उन दूसरे वानरो की निन्दा करता हूँ जो वन मे है। विस्ससेन ही निन्दनीय है, जिसके लिए आप वृक्ष लगा रहे हैं]

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बिठाया। वानरो का मुखिया आरामदूसक कुमार था। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

२६९ सुजाता जातक

"न हि वण्णेन सम्पन्ना" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अनाथपिण्डिक की पतोहू, धनञ्जय सेठ की लडकी, विशाखा की छोटी बहन, सुजाता के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

वह बडी शान के साथ अनाथपिण्डिक के घर को परिपूर्ण करती हुई प्रविष्ट हुई। 'बडे कुल की लडकी हूँ' इस ख्याल के कारण वह मानिनी, क्रोधिनी, चण्ड और कठोर थी। सास, ससुर और स्वामी के प्रति अपने कर्त्तव्य को नही पालती थी। घर के लोगो को डराती-पीटती रहती थी।

एक दिन शास्ता पाँच सौ भिक्षुओ के साथ अनाथपिण्डिक के घर जाकर बैठे। महाश्रेष्ठी धर्म-(कथा) सुनता हुआ भगवान के पास बैठा था। उसी समय सुजाता दास-कमकरो के साथ झगड रही थी। शास्ता ने धर्म-कथा रोक कर पूछा—यह कैसा शब्द है।

"भन्ते ! यह कुल-पलोह है, गौरव-रहित। सास, ससुर और स्वामी के प्रति इसका कोई कर्तव्य नहीं। न दान, न शील, अश्रद्धावान् अप्रमत्त रहती है, दिन-रात कलह करती रहती है।"

"तो बुलाओ।"

वह आकर, वन्दना कर एक ओर खड़ी हुई। तब शास्ता ने उससे पूछा —

"सुजाता! पुरुष की सात प्रकार की भार्य्या होती है, उन (सातो) मे तू कौन-सी है?"

"भन्ते! मैं सक्षेप मे कही गई बात का अर्थ नही समझी, मुझे विस्तार पूर्वक कहे।"

'तो कान लगा कर सुनो" कह कर शास्ता ने ये गाथाएँ कही —

पदुट्ठचित्ता, अहितानुकम्पिनी,
अञ्ञेसुरत्ता, अतिमञ्ञते पतिं।
धनेन कीतस्स वधाय उस्सुका,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया।
वधका च भरिया ति च सा पवुच्चति॥

[क्रोधी, अहित करने वाली, अनुकम्पारहित, दूसरे को चाहने वाली, और अपने पति की अवहेलना करने वाली, जो धन से खरीदे गये है (अर्थात् दास-दासी) उनको मारने के लिए उत्सुक, पुरुष की जो इस प्रकार की भार्य्या है उसे "वधक" भार्य्या कहते है।]

य इत्थिपा विन्दति सामिको धनं
सिप्पं वणिज्ज च कसिं अधिट्ठह
अप्प पि तस्मा अपहातुमिच्छति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
चोरी च भरिया ति च सा पवुच्चति॥

[स्त्री के लिए स्वामी जिस धन को कमाता है, चाहे शिल्प से चाहे वाणिज्य से, या कृषी मे, अगर वह उसमे-से थोडा भी चुराने की इच्छा करती है तो वह "चोर" भार्य्या कहलाती है।]

अकम्मकामा, अलसा, महग्घसा
फरुसा च चण्डी च दुरुत्तवादिनी
उपट्ठायिकान अभिभुय्य वत्तति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
अय्या च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[काम न करने वाली, आलसी, ज्यादा खाने वाली, कठोर, चण्ड स्वभाव वाली, खराब बोलने वाली, सेवकों को दबा कर रखने वाली, जो इस प्रकार की स्त्री है उसे 'आर्य्या'' भार्य्या कहते हे ।]

या सब्बदा होति हितानुकम्पिनी
माता व पुत्तं अनुरक्खते पतिं
ततो धनं सम्भतमस्स रक्खति,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
माता व भरिया ति च सा पवुच्चति ॥

[सर्वदा हित और अनुकम्पा करने वाली, जैसे माता पुत्र की रक्षा करती है, वैसे ही जो पति की रक्षा करती है, उसके कमाए धन की रक्षा करती है, वह भार्य्या "माता" भार्य्या कहलाती है ।]

यथापि जेट्ठा भगिनी कनिट्ठा
सगारवा होति सकम्हि सामिके
हिरीमना भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
भगिणी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[जैसे छोटी बहन बडी बहन के प्रति गौरव सहित रहती है, उसी भाँति जो पति के प्रति गौरवशील है, लज्जाशीला है, पति के वश मे रहने वाली है, वह "भगिणी" भार्य्या कहलाती है ।]

या चिध दिस्वान पतिं पमोदिता
सखी सखारं व चिरस्स आगतं
कोलेय्यका सीलवती पतिब्बता,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
सखी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[जो पति को देख कर इस प्रकार प्रसन्न होती है जैसे चिरकाल के बाद आए सखा को देख कर सखी। जो कुलीन, शीलवती तथा पतिव्रता है, वह "सखी" भार्य्या कहती है।]

अकुट्ठसन्ता, वधदण्डतज्जिता
अदुट्ठचित्ता, पतिनोतितिक्खति
अक्कोधना, भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
दासी च भरियाति च सा पवुच्चति॥

[क्रोध करने पर जो शान्त रहती है; मार और दण्ड से दबी रहनेवाली होती है, अच्छे चित्त वाली होती है, पति की सहने वाली होती है, क्रोध नही करती, पति के वश मे रहती है। इस प्रकार की जो भार्य्या है वह "दासी" भार्य्या कहलाती है।]

सुजाता! पुरुष की यह सात प्रकार की भार्य्या होती है। इनमे से "वधका" "चोर" और "आर्य्या" यह तीनो नरक मे पैदा होती है। अन्य चार निम्मानरति-देवलोक मे।

या चिध भरिया वधका ति वुच्चति
चोरीति अरियाति च सा पवुच्चति,
दुस्सीलरूपा फरुसा अनादरा
कायस्सभेदा निरयं वजन्ति ता॥

[जो ये "वधक" "चोर" और "आर्य्या" दुश्शील, कठोर, अनादर-युक्त भार्य्या है, वे मरने पर नरक जाती है।]

या चिध माता भगिणी सखी च
दासी ति भरियाति च सा पवुच्चति,
सीले ठितत्ता, चिररत्तसवुता
कायस्स भेदा सुगतिं वजन्ति ता॥

[जो ये "माता" "भगिनी" "सखी" और "दासी" शील मे स्थित, चिरकाल तक सयत रहने वाली भार्य्या है, वे मरने पर सुगति को प्राप्त होती हैं।]

इस प्रकार शास्ता द्वारा इन सात प्रकार की भार्य्याओ का वर्णन किए जाते समय ही सुजाता स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हो गई। तब शास्ता ने पूछा—"इन सातो भार्य्याओ मे से तू किस प्रकार की है ?

"दासी समान" कह शास्ता की वन्दना कर उसने माफी माँगी।

शास्ता ने गृह-वधू सुजाता को एक ही उपदेश मे शान्त किया। भोजन समाप्त कर, जेतवन जा, भिक्षु सघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जा चुकने पर वे गन्ध-कुटी मे प्रविष्ट हुए। धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने शास्ता की गुण कथा की चर्चा चलाई—आवुसो! शास्ता ने एक ही उपदेश मे गृह-वधू सुजाता को शान्त कर स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित कराया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

"अमुक बात-चीत।'

"भिक्षुओ! अभी ही नही, पहले भी सुजाता को मैने एक ही उपदेश मे शान्त किया" कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख मे जन्म ग्रहण किया। आयु प्राप्त होने पर तक्ष-शिला मे शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करने लगा। उसकी माता क्रोधिनी, चण्ड, कठोर, कोसने वाली, परिहास करने वाली थी। उसने माँ को उपदेश देने की सोची। "बिना उदाहरण के समझाना उचित नही है" सोच वह उपदेश देने के लिए उदा-हरण खोजता रहा।

एक दिन उद्यान गया। माता भी पुत्र के साथ गई। मार्ग मे एक मोरनी बोली। बोधिसत्व के अनुयाइयो ने उस शब्द को सुन कर कान ढक कर कहा—हे चण्डवादिनी! कठोरवादिनी! मत बोल। नाटक मण्डली से घिरे बोधिसत्व के माता के साथ उद्यान मे विचरते समय पुष्पित शाल-वृक्ष मे छिपी कोयल मधुर स्वर मे बोली। जनता उसके स्वर से सन्तुष्ट हो, हाथ जोडकर बोली—हे स्निग्ध बोलने वाली! हे कोमल बोलनेवाली! हे मृदुभाषिणी! बोल, बोल। वह कान लगा कर देखती रही।

[जो पति को देख कर इस प्रकार प्रसन्न होती है जैसे चिरकाल के बाद आए सखा को देख कर सखी। जो कुलीन, शीलवती तथा पतिव्रता है, वह "सखी" भार्य्या कहती है।]

अकुद्धसन्ता, वधदण्डतज्जिता
अदुट्ठचित्ता, पतिनोतितिक्खति
अक्कोधना, भत्तुवसानुवत्तिनी,
या एवरूपा पुरिसस्स भरिया
दासी च भरियाति च सा पवुच्चति ॥

[क्रोध करने पर जो शान्त रहती है; मार और दण्ड से दबी रहनेवाली होती है, अच्छे चित्त वाली होती है, पति की सहने वाली होती है, क्रोध नही करती, पति के वश मे रहती है। इस प्रकार की जो भार्य्या है वह "दासी" भार्य्या कहलाती है।]

सुजाता! पुरुष की यह सात प्रकार की भार्य्या होती है। इनमे से "वधका" "चोर" और "आर्य्या" यह तीनो नरक मे पैदा होती हैं। अन्य चार निम्मानरति-देवलोक मे।

या चिध भरिया वधका ति वुच्चति
चोरीति अरियाति च सा पवुच्चति,
दुस्सीलरूपा फरुसा अनादरा
कायस्सभेदा निरय वजन्ति ता ॥

[जो ये "वधक" "चोर" और "आर्य्या" दुश्शील, कठोर, अनादर-युक्त भार्य्या है, वे मरने पर नरक जाती है।]

या चिध माता भगिणी सखी च
दासी ति भरियाति च सा पवुच्चति,
सीले ठितत्ता, चिररत्तसवुता
कायस्स भेदा सुगति वजन्ति ता ॥

[जो ये "माता" "भगिनी" "सखी" और "दासी" शील मे स्थित, चिरकाल तक सयत रहने वाली भार्य्या है, वे मरने पर सुगति को प्राप्त होती हैं।]

इस प्रकार शास्ता द्वारा इन सात प्रकार की भार्य्याओ का वर्णन किए जाते समय ही सुजाता स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हो गई। तब शास्ता ने पूछा—"इन सातो भार्य्याओ मे से तू किस प्रकार की है ?

"दासी समान" कह शास्ता की वन्दना कर उसने माफी माँगी।

शास्ता ने गृह-वधू सुजाता को एक ही उपदेश मे शान्त किया। भोजन समाप्त कर, जेतवन जा, भिक्षु सघ द्वारा आदर प्रदर्शित किए जा चुकने पर वे गन्ध-कुटी मे प्रविष्ट हुए। धर्म-सभा मे भिक्षुओ ने शास्ता की गुण कथा की चर्चा चलाई—आवुसो ! शास्ता ने एक ही उपदेश मे गृह-वधू सुजाता को शान्त कर स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित कराया।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

"अमुक बात-चीत।'

"भिक्षुओ ! अभी ही नही, पहले भी सुजाता को मैने एक ही उपदेश मे शान्त किया" कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख मे जन्म ग्रहण किया। आयु प्राप्त होने पर तक्ष-शिला मे शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करने लगा। उसकी माता क्रोधिनी, चण्ड, कठोर, कोसने वाली, परिहास करने वाली थी। उसने माँ को उपदेश देने की सोची। "बिना उदाहरण के समझाना उचित नही है" सोच वह उपदेश देने के लिए उदा-हरण खोजता रहा।

एक दिन उद्यान गया। माता भी पुत्र के साथ गई। मार्ग मे एक मोरनी बोली। बोधिसत्व के अनुयाइयो ने उस शब्द को सुन कर कान ढक कर कहा—हे चण्डवादिनी ! कठोरवादिनी ! मत बोल। नाटक मण्डली से घिरे बोधिसत्व के माता के साथ उद्यान मे विचरते समय पुष्पित शाल-वृक्ष मे छिपी कोयल मधुर स्वर मे बोली। जनता उसके स्वर से सन्तुष्ट हो, हाथ जोडकर बोली—हे स्निग्ध बोलने वाली ! हे कोमल बोलनेवाली ! हे मृदुभाषिणी ! बोल, बोल। वह कान लगा कर देखती रही।

बोधिसत्व ने उन दो बातो को देखकर सोचा—"अब माँ को समझा सकूँगा।" उसने कहा—माँ ! मार्ग मे मोरनी का शब्द सुन कर जनता ने "मत बोल, मत बोल" कह कान ढक लिये। "कठोर वाणी किसी को प्रिय नही होती" कह ये गाथाएँ कही —

नहि वण्णेन सम्पन्ना, मञ्जुका, पियदस्सना,
खरवाचा पियाहोन्ति, अस्मिलोके परम्हि च ॥
ननु पस्ससिम काळि, दुब्बण्ण, तिलकाहत,
कोकिल सण्हभाणेन, बहुन्नं पाणिनं पिय ॥
तस्मा सखिल वाचस्स, मन्तभाणि अनुद्धतो,
अत्थं धम्म च दीपेति, मधुरतस्स भासित ॥

[सुन्दर वर्ण वाला, कोमल और देखने मे प्रिय लगने पर भी खर-वाणी बोलने वाला न इस लोक मे प्रिय होता है न दूसरे मे।

क्या इस काली, दुर्वर्ण और तिल के दागो वाली कोयल को नही देखती है, जो स्निग्ध वाणी बोलने से बहुत प्राणियो को प्रिय है ?

इसलिए मधुरभाषी, कोमलभाषी, अनुद्धत भाषण करने वाला अर्थ और धर्म का प्रकाश करता है। उसका भाषण मधुर होता है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओ से माता को धर्मोपदेश दे उसे समझाया। तब से वह आचार-सम्पन्ना हुई।

एक ही उपदेश से माता को शान्त कर बोधिसत्व परलोक सिधारे।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बिठाया। तब वाराणसी की राजमाता सुजाता थी। राजा तो मैं ही था।

२७० उलूक जातक

"सब्बेहि किर ञातीहि " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, कौवा-उल्लू के झगडे के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

उस समय कौवे दिन मे उल्लुओ को खाते थे। उल्लू सूर्य्यास्त के बाद इधर-उधर सोने वाले कौवो के सिरो मे ठोर मार-मार कर जान निकाल देते थे। जेतवन के पास के विहार मे रहने वाले एक भिक्षु को झाड़ू लगाते समय वृक्ष से गिरे हुए सात-आठ नाळि (के माप के) बहुत-से कौवो के सिर बुहारने पडते थे। उसने वह बात भिक्षुओ से कही। भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे चर्चा चलाई—"आवुसो! अमुक भिक्षु को वासस्थान पर रोज रोज इतने कौवो के सिर बुहारने पडते है।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"अमुक बात-चीत" कह कर भिक्षुओ ने पूछा—"भन्ते! कौवो और उल्लुओ का यह परस्पर का वैर किस समय से आरम्भ हुआ?"

"प्रथम कल्प से" कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे प्रथम कल्प के लोगो ने इकट्ठे हो, एक सुन्दर, शोभा-शाली, आज्ञासम्पन्न, सब प्रकार से परिपूर्ण पुरुष को लेकर राजा बनाया। चतुष्पदो ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। महासमुद्र मे मछलियो ने आनन्द नाम की मछली को राजा बनाया। तब पक्षियो ने हिमालय प्रदेश मे एक चट्टान पर इकट्ठे होकर विचार किया—मनुष्यो मे राजा दिखाई देता है। वैसे ही चतुष्पदो और मछलियो मे भी। हमारे बीच राजा नही है। अराजकता की अवस्था मे रहना उचित नही जँचता। हमे भी राजा प्राप्त करना चाहिए। (किसी) एक को राजा के स्थान पर रखना है, ऐसा (आप लोग) जानें। उन्होने उपयुक्त पक्षी की तजवीज करते हुए एक उल्लू को चुन कर कहा—"यह हमको अच्छा लगता है।"

एक पक्षी ने सब की सम्मति जानने के लिए तीन बार घोषणा की। उसकी दो बार की घोषणा को सुन, तीसरी बार सुनाने पर एक कौवे ने उठ कर कहा—जरा ठहरो, राज्याभिषेक के समय इसका ऐसा मुख है, क्रुद्ध होने पर कैसा होता होगा? जब यह हमे क्रुद्ध होकर देखेगा तो हम तप्त तवे पर

बोधिसत्व ने उन दो बातो को देखकर सोचा—"अब माँ को समझा सकूँगा।" उसने कहा—माँ! मार्ग मे मोरनी का शब्द सुन कर जनता ने "मत बोल मत बोल" कह कान ढक लिये। "कठोर वाणी किसी को प्रिय नही होती" कह ये गाथाएँ कही —

नहि वण्णेन सम्पन्ना, मञ्जुका, पियदस्सना,
खरवाचा पियाहोन्ति, अस्मिलोके परम्हि च ॥
ननु परससिम कार्ळि, दुब्बण्ण, तिलकाहत,
कोकिल सण्हभाणेन, बहुन्न पाणिन पिय ॥
तस्मा सखिल वाचस्स, मन्तभाणि अनुद्धतो,
अत्थ धम्म च दीपेति, मधुरतस्स भासित ॥

[सुन्दर वर्ण वाला, कोमल और देखने मे प्रिय लगने पर भी खर-वाणी बोलने वाला न इस लोक मे प्रिय होता है न दूसरे मे।

क्या इस काली, दुर्वर्ण और तिल के दागो वाली कोयल को नही देखती है, जो स्निग्ध वाणी बोलने से बहुत प्राणियो को प्रिय है?

इसलिए मधुरभाषी, कोमलभाषी, अनुद्धत भाषण करने वाला अर्थ और धर्म का प्रकाश करता है। उसका भाषण मधुर होता है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओ से माता को धर्मोपदेश दे उसे समझाया। तब से वह आचार-सम्पन्ना हुई।

एक ही उपदेश से माता को शान्त कर बोधिसत्व परलोक सिधारे।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बिठाया। तब वाराणसी की राजमाता सुजाता थी। राजा तो मैं ही था।

२७० उलूक जातक

"सब्बेहि किर ञातीहि" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, कौवा-उल्लू के झगडे के बारे मे कही — '

क. वर्तमान कथा

उस समय कौवे दिन में उल्लुओ को खाते थे। उल्लू सूर्य्यास्त के बाद इधर-उधर सोने वाले कौवो के सिरो मे ठोर मार-मार कर जान निकाल देते थे। जेतवन के पास के विहार मे रहने वाले एक भिक्षु को झाड़ू लगाते समय वृक्ष से गिरे हुए सात-आठ नाळि (के माप के) बहुत-से कौवो के सिर बुहारने पड़ते थे। उसने वह बात भिक्षुओ से कही। भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे चर्चा चलाई—"आवुसो! अमुक भिक्षु को वासस्थान पर रोज रोज इतने कौवो के सिर बुहारने पड़ते हैं।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"अमुक बात-चीत" कह कर भिक्षुओ ने पूछा—"भन्ते! कौवो और उल्लुओ का यह परस्पर का वैर किस समय से आरम्भ हुआ?"

"प्रथम कल्प से" कह कर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे प्रथम कल्प के लोगो ने इकट्ठे हो, एक सुन्दर, शोभाशाली, आज्ञासम्पन्न, सब प्रकार से परिपूर्ण पुरुष को लेकर राजा बनाया। चतुष्पदो ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। महासमुद्र मे मछलियो ने आनन्द नाम की मछली को राजा बनाया। तब पक्षियो ने हिमालय प्रदेश मे एक चट्टान पर इकट्ठे होकर विचार किया—मनुष्यो मे राजा दिखाई देता है। वैसे ही चतुष्पदो और मछलियो मे भी। हमारे बीच राजा नही है। अराजकता की अवस्था मे रहना उचित नही जँचता। हमे भी राजा प्राप्त करना चाहिए। (किसी) एक को राजा के स्थान पर रखना है, ऐसा (आप लोग) जानें। उन्होने उपयुक्त पक्षी की तजवीज करते हुए एक उल्लू को चुन कर कहा—"यह हमको अच्छा लगता है।"

एक पक्षी ने सब की सम्मति जानने के लिए तीन बार घोषणा की। उसकी दो बार की घोषणा को सुन, तीसरी बार सुनाने पर एक कौवे ने उठ कर कहा—जरा ठहरो, राज्याभिषेक के समय इसका ऐसा मुख है, क्रुद्ध होने पर कैसा होता होगा? जब यह हमे क्रुद्ध होकर देखेगा तो हम तप्त तवे पर

रखे तिल के समान जहाँ-तहाँ चिटक जायेंगे। इसे राजा बनाना मुझे (तो) अच्छा नही लगता।

ऊपर कही गई बात प्रगट करने के लिए पहली गाथा कही —

सब्बेहि किर ञातीहि, कोसियो इस्सरो कतो,
सचे ञातीहनुञ्ञातो, भणेय्याहं एकवाचिकं॥

[सब सम्बन्धियो द्वारा उल्लू को ईश्वर (राजा) बनाया गया। अगर भाई बन्द मुझे आज्ञा दें तो मुझे भी एक बात कहनी है।]

उसे अनुज्ञा देते हुए पक्षियो ने दूसरी गाथा कही —

भण सम्म! अनुञ्ञातो, अत्थं धम्मं च केवलं,
सन्ति ही दहरा पक्खी, पञ्ञावन्तो, जुतिन्धरा॥

[हे सौम्य! तुझे आज्ञा है, केवल मतलब की बात कह, क्योकि छोटे पक्षियो मे भी प्रज्ञावान और ज्ञानी होते ही है।]

उसने ऐसी अनुज्ञा पा तीसरी गाथा कही :—

न मे रुच्चति भद्दं वो उलूकस्साभिसेचनं,
अकुद्धस्स मुखं पस्स, कथं कुद्धो करिस्सति॥

[हे भद्रो! उल्लू का अभिषेक मुझे अच्छा नही लगता। अभी क्रुद्ध नही है तब इसका मुख देखिये, क्रुद्ध होने पर क्या करेगा?]

वह ऐसा कह, "मुझे अच्छा नही लगता, मुझे अच्छा नही लगता" कहता हुआ आकाश मे उडा। उल्लू ने भी उठकर उसका पीछा किया। तब से उन्होने परस्पर वैर बाँधा। पक्षियो ने सुवर्ण हंस को राजा बनाकर प्रस्थान किया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, जातक का मेल बिठाया। राज्य पर अभिषिक्त हंस-पोतक मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

३. अरण्य वर्ग

२७१ उदपानदूसक जातक

"आरञ्ञकस्स इसिनो " यह शास्ता ने ऋषिपतन[1] मे विहार करते समय जलाशय को दूषित करने वाले एक शृगाल के बारे में कही —

क वर्तमान कथा

एक शृगाल भिक्षु सब के (पानी) पीने के जलाशय को पेशाब-पाखाने से दूषित करके भाग गया। एक दिन उसके जलाशय के समीप आने पर श्रामणेरो ने उसे ढेलो से मार कर कष्ट पहुँचाया। तब से उसने उस स्थान को फिर लौटकर नही देखा। भिक्षुओ ने उस बात को जानकर धर्म-सभा मे चर्चा चलाई—"आवुसो ! जलाशय को दूषित करने वाले शृगाल ने श्रामणेरो द्वारा कष्ट पाने के बाद से फिर लौट कर भी नही देखा।" शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ ! अभी ही नही पहले भी यह जलाशय को दूषित करने वाला ही था" कह कर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे यही ऋषिपतन, यही जलाशय था। उस समय बोधिसत्व कुलीन घर मे पैदा हो, ऋषी-प्रव्रज्या ले, ऋषी-गण के साथ ऋषिपतन मे वास कर रहे थे। तब यही शृगाल इसी जलाशय को दूषित

---

१ ऋषिपतन—वर्तमान सारनाथ, बनारस से ७ मील दूर।

करके भागा जाता था। तब उसे एक दिन तपस्वी घेर कर खड़े हो गये, और किसी उपाय से पकड कर बोधिसत्व के पास ले गये। बोधिसत्व ने शृगाल के साथ बात करते हुए पहली गाथा कही —

आरञ्जकस्स इसिनो, चिरग्त्ततपस्सिनो,
किच्छा कत उदपानं, कथ सम्म अवासयी ॥

[चिरकाल तक तप करने वाले, अरण्यवासी ऋषियो द्वारा बडी मुश्किल से तैयार किया गया यह जलाशय हे सौम्य! तू ने क्यो दूषित किया ?]

यह सुन शृगाल ने दूसरी गाथा कही —

एस धम्मो सिगालानं, यम्पीत्वा ओहदामसे,
पितु पितामह धम्मो, न नं उज्झातुमरहसि ॥

[यह शृगालो का धर्म है कि जिसे पीये उसे दूषित करें। यह हमारे पिता-पितामह का धर्म है। यह क्रोध करने योग्य नही।]

तब बोधिसत्व ने उसे तीसरी गाथा कही —

येस वो एदिसो धम्मो, अधम्मो पन कीदिसो,
मा वो धम्म अधम्म वा अद्दसाम कुदाचन ॥

[जिनका तुम्हारा धर्म ऐसा है, उनका अधर्म कैसे होगा ? हम न कही तुम्हारा धर्म देखते है न अधर्म।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे उपदेश देकर कहा—फिर मत आना! तब से उसने फिर लौट कर भी नही देखा।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, जातक का मेल बिठाया। उस समय जलाशय को दूषित करने वाला यही शृगाल था। गण का शास्ता तो मैं ही था।

२७२ व्यग्घ जातक

"येन किच्चेन ससग्गा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोकालिक भिक्षु के बारे मे कही। कोकालिक-कथा तेरहवें परिच्छेद के तक्कारिय जातक[1] मे आएगी।

क. वर्तमान कथा

कोकालिक ने "सारिपुत्र, मौदगल्यायन को लेकर आऊँगा" सोच, कोकालिक राष्ट्र से जेतवन आकर शास्ता को नमस्कार कर, स्थविरो के पास जाकर कहा—आवुसो कोकालिक राष्ट्र वासी लोग आपको याद कर रहे है, आओ चले।

"आयुष्मान ! तुम जाओ, हम नही आएँगे।"

स्थविरो के अस्वीकार करने पर वह स्वय लौट गया। भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे चर्चा चलाई—आयुष्मानो ! कोकालिक सारिपुत्र और मौदगल्यायन के साथ भी नही रह सकता, (उनके) बिना भी नही रह सकता। सयोग भी नही सहता, वियोग भी नही सहता। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ ! अभी ही नही, पहले भी कोकालिक सारिपुत्र और मौदगल्यायन के साथ भी नही रह सकता था, (उनके) बिना भी नही रह सकता था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व एक अरण्य मे वृक्ष-देवता होकर पैदा हुये। उसके विमान (वासस्थान) से थोडी ही दूर दूसरी बडी वनस्पति पर दूसरा वृक्ष-देवता रहता था। उस वन-खण्ड मे सिंह और व्याघ्र रहते थे। उनके भय से वहाँ न कोई खेत करता

---

[1] तक्कारिय जातक (४८१)।

था और न वृक्ष ही काटता था। ठहर कर उधर देख भी नही सकता था। वे सिंह और व्याघ्र भाँति-भाँति का शिकार मार कर खाते थे। अवशिष्ट वही छोडकर चले जाते थे। इसलिए उस वन-खण्ड मे मुर्दा की वदबू उठने लगी।

तब दूसरे अन्धे, मूर्ख, कारण-अकारण को न जानने वाले वृक्ष-देवता ने एक दिन बोधिसत्व से कहा—मित्र! इन सिंह-व्याघ्रो के कारण हमारा वनखण्ड मुर्दा की दुर्गन्ध से भर गया है, मैं इनको भगाऊँगा। बोधिसत्व ने कहा—मित्र! इन दोनो के कारण हमारे घर सुरक्षित है। इनके भाग जाने से हमारे घर नष्ट हो जाएँगे। सिंह-व्याघ्रो का पद-चिह्न न देखकर मनुष्य सारे वन को काटकर एक मैदान करके खेत बनाएँगे। तुम्हे ऐसा अच्छा न लगे। यह कह पहली दो गाथएँ कही —

येन मित्तेन ससग्गा, योगक्खेमो विहिसति,
पुब्बेवज्झाभवन्तस्स रक्खे अक्खीव पण्डितो॥
येन मित्तेन ससग्गा, योगक्खेमो पवड्ढति,
करेय्यत्तसम वुत्ति, सब्बकिच्चेसु पण्डितो॥

[जिस मित्र के ससर्ग से कल्याण का नाश होता है, उसके द्वारा अभिभूत अपने यश आदि की आँख के समान रक्षा करे।

जिस मित्र के ससर्ग से कल्याण की वृद्धि होती है, सब कार्य्यो मे पण्डित आदमी उसके साथ अपने जैसा बर्ताव करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व द्वारा यथार्थ वात कही जाने पर भी उस मूर्ख देवता ने उसे न समझ, एक दिन भैरव-रूप दिखाकर उन सिंह-व्याघ्रो को भगा दिया। मनुष्यो ने उनके पद-चिह्न को न देख, सिंह-व्याघ्र दूसरे वन चले गये, जानकर वन-खण्ड का एक भाग काट डाला। देवता ने बोधिसत्व के पास जाकर कहा—मित्र! मैंने तुम्हारे वचन का (पालन) न कर उन्हे भगा दिया। अब उनके चले जाने की वात जानकर मनुष्य वन-खण्ड को काटते है। क्या करना चाहिए?

"अब वे अमुक नाम के वन-खण्ड मे रहते हैं, जाकर उन्हे ले आओ।"

वही जाकर उनके सामने खड़े हो, हाथ जोड़ उसने तीसरी गाथा कही —

एथ ब्यग्घा, निवत्तव्हा, पच्चमेथ महावनं,
मा वनं छिन्दि निब्यग्घ, ब्यग्घा मा हेसु निब्बना ॥

[आओ व्याघ्रो ! लौट चलो, फिर महावन चलो, जिसमे व्याघ्र रहित वन को लोग न काटें, और व्याघ्र भी बिना वन के न रहे ।]

देवता के इस प्रकार याचना करने पर भी उन्होने कहा—तुम जाओ, हम नही आएँगे । उन्होने अस्वीकार कर दिया । देवता अकेला वन-खण्ड लौटा । लोग भी कुछ ही दिनो मे सारे वन को काट कर, खेत बनाकर कृषि-कर्म करने लगे ।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया ।

उस समय का मूर्ख देवता कोकालिक था । सिंह सारिपुत्र था । व्याघ्र मौद्गल्यायन । पण्डित देवता तो मै ही था ।

२७३ कच्छप जातक

"को नु उद्दितभत्तोव" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोसल-राजा के दो महामन्त्रियो की कलह-शान्ति के बारे मे कही । वर्तमान-कथा दूसरे परिच्छेद मे आ ही गई है ।

क. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी-राष्ट्र मे ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए । आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख, काम-भोग छोड, ऋषिप्रव्रज्या ली । फिर हिमालय प्रदेश मे गगा के किनारे आश्रम बना, वहाँ अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-क्रीडा करते हुए रहने लगे । इस जातक मे बोधिसत्व परम-मध्यस्थ थे ।

उपेक्षा पारमिता को पूर्ण किया था। जब वे अपनी पर्णशाला मे बैठे रहते थे, उस समय एक प्रगल्भ दुश्शील बन्दर आकर (उनके) कान के छिद्र मे अपनी जननेन्द्रिय डालता था। बोधिसत्व (उसे) न रोक उपेक्षावान् हो बैठे ही रहते थे।

एक दिन एक कछुवा पानी मे निकल, गङ्गा के किनारे मुँह फैलाकर धूप सेवन करता हुआ सो रहा था। उसे देख, उस चञ्चल बानर ने उसके मुख मे जननेन्द्रिय डाली। तब उस कछुवे ने जागकर पेटी मे डाली जाती हुई की तरह जननेन्द्रिय को डस लिया। तीव्र वेदना हुई। वेदना को रोकने मे असमर्थ हो उसने सोचा—कौन मुझे इस दु ख से मुक्त करेगा ? किसके पास जाऊँ ? तपस्वी के अतिरिक्त दूसरा मुझे इस दु ख से मुक्त नही कर सकता। उसी के पास मुझे जाना चाहिए। तब कछुवे को दोनो हाथो से उठाकर बोधिसत्व के पास गया। बोधिसत्व ने उस दुश्शील बानर का मखौल उडाते हुए पहली गाथा कही—

को नु उद्दितभत्तोव, पूरहत्थोव ब्राह्मणो,
कहन्नु भिक्ख अचरि क सद्धं उपसङ्कमि ॥

[अधिक भोजन से भरे हुए हाथ वाला तू कौन ब्राह्मण है ? तूने कहाँ भिक्षा माँगी ? किस श्रद्धावान् के पास गया था ?]

यह सुन दुश्शील बानर ने दूसरी गाथा कही

अहं कपिस्मि दुम्मेधो, अनामासानि आमसिं,
त्व म मोचय भद्दन्ते, मुत्तो गच्छेय्य पब्बतं ॥

[मैं दुर्बुद्धि बानर हूँ। स्पर्श न करने योग्य को मैने स्पर्श किया। तुम मुझे छुडा दो। तुम्हारा भला हो। छूटते ही मैं पर्वत पर चला जाऊँगा।]

बोधिसत्व ने उसके प्रति करुणा कर, कछूवे के पास वार्तालाप करते हुए तीसरी गाथा कही—

"कच्छपा कस्सपा होन्ति, कोण्डञ्ञा होन्ति मक्कटा,
मुञ्च कस्सप कोण्डञ्ञं, कतं मेथुनक तया ॥

[कछुवे काश्यप होते है और बानर कौण्डन्य। हे काश्यप! कौण्डन्य ने तुम्हारे साथ (गोत्र का सादृश्य होने से) मैथुन किया। (अब) उसे छोड दो।]

कछुवे ने बोधिसत्व का वचन सुन, उचित बात पर प्रसन्न हो, बानर की जननेन्द्रिय छोड दी। बानर मुक्त होते ही बोधिसत्व की वन्दना कर, भाग गया। फिर उस स्थान को लौट कर भी नही देखा। कछुवा भी बोधिसत्व की वन्दना कर यथास्थान गया। बोधिसत्व भी ध्यानी बना रह कर ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

उस समय कछुवा, बानर दो महामान्य थे। तपस्वी तो मैं ही था।

२७४ लोल जातक

"काय बलाका सिखिनी" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक लोभी भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा मे लाए जाने पर उसे शास्ता ने कहा—भिक्षु! तू अभी ही लोभी नही है, पहले भी था। और लोभ के ही कारण मरा। उस कारण पुराने पण्डितो को भी अपने वासस्थान मे बाहर होना पडा। यह कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वाराणसीसेठ के रसोइये ने पुण्य के लिए छीका टाँगा। उस समय बोधिसत्व कबूतर की

उपेक्षा पारमिता को पूर्ण किया था। जब वे अपनी पर्णशाला मे बैठे रहते थे, उस समय एक प्रगल्भ दुश्शील बन्दर आकर (उनके) कान के छिद्र मे अपनी जननेन्द्रिय डालता था। बोधिसत्व (उसे) न रोक उपेक्षावान् हो बैठे ही रहते थे।

एक दिन एक कछुआ पानी मे निकल, गङ्गा के किनारे मुंह फैलाकर धूप सेवन करता हुआ सो रहा था। उसे देख, उस चञ्चल वानर ने उसके मुख मे जननेन्द्रिय डाली। तब उस कछुवे ने जागकर पेटी मे डाली जाती हुई की तरह जननेन्द्रिय को डस लिया। तीव्र वेदना हुई। वेदना को रोकने मे असमर्थ हो उसने सोचा—कौन मुझे इस दु ख से मुक्त करेगा ? किसके पास जाऊँ ? तपस्वी के अतिरिक्त दूसरा मुझे इस दु ख से मुक्त नही कर सकता। उसी के पास मुझे जाना चाहिए। तब कछुवे को दोनो हाथो से उठाकर वोधिसत्व के पास गया। वोधिसत्व ने उस दुश्शील वानर का मखौल उडाते हुए पहली गाथा कही—

को नु उद्दितभत्तोव, पूरहत्थोव ब्राह्मणो,
कहन्नु भिक्ख अचरि क सद्धं उपसङ्कमि ॥

[अधिक भोजन से भरे हुए हाथ वाला तू कौन ब्राह्मण है ? तूने कहाँ भिक्षा माँगी ? किस श्रद्धावान् के पास गया था ?]

यह सुन दुश्शील वानर ने दूसरी गाथा कही

अह कपिस्मि दुम्मेधो, अनामासानि आमसिं,
त्व म मोचय भद्दन्ते, मुत्तो गच्छेय्य पब्बतं ॥

[मैं दुर्बुद्धि बानर हूँ। स्पर्श न करने योग्य को मैंने स्पर्श किया। तुम मुझे छुडा दो। तुम्हारा भला हो। छूटते ही मैं पर्वत पर चला जाऊँगा।]

बोधिसत्व ने उसके प्रति करुणा कर, कछुवे के पास वार्तालाप करते हुए तीसरी गाथा कही—

"कच्छपा कस्सपा होन्ति, कोण्डञ्ञा होन्ति मक्कटा,
मुञ्च कस्सप कोण्डञ्ञ, कत मेथुनकं तया ॥

[कछुवे काश्यप होते है और बानर कौण्डन्य । हे काश्यप ! कौण्डन्य ने तुम्हारे साथ (गोत्र का सादृश्य होने से) मैथुन किया। (अब) उसे छोड दो।]

कछुवे ने बोधिसत्व का वचन सुन, उचित बात पर प्रसन्न हो, बानर की जननेन्द्रिय छोड दी। बानर मुक्त होते ही बोधिसत्व की वन्दना कर, भाग गया। फिर उस स्थान को लौट कर भी नही देखा। कछुवा भी बोधिसत्व की वन्दना कर यथास्थान गया। बोधिसत्व भी ध्यानी बना रह कर ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

उस समय कछुवा, बानर दो महामात्य थे। तपस्वी तो मैं ही था।

२७४ लोल जातक

"काय बलाका सिखिनी" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक लोभी भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा मे लाए जाने पर उसे शास्ता ने कहा—भिक्षु ! तू अभी ही लोभी नही है, पहले भी था। और लोभ के ही कारण मरा। उस कारण पुराने पण्डितो को भी अपने वासस्थान मे बाहर होना पडा। यह कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वाराणसीसेठ के रसोइये ने पुण्य के लिए छीका टाँगा। उस समय बोधिसत्व कबूतर की

उपेक्षा पारमिता को पूर्ण किया था। जब वे अपनी पर्णशाला मे बैठे रहते थे, उस समय एक प्रगल्भ दुश्शील बन्दर आकर (उनके) कान के छिद्र मे अपनी जननेन्द्रिय डालता था। बोधिसत्व (उसे) न रोक उपेक्षावान् हो बैठे ही रहते थे।

एक दिन एक कछुआ पानी मे निकल, गङ्गा के किनारे मुँह फैलाकर धूप सेवन करता हुआ सो रहा था। उसे देख, उस चञ्चल बानर ने उसके मुख मे जननेन्द्रिय डाली। तब उस कछुवे ने जागकर पेटी मे डाली जाती हुई की तरह जननेन्द्रिय को डस लिया। तीव्र वेदना हुई। वेदना को रोकने मे असमर्थ हो उसने सोचा—कौन मुझे इस दु ख से मुक्त करेगा ? किसके पास जाऊँ ? तपस्वी के अतिरिक्त दूसरा मुझे इस दु ख से मुक्त नही कर सकता। उसी के पास मुझे जाना चाहिए। तब कछुवे को दोनो हाथो से उठाकर बोधिसत्व के पास गया। बोधिसत्व ने उस दुश्शील वानर का मखौल उडाते हुए पहली गाथा कही—

> को नु उद्दितभत्तोव, पूरहत्थोव ब्राह्मणो,
> कहन्नु भिक्ख अचरि क सद्ध उपसङ्कमि ॥

[अधिक भोजन से भरे हुए हाथ वाला तू कौन ब्राह्मण है ? तूने कहाँ भिक्षा माँगी ? किस श्रद्धावान् के पास गया था ?]

यह सुन दुश्शील वानर ने दूसरी गाथा कही

> अह कपिस्मि दुम्मेधो, अनामासानि आमसिं,
> त्व म मोचय भद्दन्ते, मुत्तो गच्छेय्य पब्बतं ॥

[मैं दुर्बुद्धि बानर हूँ। स्पर्श न करने योग्य को मैंने स्पर्श किया। तुम मुझे छुडा दो। तुम्हारा भला हो। छूटते ही मैं पर्वत पर चला जाऊँगा।]

बोधिसत्व ने उसके प्रति करुणा कर, कछुवे के पास वार्तालाप करते हुए तीसरी गाथा कही—

> "कच्छपा कस्सपा होन्ति, कोण्डञ्ञा होन्ति मक्कटा,
> मुञ्च कस्सप कोण्डञ्ञ, कतं मेथुनक तया ॥

[कछुवे काश्यप होते हैं और वानर कौण्डन्य। हे काश्यप! कौण्डन्य ने तुम्हारे साथ (गोत्र का सादृश्य होने से) मैथुन किया। (अब) उसे छोड दो।]

कछुवे ने बोधिसत्व का वचन सुन, उचित बात पर प्रसन्न हो, बानर की जननेन्द्रिय छोड दी। बानर मुक्त होते ही बोधिसत्व की वन्दना कर, भाग गया। फिर उस स्थान को लौट कर भी नही देखा। कछुवा भी बोधिसत्व की वन्दना कर यथास्थान गया। बोधिसत्व भी घ्यानी बना रह कर ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया।

उस समय कछुवा, बानर दो महामान्य थे। तपस्वी तो मैं ही था।

२७४ लोल जातक

"काय बलाका सिखिनी" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय, एक लोभी भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा मे लाए जाने पर उसे शास्ता ने कहा—भिक्षु! तू अभी ही लोभी नही है, पहले भी था। और लोभ के ही कारण मरा। उस कारण पुराने पण्डितो को भी अपने वासस्थान मे बाहर होना पडा। यह कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय वाराणसीसेठ के रसोइये ने पुण्य के लिए छीका टाँगा। उस समय बोधिसत्व कबूतर की

योनि मे पैदा होकर वहाँ रहते थे। रसोई-घर के ऊपर से जाते हुए एक लोभी कौवे ने मछली-माँस के नाना प्रकार के पकवान देख, सतृष्ण हो सोचा— किसकी सहायता से मौका मिले ? इस प्रकार विचार करते हुए उसने बोधिसत्व को देख "इसकी मदद से हो सकता है" निश्चय कर, उसके चुगने के लिए जगल जाते समय उसका पीछा किया।

तब उससे बोधिसत्व ने कहा—हे कौवे ! मैं दूसरी जगह चुगने वाला हूँ, तुम दूसरी जगह चुगने वाले हो, तो मेरे पीछे-पीछे क्यो आ रहे हो ?

"भन्ते ! तुम्हारी क्रिया मुझे अच्छी लगती है, मैं भी तुम्हारा साथी चुगने वाला होकर तुम्हारी सेवा करना चाहता हूँ।"

बोधिसत्व ने स्वीकार किया। उसके साथ-साथ चुगते हुए, अकेले चुगते हुए की तरह (वहाँ) से खिसक, उसने गोबर के ढेर को छितरा, कीडे-मकोडो को खा, पेट भर, बोधिसत्व के पास जाकर कहा—तुम अभी तक चुग ही रहे हो ? क्या भोजन का प्रमाण नही जानना चाहिए ? आओ अतिसन्ध्या होने के पहले ही चले।

बोधिसत्व उसके साथ निवास स्थान गये। रसोइये ने "हमारा कबूतर साथी लेकर आया है" सोच कौवे के लिए भी एक छीका टाँगा। कौवा चार-पाँच दिन उसी ढग से रहा। एक दिन सेठ के लिए बहुत-सा मछली माँस लाया गया था। कौवा यह देख, लोभ से अभिभूत हो, प्रात से ही कराहते हुए लेटा।

सवेरे बोधिसत्व ने कहा—"सौम्य ! आ चुगने चलें।"

"तुम जाओ, मुझे अजीर्ण की शका है।"

"सौम्य ! कौवो को अजीर्ण नही होता। तुम्हारे द्वारा ग्रहण किये जाने पर दीपक की बत्ती तुम्हारे पेट मे थोडी ही देर ठहरती है। शेष मुँह मे डालते ही पच जाता है। मेरा वचन मानो, इस माँस-मछली को देखकर ऐसा मत करो।"

"स्वामी ! आप ऐसा क्या कहते है ? मुझे अजीर्ण ही हुआ है।"

"तो अप्रमादी होकर रहो" कह कर बोधिसत्व चले गये।

रसोइया मछली-माँस के नाना पकवान बना कर, शरीर से पसीना पोछता हुआ रसोई घर के दरवाजे पर खडा हुआ। कौवा "यही माँस खाने

का समय है" सोच जाकर रस की कटोरी के सिरे पर बैठा। रसोइये ने "किकि" शब्द सुन, लौट कर कौवे को देखा। अन्दर जाकर उसे पकड, सारे शरीर को नोच, सिर मे चूळ छोड़कर, अदरक-जीरा आदि पीस, मठा मिलाकर "तू हमारे सेठ के मछली-माँस को जूठा करता है" कह, सारे शरीर मे मल कर, कौवे को छीके मे डाल दिया। तीव्र वेदना हुई। बोधिसत्व ने चुगने की भूमि से आ, उसे कराहते हुए देखकर, मसखरी करते हुए पहली गाथा कही—

> कायं बलाका सिखिनी, चोरी लङ्घी पितामहा,
> ओर बलाके आगच्छ, चण्डो मे वायसो सखा ॥

[जिसका पितामह बादल[1] है, चोर, शिखावाला, यह बगुला कौन है? हे बगुले! इधर आ, (क्योकि) मेरा मित्र कौवा चण्ड है।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही—

> नाहं बलाका सिखिनी, अहं लोलोस्मि वायसो,
> अकत्वा वचन तुय्हं, पस्स लूनोस्मि आगतो ॥

[मैं बगुला नही हूँ, मैं लोभी कौवा हूँ। देखो, तुम्हारे वचन को न मानने के कारण नोच डाला गया हूँ।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

> पुनपापज्जसि सम्म, सील ही तव तादिसं,
> नहि मानुसका भोगा, सुभुञ्जा होन्ति पक्खिना ॥

[हे सौम्य! तू फिर उसी दण्ड को प्राप्त होगा। तुम्हारा स्वभाव ही वैसा है। मनुष्यो के भोग पक्षियो के लिए नही होते।]

ऐसा कह बोधिसत्व "अब मैं यहाँ नही रह सकता" सोच, उड कर दूसरी जगह चले गये। कौवा भी कराहता हुआ वही मर गया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का

---

१ बादल की कडक से बगुली गर्भ धारण करती है।

मेल बिठाया। सत्य-प्रकाशन के समय लोभी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय का लोभी कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मै ही था।

२७५ रुचिर जातक

"काय बलाका रुचिरा" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे मे कही। दोनो कथाएँ पहली (कथाओ) के ही समान हैं, और गाथा भी।

काय बलाका रुचिरा, काकानीळस्मि अच्छति,
चण्डो काको सखा मय्ह तस्स चेत कुलावक॥

कौवे के घोसले मे यह कौन सुन्दर बगुला पडा है? मेरा मित्र कौवा चण्ड है। यह उसका घोसला है।]

ननु म सम्म! जानासि, दिज सामाकभोजन,
अकत्वा वचन तुय्हं, पस्स लूनोस्मि आगतो॥

[हे द्विज! हे तृण-बीज भक्षी! क्या तुम मुझे नही जानते हो? तुम्हारे वचन को न मानने से ही आकर देखो मैं नोच डाला गया हूँ।]

पुनपापज्जसि सम्म! सीलं ही तव तादिस,
नहि मानुसका भोगा, सुभुञ्जा होन्ति पक्खिना॥

[हे सौम्य! फिर उसी दण्ड को प्राप्त होगा। तुम्हारा स्वभाव ही वैसा है। मनुष्यो के भोग पक्षियो के लिए नही होते।]

यहाँ भी बोधिसत्व "अब मैं यहाँ नही रह सकता" सोच उडकर दूसरी जगह चले गये।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। सत्य-प्रकाशन के समय लोभी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ।

लोभी भिक्षु कौवा था। कबूतर तो मैं ही था।

२७६. कुरुधम्म जातक

"तव सद्धच सील च" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक हस की हत्या करने वाले भिक्षु के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती वासी दो मित्र, भिक्षु हो, उपसम्पदा प्राप्त कर, प्राय एक साथ रहते थे। एक दिन अचिरवती (नदी) पर जा, स्नान कर, वे किनारे के बालू पर धूप लेते हुए कुशल-क्षेम पूछ रहे थे। उसी समय दो हस आकाश मार्ग से जा रहे थे। उनमे से छोटे भिक्षु ने ककड उठाकर कहा— इस हस-बच्चे की आँख मे मारता हूँ।

"नही सकेगा।"

"इस तरफ की बात रहने दो, दूसरी तरफ की आँख मे मारूँगा।"

"यह तो नही हो सकेगा।"

"तो सब्र करो" कह तिकोना ककड ले, उसने हस के पीछे फेंका। हस ने ककड का शब्द सुन, मुडकर देखा। तव दूसरा गोल ककड ले दूसरी तरफ की आँख मे मारकर इधर वाली आँख से निकाल दिया। हस चिल्लाता हुआ पलट कर उनके पैर मे ही आ गिरा। वहाँ आस-पास खडे भिक्षुओ ने देख, आकर कहा—आयुष्मान्! बुद्ध के शासन मे प्रव्रजित होकर यह जो तुमने प्राणी की हिंसा की, सो अनुचित किया। उसे लेकर तथागत को दिखाया। शास्ता ने पूछा—सचमुच! भिक्षु तुमने जीव-हत्या की ?

"सचमुच भन्ते!"

"भिक्षु! ऐसे कल्याणकारी शासन मे प्रव्रजित होकर तुमने कैसे ऐसा किया? पुराने पण्डितो ने बुद्ध के पैदा होने के पहले स्त्री सहित घर मे रहते समय अल्प-मात्र अनुचित कर्मो के करने मे भी हिचकिचाहट की। (और) तूने इस प्रकार के शासन मे प्रव्रजित होकर जरा भी हिचकिचाहट नही की। क्या भिक्षुओ को शरीर, वचन और मन से सयत नही होना चाहिए?" ऐसा कह, पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कुरु राष्ट्र मे इन्द्र-प्रस्थ नगर मे धनञ्जय के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख मे जन्म ग्रहण किया। क्रमश बडे हो तक्षशिला मे जाकर शिल्प सीखे। पिता ने उपराज बनाया। आगे चलकर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर, दस राज-धर्मों के अनुकूल चलते हुये कुरु-धर्मानुसार आचरण किया। कुरु-धर्म कहते है पाँच शीलो को। बोधिसत्व ने उनका पवित्रता से पालन किया। जिस प्रकार बोधिसत्व ने उसी प्रकार उसकी माता, पटरानी, छोटे भाई उपराजा, ब्राह्मण पुरोहित, रज्जुग्रहण करने वाला अमात्य, सारथी, सेठ, द्रोणमापक महामात्य, द्वारपाल तथा नगर की शोभा वैश्या ने भी पालन किया। इस प्रकार उन्होने —

> राजा माता महेसी च उपराजा पुरोहितो,
> रज्जुको सारथी सेट्ठी दोणो दोवरिको तथा;
> गणिका तेकादस जना कुरुधम्मे पतिट्ठिता ॥

[राजा, माता, पटरानी, उपराजा, पुरोहित, रज्जुग्रहण करने वाला, सारथी, सेठ, द्रोणमापक, द्वारपाल और वैश्या—ये ग्यारह जन कुरुधर्म मे प्रतिष्ठित रहे।]

इन सब ने पवित्रता से पाँच शीलो का पालन किया। राजा ने नगर के चारो द्वारो पर, नगर के बीच मे और निवास (-गृह) के द्वार पर छ दानशालाये बनवा प्रति दिन छ लाख धन का त्याग करते हुये सारे जम्बुद्वीप को उन्मादित कर दान दिया। उसकी दानशीलता सारे जम्बुद्वीप मे प्रसिद्ध हो गयी।

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर मे कालिङ्ग राजा राज्य करता था। उसके राष्ट्र मे वर्षा न हुई। वर्षा के न होने से सारे राष्ट्र मे अकाल पड गया। भोजन का कष्ट और बीमारी फैल गई। दुर्वृष्टि-भय, अकाल-भय और रोग-भय यह तीनो भय फैल गये। मनुष्य अकिंचन हो बच्चो को हाथो पर ले जहाँ-तहाँ घूमते थे। सारे राष्ट्र के निवासियो ने इकट्ठे हो दन्तपुर पहुँच राजद्वार पर शोर मचाया।

राजा ने खिडकी के पास खडे हो शोर सुनकर पूछा—यह क्यो चिल्लाते हैं ?

"महाराज, सारे राष्ट्र मे तीन भय उत्पन्न हो गये है—वर्षा नही होती, खेत नष्ट हो गये है, अकाल पड गया है, मनुष्य खराब भोजन मिलने से रोगी हो गये है और सब कुछ छोड केवल पुत्रो को हाथो पर उठाये घूमते है। महाराज ! वर्षा बरसायें।"

"पुराने राजा वर्षा न होने पर क्या करते थे ?"

"पुराने राजा महाराज ! वर्षा न होने पर दान दे, उपोसथ (व्रत) रख, शील ले, शयनागार मे प्रविष्ट हो, एक सप्ताह तक दूब के बिछौने पर लेटे रहते थे। तब वर्षा होती थी।"

राजा ने 'अच्छा' कह वैसा किया। ऐसा करने पर भी वर्षा नही हुई।

राजा ने अमात्यो से पूछा—"मैंने अपना कर्तव्य किया। वर्षा नही हुई। क्या करूँ ?"

"महाराज इन्द्रप्रस्थ नगर मे धनञ्जय नामक कुरु-नरेश का अञ्जन वसभ नाम का मङ्गल-हाथी है। उसे लाये। उसके लाने से वर्षा होगी।"

"वह राजा सेना तथा वाहन से युक्त है, दुर्जय है। उसका हाथी कैसे लायेंगे ?"

"महाराज, उसके साथ युद्ध करने की आवश्यकता नही है। राजा दानी है, दान-शील है। मागने पर अलकृत शीस भी काट कर दे सकता है। सुन्दर आँखें भी निकाल कर दे सकता है। सारा राज्य भी त्याग सकता है। हाथी का तो कहना ही क्या ! मागने पर अवश्य ही दे देगा।"

"उससे कौन माग सकते हैं ?"

"महाराज, ब्राह्मण।"

राजा ने ब्राह्मण-ग्राम से आठ ब्राह्मणो को बुला, सत्कार-सम्मान करके हाथी मागने के लिए भेजा।

उन्होने खर्चा लिया और राही का भेस बना चल दिये। सभी जगह एक ही रात ठहरते हुए, जल्दी-जल्दी जा, कुछ दिन नगर-द्वार पर दान-शालाओ मे भोजन कर, थकावट उतार पूछा—

"राजा दान-शाला मे कब आता है ?"

आदमियो ने उत्तर दिया—पक्ष मे तीन दिन—चतुर्दशी को, पूर्णिमा को तथा अष्टमी को आता है। कल पूर्णिमा है। इसलिये कल भी आयेगा। ब्राह्मण अगले दिन प्रात काल ही जाकर पूर्व-द्वार पर खडे हो गये।

बोधिसत्व भी प्रात काल ही स्नान कर, (चन्दन आदि का) लेपकर, सब अलङ्कारो से अलकृत हो, सजे हुये श्रेष्ठ हाथी के कन्धे पर चढ, बहुत से अनुयाइयो के साथ पूर्व-द्वार की दान-शाला मे पहुँचा। वहाँ उतर, सात-आठ जनो को अपने हाथ से भोजन दे, 'इसी तरह से दो' कह, हाथी पर चढ, दक्षिण द्वार को चला गया। ब्राह्मणो को पूर्व-द्वार पर सिपाहियो की अधिकता के कारण मौका न मिला। वे दक्षिण-द्वार पहुंच, राजा को आते देख, द्वार से थोडी ही दूर एक ऊँचे स्थान पर खडे हुये। जब राजा पास आया तो उन्होने हाथ उठाकर राजा की जयजयकार बुलाई। राजा ने वज्र-अकुश से हाथी को रोक उन के पास पहुँच पूछा—ब्राह्मणो, क्या चाहते हो ? ब्राह्मणो ने बोधिसत्व का, गुणानुवाद करते हुये पहली गाथा कही —

तव सद्धञ्च सीलञ्च विदित्वान जनाधिप,
वण्ण अजनवण्णेन कालिङ्गस्मि निमिम्हसे ॥

[हे जनाधिप। तेरी श्रद्धा और शील को जानकर हम कलिङ्ग-देश मे अञ्जन वर्ण नाग का सोने से विनिमय करे।]

भावार्थ है—हे जनाधिप ! हम तेरा शील और श्रद्धा जान यह सोच कर यहाँ आये है कि इस प्रकार का श्रद्धावान् तथा शीलवान् राजा मागने पर अञ्जनवर्ण हाथी को दे देगा। फिर हम उस तेरे हाथी को अपने हाथी की तरह कलिङ्ग राजा के पास ले जायेंगे और उसका बहुत धन धान्य से विनिमय करेंगे तथा उस धन-धान्य को पेट मे डालेगे। इस प्रकार सोच कर हे देव ! हम यहा आये है। अब जो करना है सो हे देव ! आप जानें।

दूसरा अर्थ—आपका श्रद्धा-शील वर्ण है, गुण है—मागने पर पशु का तो क्या कहना, राजा जीवन भी दे दे—सुन कर कलिङ्ग-राज के पास यह अञ्जन वर्ण नाग ले जाकर धन से विनिमय करेंगे, सोच यहाँ आये है।

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा— हे ब्राह्मणो, यदि इस नाग का विनिमय कर धन का भोग किया तो वह सुभोग है। मत सोच करो। मैं जैसा

अलकृत नाग है वैसा ही दूंगा। इस प्रकार आश्वासित कर शेष दो गाथायें कही —

अन्नभच्चा च शच्चा च योध उद्दिस्स गच्छति,

सब्बे ते अप्पटिक्खिप्पा पुब्बाचरियवचो इद ॥

[अन्न-भृत्य तथा भृत्य कोई भी हो जो भी (माँगने के) उद्देश्य से जाते हैं, वे सभी इन्कार न करने योग्य है। यह (हमारे) पूर्व आचार्यों का वचन है।]

ददामि वो ब्राह्मणा नागमेत
राजारहं राजभोग्ग यसस्सिन,
अलकृत हेमजालाभिछन्न
ससारथि गच्छथ येन काम ॥

[हे ब्राह्मणो! मै तुम्हे यह राजाओ के योग्य, राज-परिभोग्य, यशस्वी, अलकृत तथा स्वर्ण जाली से ढका हुआ हाथी देता हूँ। इसका सारथी भी इसके साथ है। जहाँ चाहो (ले) जाओ।]

इस प्रकार हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे बोधिसत्व ने वाणी से दान दे दिया। फिर नीचे उतर कर 'यदि कही हाथी अनलकृत रह गया हो तो उस स्थान को भी अलकृत करके दूंगा' सोच तीन बार हाथी की प्रदक्षिणा करके देखा। अनलकृत स्थान नही दिखाई दिया। तब उसने हाथी की सूण्ड को ब्राह्मणो के हाथ मे दे, स्वर्ण की झारी से सुगन्धित जल गिरा, हाथी दे दिया। ब्राह्मणो ने अनुयाइयो सहित हाथी को स्वीकार कर, हाथी की पीठ पर बैठ, दन्तपुर-नगर पहुँच, हाथी राजा को दिया। हाथी के आने पर भी वर्षा नही हुई। राजा ने पूछा—अब क्या कारण है?

"कुरु-राज धनञ्जय कुरु-धर्म पालता है। इसलिये उसके राष्ट्र मे पन्द्रहवें दिन, दसवे दिन वर्षा होती है। यह राजा के ही गुणो का प्रताप है। इस पशु मे गुण होने पर भी आखिर कितने गुण हो सकते है?'

"तो अनुयाइयो सहित इस सजे-सजाये हाथी को वापिस ले जाकर राजा को दो, वह जिस कुरुधर्म का पालन करता है, वह सोने की तख्ती पर लिखवा कर लाओ" कह ब्राह्मणो और अमात्यो को भेजा। उन्होने जाकर राजा को हाथी सौप कर निवेदन किया—देव! इस हाथी के जाने पर भी

हमारे देश मे वर्षा नही हुई। आप कुरुधर्म का पालन करते है। हमारा राजा भी कुरुधर्म का पालन करना चाहता है। उसने हमे भेजा है कि इस सोने की तख्ती पर कुरुधर्म लिखवा कर ले आओ। हमे कुरुधर्म दें।

"तात! मैंने सचमुच कुरुधर्म का पालन किया है। लेकिन अब मेरे मन मे उसके बारे मे अनुताप है। इस समय कुरुधर्म मेरे चित्त को प्रसन्नता नही देता है। इसलिये तुम्हे नही दे सकता हूँ।"

राजा का शील उसके चित्त को प्रसन्नता क्यो नही देता था? उस समय प्रति तीसरे वर्ष कार्तिक मास मे कार्तिकोत्सव नाम का उत्सव होता था। उस उत्सव को मनाते हुये राजागण सब अलङ्कारो से सज, देवताओ का भेस बना, चित्र-राज नामक यक्ष के पास खड़े हो, चारो ओर फूलो से सजे हुये चित्रित-बाण फेंकते थे। इस राजा ने भी वह उत्सव मनाते समय एक तालाब के किनारे के चित्रराज के पास खड़े होकर चारो ओर चित्रित बाण फेंके। शेष तीन ओर फेंके बाण दिखाई दिये। तालाब के तल पर फेंका बाण न दिखाई दिया। राजा के मन मे अनुताप हुआ कि कही मेरा फेंका बाण मछली के शरीर मे तो नही चला गया? प्राणी की हिंसा होने से शील-भेद हो गया। इसलिये शील (मन को) प्रसन्न नही करता था।

उसने कहा—तात! मुझे कुरुधर्म के बारे मे अनुताप है। लेकिन मेरी माता ने उसे अच्छी तरह पालन किया है। उससे ग्रहण करो।

"महाराज! मैं जीवहिंसा करूँगा, यह आपकी चेतना नही थी। बिना चित्त के जीवहिंसा नही होती। आपने जिस कुरुधर्म का पालन किया है, वह हमे दे।"

"तो लिखो" कह सोने की तख्ती पर लिखवाया—जीवहिंसा नही करनी चाहिये। चोरी नही करनी चाहिये। कामभोग सम्बन्धी मिथ्या-चार नही करना चाहिये। झूठ नही बोलना चाहिये। मद्यपान नही करना चाहिये।

लिखा कर भी कहा कि ऐसा होने पर भी मेरा चित्त सतुष्ट नही है, मेरी माता के पास से ग्रहण करो। दूतो ने राजा को प्रणाम कर उनकी माता के पास जाकर कहा—देवी! आप कुरुधर्म की रक्षा करती है। उसका उपदेश हमे दें।

"तात ! मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करती हूँ, लेकिन अब मेरे मन मे उसके बारे मे अनुताप है। मुझे वह धर्म प्रसन्न नही करता, इसलिए तुम्हे नही दे सकती।"

उसके दो पुत्र थे, ज्येष्ठ पुत्र राजा था, कनिष्ठ उपराजा। एक राजा ने बोधिसत्व के पास लाख के मूल्य का चन्दनसार और हजार के मूल्य की सोने की माला भेजी। उसने 'माता की पूजा करूँगा' सोच वह सब माता को दे दी। माँ ने सोचा, न मैं चन्दन का लेप करती हूँ, न माला पहनती हूँ, मैं ये अपनी पतोहू को दूँगी। फिर उसे ख्याल हुआ कि उसकी ज्येष्ठ-पतोहू ऐश्वर्य्यवान् है, पटरानी है, इसलिए उसे सोने की माला देगी और कनिष्ठ पतोहू दरिद्र है, इसलिये उसे चन्दनसार देगी। उसने राजा की रानी को सोने की माला दे उपराज की भार्य्या को चन्दनसार दिया। लेकिन दे चुकने पर उसे ख्याल आया—मैं तो कुरुधर्म का पालन करनेवाली हूँ। इन दोनो मे कौन दरिद्र है, कौन अदरिद्र, इससे मुझे क्या ? मुझे तो जो बडी हो उसी का अधिक आदर करना योग्य है। कही उसके न करने के कारण मेरा शील भग तो नही हो गया ? उसके मन मे इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हुआ। इसीलिए ऐसा कहा।

दूतो ने उत्तर दिया—अपनी वस्तु यथारुचि दी जाती है। तुम ऐसी बात मे भी सन्देह करती हो, तो तुमसे दूसरा क्या पाप-कर्म हो सकता है ? शील इस तरह भग नही होता। हमे कुरु-धर्म दे। उस से भी कुरुधर्म ले सोने की तख्ती पर लिखा।

"तात ! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। मेरी पतोहू कुरु-धर्म का पालन अच्छी तरह करती है। उससे कुरुधर्म ग्रहण करें।"

उन्होने पटरानी के पास जा पूर्वोक्त ढग से कुरुधर्म की याचना की। उसने भी पूर्वोक्त ही की तरह कहा—अब मेरा शील मुझे प्रसन्न नही करता। इसलिये नही दे सकती।

उसने एक दिन झरोखे मे बैठे-बैठे राजा के नगर की प्रदक्षिणा करते समय हाथी की पीठ पर उसके पीछे बैठे हुए उपराज को देख लोभाय-मान हो सोचा—यदि मैं इसके साथ सहवास करूँ तो भाई के मरने पर राज्य पर प्रतिष्ठित हो यह मेरी खातिर करेगा। तब उसे ध्यान आया—

मैंने कुरुधर्म का पालन करने वाली होकर स्वामी के रहते, दूसरे पुरुष की ओर बुरी दृष्टि से देखा। मेरा शील भग हो गया होगा। उसके मन मे यह सन्देह पैदा हुआ। इसलिये उसने ऐसा कहा।

दूतो ने उत्तर दिया—आर्य्ये ! चित्त मे ख्याल आने मात्र से दुराचार नही होता। तुम ऐसी बात मे भी सन्देह करती हो तो तुमसे उल्लघन कैसे हो सकता है ? इतने से शील भग नही होता। हमे कुरुधर्म दे।

उससे भी कुरुधर्म गहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"तात ! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। उपराज अच्छी तरह पालन करता है। उससे गहण करे।"

उन्होने उपराज के पास जा पूर्वोक्त प्रकार ही कुरुधर्म की याचना की।

वह सन्ध्या समय राजा की सेवा मे जाता हुआ, रथ पर ही बैठा, राजाङ्गन मे पहुँच, यदि राजा के पास खाकर वही सो रहना चाहता तो रस्सी और चाबुक को धुरी के अदर रख देता था। उस इशारे से आदमी लौट कर अगले दिन प्रात काल ही उसके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करते हुए खडे रहते। यदि उसी समय लौटने की इच्छा होती तो रस्सी और चाबुक को रथ मे ही छोड कर राजा से भेंट करने जाता। आदमी उससे यह समझ कर कि अभी लौटेगा राजद्वार पर ही खडे रहते । वह एक दिन ऐसा करके राजमहल मे गया। उसके जाते ही वर्षा होने लगी। राजा ने "वर्षा हो रही है" कह उसे लौटने नही दिया। वह वही खाकर सो गया। लोग 'अब निकलेगा' सोच प्रतीक्षा करते हुए सारी रात भीगते खडे रहे। उपराज ने दूसरे दिन निकल जब लोगो को भीगे खडे देखा तो वह सोचने लगा—मैं तो कुरुधर्म का पालन करता हूँ और मैंने इतने लोगो को कष्ट दिया। मेरा शील भग हो गया होगा। इसी सन्देह के कारण उसने दूतो को कहा—मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करता हूँ। लेकिन इस समय मेरे मन मे सन्देह पैदा हो गया है। इसलिये मैं कुरुधर्म (का उपदेश) नही दे सकता।

"देव ! इन लोगो को कष्ट हो, यह तुम्हारी मसा नही रही है। बिना इरादे के कर्म नही होता। इतनी-सी बात मे भी जब आप सन्देह करते है, तो आपसे उल्लघन कैसे हो सकता है ?"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर उन्हे सोने की पट्टी पर लिख लिया।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। पुरोहित अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होने पुरोहित से जाकर याचना की। वह भी एक दिन राजा की सेवा मे जा रहा था। उसने रास्ते मे देखा कि एक राजा ने उसके राजा के पास मध्याह्न सूर्य्य की तरह लाल वर्ण का रथ भेजा है। "यह रथ किस का है?" पूछने पर उत्तर मिला, "राजा के लिये लाया गया है।" पुरोहित के मन मे विचार पैदा हुआ—मै बूढा हूँ। यदि राजा यह रथ मुझे दे दे तो मैं इस पर चढ कर सुखपूर्वक घूमूँ। यह सोच, वह राजा की सेवा मे पहुँचा। उसके राजा की जय बुला कर खडे होने के समय वह रथ राजा के सामने लाया गया। राजा ने देख कर कहा—यह रथ बहुत सुन्दर है। इसे आचार्य्य को दे दो। पुरोहित ने लेना स्वीकार नही किया। बार-बार कहने पर भी अस्वीकार ही किया। ऐसा क्यो हुआ? वह सोचने लगा—मैं कुरुधर्म का पालन करने वाला हूँ। मैंने दूसरे की वस्तु के प्रति लोभ पैदा किया। मेरा शील भग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—तात! कुरुधर्म के प्रति मेरे मन मे सन्देह है। मेरा मन उससे प्रसन्न नही है। इसलिये मैं नही दे सकता हूँ।

"आर्य्य! केवल (मन मे) लोभ उत्पन्न होने मात्र से शील भग नहीं होता। आप इतनी सी बात मे भी सन्देह करते है। आपसे क्या उल्लघन हो सकेगा?"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। रस्सी पकडने वाला अमात्य अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उसके पास भी पहुँच याचना की। वह भी एक दिन जनपद मे खेत की गिनती कर रहा था। डण्डे मे बँधी हुई रस्सी का एक सिरा खेत के मालिक के पास था, एक उसके पास। जिस सिरे को उसने पकड रखा था उस सिरे की रस्सी से बँधा हुआ डडा एक केकडे के बिल पर आ पहुँचा। वह सोचने लगा—यदि डडे को बिल मे उतारूँगा, तो बिल के अन्दर का केकडा मर जायगा। यदि डडे को आगे को सरका दूँगा तो राजा का हक

मैंने कुरुधर्म का पालन करने वाली होकर स्वामी के रहते, दूसरे पुरुष की ओर बुरी दृष्टि से देखा। मेरा शील भग हो गया होगा। उसके मन मे यह सन्देह पैदा हुआ। इसलिये उसने ऐसा कहा।

दूतो ने उत्तर दिया—आर्य्य! चित्त मे ख्याल आने मात्र से दुराचार नही होता। तुम ऐसी बात मे भी सन्देह करती हो तो तुममे उल्लघन कैसे हो सकता है? इतने से शील भग नही होता। हमे कुरुधर्म दें।

उससे भी कुरुधर्म ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"तात! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। उपराज अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करे।"

उन्होने उपराज के पास जा पूर्वोक्त प्रकार ही कुरुधर्म की याचना की।

वह सन्ध्या समय राजा की सेवा मे जाता हुआ, रथ पर ही बैठा, राजाङ्गन मे पहुँच, यदि राजा के पास खाकर वही सो रहना चाहता तो रस्सी और चाबुक को धुरी के अदर रख देता था। उस इशारे से आदमी लौट कर अगले दिन प्रात काल ही उसके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करते हुए खडे रहते। यदि उसी समय लौटने की इच्छा होती तो रस्सी और चाबुक को रथ मे ही छोड कर राजा से भेंट करने जाता। आदमी उससे यह समझ कर कि अभी लौटेगा राजद्वार पर ही खडे रहते। वह एक दिन ऐसा करके राजमहल मे गया। उसके जाते ही वर्षा होने लगी। राजा ने "वर्षा हो रही है" कह उसे लौटने नही दिया। वह वहीं खाकर सो गया। लोग 'अब निकलेगा' सोच प्रतीक्षा करते हुए सारी रात भीगते खडे रहे। उपराज ने दूसरे दिन निकल जब लोगो को भीगे खडे देखा तो वह सोचने लगा—मै तो कुरुधर्म का पालन करता हूँ और मैंने इतने लोगो को कष्ट दिया। मेरा शील भग हो गया होगा। इसी सन्देह के कारण उसने दूतो को कहा—मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करता हूँ। लेकिन इस समय मेरे मन मे सन्देह पैदा हो गया है। इसलिये मैं कुरुधर्म (का उपदेश) नही दे सकता।

"देव! इन लोगो को कष्ट हो, यह तुम्हारी मसा नही रही है। बिना इरादे के कर्म नही होता। इतनी-सी बात मे भी जब आप सन्देह करते है तो आपसे उल्लघन कैसे हो सकता है?"

दूतों ने उसमे भी शील ग्रहण कर उन्हे सोने की पट्टी पर लिख लिया।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। पुरोहित अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने पुरोहित से जाकर याचना की। वह भी एक दिन राजा की सेवा मे जा रहा था। उसने रास्ते मे देखा कि एक राजा ने उनके राजा के पास मध्याह्न सूर्य्य की तरह लाल वर्ण का रथ भेजा है। "यह रथ किस का है?" पूछने पर उत्तर मिला, "राजा के लिये लाया गया है।" पुरोहित के मन मे विचार पैदा हुआ—मैं बूढा हूँ। यदि राजा यह रथ मुझे दे दे तो मैं इस पर चढ कर सुखपूर्वक घूमूँ। यह सोच, वह राजा की सेवा मे पहुँचा। उसके राजा की जय बुला कर खडे होने के समय वह रथ राजा के सामने लाया गया। राजा ने देख कर कहा—यह रथ बहुत सुन्दर है। इसे आचार्य्य को दे दो। पुरोहित ने लेना स्वीकार नहीं किया। बार-बार कहने पर भी अस्वीकार ही किया। ऐसा क्यो हुआ? वह सोचने लगा—मैं कुरुधर्म का पालन करने वाला हूँ। मैंने दूसरे की वस्तु के प्रति लोभ पैदा किया। मेरा शील भग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—तात! कुरुधर्म के प्रति मेरे मन मे सन्देह है। मेरा मन उससे प्रसन्न नही है। इसलिये मैं नही दे सकता हूँ।

"आर्य्य! केवल (मन मे) लोभ उत्पन्न होने मात्र से शील भग नही होता। आप इतनी सी बात मे भी सन्देह करते है। आपसे क्या उल्लघन हो सकेगा?"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। रस्सी पकडने वाला अमात्य अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उसके पास भी पहुँच याचना की। वह भी एक दिन जनपद मे खेत की गिनती कर रहा था। डण्डे मे बँधी हुई रस्सी का एक सिरा खेत के मालिक के पास था, एक उसके पास। जिस सिरे को उसने पकड रखा था उस सिरे की रस्सी से बँधा हुआ डडा एक केकडे के बिल पर आ पहुँचा। वह सोचने लगा—यदि डडे को बिल मे उतारूँगा, तो बिल के अन्दर का केकडा मर जायगा। यदि डडे को आगे को सरका दूंगा तो राजा का हक़

मारा जायगा। यदि पीछे की ओर करूँगा तो गृहस्थ का हक मारा जायगा। क्या किया जाय ? तब उसे सूझा—यदि बिल मे केकडा होगा तो प्रकट होगा। डडे को बिल मे ही उतारूँगा। उसने डडा बिल मे उतार दिया। केकडे ने 'किरी' आवाज की। तक उसे चिन्ता हुई—डडा केकडे की पीठ मे घुस गया होगा और केकडा मर गया होगा। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। मेरा शील भग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण कुरुधर्म के प्रति मेरे मन मे सन्देह है। इसलिये तुम्हे नही दे सकता हूँ।

"आपकी यह मसा नही थी कि केकडा मरे। बिना इरादे का कर्म नही होता। इतनी बात मे भी आप सन्देह करते हैं। आपसे कैसे उल्लघन हो सकता है ?"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिख लिये।

"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नही है। सारथी अच्छी तरह रक्षा करता है। उससे भी ग्रहण करें।"

उन्होने उसके पास भी पहुँच याचना की। वह एक दिन राजा को रथ से उद्यान ले गया। राजा वहाँ दिन भर क्रीडा कर शाम को निकल कर रथ पर चढा। नगर मे पहुँचने से पहले ही सूर्य्यास्त के समय बादल घिर आये। सारथी ने राजा के भीगने के डर से घोडो को चाबुक दिखाया। सिन्धव घोडे तेजी से दौडे। तब से घोडे उद्यान जाते और लौटते समय भी उस स्थान पर पहुँच, तेजी से दौडने लगते। क्यो ? उनको ख्याल हो गया कि इस स्थान पर खतरा होगा, इसलिये सारथी ने हमे इस स्थान पर चाबुक दिखाया था। सारथी को भी चिन्ता हुई—राजा के भीगने वा न भीगने से मुझ पर दोष नही आता। लेकिन मैंने सुशिक्षित सिन्धव घोडो को चाबुक दिखाने की गलती की। इसलिये अब यह आते-जाते भागने का कष्ट उठाते हैं। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह मेरा भग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन मे कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नही दे सकता।

"आप की यह मसा नही थी कि सिन्धव घोडे कष्ट पायें। बिना इरादे के कर्म नही होता। इतनी बात मे भी आप मन-मैला करते है। आपसे कैसे उल्लघन हो सकेगा।"

दूतो ने उससे शील ग्रहण कर उन्हे सोने की पट्टी पर लिख लिया।

"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नही है। सेठ अच्छी तरह रक्षा करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने सेठ के पास भी पहुँच कर याचना की। वह भी एक दिन जब धान की वल्ली निकल आई थी, अपने धान के खेत मे पहुँचा। देखकर उसने सोचा कि धान को बँधवाऊँगा और धान की एक मुट्ठी पकडवा कर खम्भे से बधवा दी। तब उसे ध्यान आया—इस खेत मे से मुझे राजा का हिस्सा देना है। बिना राजा का हिस्सा दिये गये खेत मे से ही, मैंने धान की मुट्ठी लिवाई। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन मे कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नही दे सकता हूँ।

"आपकी चोरी की नीयत नही थी। बिना उसके चोरी का दोप नही घोषित किया जा सकता। इतनी-सी बात मे भी सन्देह करने वाले आप किसी की क्या चीज ले सकेंगे?"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। दोणमापक महामात्य अच्छी तरह पालता है। उससे ग्रहण करें।

उन्होने उसके पास भी पहुँच कर याचना की। वह एक दिन कोठी के द्वार पर बैठा राजा के हिस्से के धान की गिनती करा रहा था। बिना मापे गये धान के ढेर मे से धान लेकर उसने चिह्न रख दिया। उस समय वर्षा आ गई। महामात्य ने चिह्न को गिन कर "मापे गये धान इतने हुए" कह, चिह्न के धान बटोर, मापे गये धान मे डाल दिये। फिर जल्दी से कोठी के द्वार पर पहुँच, खडा हो सोचने लगा—क्या मैंने चिह्न के धान, मापे गये खेत मे फेंके वा बिना मापे गये ढेर मे? यदि मापे गये ढेर मे तो मैंने अकारण ही राजा के हिस्से को बढा दिया और किसानो के हिस्से की हानि की। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भग हो गया होगा। उसने यह बात सुना कर कहा—इस कारण मेरे मन मे कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नही दे सकता हूँ।

"आपकी चोरी की नीयत नही थी। बिना उसके चोरी का दोष घोषित नही किया जा सकता। इतनी-सी बात मे भी सन्देह करने वाले आप किसी की क्या चीज ले सकेंगे।"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखे।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। द्वार-पाल अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होने उसके पास भी पहुँच कर याचना की। उसने भी एक दिन नगर-द्वार बन्द करने के समय तीन बार घोषणा की थी। एक दरिद्र मनुष्य अपनी छोटी बहिन के साथ लकडी-पत्ते लेने के लिये जगल गया था। लौटते समय उसकी आवाज सुनकर बहन को ले शीघ्रता से अन्दर आया। द्वार-पाल बोला—तू नही जानता कि नगर मे राजा है? तू नही जानता कि समय रहते ही इस नगर का द्वार बन्द हो जाता है। अपनी स्त्री को ले जगल मे रति-क्रीडा करता घूमता है। उसने उत्तर दिया—स्वामी! यह मेरी भार्य्या नही है। यह मेरी बहिन है। तब द्वार-पाल चिन्तित हुआ—मैंने बहिन को भार्य्या बना दिया। यह मुझसे अनुचित हुआ। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह मेरा भग हो गया होगा। यह बात सुनाकर उसने कहा—इस बात से मेरे मन मे कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। इसलिये नही दे सकता हूँ।

"आपने जैसा समझा, वैसा कहा। इससे शील भग नही होता। इतनी बात के लिये भी आप अनुताप करते है तो आप कुरुधर्म का पालन करते हुए जान-बूझ कर झूठ क्या बोलेंगे?"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नही है। कुरुधर्म का वेश्या अच्छी तरह पालन करती है। उससे ग्रहण करें।"

उससे भी याचना की। वेश्या ने भी पूर्वोक्त प्रकार से ही मना किया। क्यो? देवेन्द्र शक्र उसके सदाचार की परीक्षा लेने के लिये तरुण का भेस धारण कर आया, और यह कह कर कि मैं आऊँगा एक सहस्र देकर देव-लोक को ही चला गया। वह तीन वर्ष तक नही लौटा। उसने अपने शील के भग होने के डर से तीन वर्ष तक किसी दूसरे आदमी से पान तक भी नही

ग्रहण किया। क्रमश जब वह अति-दरिद्र हो गई, तब सोचने लगी—मुझे सहस्र देकर गया आदमी तीन वर्ष तक नही आया। मैं दरिद्र हो गई हूँ। जीवन-यापन नही कर सकती हूँ। अब मुझे न्यायाधीश अमात्य के पास जाकर खर्चा लेना चाहिये। उसने न्यायालय मे जाकर निवेदन किया—स्वामी! जो आदमी मुझे खर्चा देकर गया, वह तीन वर्ष से नही लौटा। यह भी नही जानती कि वह जीता है या मर गया? मैं अब जीवन-यापन नही कर सकती हूँ। क्या करूँ?

तीन वर्ष तक भी नही आया, तो क्या करेगी? अब से खर्च लिया कर।

उसके फैसला सुन कर न्यायालय से निकलते ही एक आदमी एक सहस्र की थैली लाया। उसे लेने के लिये हाथ पसारने ही के समय इन्द्र प्रकट हुआ। उसने देखते ही हाथ खीच लिया और बोली—मुझे तीन साल पहले हजार देने वाला आदमी आ गया। मुझे तेरे कार्षापणो की जरूरत नही है।

शक्र अपना ही रूप धारण कर मध्याह्न सूर्य्य की तरह चमकता हुआ आकाश मे खडा हुआ। सारा नगर इकट्ठा हो गया। तब शक्र ने जनता को सम्बोधन कर कहा—मैंने इसकी परीक्षा लेने के लिये तीन वर्ष हुए इसे हजार दिये थे। शील की रक्षा करनी हो तो इस की तरह रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार उपदेश दे, उसके घर को सातो रत्नो से भर, शक्र 'अब से अप्रमादी होकर रहना' कह देवलोक को चला गया। इस कारण उसने मना किया कि मैंने लिये खर्चे को बिना भुगताये दूसरे से प्राप्त होने वाले खर्चे के लिये हाथ पसारा। इससे मेरा शील मुझे प्रसन्न नही करता। इसी से तुम्हे नही दे सकती।

"हाथ पसारने मात्र से शील भग नही होता। आपका शील परम परिशुद्ध शील है।"

दूतो ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखे।

इस प्रकार इन ग्यारह जनो द्वारा पालन किया गया शील सोने की पट्टी पर लिख, दन्तपुर पहुँच, कलिङ्ग नरेश को सोने की पट्टी दे, सब हाल सुनाया। राजा ने उस कुरुधर्म मे स्थित हो पाँच शीलो को पूर्ण किया। उस समय सारे कलिङ्ग राष्ट्र मे वर्षा हुई। तीनो भय शान्त हो गये। राष्ट्र का कल्याण हो गया। पैदावार खूब हुई।

बोधिसत्व जीवन पर्य्यन्त दान आदि पुण्य करने अनुयायियो सहित स्वर्ग-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे कोई स्रोतापन्न हुये, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए तथा कोई अर्हत हुए। जातक के मेल के बारे मे—

गणिका उप्पलवण्णा च पुण्णो दोवारिको तदा,
रज्जुगाहो च कच्चानो दोणमाता च कोलितो॥
सारिपुत्तो तदासेट्ठि अनुरुद्धो च सारथी,
ब्राह्मणो कस्सपो थेरो उपराजा नन्द पण्डितो॥
महेसी राहुलमाता मायादेवी जनेत्तिया,
कुरुराजा बोधिसत्तो एवं धारेथ जातकं॥

[उस समय की वेश्या उत्पलवर्णा थी, द्वारपाल पुण्ण था। रज्जु पकड़ने वाला कच्चान था, दोण मापने वाला कोलित था। सेठ सारिपुत्र था। सारथी अनुरुद्ध था। ब्राह्मण कस्सप स्थविर थे। उपराजा नन्द-पण्डित थे। पटरानी राहुल-माता थी और जननी मायादेवी थी। कुरुराजा स्वय बोधिसत्व थे। इस प्रकार जातक को समझें।]

२७७. रोमक जातक

"वस्सानि पञ्ञास" यह शास्ता ने वेळु वन मे विहार करते समय बध करने के प्रयत्न के बारे मे कही। वर्तमान कथा प्रकट ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व-कबूतर होकर पैदा हुये। वह बहुत से कबूतरो के साथ जगल मे पर्वत-गुफा मे

रहते थे। एक सदाचारी तपस्वी भी उन कबूतरो के निवासस्थान के आसपास ही एक प्रत्यन्त-ग्राम के समीप आश्रम बना पर्वत-गुफा मे रहता था। बोधिसत्व बीच-बीच मे उसके पास आकर सुनने योग्य सुनते थे। तपस्वी वहाँ चिरकाल तक रहकर चला गया।

एक कुटिल जटाधारी आकर वहाँ रहने लगा। बोधिसत्व भी कबूतरो के साथ उसके पास प्रणाम कर, कुशलक्षेम पूछ, आश्रम के आसपास घूम, पर्वत-कन्दरा के समीप चुगकर, शाम को अपने निवासस्थान जाते। कुटिल जटाधारी वहाँ पचास वर्ष से अधिक रहा। एक दिन प्रत्यन्त-ग्रामवासियो ने कबूतर का मास पकाकर दिया। उसने रस-लोभ से पूछा—यह किसका मास है? "कबूतर का मास।" उसने सोचा मेरे आश्रम पर बहुत से कबूतर आते हैं। उन्हे मारकर मास खाना चाहिये। उसने चावल, घी, दही, जीरा और मिर्च आदि मगवा कर एक ओर रखा। फिर एक मोगरी को कपडे से ढक, कबूतरो की प्रतीक्षा करता हुआ पर्णकुटी के द्वार पर बैठा।

बोधिसत्व ने कबूतरो के साथ आ, उस कुटिल जटाधारी की दुष्ट करनी देख सोचा—यह दुष्ट तपस्वी कुछ दूसरे ढग से बैठा है। कही इसने हमारी जाति के किसी का मास तो नही खाया है? मैं इसकी परीक्षा करूँगा। उसने जिधर से वायु चल रही थी उसके अनुसार खडे हो उस (तपस्वी) की शरीर-गध सूँघ कर जाना कि यह हमे मारकर मास खाना चाहता है। इसके समीप नही जाना चाहिए। वह कबूतरो को ले वापिस लौटकर चुगने लगा। तपस्वी ने उसे न आता देख सोचा—उनसे मधुर बातचीत कर, विश्वस्त हो जाने पर, मारकर खाना चाहिए। उसने पहली दो गाथायें कही —

वस्सानि पञ्ञास समाधिकानि
वसिम्ह सेलस्स गुहाय रोमक,
असङ्कमाना अभिनिब्बुतत्ता
हत्थत्तमायन्ति ममण्डजा पुरे ॥
तेदानि वक्कङ्ग किमत्थमुस्सुका
वजन्ति अञ्ञ गिरिकन्दर दिजा,
न नून मञ्ञन्ति ममं यथापुरे
चिरप्पवुत्था अथवा न ते इमे ॥

बोधिसत्व जीवन पर्य्यन्त दान आदि पुण्य करने अनुयायियो सहित स्वर्ग-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे कोई स्रोतापन्न हुये, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए तथा कोई अर्हत हुए। जातक के मेल के बारे मे—

गणिका उप्पलवण्णा च पुण्णो दोवारिको तदा,
रज्जुगाहो च कच्चानो दोणमाता च कोलितो॥
सारिपुत्तो तदासेट्ठि अनुरुद्धो च सारथी,
ब्राह्मणो कस्सपो थेरो उपराजा नन्द पण्डितो॥
महेसी राहुलमाता मायादेवी जनेत्तिया,
कुरुराजा बोधिसत्तो एवं धारेथ जातकं॥

[उस समय की वेश्या उत्पलवर्णा थी, द्वारपाल पुण्ण था। रज्जु पकड़ने वाला कच्चान था, दोण मापने वाला कोलित था। सेठ सारिपुत्र था। सारथी अनुरुद्ध था। ब्राह्मण कस्सप स्थविर थे। उपराजा नन्द-पण्डित थे। पटरानी राहुल-माता थी और जननी मायादेवी थी। कुरुराजा स्वय बोधिसत्व थे। इस प्रकार जातक को समझें।]

२७७. रोमक जातक

"वस्सानि पञ्ञास" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय बध करने के प्रयत्न के बारे मे कही। वर्तमान कथा प्रकट ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर पैदा हुये। वह बहुत से कबूतरो के साथ जगल मे पर्वत-गुफा मे

रहते थे। एक सदाचारी तपस्वी भी उन कबूतरो के निवासस्थान के आसपास ही एक प्रत्यन्त-ग्राम के समीप आश्रम बना पर्वत-गुफा मे रहता था। बोधिसत्व बीच-बीच मे उसके पास आकर सुनने योग्य सुनते थे। तपस्वी वहाँ चिरकाल तक रहकर चला गया।

एक कुटिल जटाधारी आकर वहाँ रहने लगा। बोधिसत्व भी कबूतरो के साथ उसके पास प्रणाम कर, कुशलक्षेम पूछ, आश्रम के आसपास घूम, पर्वत-कन्दरा के समीप चुगकर, शाम को अपने निवासस्थान जाते। कुटिल जटाधारी वहाँ पचास वर्ष से अधिक रहा। एक दिन प्रत्यन्त-ग्रामवासियो ने कबूतर का मास पकाकर दिया। उसने रस-लोभ से पूछा—यह किसका मास है? "कबूतर का मास।" उसने सोचा मेरे आश्रम पर बहुत से कबूतर आते हैं। उन्हे मारकर मास खाना चाहिये। उसने चावल, घी, दही, जीरा और मिर्च आदि मगवा कर एक ओर रखा। फिर एक मोगरी को कपडे से ढक, कबूतरो की प्रतीक्षा करता हुआ पर्णकुटी के द्वार पर बैठा।

बोधिसत्व ने कबूतरो के साथ आ, उस कुटिल जटाधारी की दुष्ट करनी देख सोचा—यह दुष्ट तपस्वी कुछ दूसरे ढग से बैठा है। कही इसने हमारी जाति के किसी का मास तो नही खाया है? मैं इसकी परीक्षा करूँगा। उसने जिधर से वायु चल रही थी उसके अनुसार खडे हो उस (तपस्वी) की शरीर-गध सूँघ कर जाना कि यह हमे मारकर मास खाना चाहता है। इसके समीप नही जाना चाहिए। वह कबूतरो को ले वापिस लौटकर चुगने लगा। तपस्वी ने उसे न आता देख सोचा—उनसे मधुर बातचीत कर, विश्वस्त हो आने पर, मारकर खाना चाहिए। उसने पहली दो गाथायें कही —

वस्सानि पञ्ञास समाधिकानि
वसिम्ह सेलस्स गुहाय रोमक,
असङ्कमाना अभिनिब्बुतत्ता
हत्थत्तमायन्ति ममण्डजा पुरे॥
तेदानि वक्कङ्ग किमत्थमुस्सुका
वजन्ति अञ्ञ गिरिकन्दर दिजा,
न नून मञ्ञन्ति ममं यथापुरे
चिरप्पवुत्था अथवा न ते इमे॥

[हे रोमक! हम पचास वर्ष से भी अधिक पर्वत-गुफा मे रहे। पहले ये पक्षी निश्शङ्क होकर शान्त-भाव से मेरे हाथ मे आ जाते थे। हे वङ्कङ्ग! क्या कारण कि वही पक्षी अब शङ्कित होकर दूसरी गिरि-कन्दरा को जाते है। वह मुझे जैसे पहले मानते थे, वैसे नही मानते है। क्या यह चिरकाल तक प्रवासी रहे हे? वा ये वे पक्षी ही नही हैं?]

यह सुन बोधिसत्व ने लौट कर खडे ही खडे तीसरी गाथा कही —

जानाम त न मयमस्म मूळ्हा
सोयेव त्व ते मयमस्म नाञ्ञे,
चित्तञ्च ते अस्मि जने पदुट्ठ
आजीवक तेन तं उत्तसाम॥

[हम मूढ नही है। हम तुझे पहचानते है। तू वही है। और हम भी दूसरे नही है। लेकिन तेरा चित्त हमारे प्रति खराब हो गया है। हे आजीवक! इसी कारण से हम तुझ से डरते हैं।]

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि इन्होने मुझे जान लिया है तो मोगरी फेंक कर मारी। मोगरी चूक गई। तब वह बोला—जा। तू बच गया। बोधिसत्व ने कहा—मुझ से तू चूक गया, लेकिन चारो नरको से तू नही चूकेगा। यदि अब यहा रहेगा तो ग्राम-वासियो को यह कहकर कि यह चोर है तुझे पकडवा दूगा। शीघ्र भाग जा? उसे डराकर भगा दिया। जटाधारी वहा नही रह सका।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी देवदत्त था। पहला सदाचारी तपस्वी सारि-पुत्र था। कबूतरो मे ज्येष्ठ तो मैं ही था।

२७८. महिस जातक

"कमत्थमभिमन्धाय " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक शरारती बन्दर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे किसी कुल मे एक पालतू, शरारती बन्दर था। वह हथसाल जाकर एक शीलवान् हाथी की पीठ पर मल-मूत्र कर देता और इधर-उधर घूमता। हाथी अपने शील के कारण, शान्त होने के कारण कुछ न करता।

एक दिन उस हाथी के स्थान पर दूसरा दुष्ट हाथी-बच्चा खडा था। बन्दर इसे भी वह ही समझ उसकी पीठ पर चढ गया। उसने उसे सूण्ड से पकड, जमीन पर रख पैर से दबा चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। यह समाचार भिक्षु-सघ मे प्रकट हो गया। एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! शरारती बन्दर दुष्ट हाथी को शीलवान् हाथी समझ उसकी पीठ पर चढ गया। उसने उसे मार डाला। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, इस शरारती बन्दर का केवल अभी यह स्वभाव नही था, पुराने समय से लेकर यही स्वभाव रहा है।"

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय-प्रदेश मे भैसे की योनि मे पैदा हुआ। बडे होने पर शक्ति-शाली तथा महान् शरीर वाला हो, वह पर्वत, पब्भार, गिरि, दुर्ग तथा घने जगलो मे घूमता था। उसे एक सुखद वृक्ष की छाया मिली। चारा चुग कर दिन मे वह उस वृक्ष की छाया मे जा खडा हुआ।

एक शरारती बन्दर ने वृक्ष से उतर, उसकी पीठ पर चढ मल-मूत्र कर दिया । फिर सीग पकड लटकते हुये तथा पूंछ पकड झूलते हुए खेलने लगा । बोधिसत्व ने शान्ति, मैत्री और दया रूपी मम्पत्ति से युक्त होने के कारण उसके अनाचार पर ध्यान नही दिया । बन्दर बार-बार उसी तरह करता था । तब एक दिन उस वृक्ष पर रहने वाले देवता ने वृक्ष के तने पर खडे हो, 'महिषराज ! इस दुष्ट बन्दर का अनाचार क्यो सहन करते हो ? इसे रोको' कहते हुये यह पहली दो गाथाये कही —

कमत्थमभिसन्धाय लहुचित्तस्स दूभिनो,
सब्बकामदुहस्सेव इम दुक्खं तितिक्खसि ॥
सिङ्गेन निहनाहेतं पदसा च अधिट्ठह,
भीयो बाला पकुज्झेय्यु नो चस्स पटिसेधको ॥

[किस कारण इस चचल द्रोही को, सब कामनायें पूरी करने वाले की तरह, इस दु ख को, सहन करते हो ? इसको सीग से मारो और पैर से दबा दो । यदि इसका दमन न किया गया तो और भी मूर्ख कष्ट देंगे ।]

इसे सुन बोधिसत्व ने कहा—वृक्षदेवता ! यदि मैं इससे जाति, गोत्र और बल मे अधिक होकर भी इसके दोष को सहन नही करूँगा तो मेरा मनोरथ कैसे सिद्ध होगा ? लेकिन यह दूसरे को भी मुझ जैसा ही समझ इसी प्रकार अनाचार करेगा । तब यह जिन प्रचण्ड भैसो से बर्ताव करेगा, वे ही इसे मार देंगे । दूसरो द्वारा इसका वह मरण मुझे दु ख से तथा प्राणिहिंसा से बचा लेगा । यह कह तीसरी गाथा कही —

ममेवाय मञ्ञमानो अञ्ञम्पेव करिस्सति,
ते त तत्थ वधिस्सन्ति सा मे मुत्ति भविस्सति ॥

[यह दूसरे को भी मुझ जैसा समझ उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेगा । वे इसे मार देंगे । वह मेरी मुक्ति होगी ।]

कुछ दिन बाद बोधिसत्व अन्यत्र गया । दूसरा प्रचण्ड भैसा वहाँ आकर खडा हो गया । दुष्ट बानर ने उसे भी वही समझ उसकी पीठ पर चढ वैसा ही अनाचार किया ।

उसने उसे हिलाकर भूमि पर गिराया और सीग से छाती चीर पैरो से कुचल कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। उस समय का दुष्ट भैंसा यह अब का दुष्ट हाथी था। दुष्ट बानर यह दुष्ट बानर ही। शीलवान् महिषराज तो मैं ही था।

२७९ सतपत्त जातक

"यथा माणवको पन्थे" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पण्डुक तथा लोहितक के बारे मे कही।

क वर्तमान कथा

छ वर्गीयो मे से दो जने—मेत्तिय और भुम्मजक—राजगृह के पास रहते थे। अस्सजि तथा पुनब्बसुक कीटागिरि के पास रहते थे। और यह दो जने—पण्डुक तथा लोहितक—श्रावस्ती के पास जेतवन मे रहते थे। वे जिस बात का न्याय से निर्णय हो गया रहता उसे फिर-फिर उठाते थे। जो उनके परिचित मित्र होते उनको सहारा देते हुये कहते—आयुष्मानो! तुम न इनसे जाति मे, न गोत्र मे, न शील मे, किसी बात मे कम नही हो। यदि तुम अपना आग्रह छोड दोगे तो ये तुम्हे अच्छी तरह दबा लेंगे। इस प्रकार वे उन्हे अपना आग्रह न छोडने देते। इससे झगडे, कलह-विग्रह तथा विवाद चालू रहते।

भिक्षुओ ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने इस सम्बन्ध मे, इस बारे मे, भिक्षुओ को एकत्र कर, पण्डुक तथा लोहितक को बुलवा पूछा—भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच स्वय भी मुकदमे को बढाते हो और दूसरो को भी अपना आग्रह छोडने नही देते हो?

"भन्ते! सचमुच"

"तो भिक्षुओ, यदि ऐसा है तो तुम्हारी क्रिया सतपत्त माणवक की क्रिया की तरह है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक काशी-ग्राम मे किसी कुल मे पैदा हुये। बड़े होने पर कृषि-वाणिज्य आदि कोई जीविका न कर, उसने पाँच सौ चोरो का सरदार बन, बटमारी तथा सेंध लगाना आदि करते हुए जीविका चलाई।

उस समय वाराणसी के किसी गृहस्थ ने मुफस्सिल के किसी आदमी को एक सहस्र कार्षापण दिये थे। वह उन्हे बिना उगाहे ही मर गया। उसकी भार्य्या भी बीमार होकर मृत्यु-शैय्या पर लेटी। उसने पुत्र को बुलाकर कहा—तात! तेरे पिता ने एक आदमी को हजार दिये थे। वह उन्हे बिना उगाहे ही मर गया! यदि मैं भी मर जाऊँगी तो वह तुझे नही देगा। जा मेरे जीते-जी ही उससे वसूल कर। उसने 'अच्छा' कह, वहाँ पहुँच कार्षापण प्राप्त किये।

उसकी माता मर कर पुत्रस्नेह के कारण उसके आने के मार्ग मे गीदडी होकर प्रकट हुई। उस समय वह चोरो का सरदार मुसाफिरो को लूटता हुआ अपने साथियो सहित उसी रास्ते पर था।

पुत्र के जगल की ओर मुँह करने पर उस गीदडी ने बार-बार रास्ता रोक कर मना किया—तात! जगल मे मत जा। वहाँ चोर है। वह तुझे मार कर कार्षापण छीन लेंगे। उसने वह बात न जानने के कारण 'यह मनहूस गीदडी मेरा रास्ता रोकती है' सोच ढेले और डण्डे से माँ को भगा जगल मे प्रवेश किया। (उसी समय) एक कठफोड पक्षी चोरो के सामने चिल्लाता हुआ फडफडाया—इस आदमी के पास हजार कार्षापण हैं। इसे मारकर वह कार्षापण ले लो। माणवक ने उसकी बात न समझ 'यह मङ्गल-पक्षी है, अब मेरा कल्याण होगा' सोच हाथ जोड कर कहा—बोलें स्वामी! बोलें।

बोधिसत्व सबकी बोली समझते थे! उन दोनो की क्रिया देखकर सोचने लगे—यह गीदडी इसकी मा होगी। इसीलिये वह इस डर से इसे रोकती है कि मारकर कार्षापण छीन लेंगे। यह कठफोडा तो शत्रु होगा। इसीलिये वह कहता है कि इसे मारकर कार्षापण छीन लो। यह इस बात को न समझता हुआ हितचिन्तक माता को डराकर धमकाता है, और अनर्थ चाहने

वाले कठफोडे को हितचिंतक समझ उसके सामने हाथ जोडता है। ओह! यह मूर्ख है। [बोधिसत्व भी, जो कि महापुरुष होते है, जो दूसरो की चीज ले लेते हैं, उसका कारण उनका अयोग्य-जन्मग्रहण है। ऐसा भी कहते हैं कि यह नक्षत्रो के दोष से होता है।[

तरुण चोरो के बीच मे आ पहुँचा। बोधिसत्व ने उसे पकडवाकर पूछा—कहाँ रहने वाला है?

"वाराणसी रहने वाला हूँ।"

"कहाँ गया था?"

"एक गामडे मे से हजार लेना था, वहाँ गया था।"

"क्या तुझे मिला?"

"हाँ, मिला।"

"तुझे किसने भेजा?"

"स्वामी! मेरा पिता मर गया है। और माँ भी रोगिणी है। उसने यह समझ कर कि मेरे मरने पर यह नही पायेगा मुझे भेजा।'

"अब अपनी माँ का हाल जानता है?"

"स्वामी! नही जानता हूँ।"

तेरे (घर से) निकलने पर तेरी माता मर कर पुत्र-स्नेह के कारण शृगाली होकर पैदा हुई। वह तेरे मरने के डर से रास्ता रोक कर तुझे मना करती थी। तूने उसे डरा कर भगा दिया। कठफोडा पक्षी तो तेरा शत्रु है। उसने हमे कहा कि इसे मारकर कार्षापण छीन लो। तू अपनी मूर्खता के कारण हितचिन्तक माता को 'मेरी अहितचिन्तक है' मानता है और अनर्थ चाहने वाले कठफोडे को 'मेरा हित चाहने वाला है' समझता है। उसका तुम पर कुछ उपकार नही है। तेरी माँ बहुत गुणवाली है। 'कार्षापण लेकर जा' कह विदा किया। शास्ता ने यह देशना ला ये गाथायें कही—

यथा माणवको पन्थे सिगालिं वनगोचरिं,
अत्थकामं पवेदेन्तिं अनत्थकामाति मञ्ञति
अनत्थकामं सतपत्तं अत्थकामोति मञ्ञति।
एवमेव इधेकच्चो पुग्गलो होति तादिसो,
हितेहि वचनं वुत्तो पतिगण्हाति वामतो॥

ये च खो नं पसंसन्ति भया उक्कंसयन्ति च,
तं हितो मञ्ञते मित्तं सतपत्त व माणवो ॥

[जिस तरह वन मे घूमने वाली गीदडी को जो हित की बात कहती थी, माणवक अहित चाहने वाली समझता था और अनर्थ चाहने वाले कठ-फोडे को भला चाहने वाला समझता था, इसी प्रकार इस ससार मे कोई-कोई आदमी ऐसा ही होता है जो हितकर बात को उलटा ही समझता है। जो उसकी प्रशसा करते हैं और जो भय से खुशामद करते हैं उन्हे वह वैसे ही मित्र समझता है जैसे माणवक ने कठफोडे को (मित्र समझा)।]

इसीलिये कहा है —

अञ्ञदत्थुहरो मित्तो यो च मित्तो वचीपरो,
अनुप्पियञ्च यो आह अपायेसु च यो सखा।
एते अमित्ते चत्तारो इति विञ्ञाय पण्डितो,
आरका परिवज्जेय्य मग्गं पटिभयं यथा ॥[1]

[जो अञ्ञदत्थुहरो मित्र है (स्वय केवल खाली हाथ आकर मित्र के घर से कुछ न कुछ ले ही जाता है), जो बात का ही धनी है, जो अनुकूल, प्रिय ही प्रिय बोलता है, जो नरक का साथी है—यह चार "मित्र" अमित्र ही हैं। पण्डित-जन इन्हे जानकर भय युक्त मार्ग की तरह दूर से ही छोड दे।]

शास्ता ने इस धर्मदेशना का विस्तार कर जातक का मेल बिठाया। उस समय चोरो का सरदार मैं ही था।

---

१ सिगालोवाद-सुत्त (दीघनिकाय)।

२८० पुटदूसक जातक

"अद्धा हि नून मिगराजा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक दूने बिगाडने वाले के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक अमात्य ने बुद्ध की प्रमुखता मे भिक्षु सघ को निमन्त्रित कर उद्यान मे बिठाकर दान दिया। भोजन की समाप्ति पर उसने कहा—जो उद्यान मे घूमना चाहे घूमे। भिक्षु उद्यान मे घूमने लगे। उसी समय बाग का माली एक खूब पत्तो वाले वृक्ष पर चढ, बडे-बडे पत्तो से दूने बना, वृक्ष से नीचे गिराता था—यह दूना फूलो के लिये होगा, और यह फलो के लिये होगा। उसका पुत्र—एक बच्चा—जो जो दूने यह गिराता उन्हे नष्ट करता जाता था। भिक्षुओ ने वह बात शास्ता से निवेदन की। 'न केवल अभी, पहले भी भिक्षुओ, यह दूने नष्ट करने वाला ही था' कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी मे किसी कुल मे पैदा हुये। बडे होने पर घर मे रहते समय एक दिन किसी काम से बाग मे गये। वहाँ बहुत से बन्दर रहते थे। माली उक्त प्रकार से ही दूने गिराता था। बानरो का सरदार जो जो दूने वह गिराता था उन सब को नष्ट करता जाता था। बोधिसत्व ने उसे आमन्त्रित कर 'मालूम होता है तू माली द्वारा गिराये गये दूने नष्ट कर उनसे अच्छे बनाने चाहता है' कह यह गाथा कही —

अद्धा हि नून मिगराजा पुटकम्मस्स कोविदो,
तथा हि पुटे दूसेति अञ्ञ नून करिस्सति॥

[निश्चय से मृगराज दूने बनाने मे पण्डित है। वह दूनो को ऐसे नष्ट कर रहा है, जैसे (इनसे अच्छे) दूसरे दूने बनायेगा।]

यह सुन वन्दर ने दूसरी गाथा कही —

न मे पिता वा माता वा पुटकम्मस्स कोविदो,
कतं कत खो दूसेम एव धम्ममिदं कुल ॥

[न मेरा पिता, न मेरी माता दूने बनाने मे पण्डित है। जो जो बने उसे नष्ट करें, यही हमारे कुल का धर्म है।]

यह सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही —

येस वो एदिसो धम्मो अधम्मो पन कीदिसो,
मा वो धम्म अधम्म वा अद्दसाम कुदाचनं ॥

[जिनका तुम्हारा धर्म ऐसा है, उनका अधर्म कैसा होगा? हम न कही तुम्हारा धर्म देखते हैं, न अधर्म।]

ऐसा कह वानर की निन्दा कर चले गये। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल विठाया। उस समय वानर दूने नष्ट करने वाला बच्चा था। पण्डित आदमी तो मैं ही था।

तीसरा परिच्छेद

४. अब्भन्तर वर्ग

२८१ अब्भन्तर जातक

"अब्भन्तर नाम दुमो " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सारिपुत्र के बिम्बा देवी स्थविरी को आम्र-रस देने के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के श्रेष्ठ धर्म-चक्र प्रवर्तित करने पर वैशाली की कूटागारशाला मे विहार करते समय पाँच सौ शाक्य-देवियो को साथ ले, महाप्रजापती गौतमी ने प्रव्रज्या की याचना कर, प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की। आगे चलकर वह पाँच सौ भिक्षुणियाँ नन्दकोवाद (सूत्र) सुन-कर अर्हत्व को प्राप्त हुई। शास्ता के श्रावस्ती के पास विहार करते समय राहुल-माता देवी ने भी सोचा—मेरे स्वामी प्रव्रजित होकर सर्वज्ञ हो गये। पुत्र भी प्रव्रजित होकर उन्ही के पास रहना है। मै घर मे रहकर क्या करूँगी ? मैं भी प्रव्रजित हो श्रावस्ती पहुँच सम्यक् सम्बुद्ध और पुत्र को निरन्तर देखती हुई रहूँगी। वह भिक्षुणियो के उपाश्रय मे गई और प्रव्रजित हो आचार्य्य उपाध्यायो के साथ श्रावस्ती आ, शास्ता और प्रिय-पुत्र को देखती हुई एक भिक्षुणी-उपाश्रय मे रहने लगी राहुल श्रामणेर जाकर माता को देखता था।

एक दिन स्थविरी का उदर-वायु कुपित हो गया। पुत्र के देखने आने पर, उसे देखने के लिये बाहर न निकल सकी। दूसरो ने रोगी होने की बात कही। उसने माता से जाकर पूछा—क्या मिलना चाहिये ? "तात ! घर मे रहते समय शक्कर मिश्रित आम्र-रस पीने से मेरा उदर-वायु शान्त हो जाता था। लेकिन अब भिक्षा माँग कर जीवन यापन करते हैं, कहाँ मिलेगा ?" श्रामणेर 'मिलेगा तो लाऊँगा' कह चला गया।

उस आयुष्मान के उपाध्याय थे धर्मसेनापति (सारिपुत्र), आचार्य्य महामौद्गल्यायन, लघु-पिता आनन्द स्थविर और पिता सम्यक् सम्बुद्ध— इस प्रकार वह सम्पत्तिशाली था। ऐसा होने पर भी वह किसी दूसरे के पास न जा, उपाध्याय के पास पहुँच, प्रणाम कर चिन्तित की तरह खड़ा हुआ।

स्थविर ने पूछा—राहुल ! चिन्तित सा क्यो है ?

"भन्ते ! मेरी माँ स्थविरी का उदर-वायु कुपित हो गया है।"

"क्या मिलना चाहिये ?"

"शक्कर मिले आम्ररस से अच्छा होता है।"

"अच्छा, चिन्ता न कर मिलेगा।"

वे अगले दिन उसे ले श्रावस्ती मे प्रविष्ट हो, श्रामणेर को आसनशाला मे बिठा राजद्वार पर पहुँचे। कोशल नरेश ने स्थविर को बिठाया। उसी क्षण उद्यानपाल डाल पर पके मधुर आमो का एक दूना लाया। राजा ने आमो का छिलका उतार शक्कर डाल, अपने हाथ से ही मल स्थविर को पात्र भर कर दिया। स्थविर ने राज-निवास से निकल आसनशाला पहुँच 'ले जाकर माता को दे' कह श्रामणेर को दिया। उसने ले जाकर दिया। स्थविरी के खाते ही उदर-वायु शान्त हो गया। राजा ने भी आदमी भेजा—स्थविर ने यहाँ बैठकर आम्र-रस नही पिया। जा देख किसे दिया ? उसने स्थविर के साथ ही जा, आकर वह समाचार राजा से कहा। राजा ने सोचा—यदि शास्ता घर मे रहते चक्रवर्ती-राजा होते। राहुल श्रामणेर ज्येष्ठ-पुत्र, स्थविरी स्त्री-रत्न। सारे चक्रवालो का राज्य इन्ही का होता। हम इनकी सेवा मे रहते। अब जब यह प्रव्रजित होकर हमारे आश्रय से रह रहे हैं, तो हमारे लिये यह उचित नही है कि हम इनकी ओर से लापरवाह हो। उस दिन से वह लगातार स्थविरी को आम्र-रस दिलाता रहा। स्थविर के बिम्बादेवी स्थविरी को आम्ररस देने की बात भिक्षुसंघ मे प्रसिद्ध हो गई। एक दिन भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! सारिपुत्र स्थविर ने बिम्बादेवी स्थविरी को आम्ररस से सतर्पित किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ? 'अमुक बात-चीत।' 'भिक्षुओ, सारिपुत्र ने केवल अभी राहुल-माता को आम्ररस से सतर्पित नही किया, पहले भी किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी ग्राम के ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख गृहस्थी स्थापित की। माता-पिता के मरने पर ऋषिप्रव्रज्या ले हिमालय प्रदेश मे अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त की। फिर ऋषियो की मण्डली के सरदार हो, बहुत समय व्यतीत होने पर, नमक-खटाई खाने के लिये पर्वत से उतर, चारिका करते हुये वाराणसी पहुँच, उद्यान मे रहने लगे।

ऋषि-समूह के सदाचार के प्रताप से इन्द्र-भवन काँपने लगा। शक्र ने ध्यान देकर कारण का पता लगाया, और सोचने लगा—इन तपस्वियो को यहाँ से उखाडने का प्रयत्न करूँगा। जब इन्हे रहने को स्थान न मिलेगा, कष्ट सहते हुये घूमेगे तो इनका चित्त एकाग्र न होगा। इससे मेरा दुख दूर होगा। 'क्या उपाय किया जाय' सोचते हुये उसे यह उपाय सूझा—आधी रात के बाद राजा की पटरानी के शयनागार मे प्रवेश कर आकाश मे खडा होकर कहूँगा अन्दर के पके आम को खाने से भद्रे! तुझे पुत्रलाभ होगा, और वह चक्रवर्ती राजा होगा। राजा देवी की बात सुन कर पके आम के लिये उद्यान भेजेगा। मैं आमो को अन्तर्धान कर दूंगा। राजा को कहेगे—बाग मे आम नही है। राजा के यह पूछने पर कि कौन खा जाते है उसे बताया जायगा कि तपस्वी खा जाते है। इसे सुन राजा तपस्वियो को पिटवा कर निकलवा देगा। इस प्रकार ये कष्ट पायेंगे। उसने आधी रात के बाद शयनागार मे प्रविष्ट हो, आकाश मे खडे हो, अपना देवेन्द्र होना प्रकट कर उसके साथ बात-चीत करते हुये पहली दो गाथायें कही —

> अब्भन्तर नाम दुमो यस्स दिब्बमिद फल,
> भुत्वा दोहळिनी नारी चक्कवत्तिं विजायति॥
> त्वम्पि भद्दे महेसीसि साचासि पतिनो पिया
> आहरिस्सति ते राजा इद अब्भन्तर फल॥

[अन्दर वह वृक्ष है, जिसका यह दिव्य फल है। दोहद वाली नारी इसे खाकर चक्रवर्ती पुत्र पैदा करेगी। हे भद्रे! तू महिषी है और पति की प्यारी है। राजा तेरे लिये यह अब्भन्तर फल मगा देगा।]

इस प्रकार शक्र देवी को ये दो गाथायें कह 'तू अप्रमादी हो, देर न करना, कल राजा को कहना' अनुशासन कर अपने निवास-स्थान को गया। दूसरे दिन देवी रोगिणी का ढग बना सेविकाओ को इशारा कर लेट रही। ऊपर उठे श्वेत-छत्र के नीचे सिहासन पर बैठ नाटक देखते हुये राजा ने देवी को न देख सेविकाओ से पूछा—देवी कहाँ है ?

"देव ! रोगिणी हो गई है।"

उसने देवी के पास जा, वहाँ पास बैठे, पीठ मलते हुये पूछा—

"भद्रे ! क्या कष्ट है ?"

"महाराज ! और तो कोई कष्ट नही है, हाँ दोहद उत्पन्न हुआ है।"

"भद्रे ! क्या चाहती है ?"

"देव ! अन्दर का फल।"

"यह अन्दर का आम कहाँ होता है ?"

"देव ! मैं अन्दर के आम को नही जानती हूँ। लेकिन वह मिलेगा तो जीऊँगी, न मिलेगा नही जीऊँगी।"

'तो चिन्ता मतकर, मगवायेगे' कह राजा ने देवी को आश्वासन दिया। फिर उठ, जाकर राजसिंहासन पर बैठ अमात्यो को बुलवाकर पूछा—देवी को अन्दर के आम का दोहद पैदा हो गया है। क्या किया जाय ?

"देव दो आमो के बीच मे स्थित आम अन्दर का आम है। उद्यान मे भेजकर दो आमो के बीच मे खडे आम के फल मगवा कर देवी को दिलायेंगे।"

'अच्छा' इस तरह का आम लाओ कह राजा ने उद्यान भेजा।

शक्र ने अपने प्रताप से उद्यान के आमो को खाये जैसे करके अन्तर्धान कर दिया। आम के लिये गये आदमियो ने सारे उद्यान मे घूम एक आम भी न पा, जाकर राजा से कहा—उद्यान मे आम नही है।

"आमो को कौन खाते है !"

"देव ! तपस्वी खाते हैं।"

"तपस्वियो को उद्यान से पीट कर निकाल दो।"

मनुष्य ने 'अच्छा' कह निकाल दिया। शक्र का उद्देश्य पूरा हो गया। देवी आम्रफल का आग्रह करके पडी रही।

राजा को जब और कुछ नही सूझा तो अमात्यो तथा ब्राह्मणो को एकत्र कर पूछा—अन्दर के आम के बारे मे जानते हो ?

"देव ! परम्परा से यही सुना है कि अन्दर का आम देवताओ का भोग्य-आम होता है। वह हिमालय मे कञ्चन-गुफा मे होता है।"

"उस आम को कौन ला सकेगा ?"

"वहाँ कोई आदमी नही जा सकता। एक तोते के बच्चे को वहाँ भेजना चाहिये।"

उस समय राजकुल मे एक बडे शरीर वाला तोते का बच्चा था—कुमारो की गाडी के पहिये की नाभी जितना। वह शक्तिशाली था, प्रज्ञावान् था और था उपायकुशल। राजा ने उसे मगवाकर कहा—तात ! मैं तुम्हारा बहुत उपकार करता हूँ। सोने के पिंजरे मे रहते हो। सोने की थलिया मे मधु और लाजा खाते हो। शक्कर का पानी पीते हो। तुम्हे भी हमारा एक काम पूरा करना चाहिये।

"देव ? कहें।"

"तात ! देवी को अन्दर के आम का दोहद पैदा हो गया है। वह आम हिमालय मे कञ्चन-गुफा मे है। वह देवताओ का भोग्य है। वहाँ कोई आदमी नही जा सकता। तुझे वहाँ से फल लाना चाहिये।"

"देव ! अच्छा लाऊँगा।"

राजा ने सोने की थाली मे मधु-खील खिला, शक्कर का शर्बत पिला, सौ तरह के पके हुये तेल से उसे पङ्खो के बीच मे चुपड, दोनो हाथो मे ले, खिडकी मे खडे हो आकाश मे छोड दिया। वह भी राजा के प्रति नम्रता दिखा, आकाश मे उडते हुये मनुष्य-पथ मे ओझल हो हिमालय मे पहुँचा। वहाँ हिमालय की प्रथम-पक्ति के अन्दर रहने वाले तोतो के पास जा पूछा—अन्दर का आम किस जगह है ? मुझे वह स्थान बतायें।

"हम नही जानते। दूसरी पक्ति के अन्दर के जानते होगे।" उनसे सुन वह वहाँ से उड दूसरी पक्ति के अन्दर पहुँचा। वहाँ से तीसरी, चौथी, पाँचवी तथा छठी। वहाँ भी तोतो ने यही कहा—हम नही जानते, सातवी पक्ति के अन्दर के तोते जानते होगे। उसने वहाँ भी पहुँचकर पूछा—अन्दर का आम कहाँ है ? बताया—अमुकस्थान पर कञ्चन-पर्वत के अन्दर।

"मैं उसके फल के लिये आया हूँ। मुझे वहाँ ले चलकर उसका फल दिलाओ।"

"वह वैश्रणव (कुवेर) महाराज का भोग्य है। वहाँ नही जाया जा सकता। सारा वृक्ष, जड से लगाकर लोहे की मात जालियो से घिरा है। हजार-करोड कुम्भण्ड राक्षस रक्षा करते है। उनको दिखाई दे जाने पर जान नही बच सकती। कल्पारम्भ की आग और अवीचि महानरक की तरह का स्थान है। वहाँ जाने की इच्छा न कर।"

"यदि तुम नही जाते, तो मुझे स्थान वता दो।"

"तो अमुक अमुक रास्ते से जा।"

वह उनके कथानानुसार ठीक रास्ते से वहाँ पहुँच, दिन भर छिपा रहा। आधी-रात के वाद राक्षसो के सोने के समय अन्दर के आम के पास जा एक मूल के वीच से शनै शनै चढने लगा। लोह-जाली ने 'किली' आवाज की। राक्षस जागकर तोते के बच्चे को देख पकड कर विचारने लगे—यह आमचोर है। इसे क्या दण्ड दे ? एक बोला—इसे मुँह मे डालकर निगल जाऊँगा। दूसरा वोला—हाथ से मलकर पोछ अर विखेर दूँगा। तीसरा वोला—दो टुकडे करके अङ्गारो पर पका कर खा जाऊँगा।

उसने उनका दण्ड-विधान सुनकर भी विना भयभीत हुए पूछा—हे राक्षसो! तुम किसके आदमी हो ?

"वैश्रवण महाराज के।"

"तुम भी एक राजा के आदमी हो। मैं भी एक राजा का ही आदमी हूँ। वाराणसी राजा ने मुझे अन्दर के फल के लिये भेजा है। मैं वही अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करके आया हूँ। जो अपने माता, पिता तथा स्वामी के लिये जीवन बलिदान करता है, वह देवलोक मे ही पैदा होता है। इसलिये मै भी इस तिर्यक् योनि से मुक्त होकर देवलोक मे पदा होऊँगा।

यह कह तीसरी गाथा कही —

भत्तुरत्थे परक्कन्तो यं ठानमधिगच्छति,
सूरो अत्तपरिच्चागी लभमानो भवामह ॥

[स्वामी के लिये प्रयत्न करने वाला, शूर तथा आत्मत्यागी जिस स्थान को प्राप्त होता है, मैं भी उसी स्थान को प्राप्त होऊँगा।]

इस प्रकार इस गाथा से उसने उन्हे उपदेश दिया। उन्होने उसका उपदेश सुन सोचा—यह धार्मिक है। इसे मार नही सकते। इसे छोड दें। वे तोते के बच्चे को छोडकर बोले—तोते! हमारे हाथ से तू मुक्त है। सकुशल जा।

"मेरा आना व्यर्थ मत करो। मुझे एक फल दे दो।"

"तोते! तुझे एक फल देने का हमारा अधिकार नही है। इस वृक्ष के आमो पर अङ्क लगे है। एक का भी फर्क पडने पर हमारा जीवन नही रहेगा। कुबेर के क्रुद्ध होकर एक बार देखने से ही गरम तवे पर डाले तिलो की तरह हजार कुम्भाण्ड भुन कर बिखर जायँगे। इसलिये तुझे नही दे सकते। हाँ मिलने का स्थान बता सकते है।"

"कोई भी दे। मुझे तो फल ही चाहिये। मिलने का स्थान ही बतायें।"

"इस कञ्चन-पर्वत के अन्दर जोतिरस नाम का तपस्वी अग्नि मे हवन करता हुआ कञ्चन-पत्ति नाम की पर्णशाला मे रहता है। उसकी वैश्रवण से घनिष्ठता है। वैश्रवण उसके पास नियम के चार फल भेजता है उसके पास जा।"

वह 'अच्छा' कह तपस्वी के पास पहुँच, प्रणाम कर एक ओर बैठा। तपस्वी ने पूछा—कहाँ से आये?

"वाराणसी राजा के पास से।"

"किस लिये आये?"

'स्वामी! हमारे राजा को रानी को पके अन्दर के आम खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसके लिये आया हूँ। राक्षसो ने मुझे स्वय पका आम न दे आप के पास भेजा है।"

"तो बैठ, मिलेगा।"

वैश्रणव ने उसके पास चार फल भेजे। तपस्वी ने उनमे से दो खाये। एक तोते को खाने के लिये दिया। उसके खा चुकने पर एक फल छीके मे रख, तोते की गरदन मे डाल 'अब जा' कह तोते को विदा किया। उसने वह

"मैं उसके फल के लिये आया हूँ। मुझे वहाँ ले चलकर उसका फल दिलाओ।"

"वह वैश्रणव (कुबेर) महाराज का भोग्य है। वहाँ नही जाया जा सकता। सारा वृक्ष, जड से लगाकर लोहे की सात जालियो से घिरा है। हजार-करोड कुम्भण्ड राक्षस रक्षा करते है। उनको दिखाई दे जाने पर जान नही बच सकती। कल्पारम्भ की आग और अवीचि महानरक की तरह का स्थान है। वहाँ जाने की इच्छा न कर।"

"यदि तुम नही जाते, तो मुझे स्थान बता दो।"

"तो अमुक अमुक रास्ते से जा।"

वह उनके कथानानुसार ठीक रास्ते से वहाँ पहुँच, दिन भर छिपा रहा।

आधी-रात के बाद राक्षसो के सोने के समय अन्दर के आम के पास जा एक मूल के बीच से शनै शनै चढने लगा। लोह-जाली ने 'किली' आवाज की। राक्षस जागकर तोते के बच्चे को देख पकड कर विचारने लगे—यह आमचोर है। इसे क्या दण्ड दे ? एक बोला—इसे मुँह मे डालकर निगल जाऊँगा। दूसरा बोला—हाथ से मलकर पोछ अर विखेर दूँगा। तीसरा बोला—दो टुकडे करके अङ्गारो पर पका कर खा जाऊँगा।

उसने उनका दण्ड-विधान सुनकर भी बिना भयभीत हुए पूछा—हे राक्षसो! तुम किसके आदमी हो ?

"वैश्रवण महाराज के।"

"तुम भी एक राजा के आदमी हो। मैं भी एक राजा का ही आदमी हूँ। वाराणसी राजा ने मुझे अन्दर के फल के लिये भेजा है। मैं वही अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करके आया हूँ। जो अपने माता, पिता तथा स्वामी के लिये जीवन बलिदान करता है, वह देवलोक मे ही पैदा होता है। इसलिये मैं भी इस तिर्यक् योनि से मुक्त होकर देवलोक मे पदा होऊँगा।

यह कह तीसरी गाथा कही —

भत्तुरत्थे परक्कन्तो यं ठानमधिगच्छति,
सूरो अत्तपरिच्चागी लभमानो भवामहं ॥

[स्वामी के लिये प्रयत्न करने वाला, शूर तथा आत्मत्यागी जिस स्थान को प्राप्त होता है, मैं भी उसी स्थान को प्राप्त होऊँगा।]

इस प्रकार इस गाथा से उसने उन्हे उपदेश दिया। उन्होने उसका उपदेश सुन सोचा—यह धार्मिक है। इसे मार नही सकते। इसे छोड दे। वे तोते के बच्चे को छोडकर बोले—तोते! हमारे हाथ से तू मुक्त है। सकुशल जा।

"मेरा आना व्यर्थ मत करो। मुझे एक फल दे दो।"

"तोते! तुझे एक फल देने का हमारा अधिकार नही है। इस वृक्ष के आमो पर अङ्क लगे है। एक का भी फर्क पडने पर हमारा जीवन नही रहेगा। कुबेर के क्रुद्ध होकर एक बार देखने से ही गरम तवे पर डाले तिलो की तरह हजार कुम्भाण्ड भुन कर बिखर जायेंगे। इसलिये तुझे नही दे सकते। हाँ मिलने का स्थान बता सकते है।"

"कोई भी दे। मुझे तो फल ही चाहिये। मिलने का स्थान ही बतायें।"

"इस कञ्चन-पर्वत के अन्दर जोतिरस नाम का तपस्वी अग्नि मे हवन करता हुआ कञ्चन-पत्ति नाम की पर्णशाला मे रहता है। उसकी वैश्रवण मे घनिष्ठता है। वैश्रवण उसके पास नियम के चार फल भेजता है उसके पास जा।"

वह 'अच्छा' कह तपस्वी के पास पहुँच, प्रणाम कर एक ओर बैठा। तपस्वी ने पूछा—कहाँ से आये?

"वाराणसी राजा के पास से।"

"किस लिये आये?"

'स्वामी! हमारे राजा को रानी को पके अन्दर के आम खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसके लिये आया हूँ। राक्षसो ने मुझे स्वय पका आम न दे आप के पास भेजा है।"

"तो बैठ, मिलेगा।"

वैश्रणव ने उसके पास चार फल भेजे। तपस्वी ने उनमे से दो खाये। एक तोते को खाने के लिये दिया। उसके खा चुकने पर एक फल छीके मे रख, तोते की गरदन मे डाल 'अब जा' कह तोते को विदा किया। उसने वह

घुसा, नगर मे प्रविष्ट हो, प्रासाद पर चढ, अमात्यो सहित राजा को पकड़वा, जजीरो से बँधवा, कारागार मे डलवा दिया।

राजा ने वधनागार या कारागार मे बैठे-बैठे ही चोर राजा के प्रति मैत्री भावना करते हुए मैत्री ध्यान प्राप्त किया। उसकी मैत्री के प्रताप से चोर राजा के शरीर मे जलन पैदा हुई। सारा शरीर दो मशालो से झुलस दिए की तरह हो गया। उसने महान पीडा अनुभव करते हुए पूछा—(इस दुख का) क्या कारण है ?

"तुमने सदाचारी राजा को कारागार मे डलवाया है, उसी से यह दुख पैदा हुआ होगा।"

उसने जाकर बोधिसत्व से क्षमा माँग ली और उसका राज्य लौटा दिया—तुम्हारा राज्य तुम्हारे ही पास रहे। अब से तुम्हारे शत्रुओ की जिम्मेदारी मुझ पर है। उस दुष्ट अमात्य को राज-दण्ड दे, वह अपने नगर को ही लौट गया। बोधिसत्व ने अलकृत ऊँचे तल पर श्वेत-छत्र के नीचे राज्य सिंहासन पर बैठ, इर्द-गिर्द बैठे अमात्यो से बात-चीत करते हुए पहली दो गाथाएँ कही —

> सेय्यसो सेय्यसो होति यो सेय्यमुपसेवति,
> एकेन सधि कत्वान सत वज्झे अमोचयि।
> तस्मा सब्बेन लोकेन सधिकत्वान एकको,
> पेच्च सग्ग निगच्छेय्य इद सुणाथ कासयो॥

[जो श्रेष्ठ कार्यकर्ता है, उस श्रेष्ठ कार्य करने वाले का कल्याण होता है। एक से मेल करके सौ बद्ध होने वालो को मुक्त कराया। इस लिये सब काशीवासी यह सुने और अकेला आदमी सारे लोक से मैत्री भावना[1] कर मर कर स्वर्ग प्राप्त करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने जनता को मैत्री भावना के लाभ बता बारह योजन के वाराणसी नगर का श्वेत-छत्र छोड, हिमालय मे प्रविष्ट हो ऋषि प्रव्रज्या ग्रहण की।

---

१. मैत्री भावना से विचार-समाधि कामावचर-लोक मे जन्म देती है और अर्पणा से ब्रह्मलोक मे।

शास्ता ने सम्यक् सम्बुद्ध होने पर तीसरी गाथा कही—

इद वत्वा महाराजा कसो वाराणसिग्गहो,
धनु तूणिञ्च निक्खिप सञ्ञम अज्झुपागमि ॥

[यह कह वाराणसी पर अधिकार करने वाला राजा कस, धनुप और तूणीर छोड़कर सयम के मार्ग पर आरूढ हो गया।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय चोर-राजा आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

२८३ बड्ढकीसूकर जातक

"वर वर त्व" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय धनुग्गह तिस्स स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

प्रसेनजित राजा के पिता महाकोशल ने बिम्बिसार राजा को अपनी लड़की कोशल-देवी व्याहने के समय उसके स्नान-चूर्ण के मूल्य के तौर पर उसे काशी गाँव दिया जिससे लाख की आमदनी होती थी। अजातशत्रु के पिता की हत्या करने पर कोशल देवी भी शोकाभिभूत हो मर गई। तब प्रसेनजित राजा ने सोचा—अजात शत्रु ने पिता को मार डाला—स्वामी के मरणशोक से मेरी बहन भी मर गई। मैं इस पितृ-घातक चोर को काशी गाँव नही दूंगा। उसने अजातशत्रु को वह गाँव नही दिया। उस गाँव के कारण उन दोनो का समय-समय पर युद्ध होता। अजातशत्रु तरुण था, सामर्थ्यवान था, प्रसेनजित था बूढा। वह बार-बार पराजित होता, महाकोशल के भी आदमी बहुत करके पराजित हो गए। राजा ने अमात्यो से पूछा—हम बार-बार हार जाते है, क्या करना चाहिये?

"देव ! आर्य (= भिक्षु) मत्रणा मे बडे पटु होते है। जेतवन विहार भिक्षुओ की बात-चीत सुननी चाहिये।"

राजा ने चर-पुरुषो को आज्ञा दी—समय समय पर उनकी बात-चीत सुनी। वे तब से वैसा करने लगे।

उस समय दो वृद्ध स्थविर विहार की सीमा पर पर्ण-शाला मे रहते थे। उत्तर स्थविर और धनुग्गहतिस्स स्थविर। उनमे से धनुग्गहतिस्स स्थविर रात्रि के पहले और मध्यम पहर मे सो, आखिरी पहर मे उठ, जलावन को तोड, आग बाल, बैठे ही बैठे बोले—भन्ते उत्तर स्थविर !

"क्या है भन्ते तिस्सस्थविर ?"

"क्या आप सो रहे है ?"

"न सोते हो, तो क्या करेगे ?"

"उठ कर बैठें।"

वह उठ बैठे। उन्होने उत्तर स्थविर से कहा—

"यह तुम्हारा लोभी महापेटू कोशल (नरेश) चाटी भर भात को ही गन्दा करता है। युद्ध सचालन कुछ नही समझता। हार-गया ही कहलवाता है।"

"तो उसे क्या करना चाहिये ?"

उस समय चर-पुरुष खडे उनकी बात चीत सुन रहे थे। धनुग्गह-तिस्स स्थविर ने युद्ध के बारे मे अपना विचार कहा—

"भन्ते ! युद्ध मे तीन तरह के व्यूह होते है—पद्म-व्यूह, चक्र-व्यूह और शकट-व्यूह। अजातशत्रु को पकडने के इच्छुक को चाहिये कि वह अमुक पर्वत की कोख मे दो पर्वतो की ओट मे मनुष्यो को छिपा, आगे दुर्बल सेना दिखाए। फिर शत्रु को पर्वत मे पा, पर्वतो के बीच मे प्रविष्ट हुआ जान, प्रवेश-मार्ग को बन्द कर दे। इस प्रकार आगे और पीछे दोनो ओर पर्वत की ओट मे कूद कर शोर मचाते हुए उसे घेरलें, जैसे जाल मे फँसी मछली अथवा मुट्ठी मे आया मेढक का बच्चा। इस प्रकार उसे पकडा जा सकता है।"

चर-पुरुषो ने यह बात राजा से कही। यह सुन राजा ने सग्राम-दुन्दुभी बजवायी और जाकर शकट-व्यूह बना अजातशत्रु को जीता पकड-वाया। फिर अपनी लडकी वजिर कुमारी भाँजे को ब्याह, उसके स्नान-मूल्य

के तौर पर काशी गाँव दे विदा किया। वह समाचार भिक्षु-सघ मे फैल गया। एक दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बैठे बैठे चर्चा चलाई—आयुष्मानो! कोशल राजा ने धनुग्गहतिस्स की मन्त्रणा के अनुसार अज्ञात शत्रु को जीत लिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?

"अमुक बात-चीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी, धनुग्गहतिस्स युद्ध-मन्त्रणा मे पटु है, किन्तु वह पहले भी पटु रहा है।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जगल मे वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी के पास एक बढइयो का गाँव था। उनमे से एक बढई लकडी के लिये जगल गया। वहाँ उसने गढे मे पडे एक सुअर-बच्चे को देख, घर लाकर पोसा। वह बडा होकर महान् शरीर वाला, टेढी डाढो वाला, किन्तु सदाचारी हुआ। बढई द्वारा पोसे जाने के कारण उसका नाम बढई-सूअर ही पड गया। वह बढई के वृक्ष छीलने के समय थूथनी से वृक्ष को उलटता पलटता, मुँह से उठाकर वासी (छुरी-कुल्हाडी) फरसा, रुखानी तथा मोगरी ला देता। काले डोरे का सिरा पकड लेता।

वह बढई कोई इसे खा न जाय, इस भय से ले जाकर जगल मे छोड आया। उसने भी जगल मे क्षेमकर, सुखकर स्थान खोजते हुए एक पर्वत की ओट मे एक महान गिरि-कन्दरा देखी, जहाँ खूब कन्द मूल थे और सुख से रहा जा सकता था। सैकडो सूअर उसे देख उसके पास पहुँचे। उसने उन्हे कहा—"मैं तुम्हे ही ढूँढता था। तुम यहाँ मिल गए। यह स्थान रमणीए है मै अब यहीं कहूँगा।"

"सचमुच यह स्थान रमणीए है, लेकिन यहाँ खतरा है।"

"मैंने भी तुम्हे देखकर यही जाना। चरने के लिये ऐसी अच्छी जगह रहते हुए भी शरीर मे मास रक्त नही है। यहाँ क्या खतरा है?"

"एक व्याघ्र प्रात काल ही आकर जिसे देखता है, उसे उठा ले जाता है।"

"क्या वह लगातार ले जाता है या कभी कभी ?"

"लगातार।"

"व्याघ्र कितने है।"

"एक ही।"

"तुम इतने हो एक से पार नही पा सकते ?"

"हाँ नही सकते।"

"मैं उसे पकड़ूँगा, तुम केवल मेरा कहना करना। वह व्याघ्र कहाँ रहता है ?"

"इस पर्वत मे।"

उसने रात को ही सूअरो को चरा, युद्ध सचालन का विचार करते हुए 'व्यूह तीन तरह के होते है—पद्म-व्यूह, चक्र-व्यूह तथा शकट-व्यूह' कह पद्म-व्यूह का निश्चय किया। वह उस भूमि-भाग से परिचित था। इसलिये यहाँ युद्ध की योजना करनी चाहिये, सोच उसने पाठ्ठरो और उनकी माताओ को बीच मे रखा। उनके गिर्द बाँझ सूअरियो को, उनके गिर्द बच्चो-सूअरो को, उनके गिर्द लडके-सूअरो को, उनके गिर्द लम्बी दाढ वाले सूअरो को और उनके गिर्द युद्ध करने मे समर्थ, बलवान सूअरो के दस दस, बीस बीस के झुण्ड जहाँ तहाँ स्थापित किए। अपने खडे होने के स्थान के आगे एक गोल गढा खुदवाया। पीछे से एक छाज की तरह, क्रमानुसार नीचे होता हुआ ढलवान भूमि के सदृश। उसके साठ सत्तर योद्धा सूअरो को जहाँ तहाँ 'मतडरे' कह नियुक्त करते हुए अरुणोदय हो गया।

व्याघ्र ने उठकर देखा कि समय हो गया। उसने जाकर उनके सामने के पर्वत-तल पर खडे हो आँखें खोल सूअरो को देखा। वढई-सूअर ने सूअरो का इशारा किया कि वे भी उसकी ओर घूर कर देखें। उन्होने वैसे देखा। व्याघ्र ने मुँह खोल कर सास लिया। सूअरो ने भी वैसे किया। व्याघ्र ने पेशाब किया। सूअरो ने भी किया। इस प्रकार जो जो उसने किया, वही उन्होने भी किया। वह सोचने लगा—पहले सूअर मेरे देखने पर भागने का प्रयत्न करते हुए भाग भी नही सकते थे, आज बिना भागे मेरे प्रति-शत्रु बन जो मैं करता हूँ, वह करते है। एक ऊँचे से स्थल पर खडा हुआ उनका नेता भी है। आज मैं गया तो जीतने की सम्भावना नही है।

वह रुक कर अपने निवास स्थान को लौट गया। उसके मारे मास को खाने वाला एक कुटिल जटिल तपस्वी था। उसने उसे खाली आता देख उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही —

वर वर त्वं निहन पुरे चरि
अस्मि प्रदेशे अभिभुय्य सूकरे,
सोदानि एको व्यपगम्म झायसि
बलन्नु ते व्यग्घ नचज्ज विज्जति॥

[पहले तू इस प्रदेश के सूअरो को अभिभूत कर उनमे से अच्छे अच्छे मार कर खाता था। अब एक ओर अकेला होकर ध्यान कर रहा है। हे व्याघ्र! आज तुझ मे बल नही है।]

यह सुन व्याघ्र ने दूसरी गाथा कही —

इमे सुद यन्ति दिसोदिस पुरे
भयट्टिता लेणगवेसिनो पुथू,
ते दानि सगम्म रसन्ति एकतो
यत्थट्ठिता दुप्पसहज्ज मे मया॥

[पहले ये डर के मारे अपनी अपनी गुफाओ को खोजते हुए जिस तिस दिशा मे भाग जाते थे। अब एक जगह इकट्ठे होकर आवाज लगाते है। आज मेरे लिये इनका मर्दन करना दुष्कर है।]

इस प्रकार उत्साहित करते हुए कुटिल तपस्वी ने कहा—जा तेरे चिग्घाड कर छलाग मारने पर सभी डर कर तितिर-बितिर हो भाग जायेंगे। उसके उत्साह दिलाने पर व्याघ्र बहादुर बन फिर जाकर पर्वत शिखर पर खडा हुआ। बढई-सूअर दोनो गढो के बीच मे खडा था। सूअर बोले—

"स्वामी महाचौर फिर आ गया है।"

"डरो म्त। अब उसे पकडूँगा।"

व्याघ्र ने गरज कर बढई-सूअर पर आक्रमण किया। सूअर उसके अपने ऊपर आने के ममय जल्दी से पलट कर सीधे खने गढे मे जा पडा। व्याघ्र वेग को न रोक सकने के कारण ऊपर ऊपर जाकर छाज की तरह के टेढे खने गढे मे अत्यन्त बीहड जगह गिर कर ढेर सा हो गया। सूअर गढे से

निकला। उसने विजली की तेजी से जा व्याघ्र की जाँघो मे अपनी काँपो से प्रहार कर नाभि तक चीर डाला। फिर पाँच प्रकार का मधुर मास काँपो से लपेट व्याघ्र के मस्तक को छेद "लो अपने शत्रु को" कह उठाकर गढे से वाहर किया। पहले जो आये उन्हे मास मिला। पीछे आने वाले उनका मुँह सूँघते फिरते थे कि व्याघ्र-मास कैसा होता है? सूअरो को अभी सन्तोष नही था। वढई-सुअर ने उनका आकार प्रकार देख पूछा—क्या अभी सन्तुष्ट नही हो?

"स्वामी इस एक व्याघ्र के मारे जाने से क्या लाभ? दूसरे दस व्याघ्र ला सकने वाला कुटिल तपस्वी जीता ही है।"

"यह कौन है?"

"एक दुराचारी तपस्वी।"

"उसकी क्या सामर्थ्य है जब व्याघ्र भी मैंने मार डाला।"

वह उसे पकडने के लिये सूअर समूह के साथ चला।

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि व्याघ्र को देर हो रही है तो सोचने लगा कि कही सूअरो ने व्याघ्र को पकड तो नही लिया है। वह जिधर से सूअर आ रहे थे, उधर ही जा रहा था। सूअरो को आता देख अपना सामान लेकर भागा। सूअरो ने पीछा किया। वह सामान छोडकर जल्दी से गूलर के पेड पर चढ गया। सूअर वोले—स्वामी! हम मारे गये। तपस्वी भागकर वृक्ष पर चढ गया।

"यह कौनसा वृक्ष है?"

"यह गूलर वृक्ष है।"

उसने सूअरियो को आज्ञा दी कि वे पानी लायें, सूअर-बच्चो को आज्ञा दी कि वे खोदें, और बडे दाँतो वाले सूअरो को कहा कि वे जडे काटें। फिर स्वय गूलर की सीधी मोटी जड को फर्से से काटते हुये की तरह, एक प्रहार से ही गूलर को गिरा दिया। घेर कर खडे सूअरो ने कुटिल तपस्वी को जमीन पर गिरा, टुकडे टुकडे कर, हड्डियाँ मात्र छोड खा डाला। फिर वढई-सूअर को गूलर की जड मे ही विठा कुटिल तपस्वी के शङ्ख मे ही पानी मगवा, अभिषिक्त कर राजा बनाया। एक तरुण सूअरी का अभिषेक कर उसे उसकी पटरानी बनाया।

उस दिन से आज तक राजाओ को गूलर के श्रेष्ठ पीढे पर बिठा कर तीन शङ्खो से उनका अभिषेक किया जाता है। उस वन-खण्ड मे रहने वाले देवता ने यह आश्चर्य्य देख एक खोह मे सूअरो के सामने खडे हो तीसरी गाथा कही —

नमत्थु सङ्घान समागतान
दिस्वा सय सख्यवदामि अब्भुत,
ब्यग्घ मिगा यत्थ जिनिसु दाठिनो
सामग्गिया दाठबलेसु मुच्चरे ॥

[आये हुए (सूअरो के) सघ को मेरा नमस्कार है। मैं इस अद्भुत मैत्री-भाव को स्वय देखकर नमस्कार करता हूँ। जहाँ दाँतो वाले मृगो (सूअरो) ने व्याघ्र को जीत लिया। सूअरो मे एकता होने से ही वे मुक्त हुए।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धनुग्गह तिस्स वढई-सूअर था। वृक्ष-देवता मैं ही था।

२८४ सिरि जातक

"य उस्सुका सघरन्ति ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक श्री-चोर ब्राह्मण के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की वर्तमान कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक[1] मे आई ही है। इस कथा मे भी वह अनाथ-पिण्डिक के घर मे चौथी ड्योढी मे रहने

---

1 खदिरङ्गार जातक (१४०)।

निकला। उसने विजली की तेजी मे जा व्याघ्र की जाँघो मे अपनी काँपो से प्रहार कर नाभि तक चीर डाला। फिर पाँच प्रकार का मधुर मास काँपो से लपेट व्याघ्र के मस्तक को छेद "लो अपने शत्रु को" कह उठाकर गढे से बाहर किया। पहले जो आये उन्हे मास मिला। पीछे आने वाले उनका मुँह सूँघते फिरते थे कि व्याघ्र-मास कैसा होता है? सूअरो को अभी सन्तोष नही था। वढई-सुअर ने उनका आकार प्रकार देख पूछा—क्या अभी सन्तुष्ट नही हो?

"स्वामी, इस एक व्याघ्र के मारे जाने से क्या लाभ? दूसरे दस व्याघ्र ला सकने वाला कुटिल तपस्वी जीता ही है।"

"यह कौन है?"

"एक दुराचारी तपस्वी।"

"उसकी क्या सामर्थ्य है जब व्याघ्र भी मैंने मार डाला।"

वह उसे पकडने के लिये सूअर समूह के साथ चला।

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि व्याघ्र को देर हो रही है तो सोचने लगा कि कही सूअरो ने व्याघ्र को पकड तो नही लिया है। वह जिधर से सूअर आ रहे थे, उधर ही जा रहा था। सूअरो को आता देख अपना सामान लेकर भागा। सूअरो ने पीछा किया। वह सामान छोडकर जल्दी से गूलर के पेड पर चढ गया। सूअर वोले—स्वामी! हम मारे गये। तपस्वी भागकर वृक्ष पर चढ गया।

"यह कौनसा वृक्ष है?"

"यह गूलर वृक्ष है।"

उसने सूअरियो को आज्ञा दी कि वे पानी लायें, सूअर-बच्चो को आज्ञा दी कि वे खोदें, और बडे दाँतो वाले सूअरो को कहा कि वे जडे काटें। फिर स्वय गूलर की सीधी मोटी जड को फर्से से काटते हुये की तरह, एक प्रहार से ही गूलर को गिरा दिया। घेर कर खडे सूअरो ने कुटिल तपस्वी को जमीन पर गिरा, टुकडे टुकडे कर, हड्डियाँ मात्र छोड खा डाला। फिर बढई-सूअर को गूलर की जड मे ही बिठा कुटिल तपस्वी के शङ्ख मे ही पानी मगवा, अभिषिक्त कर राजा बनाया। एक तरुण सूअरी का अभिषेक कर उसे उसकी पटरानी बनाया।

उस दिन से आज तक राजाओ को गूलर के श्रेष्ठ पीढे पर बिठा कर तीन शङ्खो से उनका अभिषेक किया जाता है। उस वन-खण्ड मे रहने वाले देवता ने यह आश्चर्य्य देख एक खोह मे सूअरो के सामने खडे हो तीसरी गाथा कही —

> नमत्थु सङ्घान समागतान
> दिस्वा सय सख्यंवदामि अब्भुत,
> ब्यग्घ मिगा यत्थ जिनिसु दाठिनो
> सामग्गिया दाठबलेसु मुच्चरे ॥

[आये हुए (सूअरो के) सघ को मेरा नमस्कार है। मैं इस अद्भुत मैत्री-भाव को स्वय देखकर नमस्कार करता हूँ। जहाँ दाँतो वाले मृगो (सूअरो) ने व्याघ्र को जीत लिया। सूअरो मे एकता होने से ही वे मुक्त हुए।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धनुग्गह तिस्स वढई-सूअर था। वृक्ष-देवता मैं ही था।

२८४ सिरि जातक

"य उस्सुका सघरन्ति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक श्री-चोर ब्राह्मण के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की वर्तमान कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक[1] मे आई ही है। इस कथा मे भी वह अनाथ-पिण्डिक के घर मे चौथी ड्योढी मे रहने

---

१ खदिरङ्गार जातक (१४०)।

वाली मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। उसने दण्डकर्म-स्वरूप चौवन करोड सोना लाकर कोठो मे भर, अनाथ-पिण्डिक के साथ मैत्री स्थापित की। वह उस देवी को शास्ता के पास ले गया। शास्ता ने उसे धर्मोपदेश दिया। वह धर्मोपदेश सुन स्रोतापन्न हुई। तब से सेठ का धन पूर्ववत हो गया।

एक श्रावस्ती-वासी श्रीलक्षण ब्राह्मण ने सोचा कि अनाथ-पिण्डिक दरिद्र होकर फिर ईश्वर हो गय । मैं उसे देखने जाने वाले की तरह जा उसके घर से श्री चुरा लाऊँ। वह उसके घर पहुँचा। अनाथ-पिण्डिक द्वारा सत्कृत हो, कुशल-क्षेम की बात होने पर जब उससे पूछा गया कि किस लिये आये हो, तो वह ढूँढने लगा कि श्री कहाँ प्रतिष्ठित है ? सेठ का एक धुले शङ्ख जैसा सूर्यश्वेत मुर्गा सोने के पिंजरे मे बन्द था। उसकी कलगी मे श्री प्रतिष्ठित थी। ब्राह्मण ने यह देखा कि श्री कलगी मे प्रतिष्ठित है। बोला—महासेठ ! मैं पाँच सौ विद्यार्थियो को मन्त्र पढाता हूँ। एक मुर्गे के कारण जो समय असमय बोलता है, वे और मैं कष्ट पाते है। यह मुर्गा समय से बोलने वाला है। मैं इसके लिये आया हूँ। मुझे यह मुर्गा दे दे।

"ब्राह्मण मुर्गा ले ले। मैं तुझे मुर्गा देता हूँ।"

'देता हूँ' कहते ही उसकी कलगी से निकल कर श्री तकिये मे रखी मणि मे जा प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ने यह जान कि श्री मणि मे प्रतिष्ठित हो गई, उसे भी माँगा। 'मणि भी देता हूँ' कहते ही श्री मणि से निकल तकिये पर रखी छडी मे जा प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ने यह जान कि श्री वहाँ प्रतिष्ठित है, उसे भी माँगा। 'मगवाकर (ले) जा' कहते ही श्री सेठ की पटरानी पुण्य-लक्षण-देवी के सिर मे प्रतिष्ठित हो गई। श्री-चोर ब्राह्मण ने जब देखा कि श्री वहाँ प्रतिष्ठित हो गई, तब यह सोच कर कि 'यह वस्तु तो दी नही जा सकती है, इसलिये माँगी नही जा सकती' कहा—महा सेठ ! मैं तुम्हारे घर श्री चुराने के लिये आया था। श्री तुम्हारे मुर्गे की कलगी मे प्रतिष्ठित थी। जब वह मुझे दे दिया गया, तो मणि मे प्रतिष्ठित हुई। जब मणि दे दी गई, तो छडी मे प्रतिष्ठित हुई। जब छडी दे दी गई, तो पुण्य-लक्षणा देवी के सिर मे प्रतिष्ठित हुई। यह दी जा सकने वाली चीज नही, इसका नाम भी नही लिया। मैं तुम्हारी श्री नही चुरा सकता। तुम्हारी श्री तुम्हारी ही रहे।

वह आसन से उठकर चला गया।

अनाथ-पिण्डिक ने यह बात शास्ता को सुनाने की इच्छा से विहार जा, शास्ता की पूजा तथा वन्दना कर, एक ओर बैठ सारी बात तथागत से निवेदन की। शास्ता ने यह बात सुन 'गृहपति! दूसरो की श्री दूसरी जगह नही जाती। हाँ, पूर्व समय मे अल्प-पुण्यो की श्री पुण्यवानो के चरणो मे जा पहुँची' कह उसके पूछने पर पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख गृहस्थी की। माता-पिता के मरने पर वैराग्य हुआ तो घर छोड हिमालय प्रदेश मे जा, ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर समापत्तियाँ प्राप्त की। फिर बहुत समय बीतने पर नमक-खटाई खाने के लिए जन-पद लौट वाराणसी-नरेश के उद्यान मे रहने लगे। अगले दिन भिक्षाटन करते हुए हाथी-आचार्य्य के घर भिक्षा के लिये पहुँचे। वह उसकी चर्य्या तथा व्यवहार से प्रसन्न हुआ और भिक्षा दे, उद्यान मे बसा, नित्य सेवा करने लगा।

उस समय एक लकडहारा जगल से लकडियाँ ला समय से नगर मे प्रविष्ट न हो सका। शाम को एक देव-कुल मे लकडियो की ढेरी का तकिया बना लेट रहा। देवकुल मे रहने वाले बहुत से मुर्गे उससे थोडी ही दूर पर एक वृक्ष पर सो रहे थे। उनमे से ऊपर सोये मुर्गे ने प्रात काल बीठ गिराते समय नीचे सोये हुए मुर्गे के शरीर पर गिरा दी। "मेरे शरीर पर किसने बीठ गिराई" पूछने पर उत्तर दिया—

"मैने गिराई।"

"क्यो गिराई?"

"असावधानी से।"

किन्तु, फिर भी उसने बीठ गिराई। तब दोनो मे झगडा हो गया— "तुझमे कौन-सा बल है? और 'तुझ मे कौन-सा बल है?"

नीचे सोए मुर्गे ने कहा—मुझे मार कर अङ्गार पर पका कर मेरा मास खाने वाला प्रात काल ही एक हजार कार्षापण पाता है। ऊपर सोया हुआ मुर्गा बोला—तू इतने से ही मत गर्ज। स्थूल मास को खाने वाला

राजा होता है। बाहरी मास खाने वाला सेनापति होता है और यदि स्त्री हो तो पटरानी होती है। और मेरे अस्थि-मास को खाने वाला यदि गृहस्थ हो तो खजानची बनता है, यदि प्रव्रजित हो राज कुल विश्वस्त होता है।

लकडहारे ने उनकी बात सुन सोचा—राज्य मिलने पर हजार की क्या आवश्यकता ? उसने धीरे-से चढ, ऊपर सोये मुर्गे को पकड, मार कर अपने पल्ले मे बाधा। फिर 'राजा बनूंगा' सोच जा, खुले-द्वार से नगर मे प्रविष्ट हो, मुर्गे की चमडी उतार, पेट साफ कर अपनी भार्य्या को दिया—इस मुर्गे के मास को अच्छी तरह पका। उसने मुर्गे का मास और भात तैयार कर सामने ला कर रखा।—

"स्वामी ! खाये।"

"भद्रे ! यह मास बडे प्रभाव वाला है। इसे खाकर मैं राजा बनूगा और तू पटरानी बनेगी। इस भात और मास को लेकर गङ्गा किनारे जा नहाकर खायेंगे।"

वे भात का बरतन किनारे पर रख नहाने के लिए उतरे। उस समय हवा से क्षुब्ध हुआ पानी आकर भात का बरतन बहा ले गया। नदी की धार मे बहते उस बरतन को हाथियो को नहलाने वाले एक बडे हाथी-आचार्य्य ने देखा। उसने उठवाकर, उघडवाकर पूछा—इसमे क्या है ?

"स्वामी ! भात है और मुर्गे का मास है।'

उसने उसे बद करवा, उस पर मोहर लगवा अपनी भार्य्या के पास भेज दिया—जब तक हम न आये तब तक इस भात को न बाँटे। वह लकडहारा भी मुह मे बालू और पानी भर जाने से, पेट फूल जाने के कारण भाग गया।

उस हाथी-आचार्य्य का एक कुल-विश्वस्त तपस्वी था दिव्य-चक्षु धारी। वह सोचने लगा कि मेरा सेवक हाथी के स्थान को नही छोड रहा है। उसे सम्पत्ति कब मिलेगी ? उसने दिव्य-चक्षु से इसका विचार करते हुए उस आदमी को देखा और बात समझ कर पहले ही जाकर हाथी-आचार्य्य के घर बैठ रहा। हाथी आचार्य्य ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ कर कहा—तपस्वी को मास और भात परोसो। तपस्वी ने भात ले, मास दिये जाने पर, न ले कर कहा—इस मास को मैं बाटूंगा। 'भन्ते ! बाँटे।' कहने पर स्थूल

माँस आदि हिस्से करके स्थूल-मास आचार्य्य को दिलवाया । बाहर का मास उसकी भार्य्या को और अस्थि-मास स्वय खाया । जाने समय वह कह गया —आज से तीसरे दिन तू राजा होगा । अप्रमादी होकर रह । तीसरे दिन एक सामन्त राजा ने आकर वाराणसी को घेर लिया । वाराणसी-नरेश ने हाथी-आचार्य्य को राजकीय भेष-भूषा पहना, हाथी पर चढा आज्ञा दी—तू युद्ध कर । स्वय छिपे भेष मे सेना-सचालन करते समय एक तेज तीर से बीधा जाकर उसी समय मर गया ।

उसे मरा जान हाथी-आचार्य्य ने बहुत से कार्पापण मगवा मुनादी कराई—जिन्हे धन की चाह हो वह आगे बढ कर लडे । सेना ने मुहूर्त भर मे ही विरोधी राजा को मार डाला । अमात्यो ने राजा की शरीर-क्रिया कर सोचा—किसे राजा बनायें ? उन्होने निर्णय किया—राजा ने अपने जीवन-काल मे अपना भेष हाथी-आचार्य्य को दिया और फिर इसी ने युद्ध करके राज जीता । इसे ही राजा बनायें । उसे ही राज्याभिषिक्त किया । उसकी भार्य्या को पटरानी बनाया । बोधिसत्व राजकुल-विश्वस्त हुए । शास्ता ने यह धर्मोपदेश ला अभिसम्बुद्ध होने पर ये दो गाथाएँ कही —

> य उस्सुका सङ्घरन्ति अलक्खिका' बहुं धन,
> सिप्पवन्तो असिप्पा च लक्खिवा तानि भुञ्जति ।
> सब्बथ कतपुञ्ञस्स अतिच्चञ्ञेव पाणिनो,
> उप्पज्जन्ति बहू भोगा अप्पनायतनेसुपि ।।

[अभागे लोग जिस धन के सग्रह के लिये बहुत उत्सुक होते है, उसे शिल्पी हो चाहे अशिल्पी हो, भाग्यवान् ही उपभोग मे लाते है । सर्वत्र दूसरे प्राणियो को छोडकर पुण्य-वान् प्राणी को ही भोग प्राप्त होते है, जहाँ से भोग नही प्राप्त होते वहा से भी ।]

शास्ता ने ये गाथाये कह 'हे गृहपति ! इन प्राणियो के लिये पुण्य के समान दूसरा आयतन नही है । पुण्यवान के लिए जो खानें नही है, उनमे से भी रत्न पैदा होते हैं' कहा । फिर ये धर्मदेशना की—

> एस देवमनुस्सान सब्बकामददो निधी,
> य यदेवाभिपत्थेन्ति सब्बमेतेनलब्भति ॥१॥

राजा होता है। बाहरी मास खाने वाला सेनापति होता है और यदि स्त्री हो तो पटरानी होती है। और मेरे अस्थि-मास को खाने वाला यदि गृहस्थ हो तो खजानची बनता है, यदि प्रव्रजित हो राज कुल विश्वस्त होता है।

लकड़हारे ने उनकी बात सुन सोचा—राज्य मिलने पर हजार की क्या आवश्यकता ? उसने धीरे-से चढ, ऊपर सोये मुर्गे को पकड, मार कर अपने पल्ले मे बाधा। फिर 'राजा बनूंगा' सोच जा, खुले-द्वार से नगर मे प्रविष्ट हो, मुर्गे की चमडी उतार, पेट साफ कर अपनी भार्य्या को दिया—इस मुर्गे के मास को अच्छी तरह पका। उसने मुर्गे का मास और भात तैयार कर सामने ला कर रखा—

"स्वामी ! खाये।"

"भद्रे ! यह मास बडे प्रभाव वाला है। इसे खाकर मैं राजा बनूगा और तू पटरानी बनेगी। इस भात और मास को लेकर गङ्गा किनारे जा नहाकर खायेगे।"

वे भात का बरतन किनारे पर रख नहाने के लिए उतरे। उस समय हवा से क्षुब्ध हुआ पानी आकर भात का बरतन बहा ले गया। नदी की धार मे बहते उस बरतन को हाथियो को नहलाने वाले एक बडे हाथी-आचार्य्य ने देखा। उसने उठवाकर, उघडवाकर पूछा—इसमे क्या है ?

"स्वामी ! भात है और मुर्गे का मास है।'

उसने उसे बद करवा, उस पर मोहर लगवा अपनी भार्य्या के पास भेज दिया—जब तक हम न आये तब तक इस भात को न बाटे। वह लकडहारा भी मुह मे बालू और पानी भर जाने से, पेट फूल जाने के कारण भाग गया।

उस हाथी-आचार्य्य का एक कुल-विश्वस्त तपस्वी था दिव्य-चक्षु धारी। वह सोचने लगा कि मेरा सेवक हाथी के स्थान को नही छोड रहा है। उसे सम्पत्ति कब मिलेगी ? उसने दिव्य-चक्षु से इसका विचार करते हुए उस आदमी को देखा और बात समझ कर पहले ही जाकर हाथी-आचार्य्य के घर बैठ रहा। हाथी आचार्य्य ने आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ कर कहा—तपस्वी को मास और भात परोसो। तपस्वी ने भात ले, मास दिये जाने पर, न ले कर कहा—इस मास को मैं बाटूंगा। 'भन्ते ! बांटे।' कहने पर स्थूल

मांस आदि हिस्से करके स्थूल-मास आचार्य्य को दिलवाया । बाहर का मास उसकी भार्य्या को और अस्थि-मास स्वय खाया । जाते समय वह कह गया —आज से तीसरे दिन तू राजा होगा । अप्रमादी होकर रह । तीसरे दिन एक सामन्त राजा ने आकर वाराणसी को घेर लिया । वाराणसी-नरेश ने हाथी-आचार्य्य को राजकीय भेष-भूषा पहना, हाथी पर चढा आज्ञा दी—तू युद्ध कर । स्वय छिपे भेष मे सेना-सचालन करते समय एक तेज तीर से बींधा जाकर उसी समय मर गया ।

उसे मरा जान हाथी-आचार्य्य ने बहुत से कार्षापण मगवा मुनादी कराई—जिन्हे धन की चाह हो वह आगे बढ कर लडे । सेना ने मुहूर्त भर मे ही विरोधी राजा को मार डाला । अमात्यो ने राजा की शरीर-क्रिया कर सोचा—किसे राजा बनायें ? उन्होने निर्णय किया—राजा ने अपने जीवन-काल मे अपना भेष हाथी-आचार्य्य को दिया और फिर इसी ने युद्ध करके राज जीता । इसे ही राजा बनायें । उसे ही राज्याभिषिक्त किया । उसकी भार्य्या को पटरानी बनाया । बोधिसत्व राजकुल-विश्वस्त हुए । शास्ता ने यह धर्मोपदेश ला अभिसम्बुद्ध होने पर ये दो गाथाएँ कही —

य उस्सुका सङ्घरन्ति अलक्खिका'बहुँ धन,
सिप्पवन्तो असिप्पा च लक्खिवा तानि भुञ्जति ।
सब्बथ कतपुञ्ञस्स अतिच्चञ्ञेव पाणिनो,
उप्पज्जन्ति बहू भोगा अप्पनायतनेसुपि ।।

[अभागे लोग जिस धन के सग्रह के लिये बहुत उत्सुक होते हैं, उसे शिल्पी हो चाहे अशिल्पी हो, भाग्यवान् ही उपभोग मे लाते है । सर्वत्र दूसरे प्राणियो को छोडकर पुण्य-वान् प्राणी को ही भोग प्राप्त होते है, जहाँ से भोग नही प्राप्त होते वहा से भी ।]

शास्ता ने ये गाथाये कह 'हे गृहपति ! इन प्राणियो के लिये पुण्य के समान दूसरा आयतन नही है । पुण्यवान के लिए जो खानें नही है, उनमे से भी रत्न पैदा होते है' कहा । फिर ये धर्मदेशना की—

एस देवमनुस्सान सब्बकामददो निधी,
य यदेवाभिपत्थेन्ति सब्बमेतेनलब्भति ।।१।।

सुवण्णता सुस्सरता सुसण्ठान सुरूपता,
आधिपच्चपरिवारा सब्बमेतेन लब्भति ॥२॥
पदेसरज्ज इस्सरियं चक्कवत्तिसुखम्पि य,
देवरज्जम्पि दिब्बेसु सब्बमेतेन लब्भति ॥३॥
मानुस्सिका च सम्पत्ति देवलोके च या रति,
या च निब्बाणसम्पत्ति सब्बमेतेन लब्भति ॥४॥
मित्तसम्पदमागम्म योनिसो वे पयुञ्जतो,
विज्जा विमुत्तिवसीभावो सब्बमेतेन लब्भति ॥५॥
पटिसम्भिदा विमोक्खो च या च सावकपारमी,
पच्चेकबोधि बुद्धभूमि सब्बमेतेन लब्भति ॥६॥
एव महिद्धिया एसा यदिद पुञ्ञसम्पदा,
तस्मा धीरा पससन्ति पण्डिता कतपुञ्ञत ।[1]

[यह (पुण्य) सब देवताओ तथा मनुष्यो की सभी कामनाये पूरी करने वाला खजाना है । इससे जिस-जिस की इच्छा करते है, वह सभी मिलता है ॥१॥ सुवर्ण, सुस्वर, सुन्दर आकार, सुन्दर रूप, आधिपत्य और परिवार इससे सभी कुछ मिलता है ॥२॥ प्रदेश-राज्य, ऐश्वर्य्य, चक्रवर्ती सुख और दिव्य-लोको मे देवराज्य भी—इससे सभी कुछ मिलता है ॥३॥ मानुषिक सम्पत्ति, दिव्य-लोक का आनन्द और निर्वाण सम्पत्ति—इससे सभी कुछ मिलता है ॥४॥ मित्र-सम्पत्ति को प्राप्त कर उसका ठीक उपयोग करने वाले को विद्या, विमुक्ति, वशीभाव इससे सभी कुछ मिलता है ॥५॥ पटिसम्भिदा-ज्ञान, विमोक्ष और जो श्रावक-पारमिता है, प्रत्येक-बोधि और बुद्ध भूमि भी—इससे सभी कुछ मिलता है ॥६॥ यह जो पुण्य-सम्पत्ति है, यह ऐसी ही महान् प्रभाव वाली है । इसीलिए धीर पण्डित जन पुण्य-कर्तृत्व की प्रशसा करते है ॥७॥]

अब जिन-जिन रत्नो मे अनाथ-पिण्डिक की श्री प्रतिष्ठित हुई । उन सब को कहने के लिये यह 'कुक्कट' गाथा कही —

---

१ खुद्दक पाठ, निधिकण्ड सुत्तं ।

कुक्कुटमणयो दण्डो थियो च पुञ्ञलक्खणो,
उप्पज्जन्ति अपापस्स कतपुञ्ञस्स जन्तुनो॥

[पाप-रहित, पुण्यवान् प्राणी को मुर्गा, मणि, छडी तथा स्त्री 'रत्न' पैदा होते है।]

गाथा कह कर जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द स्थविर था। कुल-विश्वासी तपस्वी तो सम्यक् सम्बुद्ध थे।

२८५. मणिसूकर जातक

"दरिया सत्तवस्सानि ..." यह शास्ता ने जेतवन मे रहते समय सुन्दरी की हत्या के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

'उस समय भगवान् का सत्कार होता था, गौरव होता था' कथा खन्धक मे आई ही है। यहाँ सक्षिप्त कथा दी गई है। भगवान् तथा भिक्षुसघ का जब पाँचो नदियो मे आई बाढ की तरह लाभ-सत्कार होने लगा, तो दूसरे तैर्थिको ने, जिनका लाभ-सत्कार जाता रहा—सूर्य्योदय के समय जुगनु की तरह निष्प्रभ हो, इकट्ठे हो सलाह की—जब से श्रमण गौतम हुआ है, तब से हमारा लाभ-सत्कार जाता रहा। कोई यह भी नही जानता कि हम भी हैं। किसके साथ शामिल होकर हम श्रमण गौतम को निन्दित बना उसका लाभ-सत्कार नष्ट करे? उन्हे सूझा कि सुन्दरी के साथ मिलकर ऐसा कर सकेंगे।

एक दिन जब सुन्दरी तैर्थिको के आराम मे प्रवेश कर, प्रणाम कर खडी हुई तो उसमे कोई नही बोला। उसके बार-बार बोलने पर भी जब कोई नही बोला तो उसने पूछा—क्या आर्यो को किसी ने कष्ट दिया?

'बहन ! क्या नही देखती है कि श्रमण गौतम हमे कष्ट दे' हमारे लाभ-सत्कार को नष्ट कर घूमता है ?"

"मै उस विषय मे क्या कर सकती हूँ ?"

"बहन ! तू रूपवान है, अति सुन्दर है। श्रमण गौतम को अपयश दे, जनता को अपनी बात का विश्वास करा, उसका लाभ-सत्कार नष्ट कर।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और चली गई। उस दिन से शाम को जब जनता शास्ता का धर्मोपदेश सुनकर नगर को लौटती, तो वह मालागन्ध, विलेपन, कपूर, कटुकप्फल आदि सुगन्धियाँ ले जेतवन की ओर जाती।

"कहाँ जाती है ?"

"श्रमण गौतम के पास। मैं उसके साथ एक गन्धकुटी मे रहती हूँ" कह किसी एक तैर्थिको के आराम (विहार) मे रात बिता प्रात काल ही जेतवन के रास्ते से उतर सडक की ओर जाती। "क्यो सुन्दरी कहाँ गई थी ?" पूछने पर उत्तर देती—

"श्रमण गौतम के साथ एक साथ गन्धकुटी मे रह कर उससे रतिक्रीडा करके आई हूँ।"

इसके कुछ दिन बाद तैर्थिको ने धूर्तो को कार्षापण देकर कहा—"जाओ सुन्दरी को मार कर, श्रमण गौतम की कुटी के समीप कूडे की ढेरी मे छिपा आओ।" उन्होने वैसा ही किया। तब तैर्थिको ने हल्ला मचाया—सुन्दरी नही दिखाई देती। राजा को खबर दी। पूछा कही सन्देह है ? कहा—इन दिनो जेतवन जाती थी। वहाँ क्या हुआ, नही जानते ?

राजा ने आज्ञा दी—तो जाओ, उसे खोजो। तैर्थिक अपने सेवक ले, जेतवन पहुँचे और खोजते हुये कूडे के ढेर मे देख उसे चारपाई पर लिटा नगर मे ला राजा से कहा—श्रमण गौतम के शिष्यो ने (अपने) शास्ता के पापकर्म को छिपाने के लिये सुन्दरी को मारकर मालाओ के कूडे के ढेर मे छिपा दिया।

"तो जाओ, नगर मे घूमो।"

वे 'श्रमणो की करतूत देखो' आदि कहते हुए नगर की गलियो मे घूम-फिर राज-द्वार पर पहुँचे। राजा ने सुन्दरी के शरीर को कच्चे श्मशान मे एक मचान बनवाकर उस पर रखवा दिया। आर्य-श्रावको को छोड शेष

श्रावस्ती-वासी नगर मे, नगर के बाहर, उपवन मे, आरण्य मे—सभी जगह भिक्षुओ की निन्दा करते घूमते थे—शाक्य-पुत्र श्रमणो की करतूत देखो। भिक्षुओ ने तथागत से यह बात कही।

शास्ता ने कहा—उन मनुष्यो का इस प्रकार प्रतिवाद करो —

अभूतवादी निरयं उपेति
यो वापि कत्वा न करोमीति चाह,
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥

[असत्य-वादी नरक मे जाता है, जो करके 'नही किया' कहता है, वह भी नरक मे जाता है। दोनो ही प्रकार के नीच-कर्म करने वाले मरकर बराबर हो जाते हैं।]

राजा ने आदमियो को नियुक्त किया कि पता लगाये कि किन दूसरो ने सुन्दरी को मारा है? वह धूर्त उन कार्षापणो की शराब पी, एक दूसरे के साथ झगडा करते थे। उन मे से एक बोला—तू ने सुन्दरी को एक ही प्रहार से मार दिया, उसकी लाश को मालाओ के कूडे के ढेर मे छिपा दिया। अब उसी से मिले कार्षापणो की शराब पीता है, अच्छा अच्छा। राजपुरुष उन धूर्तों को पकड कर राजा के पास ले गये। राजा ने पूछा—तुम ने मारा?

"हाँ देव।"

"किसने मरवाया?"

"दूसरे तैर्थिको ने।"

राजा ने तैर्थिको को बुलवाकर आज्ञा दी—जाओ, तुम सुन्दरी को उठवाकर उसके साथ नगर मे यह कहते हुए घूमो कि श्रमण गौतम को बदनाम करने के लिये हमने इस सुन्दरी को मरवाया। इस मे न गौतम का दोष है, न गौतम-श्रावको का दोष है। उन्होने वैसा किया। मूर्ख जनता तब श्रद्धावान् हुई। तैर्थिको ने भी मनुष्य-वध का दण्ड भोगा। तब से बुद्धो का सत्कार बढ गया।

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बात-चीत चलाई—आयुष्मानो! तैर्थिक बुद्धो को कलङ्कित करना चाहते थे, स्वय कलङ्कित हो गये। बुद्धो का

तो लाभ-सत्कार बढ गया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, बुद्धो को कोई कालिख नही लगा सकता। बुद्धो को कालिख लगा सकना वैसा ही है जैसे मणि को कालिख लगा सकना। 'पूर्व समय मे मणि को कालिख लगाने का प्रयत्न करने वाले कालिख नही लगा सके' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाव मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हो, बडे होने पर काम-भोगो मे दोप देख, निकलकर, हिमालय प्रदेश को तीन पर्वत मालाये पार कर, तपस्वी बन, पर्ण-शाला मे रहने लगे। उसके थोडी ही दूर पर मणि-गुफा थी। वहाँ तीस सूअर रहते थे। गुफा के पास एक सिंह घूमता था। मार्ग मे उसकी प्रति-छाया पडती थी। सिंह की छाया देख, डरके मारे सूअरो का खून और मास सूख गया। उन्होने सोचा—इस मणि के चमकदार होने से ही यह प्रति-छाया दिखाई देती है। इस मणि को मैला, भद्दा बना दें। वे समीप के एक तालाब मे गये और वहाँ कीचड मे लेट आकर मणि से बदन रगडने लगे। सूअरो के बालो की रगड खाने से मणि और भी चमकने लगी। सूअरो को जब मणि को मैला करने का कोई उपाय नही सूझा, तो उन्होने सोचा कि मणि को मैला करने का उपाय तपस्वी से पूछे। बोधिसत्व के पास आ, प्रणाम कर, एक ओर खडे हो उन्होने पहली दो गाथायें कही —

दरिया सत्तवस्सानि तिंसमत्ता वसामसे,
हञ्छेम मणिनो आभ इति नो मन्तितं अहु।
याव याव निघसाम भीयो वोदायते मणि,
इदञ्चदानि पुच्छाम किं किच्च इध मञ्ञसि॥

[हम तीस जने सात वर्ष से मणि-गुफा मे रहते है। हमने निश्चय किया है कि मणि की आभा नष्ट कर दे। ज्यो-ज्यो रगडते हैं, त्यो-त्यो मणि अधिक अधिक चमकती जाती है। अब हम यह पूंछते है कि क्या करना चाहिए ?]

उन्हें उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही —

अयं मणि वेळु रियो अकाचो विमलो सुभो,
नास्स सक्का सिरिं हन्तुं अपक्कमथ सूकर ॥

[यह मणि बिल्लौर है, चिकनी है, विमल है, शुभ है। तुम इसकी चमक को नष्ट नहीं कर सकते। हे सूअरो! (यहाँ से) चले जाओ।]

उन्होंने बोधिसत्व की बात सुन वैसा किया। बोधिसत्व ध्यान कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी मैं ही था।

२८६. सालुक जातक

"मा सालुकस्स पिहयि" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक प्रौढ़ कुमारी के प्रति आसक्ति के बारे में कही।

कथा चुल्लनारदकस्सप[1] जातक में आएगी।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्तेजित है?"

"भन्ते! हाँ।"

"तुझे किसने उत्तेजित किया है?"

"भन्ते! प्रौढ़ कुमारी ने।"

---

१ चुल्लनारद जातक (४७७), देखो मुनिक जातक (१ ३ ३०)।

'भिक्षु ! यह तेरी अनर्थ-कारिणी है। पूर्व-जन्म मे भी तू इसके विवाह के लिये आई परिषद का जल-पान बना' कह भिक्षुओ के प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महालोहित नाम का बैल हुआ। उसके छोटे भाई का नाम था चुल्ललोहित। दोनो गामडे के एक परिवार मे काम करते थे। उस परिवार मे एक आयु-प्राप्त कुमारी थी। उसकी दूसरे परिवार मे शादी पक्की कर दी गई।

उस कुल मे सालुक नाम का एक सूअर यवागु-भात खिला-खिला कर पोसा जाता था कि विवाह के समय जल-पान का काम देगा। वह चारपाई के नीचे सोता था। एक दिन चुल्ललोहित ने भाई को कहा —

"भाई ! हम इस कुल मे काम करते हैं। हमारे ही सहारे यह कुल जीता है। लेकिन यह मनुष्य हमे केवल तृण-पुआल भर देते हैं। इस सूअर को यवागु-भात खिला-खिला कर पालते है। चारपाई के नीचे सुलाते है। यह इनका क्या (काम) करेगा ?"

महालोहित ने कहा—तात ! तू इसके यवागु-भात की इच्छा मत कर। इस कुमारी के विवाह के दिन, इसका जल-पान बनाने के लिये इसे पोस रहे है कि इसका मास मोटा जाय। थोडे ही दिन बाद देखना—चारपाई के नीचे से निकाल, मारकर, टुकडे-टुकडे करके आगन्तुको का भोजन बनायेंगे। यह कह उसने पहली दो गाथाएँ कही —

मा सालुकस्स पिहयि आतुरन्नानि भुञ्जति,
अप्पोसुक्को भुसं खाद एवं दीघायुलक्खणं ॥
इदानि सो इधागन्त्वा अतिथि युत्तसेवको,
अथ दक्खसि सालूक सयन्त मुसलुत्तर ॥

[सालुक (सूअर के भोजन) की इर्षा (= इच्छा) मतकर। वह मरणान्त भोजन खाता है। (तू) उत्सुक्ता-रहित होकर भूसे को खा। यह दीर्घायु का लक्षण है।

[अब वह (=विवाह करने वाला) यहाँ आकर अतिथि होगा। तब तू मूसल की तरह होठ वाले सूअर को मोता (मरा हुआ) देखेगा।]

उसके कुछ दिन बाद बारात के आने पर सालुक को मारकर जल-पान किया गया। दोनो बैलो ने उसका यह हाल देख सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है।

शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर इस अर्थ को प्रकट करने वाली तीसरी गाथा कही—

विकतं सूकर दिस्वा सयन्तं मुसलुत्तर,
जरग्गवा विचिन्तेसु वरम्हाक भुसामिव॥

[मूसल जैसे होठ वाले सूअर को काटा जाकर मरा हुआ देख, बैलो ने सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य के अन्त मे वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ कुमारी इस समय की प्रौढ कुमारी। सालुक उत्तेजित भिक्षु था। चुल्ललोहित आनन्द और महालोहित तो मैं ही था।

२८७ लाभगरह जातक

"नानुमत्तो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के शिष्य के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के शिष्य ने पास आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—भन्ते! मुझे लाभ का मार्ग बतायें। क्या करने से चीवर आदि की प्राप्ति होती है? स्थविर ने उत्तर दिया—आयुष्मान्! चार बातो से युक्त होने से लाभ-सत्कार की प्राप्ति होती है। लाज-शर्म छोड, श्रमणत्व का ख्याल न

'भिक्षु ! यह तेरी अनर्थ-कारिणी है। पूर्व-जन्म मे भी तू इसके विवाह के लिये आई परिषद का जल-पान बना' कह भिक्षुओ के प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही:—

अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महालोहित नाम का बैल हुआ। उसके छोटे भाई का नाम था चुल्ललोहित। दोनो गामडे के एक परिवार मे काम करते थे। उस परिवार मे एक आयु-प्राप्त कुमारी थी। उसकी दूसरे परिवार मे शादी पक्की कर दी गई।

उस कुल मे सालुक नाम का एक सूअर यवागु-भात खिला-खिला कर पोसा जाता था कि विवाह के समय जल-पान का काम देगा। वह चारपाई के नीचे सोता था। एक दिन चुल्ललोहित ने भाई को कहा —

"भाई ! हम इस कुल मे काम करते है। हमारे ही सहारे यह कुल जीता है। लेकिन यह मनुष्य हमे केवल तृण-पुआल भर देते है। इस सूअर को यवागु-भात खिला-खिला कर पालते है। चारपाई के नीचे सुलाते है। यह इनका क्या (काम) करेगा ?"

महालोहित ने कहा—तात ! तू इसके यवागु-भात की इच्छा मत कर। इस कुमारी के विवाह के दिन, इसका जल-पान बनाने के लिये इसे पोस रहे है कि इसका मास मोटा जाय। थोडे ही दिन बाद देखना—चारपाई के नीचे से निकाल, मारकर, टुकडे-टुकडे करके आगन्तुको का भोजन बनायेगे। यह कह उसने पहली दो गाथाएँ कही —

मा सालुकस्स पिहयि आतुरन्नानि भुञ्जति,
अप्पोसुक्को भुस खाद एव दीघायुलक्खण ॥
इदानि सो इधागन्त्वा अतिथि युत्तसेवको,
अथ दक्खसि सालूक सयन्त मुसलुत्तर ॥

[सालुक (सूअर के भोजन) की ईर्षा (= इच्छा) मतकर। वह मरणान्त भोजन खाता है। (तू) उत्सुक्ता-रहित होकर भूसे को खा। यह दीर्घायु का लक्षण है।

[अब वह (= विवाह करने वाला) यहाँ आकर अतिथि होगा। तब तू मूसल की तरह होठ वाले सूअर को सोता (मरा हुआ) देखेगा।]

उसके कुछ दिन बाद बारात के आने पर सालुक को मारकर जल-पान किया गया। दोनो बैलो ने उसका यह हाल देख सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है।

शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर इस अर्थ को प्रकट करने वाली तीसरी गाथा कही—

विकतं सूकर दिस्वा सयन्त मुसलुत्तर,
जरग्गवा विचिन्तेसुं वरम्हाक भुसामिव ॥

[मूसल जैसे होठ वाले सूअर को काटा जाकर मरा हुआ देख, बैलो ने सोचा—हमारा भूसा ही अच्छा है।]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्य के अन्त मे वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की प्रौढ कुमारी इस समय की प्रौढ कुमारी। सालुक उत्तेजित भिक्षु था। चुल्ललोहित आनन्द और महालोहित तो मैं ही था।

२८७ लाभगरह जातक

"नानुमत्तो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सारिपुत्र स्थविर के शिष्य के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के शिष्य ने पास आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—भन्ते! मुझे लाभ का मार्ग बतायें। क्या करने से चीवर आदि की प्राप्ति होती है? स्थविर ने उत्तर दिया—आयुष्मान्! चार बातो से युक्त होने से लाभ-सत्कार की प्राप्ति होती है। लाज-शर्म छोड, श्रमणत्व का ख्याल न

कर, थोडा पागल की तरह होना चाहिए, नट की तरह होना चाहिए, असयत-भापी तथा सयमरहित होना चाहिए। वह उस मार्ग की निन्दा करता हुआ आसन से उठकर चला गया। स्थविर ने शास्ता के पास पहुँच यह समाचार कहा। "सारिपुत्र ! इस भिक्षु ने केवल अभी लाभ की निन्दा नही की, पहले भी की है" कह, स्थविर के याचना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर सोलह वर्ष की आयु मे तीनो वेदो तथा अठारह शिल्पो की शिक्षा समाप्त कर चारो दिशाओ मे प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। वह पाँच सौ ब्रह्मचारियो को शिल्प सिखाते थे। एक सदाचारी ब्रह्मचारी ने एक दिन आचार्य्य के पास जाकर पूछा—प्राणियो को (वस्तुओ की) प्राप्ति कैसे होती है ?

"तात ! प्राणियो को चार बाते होने से (वस्तुओ की) प्राप्ति होती है" कह पहली गाथा कही —

नानुमत्तो नापिसुणो नानटो नाकुतूहलो,
मूळ्हेसु लभते लाभं एसा ते अनुसासनी ॥

[जो उन्मत्त (की तरह) नही है, जो चुगली नही खाता है, जो नाट्य करनेवालो की तरह नही है तथा जो असयत नही है, वह मूर्ख आदमियो से लाभ नही प्राप्त करता—यही तेरे लिए शिक्षा है।]

शिष्य ने आचार्य का कहना सुन 'प्राप्ति' की निन्दा करते हुए ये दो गाथाएँ कही —

धिरत्थु त यसलाभं धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या वुत्ति विनिपातेन अधम्मचरियाय वा ॥
अपि चे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,
एसाव जीविका सेय्या या चाधम्मेन एसना ॥

[हे ब्राह्मण, उस यश-लाभ तथा धन-लाभ को धिक्कार है, जो जीविका आत्म-पतन से तथा अधर्मचर्य्या से प्राप्त होती है। अधर्म से जीविका

खोजने की अपेक्षा यही अच्छा है कि भिक्षा-पात्र लेकर अनागारिक बन प्रव्रजित हो भिक्षा माँगे।]

इस प्रकार वह ब्रह्मचारी प्रव्रज्या का गुणानुवाद कर, (घर से) निकल, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, धर्म से भिक्षाटन करता हुआ, समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय ब्रह्मचारी लाभ-निन्दक भिक्षु था। आचार्य तो मैं ही था।

२८८. मच्छुद्दान जातक

"अग्घन्ति मच्छा" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक कुटिल व्यापारी के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा पहले आ ही चुकी है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने एक कुटुम्बी के कुल मे पैदा हो, बडे होने पर कुटुम्ब की स्थापना की। उसका एक छोटा भाई भी था। आगे चलकर उनका पिता मर गया। एक दिन वे दोनो पिता का कर्जा उगाहने गये। एक गाव मे पहुँच, वहाँ से एक हजार कार्षापण पा लौटते समय नदी-तीर्थ पर नाव की प्रतीक्षा करते हुए उन्होने एक पोटली का भात खाया। बोधिसत्व ने बचा हुआ भात गङ्गा मे मछलियो को दे, नदी-देवता को (पुण्य का) हिस्सा दिया। देवता ने पुण्यानुमोदन किया। उसी से उसके यश मे वृद्धि हुई। उस वृद्धि के कारण का ध्यान करके उसने उसे जाना। बोधिसत्व ने भी बालू पर अपना उत्तरीय फैलाया और लेट कर सो रहा।

इसका छोटा भाई कुछ चोर-प्रकृति का था। उसने वे कार्षापण बोधिसत्व को न दे, स्वय ही लेने की इच्छा से, उन कार्षापणो की पोटली

जैसी ही एक और पोटली बना, उसे ककरो से भर, दोनो पोटलियो को एक साथ रखा। जब वे नाव पर चढकर गङ्गा के बीच मे गये तो छोटे भाई ने नौका मे उलझ कर अपनी समझ मे ककरो की पोटली पानी मे फेकते हुए (वास्तव मे) कार्षापणो की पोटली पानी मे फेक दी और भाई से कहा— कार्षापणो की पोटली पानी मे गिर पडी, अब क्या करे।

"जब पानी मे गिर पडी तो अब क्या कर सकते है, चिन्ता मत करो।"

नदी-देवता ने सोचा—मैने इसके दिये पुण्य के हिस्से का अनुमोदन कर यश-वृद्धि प्राप्त की। इसकी चीज की रक्षा करूँगा। उसने अपने प्रताप से वह पोटली एक बडी मछली को निगलवा दी, और स्वय हिफाजत करने लगा।

उस चोर ने भी घर पहुँच 'मैने भाई को ठगा है' सोचते हुए पोटली को खोला। उसमे ककर देख उसका हृदय सूखने लगा। वह चारपाई की दौन मे छिपकर पड रहा। उस समय मछुओ ने मछली पकडने के लिये जाल फेंके। देवता के प्रताप से वह मछली जाल मे आ फँसी। मछुए उसे बेचने नगर मे आए। बडी मछली देख मनुष्य मूल्य पूछते थे। मछुवे कहते— एक हजार कार्षापण और सात मासक देकर ले ले। मनुष्य हँसी उडाते— हजार की कीमत की मछली भी हमने देख ली!

मछुए मछली लेकर बोधिसत्व के घर के दरवाजे पर पहुँचे और बोले— "यह मछली ले लो।"

"इसकी कीमत क्या है?"

"सात मासक देकर ले लो!"

"दूसरो को कितने मे दोगे?"

"औरो को एक हजार कार्षापण तथा सात मासक मे देगे। आप (केवल) सात मासक देकर ले ले।"

उसने उन्हे सात मासक दे, मछली भार्य्या के पास भेजी। भार्य्या ने मछली का पेट फाडते समय हजार की पोटली देखी तो बोधिसत्व को कहा। बोधिसत्व ने उसे देख, अपने चिह्न से पहचान लिया कि पोटली उसकी है। "इसीलिये," उसने सोचा, "यह मछुवे दूसरो को हजार कार्षापण और सात मासक लेकर मछली देते, लेकिन हमारे पास पहुँच कर, हजार कार्षापण हमारे ही होने के कारण, वह हमे सात ही मासक लेकर दे गये।" इस भेद

को भी जो न समझे उसे श्रद्धावान् नही बनाया जा सकता। यह सोच पहली गाथा कही —

अग्घन्ति मच्छा अधिक सहस्सं,
न सो अत्थि यो इमं सद्दहेय्य।
मय्हञ्च अस्सु इध सत्तमासा,
अहम्पि त मच्छुद्दानं किणेय्यं॥

[एक हजार कार्षापण अधिक (सात मासक) मछली का मूल्य है, इस पर विश्वास करने वाला कौन है? लेकिन मेरे लिये उसका मूल्य सात मासक कहा गया। मैंने भी उस मछली (समूह) को खरीद लिया।]

यह कह कर सोचने लगा—ये कार्षापण मुझे क्यो मिले? उस समय नदी-देवता ने आकाश मे दिखाई देते हुए खडे हो कहा —

"मै गङ्गा-देवता हूँ। तूने बचा हुआ भात मछलियो को दे मुझे (पुण्य मे) हिस्सा दिया। उसी से मैंने तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा की।" यह गाथा भी कही —

मच्छानं भोजनं दत्वा मम दक्खिणमादिसि,
त दक्खिण सरन्तिया कतं अपचितिं तया॥

[मछलियो को भोजन दे मुझे दक्षिणा (पुण्य मे हिस्सा) दी। उसी दक्षिणा को, उसी तेरे द्वारा किये उपकार को याद करते हुए, मैंने तेरी सम्पत्ति की रक्षा की।]

यह कह उस देवता ने, उसके छोटे भाई ने जो कुटिल कर्म किया था सब बताया और कहा—"यह अब हृदय सुखा रहा है और पडा है। दुष्ट-चित्त की उन्नति नही होती। मैंने तुम्हारी चीज नष्ट न हो इसलिये तुम्हारा धन लाकर दिया। यह अपने चोर छोटे भाई को न दे केवल तुम ही रखना।"

इतना कह तीसरी गाथा कही —

पदुट्ठचित्तस्स न फाति होन्ति
न चापि न देवता पूजयन्ति,
यो भातर पेत्तिक सापतेय्य
अवञ्चयि दुक्कतकम्मकारि॥

[जो दुष्कर्म करने वाला अपने भाई की पैतृक-सम्पत्ति को ठगता है, उस दुष्ट-चित्त की न उन्नति होती है, न ही देवता उसकी पूजा करते हैं।]

देवता ने मित्रद्रोही चोर को कार्षापण न दिलाने के लिए ऐसा कहा। लेकिन बोधिसत्व ऐसा नही कर सकते। उन्होंने उसे भी पाँच सौ कार्षापण भेज दिये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे व्यापारी स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय का कुटिल व्यापारी अब कुटिल व्यापारी। ज्येष्ठ भाई तो मैं ही था।

२८९ नानच्छन्द जातक

"नानच्छन्दा महाराज " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय आयुष्मान आनन्द की आठ वरो की प्राप्ति के बारे मे कही। (वर्तमान-) कथा ग्यारहवें परिच्छेद की जुण्ह-जातक[1] मे आएगी।

ख. वर्तमान कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख पिता के मरने पर राज्यारूढ हुए। उसके यहाँ पिता के समय का एक पुरोहित था, जिसे पदच्युत कर दिया गया था। वह दरिद्र अवस्था मे एक पुराने घर मे रहता था। एक दिन बोधिसत्व अपरिचित भेष मे रात को नगर मे घूमते थे। चोरी करके लौटते हुए चोरो ने एक सुरा की दुकान पर सुरा पी और

---

१ जुण्ह जातक (४५६)।

घडे मे भरकर घर ले चले। उन्होने उसे देख लिया और पूछा—कौन है ? फिर पीटा और चादर छीन ली तथा घडा उठवा कष्ट देते हुए चले।

उस ब्राह्मण ने भी उस समय बाहर निकल, गली मे खडे हो नक्षत्र देखकर जाना कि राजा शत्रुओ के हाथ मे पड गया। उसने ब्राह्मणी को बुलाया। वह शीघ्रता से उसके पास आई—आर्य ! क्या है ? वह बोला—भगवति। हमारा राजा शत्रुओ के हाथ मे जा पडा है।

"आर्य्य ! तुम्हे राजा के समाचार से क्या ? (उसके) ब्राह्मण जानेंगे।"

राजा ने ब्राह्मण की बात सुन, थोडा आगे बढ, चोरो से प्रार्थना की—स्वामी ! मैं दुखिया हूँ। मेरी चादर लेकर मुझे छोड दें।

बार-बार कहने पर उन्होने दया करके छोड दिया। वह उनका निवास-स्थान समझ रुका। ब्राह्मण ने कहा—भगवति ! हमारा राजा शत्रु के हाथ से मुक्त हो गया।

राजा ने यह बात भी सुनी और प्रासाद पर चढ गया। रात बीत कर प्रभात होने पर उसने ब्राह्मणो को बुलाकर पूछा—आचार्यो ! क्या रात को नक्षत्र देखे ?

"देव ! हाँ।"

"नक्षत्र शुभ है वा अशुभ ?"

"देव ! शुभ है।"

"कोई ग्रह है ?"

"कोई ग्रह नही है।"

'अमुक घर से ब्राह्मण को बुला लाओ' आज्ञा दे राजा ने पूर्व पुरोहित को बुलाकर पूछा—

"आचार्य्य ! क्या आप ने नक्षत्र देखा ?"

"देव ! हाँ देखा।"

"कोई ग्रह है ?"

"हाँ महाराज ! आज रात आप शत्रु के हाथ मे पडकर थोडी ही देर मे मुक्त हो गये।"

'नक्षत्र जानने वाले को ऐसा होना चाहिए' कह राजा ने ब्राह्मणो को निकाल दिया और (पूर्व पुरोहित से) कहा—

"ब्राह्मण ! मैं प्रसन्न हूँ। वर माँग।"

"महाराज ! स्त्री-पुत्र मे मलाह करके माँगूँगा।"

"जा सलाह करके आ।"

उसने जाकर ब्राह्मणी, पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधु तथा दासी को बुलाकर पूछा—राजा मुझे वर देना चाहता है। क्या वर माँगू ?

ब्राह्मणी बोली—मेरे लिये सौ गौवें लाये।

छत्त माणवक नाम के पुत्र ने कहा—मेरे लिये कुमुद वर्ण के घोडो वाला श्रेष्ठ रथ लाये।

पुत्र-वधू बोली—मुझे मणि-कुण्डल से आरम्भ करके सारे अलङ्कार चाहिए।

पूर्णा दासी बोली—मुझे उखली, मूसल और सूप चाहिए।

ब्राह्मण की इच्छा थी कि एक श्रेष्ठ गाँव ले। वह राजा के पास पहुँचा। राजा ने पूछा—ब्राह्मण, क्या स्त्री-पुत्र से सलाह कर ली ?

"हाँ महाराज सलाह की, लेकिन सब की एक राय नही।" उसने पहली गाथा कही—

नानच्छन्दा महाराज एकागारे वसामसे,
अहं गामवरं इच्छे ब्राह्मणी च गव सतं ॥
छत्तो च आजञ्ञरथं कञ्ञा च मणिकुण्डलं,
या चेसा पुण्णिका जम्मी उदुक्खल अभिकङ्खति ॥

[महाराज ! हम भिन्न-भिन्न इच्छाओ वाले है, (यद्यपि) एक घर मे रहते हैं। मेरी इच्छा तो है श्रेष्ठ गाव मिले, ब्राह्मणी की इच्छा है सौ गौवें। छत्त श्रेष्ठ-रथ चाहता है और पुत्र-वधू (कन्या) मणि-कुण्डल। और यह जो निकम्मी पुण्णिका दासी है, यह चाहती है ऊखल।]

राजा ने आज्ञा दी कि सभी जो-जो चाहते है वह सब दे दिया जाय। उसने यह गाथा कही—

ब्राह्मणस्स गामवर ब्राह्मणिया गव सत
पुत्तस्स आजञ्ञरथं कञ्ञाय मणि कुण्डलं,
यञ्चेत पुण्णिक जम्मिं पटियादेथ उदुक्खलं ॥

[ब्राह्मण को श्रेष्ठ गाँव, ब्राह्मणी को सौ गौवें, पुत्र को श्रेष्ठ-रथ, कन्या को मणि-कुण्डल और यह जो पुण्णिका ऊखल (माँगती है) वह उसे दे दो।]

इस प्रकार जो-जो ब्राह्मण ने इच्छा की वह सब तथा और भी सम्पत्ति दे 'अब से हमारे कामो को करने मे उत्सुक रहे' कह राजा ने ब्राह्मण को अपने पास रख लिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ब्राह्मण आनन्द था। राजा तो मैं ही था।

२९० सीलवीमस जातक

"सील किरेव कल्याण" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक शील की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे मे कही। वर्तमान कथा और अतीत कथा दोनो ही प्रथम परिच्छेद की सीलवीमंस जातक[1] मे विस्तार से आ ही गई है।

ख अतीत कथा

इस कथा मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसके पुरोहित ने अपने शील की परीक्षा करने के लिए सुनार के तख्ते मे दो दिन एक-एक कार्षापण उठाया। तीसरे दिन उसे चोर बना राजा के पास ले गये। उसने रास्ते मे सपेरे को सर्प खिलाते देखा। राजा ने पूछा—भो! ऐसा किस लिये किया? ब्राह्मण ने 'अपने शील की परीक्षा लेने के लिए' कह ये गाथायें कही —

सील किरेव कल्याण सील लोके अनुत्तर,
पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति ॥

---

1 सीलवीमस जातक (१ ९ ६)।

"ब्राह्मण ! मै प्रसन्न हूँ। वर माँग।"

"महाराज ! स्त्री-पुत्र मे सलाह करके माँगूंगा।"

"जा सलाह करके आ।"

उसने जाकर ब्राह्मणी, पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधु तथा दासी को बुलाकर पूछा—राजा मुझे वर देना चाहता है। क्या वर माँगू ?

ब्राह्मणी बोली—मेरे लिये सौ गौवें लाये।

छत्त माणवक नाम के पुत्र ने कहा—मेरे लिये कुमुद वर्ण के घोडो वाला श्रेष्ठ रथ लाये।

पुत्र-वधु बोली—मुझे मणि-कुण्डल से आरम्भ करके सारे अलङ्कार चाहिए।

पूर्णा दासी बोली—मुझे उखली, मूसल और सूप चाहिए।

ब्राह्मण की इच्छा थी कि एक श्रेष्ठ गाँव ले। वह राजा के पास पहुँचा। राजा ने पूछा—ब्राह्मण, क्या स्त्री-पुत्र से सलाह कर ली ?

"हाँ महाराज सलाह की, लेकिन सब की एक राय नही।" उसने पहली गाथा कही—

> नानच्छन्दा महाराज एकागारे वसामसे,
> अहं गामवर इच्छे ब्राह्मणी च गवं सतं॥
> छत्तो च आजञ्ञरथं कञ्ञा च मणिकुण्डलं,
> या चेसा पुण्णिका जम्मी उदुक्खलं अभिकङ्खति॥

[महाराज ! हम भिन्न-भिन्न इच्छाओ वाले है, (यद्यपि) एक घर मे रहते हैं। मेरी इच्छा तो है श्रेष्ठ गाव मिले, ब्राह्मणी की इच्छा है सौ गौवें। छत्त श्रेष्ठ-रथ चाहता है और पुत्र-वधु (कन्या) मणि-कुण्डल। और यह जो निकम्मी पुण्णिका दासी है, यह चाहती है ऊखल।]

राजा ने आज्ञा दी कि सभी जो-जो चाहते है वह सब दे दिया जाय। उसने यह गाथा कही—

> ब्राह्मणस्स गामवर ब्राह्मणिया गव सत
> पुत्तस्स आजञ्ञरथ कञ्ञाय मणि कुण्डलं,
> यञ्चेत पुण्णिक जम्मिं पटियादेथ उदुक्खल॥

[ब्राह्मण को श्रेष्ठ गाँव, ब्राह्मणी को सौ गौवें, पुत्र को श्रेष्ठ-रथ, कन्या को मणि-कुण्डल और यह जो पुण्णिका ऊखल (माँगती है) वह उसे दे दो।]

इस प्रकार जो-जो ब्राह्मण ने इच्छा की वह सब तथा और भी सम्पत्ति दे 'अब से हमारे कामो को करने मे उत्सुक रहे' कह राजा ने ब्राह्मण को अपने पास रख लिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ब्राह्मण आनन्द था। राजा तो मैं ही था।

२९० सीलवीमस जातक

"सील किरेव कल्याण " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक शील की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे मे कही। वर्तमान कथा और अतीत कथा दोनो ही प्रथम परिच्छेद की सीलवीमंस जातक[1] मे विस्तार से आ ही गई है।

ख. अतीत कथा

इस कथा मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसके पुरोहित ने अपने शील की परीक्षा करने के लिए सुनार के तख्ते से दो दिन एक-एक कार्षापण उठाया। तीसरे दिन उसे चोर बना राजा के पास ले गये। उसने रास्ते मे सपेरे को सर्प खिलाते देखा। राजा ने पूछा—भो! ऐसा किस लिये किया? ब्राह्मण ने 'अपने शील की परीक्षा लेने के लिए' कह ये गाथायें कही —

सीलं किरेव कल्याणं सील लोके अनुत्तरं,
पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति॥

---

१ सीलवीमस जातक (१ ८ ६)।

को हजार-हजार देता था। उसे स्त्री की लत, सुरा की लत, मास की लत लग गई। वह 'गाना कहाँ है?' 'नाचना कहाँ है?' 'बजाना कहाँ है?' ढूढता हुआ तमाशे का अत्यधिक अभिलाषी हो भटकता था। उसने थोडे ही समय मे अपना चालीस करोड धन और काम मे आने लायक सामान नष्ट कर दिया और दरिद्र हो चीथडे पहन घूमने लगा।

शक्र ने ध्यान लगाकर उसके दरिद्र होने की बात जानी। पुत्र-प्रेम के वशीभूत हो उसने आकर उसे सब कामनाओ की पूर्ति करने वाला घडा दिया और कहा—इस घडे को सभाल कर रखना जिसमे टूटने न पाये। यह तेरे पास रहने से धन की सीमा नही रहेगी। अप्रमादी होकर रहना। यह उपदेश दे (इन्द्र) देवलोक को ही लौट गया। वह तब से सुरापान करता हुआ घूमने लगा। बदमस्त होकर वह उस घडे को आकाश मे फेंकता और फिर वापिस रोकता था। एक बार वह चूक गया। घडा जमीन पर गिरा और टूट गया। उसके बाद फिर दरिद्र हो, चीथडे लपेट, हाथ मे खप्पर ले, भीख माँगता हुआ घूमने लगा। इस प्रकार वह दूसरे की दीवार (के नीचे आ जाने) के कारण मर गया। शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कह ये गाथायें कही —

सब्बकामदद कुम्भ कुट लद्धान धुत्तको,
याव सो अनुपालेति ताव सो सुखमेधति॥
यदा मत्तो च दित्तो च पमादा कुम्भमभिदा,
ततो नग्गो च पोत्थो च पच्छा बालो विहञ्ञति,
एवमेव यो धनं लद्धा अमत्ता परिभुञ्जति,
पच्छा तपति दुम्मेधो कुटं भिन्नोव धुत्तको॥

[धूर्त्त सब कामनाओ की पूर्ति करने वाले घडे को पाकर जब तक उसकी रक्षा करता है तब तक सुख भोगता है। लेकिन जब बेहोशी से, अभिमान से तथा प्रमाद से घडे को फोड डालता है, तो पीछे वह मूर्ख नग्न हो तथा चीथडे लपेटे मारा जाता है। उसी तरह जो कोई धन प्राप्त कर बेहिसाब खर्च करता है, वह मूर्ख उस धूर्त्त की तरह जिसका घडा फूट गया पीछे कष्ट पाता है।]

ये गाथायें कह जातक का मेल बैठाया, उस समय घडा फोडने वाला धूर्त्त सेठ का भान्जा था। शक्र तो मैं ही था।

२९२. सुपत्त जातक

"वाराणस्स महाराज" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय बिम्वा देवी को सारिपुत्र द्वारा लाकर दिये गये रोहित मछली के सूप तथा नवीन घृत-मिश्रित शाली भात के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त अब्भन्तर जातक[1] की कथा के सदृश ही है। उस समय भी स्थविरी को उदर-पीडा हुई। राहुल भद्र ने स्थविर को कहा। स्थविर उसे आसनशाला मे बिठा कोशल-नरेश के निवास-स्थान पर गये। वहाँ से उन्होने रोहित मछली का सूप और नवीन घृत-मिश्रित शाली भात लाकर उसे दिया। उसने माता स्थविरी को दिया। उसके खाते ही उसकी उदर-पीडा शान्त हो गई। राजा ने आदमियो को भेज पता लगवाया और उस समय से वह स्थविरी को उस तरह का भात दिलवाता रहा। एक दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बात चलाई—आयुष्मानो! धर्म-सेनापति ने स्थविरी को वैसा भोजन कराया। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र ने राहुल-माता की इच्छा पूरी की, पहले भी की है।" इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही —

---

१ अब्भन्तर जातक (३ ४ १)।

उत्पन्न हुआ और उसने राजा की रसोई मे पके कीमती राज-भोजन—मछली-की इच्छा की। उस राजा का भेजा हुआ दूत मै यहाँ आया। मैंने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया और (इसी कारण से) नाक पर चोट की।]

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—हम मनुष्यो को भी बहुत-सा धन देकर अपने सुहृद नही बना सकते। ग्रामादि देकर भी हमे ऐसे आदमी नही मिलते जो हमारे लिये जीवन बलिदान कर सकें। यह कौआ होकर भी अपने राजा के लिये जान देता है—बडा सत्-पुरुष है, मधुर-भाषी है तथा धार्मिक है। उसके इन गुणो पर प्रसन्न हो राजा ने श्वेत-छत्र से उसकी पूजा की। उसने उस छत्र से अपने राजा की पूजा कर सुपत्त का ही गुणानुवाद किया। राजा ने उसे बुलवा, धर्मोपदेश सुन, उन दोनो के लिये अपने ही सदृश भोजन का प्रबन्ध किया। शेष कौओ के लिये वह प्रतिदिन एक अम्मण चावल पकवाता था। स्वय बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, सभी प्राणियो को अभय बना, पञ्च-शीलो की रक्षा करता था।

सुपत्त कौवे का उपदेश सात सौ वर्ष तक चला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। सेनापति सारिपुत्र। सुफस्सा राहुल-माता। सुपत्त तो मैं ही था।

२९३ कायविच्छिन्द जातक

"पुट्ठस्स मे " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक पुरुष के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक आदमी पाण्डु रोग से पीडित था। वैद्यो ने जवाब दे दिया था। उसके स्त्री-बच्चे भी सोचते थे—इसकी सेवा कौन कर सकता है? उसे ख्याल आया—यदि मैं इस रोग से बच जाऊँ तो प्रव्रजित हो जाऊँगा। वह कुछ ही दिन मे कोई अनुकूल पथ्य मिलने से निरोग हो गया।

उसने जेतवन पहुँच प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता से प्रव्रज्या और उप-सम्पदा प्राप्त कर वह शीघ्र ही अर्हत हो गया।

एक दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक पाण्डु रोगी 'इस रोग से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच प्रव्रजित हुआ और उसने अर्हत्व प्राप्त किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत!"

"भिक्षुओ! न केवल इसी ने किन्तु पूर्व समय मे पण्डितो ने भी यही कह, रोग से उठ, प्रव्रजित हो अपनी उन्नति की।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर कुटुम्ब का पालन करते हुए पाण्डु रोगी हुए। वैद्य भी चिकित्सा न कर सके। स्त्री-बच्चे भी निराश हो गये। वह 'इस रोग से मुक्त होने पर प्रव्रजित होऊँगा' सोच कोई पथ्य पा निरोग हो गया। तब उसने हिमालय मे प्रवेश कर ऋषि-प्रव्रज्या ली। उसने समा-पत्तिया और अभिञ्ञा उत्पन्न कर, ध्यान-सुख से विहार करते हुए 'अब तक इस तरह का सुख नही मिला' यह प्रीति-वाक्य कहते हुए, ये गाथाएँ कही —

पुट्ठस्स मे अञ्ञतरेन व्याधिना
रोगेन बाळ्हं दुखितस्स रुप्पतो,
परिसुस्सति खिप्पमिदं कळेवरं
पुप्फं यथा पंसुनि आतपे कतं ॥

अजञ्ञं जञ्ञसङ्खातं असुचिं सुचिसम्मतं,
नानाकुणपपरिपूरं जञ्ञरूपं अपस्सतो ॥

धिरत्थु तं आतुरं पूतिकायं
जेगुच्छियं असुचिं व्याधिधम्मं,
यत्थप्पमत्ता अधिमुच्छिता पजा
हापेन्ति मग्गं सुगतुपपत्तिया ॥

[रोग से अति दुखित-पीडित मेरा यह शरीर धूप मे पड़े फूल की तरह सूख जायेगा। असुन्दर है किन्तु सुन्दर लगता है, अपवित्र है किन्तु पवित्र लगता है। नाना प्रकार की गन्दगी से भरा होने पर भी न देख सकने वाले को मनोरम लगता है। इस नित्य रोगी, गन्दे, जिगुप्सित, अपवित्र तथा व्याधि-स्वभाव शरीर को धिक्कार है, जिसके प्रति आसक्त होकर बदहवास जन सुगति प्राप्ति के मार्ग को छोड देते है।]

इस प्रकार बोधिसत्व नाना प्रकार से (शरीर की) अपवित्रता तथा नित्य रोगीपन का विचार कर शरीर के प्रति अनासक्त हो जीवन पर्यन्त चारो ब्रह्म-विहारो की भावना कर ब्रह्म-लोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर, जातक का मेल बिठाया। बहुत-से जन स्रोतापत्ति फल आदि मे प्रतिष्ठित हुए। उस समय तपस्वी मै ही था।

२९४. जम्बुखादक जातक

"कोयविन्दुस्सरो वग्गु" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त और कोकालिक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय देवदत्त का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया था। कोकालिक भिक्षु गृहस्थो के पास जा देवदत्त के गुणो का बखान करता—देवदत्त स्थविर महासम्मत परम्परा मे ओकाक-राज-वश मे पैदा हुआ है। विशुद्ध क्षत्रिय वश मे पला है, त्रिपिटकधारी है, ध्यान-लाभी है, मधुरभाषी है, धर्म-कथिक है, स्थविर को दें, स्थविर का कहना करें। देवदत्त भी कोकालिक के गुण बखानता—कोकालिक उदीच्य ब्राह्मण कुल से निकल प्रव्रजित हुआ है,

बहुश्रुत है, धर्म-कथिक है, दे, करे।" इस प्रकार वे दोनो एक दूसरे के गुण वखानते हुये गृहस्थो के घर मे खाते-पीते विचरते।

एक दिन धर्म सभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त और कोकालिक एक दूसरे की झूठी प्रशसा करते खाते-पीते घूमते है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी ये झूठी प्रशसा कर के खाते-पीते है, पहले भी ऐसा ही किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक जम्बु-खण्ड मे वृक्ष देवता होकर पैदा हुए। वहाँ एक कौआ जम्बु शाखा पर बैठा हुआ पके जामुन खाता था। एक गीदड ने आकर ऊपर कौवे को देख सोचा—मैं इसकी झूठी प्रशसा कर जामुन खाऊँ। उसने उसकी प्रशसा करते हुए यह गाथा कही—

कोथ बिन्दुस्सरो वग्गु पवदन्तानमुत्तमो,
अच्चुतो जम्बुसाखाय मोरच्छापोव कूजति॥

[पूर्ण स्वर वाला, सुन्दर शब्द वाला, सर्व श्रेष्ठ वाणी वाला ये कौन है, जो जम्बू की शाखा पर बैठ कर मोर-बच्चे की भाँति कूजता है?]

कौवे ने भी उसकी प्रशसा करते हुये दूसरी गाथा कही —

कुलपुत्तोव जानाति कुलपुत्ते पसंसितु,
व्यग्घच्छापसरीवण्णो भुञ्ज सम्म ददामि ते॥

[कुल पुत्र ही कुल-पुत्र की प्रशसा करना जानता है। हे व्याघ्र-बच्चे के सदृश वर्ण वाले मित्र! मैं तुझे (जामुन) देता हूँ, खा।]

यह कह जम्बू शाखा हिला उसने फल गिराये। उस जम्बू वृक्ष पर पैदा हुये देवता ने उन दोनो को परस्पर झूठी प्रशसा कर जामुन खाते देख तीसरी गाथा कही —

चिरस्सवत पस्सामि मुसावादी समागते,
वन्ताद कुणपादञ्च अञ्ञमञ्ञ पसंसके॥

[मैं इन आये हुये मिथ्या-भाषियो को देर से देख रहा हूँ—एक वमन खाने वाला है, दूसरा मुर्दार। दोनो एक दूसरे की झूठी प्रशसा कर रहे है।]

यह गाथा कह, देवता ने उन्हे भयानक रूप दिखा वहाँ से भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शृगाल देवदत्त था। कौआ कोकालिक। वृक्ष-देवता तो मै ही था।

२९५. अन्त जातक

"उसमस्सेव ते खन्धो" यह भी शास्ता ने वही विहार करते समय उन्ही दो जनो के बारे मे कही। वर्तमान कथा पूर्व कथा सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव के पास एरण्ड वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुये। उस समय एक गाँव मे मरे बूढे बैल को निकाल कर ग्राम-द्वार पर एरण्ड वन मे फेंक दिया था। एक शृगाल आ कर उसका मास खाने लगा। एरण्ड पर छिपे किसी कौवे ने उसे देख सोचा—मैं इसकी झूठी प्रशसा कर मास खाऊँ। उसने पहली गाथा कही —

उसभस्सेव ते खन्धो सीहस्सेव विजम्भित,
मिगराज नमोत्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे॥

[तेरे स्कन्ध वृषभ की तरह हैं और तेरा विजृम्भण सिंह जैसा है। हे मृगराज! तुझे नमस्कार है। हमे कुछ मिले।]

इसे सुन शृगाल ने दूसरी गाथा कही —

कुलपुत्तोवजानाति कुलपुत्ते पसंसितु,
मयूरगीवसङ्कास इतो पीरयाहि वायस ॥

[कुल-पुत्र ही कुल-पुत्र की प्रशसा करना जानता है । हे मयूर की गर्दन सदृश कौवे ! यहाँ चला आ।]

उनकी करतूत देख कर उस वृक्ष-देवता ने तीसरी गाथा कही —

मिगान कोत्थुको अन्तो पक्खीन पन वायसो,
एरण्डो अन्तो रुक्खान तयो अन्ता समागता ॥

[जानवरो मे सबसे अधिक निकृष्ट शृगाल है, पक्षियो मे कौआ और वृक्षो मे एरण्ड । यहाँ तीनो निकृष्ट इकट्ठे हो गये है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, जातक का मेल बैठाया । उस समय शृगाल देवदत्त था । कौआ कोकालिक । वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

२९६. समुद्द जातक

"कोनाय " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उपनन्द स्थविर के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

वह बड़ा पेटू था, महान तृष्णा से युक्त, गाडी भर सामान से भी सन्तुष्ट न हो सकने वाला । वर्षावास के समय दो-तीन विहारो मे वर्षा-वास करना आरम्भ कर, एक मे जूता रखता, एक मे हाथ की लकडी, एक मे पानी का घडा और एक मे स्वय रहता । जनपद मे चारिका के लिये निकलता तो ऐसे भिक्षुओ को, जिनके पास अच्छे परिष्कार होते आर्यवंश-कथा[1] सुना कर

---

१ जैसे-तैसे चीवर, जैसे-तैसे पिण्ड-पात (=भोजन) जैसे-तैसे शयन-आसन से सन्तुष्ट होने का उपदेश [अ २।३५—३६] ।

उनसे पांशुकूल चीवर[1] लिवा उनके चीवर स्वय ले लेता। मिट्टी के वर्तन दिला कर अच्छे-अच्छे पात्र और थाल ले गाडी भर जेतवन लौटता।

एक दिन धर्म सभा मे भिक्षुओ ने बातचीत चलाई—आयुष्मानो! शाक्य पुत्र उपनन्द पेटू है, महेच्छुक है। दूसरो को धर्माचरण का उपदेश दे स्वय श्रमण-परिष्कारो से गाडी भर लाता है।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, उपनन्द ने दूसरो को आर्यवश कथा का उपदेश दे अनुचित किया। पहले स्वय अल्पेच्छ होना चाहिये, तब दूसरे को आर्यवश-कथा का उपदेश देना चाहिये —

अत्तान एव पठमं पटिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो॥[2]

[जो उचित है उसे यदि पहले अपने करके पीछे दूसरे को उपदेश करे, तो पण्डित (जन) को क्लेश न हो।]

इस धम्मपद की गाथा का उपदेश दे, उपनन्द की निन्दा कर 'भिक्षुओ, न केवल अभी उपनन्द महेच्छुक है, यह पहले महासमुद्र के भी जल की रक्षा करना आवश्यक समझता था' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुआ। एक जल-कौआ समुद्र पर उडता हुआ मछलियो और पक्षियो को रोकता था—समुद्र का जल अधिक न पीओ, सँभाल कर पीओ। यह देख समुद्र-देवता बोला —

कोनाय लोणतोयस्मि समन्ता परिधावति,
मच्छे मकरे च वारेति ऊमिसु च विसञ्ञति॥

---

१. जहाँ-तहाँ फेंके हुए चीथडो से बना चीवर।

२. धम्मपद १२।२।

[ये कौन है जो मछलियो, मगर-मच्छो को मना करता हुआ नमकीन जल पर चारो ओर दौडता है और लहरो मे कष्ट पाता है ?]

इसे सुन समुद्री कौवे ने दूसरी गाथा कही —

अनन्तपायी सकुणो अतित्तोति दिसासुतो,
समुद्दपातुमिच्छामि सागरं सरित पति ॥

[मैं अनन्त-पायी पक्षी हूँ, अतृप्त हूँ, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। मैं नदी-पति सागर को पी जाने की इच्छा करता हूँ।]

इसे सुन समुद्र-देवता ने तीसरी गाथा कही —

स्वायं हायति चेव पूरते च महोदधि,
नास्स नायति पीतन्तो अपेय्यो किर सागरो ॥

[यह महोदधि घटता है और सम्पूर्ण होता है। यह पीने से समाप्त नही होता है। सागर अपेय है।]

यह कह भयानक रूप दिखा समुद्र-कौवे को भगा दिया। शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय समुद्र-काक उपनन्द था। देवता तो मैं ही था।

२९७ कामविलाप जातक

'उच्चे सकुण डेमान " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे मे कही। वर्तमान कथा पुप्फरत्त-जातक मे आयेगी। अतीत-कथा इन्द्रिय जातक[1] मे आयेगी। उस पुरुष को जीते-जी सूली का त्रास दिया। उसने वहाँ बैठे-बैठे उस तीव्र वेदना की भी ओर ध्यान न दे, आकाश मे उडे जाते एक कौवे को देख, प्यारी भार्य्या के पास सन्देश भेजने के लिये कौवे को सम्बोधन करते हुये ये गाथायें कही —

---

१. इन्द्रिय जातक (४२३)।

उच्चे सकुण डेमान पत्तयान विहङ्गम,
वज्जासि खोत्व वामूरु चिर खो सा करिस्सति ॥
इदं खो सा न जानाति असिं सत्तिञ्च ओड्डितं,
सा चण्डी काहति कोधं तं मे तपति नो इध ॥
एस उप्पलसन्नाहो निक्खमुस्सीसके कतं,
कासिकञ्च मुदुं वत्थं तप्पतु धनकामिका ॥

[हे ऊँचे उडने वाले आकाशगामी पख-वाहन पक्षी, तू उस कोमल जघावाली को मेरा समाचार कहना। नही तो वह चिरकाल तक चिन्ता करती रहेगी। वह यह नही जानती है कि मैं यहाँ सूली का त्रास पा रहा हूँ। इस-लिये वह चण्डी क्रोध करेगी। मुझे उसी का दुख है, इस सूली का नही। मेरे सिराहने कमल सदृश पोशाक है, और स्वर्ण की अँगूठी है, और है काशी का कोमल वस्त्र। वह धनेच्छुका इन्हे पा कर सन्तुष्ट हो।]

इस प्रकार रोता-पीटता वह मर कर नरक मे पैदा हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्नचित्त भिक्षु स्रोतापत्ती-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय की भार्य्या ही इस समय की भार्य्या है। जिस देव-पुत्र ने वह घटना देखी वह मैं ही था।

२९८. उदुम्बर जातक

"उदुम्बराचिमे पक्का" यह शास्ताने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक प्रत्यन्त के गामडे मे विहार बनवा कर रहता था—रमणीक विहार, चट्टान पर बना हुआ, झाडने-बुहारने को बहुत नही, पानी का

आराम, भिक्षा के लिये गाँव बहुत दूर नही और प्रेम-पूर्वक भिक्षा देने वाले मनुष्य। एक भिक्षु चारिका करता हुआ उस विहार मे पहुँचा। निवासी-भिक्षु आगन्तुक-भिक्षु के प्रति जो कर्त्तव्य था उसे कर, अगले दिन उसे ले, गाँव मे भिक्षा माँगने गया। लोगो ने उसे भिक्षा दे दूसरे दिन के लिये निमन्त्रित किया। आगन्तुक-भिक्षु ने कुछ दिन भोजन पा सोचा—एक उपाय से इस भिक्षु को धोखा दे, निकाल बाहर कर, यह विहार ले लूँ। उसने स्थविर की सेवा मे आने पर उसे पूछा—आयुष्मान, बुद्ध की सेवा मे नही गया ?

"भन्ते, इस विहार की कोई देखभाल करने वाला नही है। मैं अभी तक नही गया हूँ।"

"जब तक तू बुद्ध का दर्शन करके लौटे, तब तक मैं देखभाल करूँगा।"

"भन्ते, अच्छा।"

निवासी-भिक्षु मनुष्यो को 'जब तक मैं आऊँ तब तक स्थविर की सेवा ठीक तरह से करते रहना' कह चल दिया। उस दिन से आगन्तुक-भिक्षु ने निवासी-भिक्षु मे यह यह दोष हैं' कह मनुष्यो का दिल खट्टा कर दिया। निवासी-भिक्षु भी शास्ता को प्रणाम करके लौटा। आगन्तुक ने उसका निवास-स्थान उसे नही दिया। वह एक जगह रह कर गाँव मे भिक्षा माँगने निकला। मनुष्यो ने शिष्टाचार भी नही किया। उसको अफसोस हुआ। उसने जेतवन जा भिक्षुओं को समाचार सुनाया। भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बात-चीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक भिक्षु अमुक भिक्षु को विहार से निकाल कर स्वय वहाँ रहता है। शास्ता ने पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत"

"न केवल अभी, किन्तु पहले भी हे भिक्षुओ! उसने इसे निवास-स्थान से निकाला ही है" कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जगल मे वृक्ष-देवता होकर पैदा हुये। उस समय वर्षा काल मे

सात सप्ताह तक वर्षा हुई। एक लाल मुँह वाला छोटा बन्दर एक पत्थर की दरार मे जहाँ पानी नही पडता था रहता था। एक दिन वह दरार के द्वार पर, न भीगने वाली जगह पर, सुख से बैठा था। वही एक काले मुँह वाला बडा बन्दर आया। वह भीगा था और शीत से कष्ट पा रहा था। उसने उसे उस तरह बैठे देख सोचा—इसे कौशल से यहाँ से हटा, मैं यहाँ रहूँगा। उसने पेट का सहारा ले ऐसा दिखाया जैसे पेट खूब भरा हो, और उसके सामने खडे हो पहली गाथा कही —

उदुम्बराचिमे पक्का निग्रोघा च कपित्थना,
एहि निक्खम भुञ्जस्सु किं जिघच्छाय मीयसि ॥

[यह गूलर पके है, निग्रोध और कैथ भी। आ बाहर निकल उन्हे खा। भूख से क्यो मरता है ?]

उसने उसकी बात पर विश्वास कर, फलाफल खाने की इच्छा से बाहर निकल, जहाँ-तहाँ घूम कुछ भी न पाया। लौटकर देखा तो उसे दरार मे बैठा पाया। उसने उसे ठगने के लिए उसके सामने खडे हो दूसरी गाथा कही —

एव सो सुहितो होति यो बद्धमपचायति,
यथाहमज्ज सुहितो दुमपक्कानि मासितो ॥

[जो बडो का आदर करता है उसका पेट भरता है, जैसे आज मैं पके फल खाकर सतुष्ट हूँ।]

इसे सुन बडे बन्दर ने तीसरी गाथा कही —

य वनेजो वनेजस्स वचेय्य कपिनो कपि,
दहरो पि त सद्धेय्य, न हि जिण्णो जराकपि ॥

[जो बन मे पैदा हुआ बानर बन मे पैदा हुये वानर को ठगे, कोई बच्चा भी उसका विश्वास नही कर सकता, मेरे जैसा जरा-जीर्ण कपि तो कर ही नही सकता।]

"इस प्रदेश मे सभी फलाफल वर्षा से भीग कर गिर गये हैं। अब तेरे लिये यहाँ जगह नही है, जा।" वह वहाँ से चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय छोटा बन्दर निवासी-भिक्षु था। काला बडा बन्दर आगन्तुक-भिक्षु। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२९९ कोमायपुत्त जातक

"पुरे तुव " यह शास्ता ने पूर्वाराम मे विहार करते समय क्रीडा-प्रिय भिक्षुओ के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

जिस समय शास्ता ऊपर प्रासाद मे रहते थे, उस समय भिक्षु नीचे प्रासाद मे बैठे हुये देखा-सुना बतियाते झगडा करते और हँसी-मजाक उडाते थे। शास्ता ने महामोग्गल्लान को सम्बोधित कर कहा—आ भिक्षु, कम्पन उत्पन्न कर। स्थविर ने आकाश मे उछल, पैर के अगूठे से उछल, प्रासाद के खम्भे पर प्रहार कर, जहाँ तक जल था वहाँ तक कँपा दिया। वे भिक्षु मृत्यु-भय से निकल कर बाहर खडे हुये। उनकी वह क्रीडा-प्रियता भिक्षुओ मे प्रकट हो गई। एक दिन भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! कुछ भिक्षु इस प्रकार के कल्याणकारी बुद्धशासन मे प्रव्रजित होकर भी खिलवाड करते रहते है, अनित्य, दुख तथा अनात्म की भावना की विपश्यना नही बढाते है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ! न केवल अभी, ये क्रीडा-प्रिय हैं, पहले भी ये क्रीडा-प्रिय ही रहे है।"

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गाँव मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुये। उनका नाम हुआ कोमायपुत्त। आगे चल कर वह ग्रह त्याग, ऋषि-प्रव्रज्या ले, हिमालय मे रहने लगा। दूसरे क्रीडा-प्रिय तपस्वी भी हिमालय मे आश्रम बना रहते थे। कसिणकर्म[1] का

---

१ योगाभ्यास-विधि।

नाम तक न था। वे जङ्गल से फलाफल ला खाते हुये नाना प्रकार की क्रीडा मे समय बिताते थे। उनके पास एक बन्दर भी था। वह भी क्रीडा-प्रिय। नाना प्रकार की शकले बना तपस्वियो को तमाशा दिखाता। तपस्वी चिरकाल तक वहाँ रह नमक-खटाई खाने के लिये बस्ती मे गये। उनके चले जाने पर बोधिसत्व वहाँ आकर रहने लगे। बन्दर ने उनकी तरह बोधिसत्व को भी तमाशा दिखलाया। बोधिसत्व ने चुटकी बजा उसे उपदेश दिया—सुशिक्षित प्रव्रजितो के पास रहने वाले को सदाचारी होना चाहिये, काय, वाक, मन से सुसयत होना चाहिये तथा ध्यानी होना चाहिये। वह भी उस समय से शीलवान तथा आचारवान हो गया। बोधिसत्व अन्यत्र चले गये।

नमक-खटाई सेवनानन्तर वह तपस्वी भी वहाँ लौटे। बन्दर ने पहले की तरह उन्हे तमाशा नही दिखाया। तपस्वियो ने पूछा—आयुष्मान, पहले तू हमारे सामने तमाशा करता था। क्या कारण है कि अब नही करता? उन्होने पहली गाथा कही—

पुरे तुव सीलमत सकासे
ओक्कन्दिकं कीळसि अस्समम्हि,
करोहरे मक्कटियानि मक्कट
न त मय सीलवत रमाम॥

[अरे बन्दर, तू पहले सदाचारियो के पास आश्रम मे रहता हुआ कूदना-फाँदना आदि खेल करता था। अपनी वह बन्दर-लीला कर। हम शीलवान उसमे रमण नही करते।]

यह सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कही—

सुता हि मय्हं परमा विसुद्धि
कोमायपुत्तस्स बहुस्सुतस्स,
मा दानि मं मञ्ञी तुव यथा पुरे
झानानुयुत्ता विहराम आवुसो॥

[मैंने बहु-श्रुत कोमायपुत्त से परम विशुद्धि सुनी। अब तू मुझे पहले जैसा मत समझ। आयुष्मान, मैं अब ध्यानी हो कर विहार करता हूँ।]

यह सुन तपस्वियो ने तीसरी गाथा कही—

सचेपि सेलस्मि वपेय्युं बीजं
देवो च वस्से नेव हित रुहेय्य,
सुता हि ते सा परमा विसुद्धि
आरा तुवं मक्कट झानभूमिया ॥

[अगर चट्टान पर बीज बोया जाय तो वर्षा होने पर भी वह नही उगेगा। इसी प्रकार (यद्यपि) तू ने वह परम-विशुद्धि सुनी है तो भी तू (पशु योनि मे उत्पन्न होने के कारण) ध्यान-भूमि से दूर है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय क्रीडा-प्रिय तपस्वी ये तपस्वी थे। कौमायपुत्त तो मैं ही था।

३००. वक जातक

"परपाणरोधा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पुराण-मैत्री के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान-) कथा विस्तार से विनय (-पिटक) मे आई ही है। यहाँ तो यह सक्षिप्त है। दो वर्ष की आयु[1] के आयुष्मान उपसेन एक वर्ष की आयु वाले सब्रह्मचारी के साथ शास्ता के पास गये। शास्ता ने आलोचना की। वह प्रणाम करके चले आये और विपश्यना-भावना का अभ्यास कर अर्हत्व प्राप्त किया। फिर अल्पेच्छता आदि गुणो से युक्त हो, तेरह धुतग धारण किये और अपने अनुयाइयो को भी तेरह धुतगधारी बनाया। भगवान के तीन महीने तक ध्यानावस्थित रहने पर अनुयाइयो सहित शास्ता की सेवा मे पहुँचे। पहली

---

१ उपसम्पन्न भिक्षु की आयु उपसम्पदा से गिनी जाती है।

बार अनुयाइयो के कारण निन्दित हुआ था। इस बार अधार्मिक वार्ता के अनुसार न चलने से प्रशंसा हुई। शास्ता ने कृपा की—अब से धुतग-धारी भिक्षु मुझ से यथासुविधा भेंट कर सकते है। उसने बाहर आ भिक्षुओ को यह बात कही। तब से भिक्षुओ ने धुतग-धारी हो, शास्ता के दर्शनार्थ जा, शास्ता के ध्यानावस्था से उठने पर, पाशुकूल चीवरो को जहाँ-तहाँ छोड अपने-अपने साफ चीवर पहने। बहुत-से भिक्षुओ के साथ शास्ता ने शयनासन को देखते हुये, घूमने के समय जहाँ-तहाँ पाशुकूल चीवर को देख कर पूछा। वह बात सुन शास्ता ने कहा—भिक्षुओ! इन भिक्षुओ का व्रत चिरायु नही होगा। यह बगुले के उपोसथ व्रत के समान हुआ है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय शक्रदेव राजा हुये। एक भेडिया गगा के किनारे पत्थर पर रहता था। गगा मे हिम-जल ने आकर उस पत्थर को घेर लिया। भेडिया चढ कर पत्थर के ऊपर जा लेटा। न उसे शिकार मिला न शिकार का रास्ता। पानी बढता ही जाता। वह सोचने लगा—न मेरे लिये शिकार है न मेरे लिये शिकार का रास्ता, निकम्मे पडे रहने से तो उपोसथ व्रत करना ही अच्छा है। उसने मन से ही उपोसथ व्रत तथा शील ग्रहण किया और लेट रहा। उस समय शक्र ने ध्यान दे उसके दुर्बल व्रत की बात जान सोचा—इस भेडिये को तग करूँगा। उसने मेमने का रूप बना अपने को भेडिये से थोडी दूर खडा हुआ दिखाया। भेडिये ने उसे देख सोचा—व्रत दूसरे दिन रखूँगा। वह उसे पकडने के लिये उछला। मेमने ने भी इधर-उधर उछल अपने को पकडने न दिया। भेडिया जब उसे नही पकड सका तो लौट आ कर फिर वैसे ही लेट रहा—अभी मेरा उपोसथ व्रत नही टूटता। शक्र ने इन्द्र रूप से ही आकाश मे प्रकट हो कहा—तेरे जैसे दुर्बल निश्चय वाले को उपोसथ व्रत से क्या? तू बिना यह जाने कि मैं शक्र हूँ मेमने का मास खाना चाहता था। इस प्रकार भेडिये को तग कर और उसकी निन्दा कर इन्द्र देवलोक को चला गया।

ये तीनो अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं:—

परपाणरोधा जीवन्तो मसलोहित भोजनो,
वको वतं समादाय उपपज्जि उपोसथ ॥
तस्स सक्को वतञ्जाय अजरूपेनुपागमि,
वीततपो अज्झप्पत्तो भञ्जि लोहितपो तप ॥
एवमेव इधेकच्चे समादानस्मि दुब्बला,
लहुं करोन्ति अत्तान वकोव अजकारणा ॥

[दूसरे प्राणियो की हत्या करके जीवित रहने वाले, रक्त-मास का भोजन करने वाले भेडिये ने भी उपोसथ व्रत धारण किया। शक्र उसके दुर्बल व्रत की बात जान मेमने के रूप मे आया। उस रक्त-पायी ने विगत-तप हो (उसे खाने की इच्छा से) अपना व्रत तोड दिया। इसी तरह इसमे कुछ दुर्बल निश्चय वाले प्राणी अपने को ओछा बना लेते हैं, वैसे ही जैसे भेडिये ने मेमने के कारण (अपने को ओछा बनाया।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शक्र मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

१. विवर वर्ग

३०१. चुल्लकालिंग जातक

"विवरथ इमास द्वार " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय चार परिव्राजिकाओ की प्रव्रज्या के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

वैशाली मे सात हजार सात सौ सात लिच्छवी-राजा रहते थे। वे सभी शास्त्रार्थ-कुशल थे।

एक पाँच सौ वादो (-मतो) मे पडित निर्ग्रन्थ वैशाली पहुँचा। उन्होने उसका आदर-सत्कार किया। एक दूसरी उसी तरह की निर्ग्रन्थी भी आ पहुँची। राजाओ ने दोनो का शास्त्रार्थ कराया। दोनो बराबर रहे। तब लिच्छवियो ने सोचा—इन दोनो से उत्पन्न पुत्र मेधावी होगा। उन्होने दोनो का विवाह करा, उन्हे एक जगह बसाया। दोनो के सहवास से क्रमश चार लडकियाँ और एक लडका पैदा हुआ। लडकियो का सच्चा, लोला, अववादका और पटाचारा नाम रखा गया तथा लडके का सच्चक। उन पाँचो ने बडे होने पर माता से पाँच सौ वाद और पिता से पाँच सौ वाद, इस प्रकार एक हजार वाद सीख लिये। माता-पिता ने लडकियो को यह नसीहत दी—यदि कोई गृहस्थ तुम्हे शास्त्रार्थ मे हरा दे तो उसकी चरण-दासियाँ बन जाना और यदि कोई प्रव्रजित हरा दे तो उसके पास प्रव्रजित हो जाना। समय बीतने पर माता-पिता चल बसे।

उनके मरने पर सच्चक निर्ग्रन्थ वही वैशाली मे लिच्छवियो को शिल्प (-विद्या) सिखाता हुआ रहने लगा। बहनो ने जम्बु-शाखा ले, शास्त्रार्थ के लिये नगर-नगर घूमना आरम्भ किया। श्रावस्ती पहुँच उन्होने नगर-द्वार पर शाखा गाड दी और बालको को यह कह कर कि जो हमसे शास्त्रार्थ

कर सके वह गृहस्थ हो या प्रब्रजित इस बालू की ढेरी को पाव से बिखेर, इस जम्बु-शाखा को पाँव से ही कुचल दे, भिक्षार्थ नगर मे गई ।

आयुष्मान् सारिपुत्र बिना बुहारी जगह को बुहार, खाली घडो मे पानी भर, रोगियो की सेवा कर दिन चढने पर भिक्षार्थ निकले । उन्होने वह शाखा देख, पूछकर, उसे लडको से ही गिरवाकर कुचलवा दिया और लडको को कहा कि जिन्होने यह शाखा गाडी हो वह खाना-पीना समाप्त कर जेतवन की डयोढी मे मुझे मिलें । भिक्षा से लौट कर भोजनान्तर वह बिहार क डयोढी मे ही रहे । उन परिव्राजिकाओ ने भी भिक्षा से लौट उस शाखा को मर्दित देख कर पूछा —

"इसे किसने कुचला ?"

"सारिपुत्र स्थविर ने । यदि तुम शास्त्रार्थ करना चाहो, तो बिहार की डयोढी पर जाओ ।"

वे बच्चो से यह सुन फिर नगर मे गईं और जनता को इकट्ठा कर बिहार की डयोढी पर पहुँची । वहाँ उन्होने स्थविर से एक हजार प्रश्न पूछे । स्थविर ने उत्तर देकर पूछा —"और भी कुछ जानती हो ?"

"स्वामी ! नही जानती हैं ।"

"मैं कुछ पूछूँ ?"

"स्वामी पूछें । जानती होगी तो कहेंगी ।"

स्थविर ने पूछा—"एक बात क्या है ?"

वह नही जानती थी । स्थविर ने बताया । वे बोली—

"स्वामी ! हमारी पराजय हुई । आपकी जय हुई ।"

"अब क्या करोगी ?'

"हमारे माता-पिता ने हमे कहा था कि यदि गृहस्थ से पराजित होना तो उसकी गृहिणी हो जाना और यदि प्रब्रजित से पराजित होना तो उसके पास प्रब्रजित हो जाना । आप हमें प्रब्रजित करें ।"

स्थविर ने 'अच्छा' कह उन्हें उत्पलवर्णा स्थविरी के पास प्रब्रजित कराया । सभी शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुईं ।

भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, सारिपुत्र स्थविर ने चारो परिव्राजिकाओ का सहायक हो सभी को अर्हत्व प्राप्त करा दिया ।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत ।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह इनका सहायक हुआ है। अब तो प्रव्रज्याभिषेक दिलवाया है, किन्तु पहले पटरानी के पद पर स्थापित किया है।"

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कालिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर मे कालिङ्गराज के राज्य करने के समय अस्सक राज्य के पोतलि नगर मे अस्सक नाम का राजा राज्य करता था। कालिङ्गराज के पास सैन्यबल था और स्वय भी वह हाथी के बल का था। उसे कोई अपने से लड सकने वाला नही दिखाई देता था। उसने युद्धेच्छुक हो अमात्यो से कहा—मेरी युद्ध करने की इच्छा है। प्रतिपक्षी नही दिखाई देता। क्या करूँ ?

"महाराज, एक उपाय है। आपकी चारो लडकिया सुन्दर रूपवाली हैं। उन्हे अलकृत कर, पर्देवाले रथ मे बिठा, सेना के साथ ग्राम-निगम तथा राजधानियो मे चक्कर लगवायें। जो राजा उन्हे अपने घर मे रखना चाहेगा, उससे युद्ध करेंगे।"

राजा ने वैसा कराया। जहाँ-जहाँ वह जाती राजा लोग भय से उन्हे नगर मे न आने देते। भेंट भेजकर उन्हे बाहर ही रखते। इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप मे घूम कर अस्सक राष्ट्र के पोतलि नगर पहुँची। अस्सक (राजा) ने भी (नगर-) द्वार बन्द करवा भेंट भेजी। उसका नन्दिसेन नामक अमात्य पण्डित था, बुद्धिमान था और था उपाय-कुशल। उसने सोचा—इन राजकन्याओ को सारे जम्बुद्वीप मे घूम आने पर भी प्रतिपक्षी नही मिला। ऐसा होने पर तो सारा जम्बुद्वीप तुच्छ होता है। मैं कालिङ्ग-राज के साथ युद्ध करूँगा। उसने नगरद्वार पर पहुँच द्वार-पालो को सम्बोधित कर उनके लिये नगर-द्वार खुलवा देने को पहली गाथा कही —

विवरथ इमास द्वारं नगरं पविसितुं मया,
अरुणराजस्स सीहेन सुसिट्ठेन सुरक्खित नन्दिसेनेन ॥

[अरुणराज (अस्सक-नरेश) के (मन्त्री) मुझ पुरुष-सिंह सुशिक्षित नन्दिसेन द्वारा सुरक्षित द्वार खोल दो, जिसमे ये नगर मे प्रवेश कर सके।]

यह कह उसने द्वार खुलवा दिया और उन लडकियो को अस्सकराजा को दिखाकर कहा—आप डरे नही। यह सुन्दर रूपवाली राज्यकन्यायें है। इन्हे अपनी रानियाँ बना ले। उसने उन्हे अभिषिक्त करा उनके साथ आए आदमियो को विदा किया—जाओ, अपने राजा से कहो कि अस्सक-राजा ने राजकन्याओ को रानी बना लिया। उन्होने जाकर कहा। कलिङ्ग नरेश उसी समय बडी भारी सेना ले निकल पडा—अस्सकराजा मेरी सामर्थ्य से अभी परिचित नही।

नन्दिसेन ने जब उसका आगमन सुना तो सन्देश भिजवाया—अपनी ही सीमा मे रहे। हमारी सीमा मे न रहे। दोनो राजाओ की सीमाओ के बीच ही युद्ध होगा। उसने लेख सुना तो अपनी राज्य-सीमा पर रुका। अस्सक (नरेश) भी अपनी राज्य-सीमा पर ही रुका।

उस समय बोधिसत्व ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर उन दोनो राज्यो के बीच पर्णकुटी मे रहते थे। कलिङ्ग-नरेश ने सोचा—श्रमण कुछ जानने वाले होते हैं। कौन कह सकता है कि क्या हो? किसकी जीत हो, किसकी हार हो? तपस्वी को पूछूंगा।

उसने भेस बदल, बोधिसत्व के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशलक्षेम पूछते हुए कहा—भन्ते, कलिङ्ग-नरेश तथा अस्सकराज युद्ध करने की इच्छा से अपनी-अपनी सीमा मे तैयार खडे हैं। इनमे किसकी जय होगी और किसकी पराजय?

"महापुण्यवान्! मैं नही जानता कि किसकी जीत होगी और किसकी हार? हाँ, देवराज शक्र यहाँ आता है। उसे पूछ कर कहूँगा। कल आना।"

शक्र बोधिसत्व की सेवा मे आ विराजमान हुआ। बोधिसत्व ने उसे वह बात पूछी। "भन्ते, कलिङ्ग विजयी होगा। अस्सक पराजित होगा। यह इसके पूर्व-लक्षण दिखाई देंगे।"

कलिङ्ग ने अगले दिन आकर पूछा। बोधिसत्व ने कह दिया। वह बिना यह पूछे कि क्या पूर्व-लक्षण प्रकट होगा, खुशी से फूला हुआ चला

गया। वह बात फैल गई। इसे सुन अस्सक-राज ने नन्दिसेन को बुलवाकर पूछा—कलिङ्ग विजयी होगा। हम हारेंगे। अब क्या करना चाहिये ?

"महाराज, इसे कौन जानता है कि किसकी जीत होगी, किसकी हार ? आप चिन्ता न करें" कह राजा को आश्वासन दे, बोधिसत्व के पास पहुँचा। उन्हे प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—भन्ते! किसकी विजय होगी ? कौन पराजित होगा !

"कलिङ्ग जीतेगा, अस्सक हारेगा।"

"भन्ते, विजयी का क्या पूर्व-लक्षण होगा और पराजित होने वाले का क्या ?"

"महापुण्यवान्! विजयी का रक्षक देवता सर्वश्वेत वृषभ होगा, दूसरे का एक दम काला। दोनो के रक्षक-देवता जीत-हार का निर्णय करेंगे।"

नन्दिसेन ने यह सुन जाकर राजा के एक हजार महायोद्धा मित्रो को एकत्र कर पास के पर्वत पर ले जाकर पूछा—

"भो! अपने राजा के लिये जीवन परित्याग कर सकोगे ?"

"हाँ, कर सकेंगे।"

"तो, इस प्रपात पर से गिरो।"

वह गिरने लगे। उन्हे रोक कर कहा—बस! गिरो मत, अपने राजा के लिये जीवन परित्याग करने को दिल से डट कर लडो। उन्होने स्वीकार किया।

सग्राम उपस्थित होने पर 'मेरी विजय होगी ही' सोच कलिङ्ग ढीला पड गया। उसकी सेना भी 'हमारी विजय होगी ही' सोच ढीली पड गई। (सैनिक) कवच उतार पृथक-पृथक हो यथारुचि चल दिये। जोर लगाने के समम जोर नही लगाया। दोनो राजा घोडे पर चढ युद्ध करने के लिये एक दूसरे के पास आये। दोनो के रक्षक-देवता भी पहले ही पहुँचे—कलिङ्ग का रक्षक-देवता सर्व-श्वेत वृषभ और दूसरे का एक दम काला। ये परस्पर युद्ध करने के लिये तैयार हुए। लेकिन वे बैल केवल दोनो राजाओ को ही दिखाई देते थे और किसी को नही। नन्दिसेन ने अस्सक (-राज) से पूछा—

"महाराज! आपको देवता दिखाई देता है ?"

"हाँ, दिखाई देता है।"

"कैसा आकार है ?"

"कलिङ्ग का रक्षक-देवता सर्व-श्वेत वृषभ के रूप मे दिखाई दे रहा है, हमारा रक्षक-देवता एक दम काला थका हुआ सा ।"

"महाराज, आप भयभीत न हो । हम जीतेगे । कालिङ्ग की हार होगी । आप घोडे की पीठ से उतर, यह शक्ति (आयुध) ले, सुशिक्षित सैन्धव (घोडे) को पेट के पास बाये हाथ से दबा, इन एक सहस्र आदमियो के साथ तेजी से जा, कालिङ्ग के रक्षक-देवता को शक्ति-प्रहार से गिरा दे । तब हम हजार जने हजार शक्तियो से प्रहार करेगे । इस प्रकार कालिङ्ग का रक्षक-देवता नष्ट हो जायगा । तब कालिङ्ग की हार होगी और हम जीत जायेंगे ।"

राजा ने 'अच्छा' कह नन्दिसेन के सुझाव के अनुसार जाकर शक्ति से प्रहार किया । अमात्यो ने भी हजार शक्तियो से प्रहार किया । रक्षक-देवता का वही प्राणान्त हो गया । उसी समय कालिङ्ग हार कर भाग गया । उसे भागता देख हजार अमात्यो ने हल्ला किया—कालिङ्ग भाग रहा है । कालिङ्ग ने मरने के भय से भागते हुए उस तपस्वी को गाली देते हुए दूसरी गाथा कही —

जय कलिङ्गान असय्हसाहिन
पराजयो अनयो अस्सकान,
इच्चेव ते भासित ब्रह्मचारि
न उज्जुभूता वितथं भणन्ति ॥

[असह्य को भी सह सकने वाले कालिङ्गो की विजय होगी और अस्सक-वासियो की पराजय निश्चित है—यही हे ब्रह्मचारी ! तू ने कहा था । जो ऋजु है, वह तो झूठ नही बोलते !]

इस प्रकार वह तपस्वी को गाली देता हुआ भाग कर अपने नगर पहुँचा । (मार्ग मे) रुक कर कही (पीछे) देख तक नही सका । उसके कुछ दिन बाद शक्र तपस्वी की सेवा मे आया । तपस्वी ने उसके साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही —

देव मुसावादमुपातिवत्ता
सच्च धन परम तेसु सक्क,
त ते मुसा भासित देवराज
किं वा पटिच्च मघवा महिन्द ॥

[हे शक्र! देवता तो मृषावादी नही होते। उनका परम धन सत्य (ही) है। हे देवराज! हे मघवा! हे महिन्द! तू ने जो झूठ बोला वह किस कारण से बोला?]

यह सुन शक्र ने चौथी गाथा कही

नतु ते सुत ब्राह्मण भञ्ञमाने
देवा न इस्सन्ति पुरिसपरक्कमस्स,
दमो समाधि मनसो अदेज्झो
अव्यग्गता निक्खमणञ्चकाले
दळ्हञ्च विरिय पुरिसपरक्कमो च,
तेनेव आसि विजयो अस्सकान॥

[क्या तूने कभी ब्राह्मणो को यह कहते नही सुना कि देवता पराक्रमी पुरुष से ईर्ष्या नही करते। सयम, समाधि, मन की एकाग्रता, अव्यग्रता, समय पर निष्क्रमण और दृढ-वीर्य तथा पुरुष-पराक्रम—इन्ही गुणो के होने से अस्सकों की विजय हुई है।]

कलिङ्ग-राजा के भाग जाने पर अस्सक राजा लूट का माल उठवा अपने नगर को लौटा। नन्दिसेन ने कलिङ्ग के पास सन्देश भेजा—इन चारो राजकन्याओ का दहेज भेजो। यदि नही भेजोगे तो जो करना उचित है करूँगा। उसने वह सदेश सुन, डर के मारे उन कन्याओ को जितना दहेज मिलना चाहिए था भेजा। तब से दोनो राजाओ मे मेल रहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल विठाया। उस समय कलिङ्ग-राजा की कन्यायें यह तरुण भिक्षुणियाँ थी। नन्दिसेन सारिपुत्र। तपस्वी तो मैं ही था।

३०२ महाअस्सारोह जातक

"अदेय्येसु दद दान " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय आनन्द स्थविर के बारे मे कही। 'वर्तमान-कथा' पहले आ ही गई है[1]। शास्ता ने 'पूर्वकाल मे पडितो ने भी अपने उपकारियो का उपकार किया' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे बोधिसत्व वाराणसी का राजा हो उत्पन्न हुए। वह धर्म-पूर्वक, न्यायपूर्वक राज्य करता था, दान देता था, शील की रक्षा करता था।

प्रत्यन्त-देश के विद्रोह को शान्त करने के लिये वह सेना सहित गया। उसे हार कर घोडे पर चढ भागना पडा। भागता-भागता वह एक प्रत्यन्त-ग्राम मे पहुँचा। वहाँ तीस राज-सेवक रहते थे। वह प्रात काल ही गाँव के मध्य मे इकट्ठे हो ग्राम-कृत्य करते थे। उसी समय राजा कसे हुए घोडे पर चढ सजा-सजाया ही ग्रामद्वार से गाँव मे प्रविष्ट हुआ। वह 'यह क्या' डर कर, भाग कर, अपने-अपने घर मे जा घुसे। लेकिन एक ने अपने घर पहुँच राजा की अगवानी कर पूछा—सुना है कि राजा तो प्रत्यन्त-देश मे गया है। तू कौन है ? राज-पुरुष वा चोर-पुरुष।

"सौम्य ! राज-पुरुष।"

'तो आ' कह राजा को घर ले जा अपने पीढे पर बिठाया। फिर भार्य्या को 'भद्रे, आ मित्र के पाँव धो' कह भार्य्या से पैर धुलवा अपनी सामर्थ्यानुसार भोजन कराया। फिर 'थोडा विश्राम करें' कह बिछौना बिछा दिया। राजा लेट रहा। उसने इतने मे घोडे की काठी खोल, घुमा, पानी पिला, पीठ पर तेल की मालिश कर उसे घास दिया।

इस प्रकार तीन-चार दिन राजा की सेवा करता रहा। जिस दिन राजा ने कहा—'मित्र, जाता हूँ' उस दिन भी राजा और अश्व के लिए जो-जो करना उचित था, किया। राजा खाकर जाता हुआ बोला—सौम्य !

---

१ गुण जातक (१५७)।

मेरा नाम महाश्वारोह है। मेरा घर नगर के बीच मे है। यदि किसी काम से आना हो तो दक्षिण-द्वारपाल से पूछना कि महाश्वारोह किस घर मे रहता है और उसे साथ ले हमारे घर आना। इतना कह चला गया। सेना ने भी राजा को न देख नगर के बाहर छावनी डाल ली थी। राजा को देखा तो अगवानी कर राजा के पास पहुँची।

राजा ने नगर में प्रवेश करते समय द्वार मे एक द्वारपाल को बुलाया और जनता को एक ओर हटा कर कहा—तात! एक प्रत्यन्त-ग्रामवासी मुझे मिलने की इच्छा से आयगा और तुझे पूछेगा कि महाश्वारोह का घर कहाँ है? तू उसे हाथ से पकड मेरे पास लाना। तुझे हजार मिलेगा। वह नहीं आया। उसे न आता देख राजा ने जिस गाँव मे वह रहता था उस गाँव की मालगुजारी (बलि) बढा दी। मालगुजारी बढने पर भी नही आया। इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी मालगुजारी बढाई। वह नही ही आया।

तब उस गाँव के रहने वालो ने इकट्ठे हो उसे कहा—आर्य! तेरे अश्वारोह के आने के समय से हम मालगुजारी से इतने पीडित हो गये कि सिर भी नही उठा सकते! जा महाश्वारोह से कहकर हमे मालगुजारी से मुक्त करा।

"अच्छा, जाता हूँ। लेकिन खाली हाथ नही जा सकता। मेरे मित्र के दो बच्चे है। उनके लिये, उसकी भार्य्या के लिये तथा मेरे मित्र के लिये कपडे-लत्ते तथा गहने तैयार करो।"

"अच्छा, तैयार करते है" कह उन्होने सब भेंट तैयार की।

उसने वे सब और अपने घर पके पूए ले, दक्षिण-द्वार पहुँच, द्वारपाल से पूछा—"मित्र, महाश्वारोह का घर कहाँ है?" उसने "आ, तुझे बताऊँ" कह उसे हाथ से लिवा जाकर राजद्वार पर पहुँचाया। राजा 'द्वारपाल प्रत्यन्त-वासी को लेकर आया है' सुनते ही आसन से उठ खडा हुआ और बोला—मेरा मित्र और उसके साथ आये हुए (सब) आवें। उसने उसकी अगवानी कर, देखते ही गले लगा कर पूछा—मेरी मित्राणी और बच्चे स्वस्थ तो है न? फिर हाथ पकड, महान् तल्ले पर चढ, उसे श्वेत-छत्र के नीचे बिठाया और पटरानी को बुलाकर कहा—भद्रे! मेरे मित्र के पाँव धो।

उसने उसके पाँव धोये। राजा ने सोने की झकारी से पानी डाला। देवी ने पाँवो को धोकर उनमे सुगन्धित तेल की मालिश की। राजा ने पूछा—मित्र हमारे लिये कुछ खाने को हे ? उसने "है" कह थैली मे मे पूए निकाले। राजा ने सोने की थाली मे ले उसका आदर करने हुए 'मेरे मित्र का लाया हुआ खाओ' कह देवी और अमात्यो को दे स्वय भी खाये।

उसने दूसरी भेंट भी सामने रखी। राजा ने उसके प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिये काशी (के बने) वस्त्र उतार कर उसके लाये वस्त्र पहने। देवी ने भी काशी-वस्त्र और अलङ्कार उतार उसके लाये वस्त्र तथा गहने पहने। राजा ने उसे भोजन खिलवा एक अमात्य को आज्ञा दी—जा, जैसे मेरी हजामत बनती है उसी तरह इसकी हजामत बनवा, सुगन्धित जल से स्नान करा, लाख के मूल्य का काशी-वस्त्र पहनवा, राजाभरण अलकृत करवा कर ला। उसने वैसा किया।

राजा ने नगर मे मुनादी करा, अमात्यो को इकट्ठा किया और श्वेतछत्र के मध्य मे शुद्ध हिंगुल मे रगा सूत्र गिरा, आधा-राज्य दे दिया। उस समय से खाना, पीना, सोना इकट्ठा होने लगा। परस्पर विश्वास दृढ हो गया, ऐसा जिसे कोई छिन्न-भिन्न न कर सके। राजा ने उसके स्त्री-पुत्रो को भी बुलवा, नगर मे मकान बनवा दिया। वे मिल-जुल कर प्रसन्न चित्त रह राज्य करते।

अमात्यो ने क्रोधित हो राजपुत्र को कहा—कुमार! राजा ने एक गृहस्थ को आधा राज्य दे दिया है। वह उसके साथ खाता, पीता, सोता है और बच्चो से उसे नमस्कार करवाता है। हम नही जानते कि इसने राजा का क्या उपकार किया है ? राजा क्या करता है ? हमे लज्जा आती है। तू राजा से कह।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर सारी बात राजा को सुनाकर निवेदन किया—महाराज, ऐसा न करे।

"तात! मैं युद्ध मे पराजित होकर कहा रहा, जानते हो ?"

"देव! नही जानता हूँ।"

"मैं इसी के घर मे रहकर स्वस्थ हो आकर राज्य करने लगा हूँ। जिसने मेरा इतना उपकार किया, उसे कैसे सम्पत्ति न दूँ ?"

मेरा नाम महाश्वारोह है। मेरा घर नगर के बीच मे है। यदि किसी काम मे आना हो तो दक्षिण-द्वारपाल से पूछना कि महाश्वारोह किस घर मे रहता है और उसे साथ ले हमारे घर आना। इतना कह चला गया। सेना ने भी राजा को न देख नगर के बाहर छावनी डाल ली थी। राजा को देखा तो अगवानी कर राजा के पास पहुँची।

राजा ने नगर मे प्रवेश करते समय द्वार मे एक द्वारपाल को बुलाया और जनता को एक ओर हटा कर कहा—तात! एक प्रत्यन्त-ग्रामवासी मुझे मिलने की इच्छा से आयगा और तुझे पूछेगा कि महाश्वारोह का घर कहाँ है? तू उसे हाथ से पकड मेरे पास लाना। तुझे हजार मिलेगा। वह नहीं आया। उसे न आता देख राजा ने जिस गाँव मे वह रहता था उस गाँव की मालगुजारी (बलि) बढा दी। मालगुजारी बढने पर भी नही आया। इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी मालगुजारी बढाई। वह नही ही आया।

तब उस गाँव के रहने वालो ने इकट्ठे हो उसे कहा—आर्य! तेरे अश्वारोह के आने के समय से हम मालगुजारी से इतने पीडित हो गये कि सिर भी नही उठा सकते! जा महाश्वारोह से कहकर हमे मालगुजारी से मुक्त करा।

"अच्छा, जाता हूँ। लेकिन खाली हाथ नही जा सकता। मेरे मित्र के दो बच्चे हैं। उनके लिये, उसकी भार्य्या के लिये तथा मेरे मित्र के लिये कपडे-लत्ते तथा गहने तैयार करो।"

"अच्छा, तैयार करते है" कह उन्होने सब भेंट तैयार की।

उसने वे सब और अपने घर पके पूए ले, दक्षिण-द्वार पहुँच, द्वारपाल से पूछा—"मित्र, महाश्वारोह का घर कहाँ है?" उसने "आ, तुझे बताऊँ" कह उसे हाथ से लिवा जाकर राजद्वार पर पहुँचाया। राजा 'द्वारपाल प्रत्यन्त-वासी को लेकर आया है' सुनते ही आसन से उठ खडा हुआ और बोला—मेरा मित्र और उसके साथ आये हुए (सब) आवें। उसने उसकी अगवानी कर, देखते ही गले लगा कर पूछा—मेरी मित्राणी और बच्चे स्वस्थ तो हैं न? फिर हाथ पकड, महान् तल्ले पर चढ, उसे श्वेत-छत्र के नीचे बिठाया और पटरानी को बुलाकर कहा—भद्रे! मेरे मित्र के पाँव धो।

[जिस प्रकार आग मे पडा हुआ बीज उगता नही है जल जाता है, उसी प्रकार असत्पुरुष का जो उपकार किया जाता है वह भी फलता नहीं है जल जाता है।]

यह सुन न अमात्य ही फिर कुछ बोले, न राजकुमार।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय प्रत्यन्त-वासी आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

३०३ एकराज जातक

"अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल राजा के एक सेवक के बारे मे कही। वर्तमान-कथा सेय्यस जातक[1] मे आ ही गई है। यहा इस कथा मे तो शास्ता ने 'केवल तू ही अनर्थ से अर्थ करने वाला नही है, पुराने पण्डितो ने भी अपने अनर्थ से अर्थ किया है' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पुराने समय मे वाराणसी राजा के उपस्थायक अमात्य ने राजा के अन्त पुर को दूषित कर दिया। राजा ने प्रत्यक्ष उसका दोष देख उसे राष्ट्र से निकाल दिया। वह दब्बसेन नामक कोशलराज की सेवा मे रहने लगा आदि सब महासीलव जातक[2] मे आया ही है।

इस कथा मे तो दब्बसेन ने महान् तल्ले पर मन्त्रियो के बीच बैठे वाराणसी नरेश को पकडवा, छीके मे डलवा, उत्तर की देहली मे सिर नीचे पैर ऊपर कर लटकवा दिया। राजा चोर-राजा के प्रति मैत्री भावना कर योग द्वारा

---

१ सेय्यस जातक (२८२)।

२ महासीलव जातक (५१)।

इतना कह बोधिसत्व ने 'तात ! जो जिसे देना अयोग्य है, उसे देता है और जिसे देना योग्य है उसे नही देता है, वह जब आपत्ति मे पडता है तो (कोई) उसका कुछ उपकार नही करता' स्पष्ट करते हुए ये गाथायें कही —

अदेय्येसु ददं दानं देय्येसु नप्पवेच्छति,
आपासु व्यसन पत्तो सहायं नाधिगच्छति ॥
नादेय्येसु ददं दान देय्येसु यो पवेच्छति,
आपासु व्यसनं पत्तो सहायमधिगच्छति ॥
सञ्ञोग सम्भोग विसेसदस्सनं
अनरियधम्मेसु सठेसु नस्सति,
कतञ्च अरियेसु च अञ्जसेसु च
महप्फलो होति अणुम्पि तादिसु ॥
यो पुब्बे कतकल्याणो अका लोके सुदुक्करं,
पच्छा कयिरा न वा कयिरा अच्चन्तं पूजनारहो ॥

[जो जिन्हे देना अयोग्य है उन्हे देता है और जिन्हे देना चाहिए उन्हे नही देता, उसे आपत्ति मे कष्ट भोगना पडने पर सहायक नही मिलता। जो जिन्हे देना अयोग्य है उन्हे नही देता और जिन्हे देना योग्य है उन्हे देता है, उसे आपत्ति मे कष्ट भोगना पडने पर सहायक मिलता है।

अनार्य स्वभाव शठ पुरुषो के साथ का सयोग, सभोग अथवा उनके प्रति किया गया विशेष उपकार नष्ट हो जाता है। आर्यों के श्रेष्ठ मार्गानुयायियो वा स्थिरचित्तमनुष्यो के प्रति किया गया थोडा भी उपकार महान् फल का देने वाला होता है।

जिसने पहले उपकार किया है उसने लोक मे दुष्कर कार्य्य किया है, वह पीछे उपकार करे वा न करे, वह अत्यन्त पूजनीय है।]

और कहा भी गया —

यथा बीज अग्गिस्मिं डहति न विरूहति,
एव कतं असप्पुरिसे डय्हति न विरूहति ॥
कतञ्ञुम्हि च पोसह्मि सीलवन्ते अरियवुत्तिने,
सुखेत्ते विय बीजानि कतं तम्हि न नस्सति ॥

[जिस प्रकार आग मे पडा हुआ बीज उगता नही है जल जाता है, उसी प्रकार असत्पुरुष का जो उपकार किया जाता है वह भी फलता नही है जल जाता है।]

यह सुन न अमात्य ही फिर कुछ वोले, न राजकुमार।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल विठाया। उस समय प्रत्यन्त-वासी आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

३०३ एकराज जातक

"अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल राजा के एक सेवक के वारे मे कही। वर्तमान-कथा नीचे सव्यंस जातक[1] मे आ ही गई है। यहा इस कथा मे तो शास्ता ने 'केवल तू ही अनर्थ से अर्थ करने वाला नही है, पुराने पण्डितो ने भी अपने अनर्थ से अर्थ किया है' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पुराने समय मे वाराणसी राजा के उपस्थायक अमात्य ने राजा के अन्त पुर को दूषित कर दिया। राजा ने प्रत्यक्ष उसका दोप देख उसे राष्ट्र से निकाल दिया। वह दव्वसेन नामक कोशलराज की सेवा मे रहने लगा आदि सव महासीलव जातक[2] मे आया ही है।

इस कथा मे तो दव्वसेन ने महान् तल्ले पर मन्त्रियो के वीच वैठे वाराणसी नरेश को पकडवा, छीके मे डलवा, उत्तर की देहली मे सिर नीचे पैर ऊपर कर लटकवा दिया। राजा चोर-राजा के प्रति मैत्री भावना कर योग द्वारा

---

१ सेय्यस जातक (२८२)।

२ महासीलव जातक (५१)।

ध्यानावस्थित हुआ । उसका बन्धन टूट गया । तब राजा आकाश मे पालथी मार बैठा । चोर-राजा के शरीर मे जलन पैदा हुई । 'जलता हूँ' कहता हुआ इधर-उधर लोटने लगा । 'इसका क्या कारण है ?' पूछने पर बताया गया कि महाराज आप ने इस प्रकार के धार्मिक राजा को निरपराध द्वार की उत्तर की देहली मे सिर नीचे करके लटकवा दिया है ।

"तो जल्दी से जाकर उसे मुक्त करो ।"

लोगो ने जाकर राजा को आकाश मे बैठा देख आकर दब्बसेन को कहा । उसने जल्दी से पहुँच, उसकी वन्दना कर, क्षमा माग पहली गाथा कही —

अनुत्तरे कामगुणे समिद्धे
भुत्वान पुब्बेवसि एकराजा,
सो दानि दुग्गे नरकम्हि खित्तो
नप्पजहे वण्ण बल पुराण ॥

[हे एकराज ! तू पहले अनुत्तर समृद्ध काम-भोगो को भोगता हुआ रहा । अब तुझे दुष्कर नरक मे फेक दिया है । तो भी तू अपने पुराने वर्ण-बल को (कैसे) बनाये है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने शेप गाथायें कही —

पुब्बे खन्ती च तपो च मय्हं
सम्पत्थिता दब्बसेना अहोसि,
त दानि लद्धान कथन्नु राज
जहे अह वण्णबलं पुराण ॥
सब्बे किरेव परिनिट्ठितानि
यसस्सिनं पञ्ञवन्त विसय्ह,
यसो च लद्धा पुरिम उळार
नप्पजहे वण्णबलं पुराण
पनुज्ज दुक्खेन सुख जनिन्द
सुखेन वा दुक्खमसय्हसाहि,
उभयत्थ सन्तो अभिनिब्बुतत्ता
सुखे च दुक्खे च भवन्ति तुल्या ॥

[हे दिव्यसेन ! मेरे द्वारा शान्ति और तप की पहले ही प्रार्थना की गई थी। उन्हे पाकर मैं अब अपने पुराने वर्ण को कैसे त्यागूं ? हे यशस्वी ! हे प्रज्ञावान् ! हे सहनशील ! ये सब (दान शील आदि) कर्म पहले ही कर चुका हूँ और अपूर्व तथा उदार यश की प्राप्ति भी हो जाने के कारण मैं अपने पुराने वर्ण बल (सौन्दर्य्य) को नही छोडता हूँ। हे जनेन्द्र ? दु ख से सुख को दूरकर अथवा हे सहनशील ! सुख से दु ख को दूर कर जो शान्त पुरुष है, वे दोनो के प्रति उपेक्षावान् हो सुख तथा दु ख दोनो के प्रति समान-भाव रखते हैं।]

यह सुन दब्बसेन ने बोधिसत्व से क्षमा माँगी। अपना राज्य आप ही सभाले, मैं चोरो से रक्षा-करूँगा, कह उस दुष्ट-अमात्य को राज-दण्ड दिला चला गया। बोधिसत्व भी अमात्यो को राज्य सौप ऋषि-प्रव्रज्या ले ब्रह्मलोक परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय दब्बसेन आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

३०४ दद्दर जातक

"इमानि म दद्दर तापयन्ति" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक क्रोधी के बारे मे कही —

क. वर्तमान कथा

कथा तो नीचे कही ही गई है। उस समय धर्मसभा मे उसके क्रोधीपन की बात चलने पर शास्ता ने आकर पूछा —

"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"शास्ता ने उस भिक्षु को बुलवा कर पूछा —

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच क्रोधी है ?"

"भन्ते ! हा ।"

'भिक्षुओ, यह केवल अभी क्रोधी नही है, पूर्व (जन्म) मे भी यह क्रोधी ही रहा है। इसके क्रोध के कारण शुद्ध नागराज योनि मे उत्पन्न पुराने पण्डितो को भी तीन वर्ष तक गन्दगी भरी कुरडी मे रहना पडा था' कह पूर्व जन्म की कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व हिमालय प्रदेश मे जो दद्दरपर्वत मे दद्दर नागभवन है, वहा राज्य करने वाले दद्दर राजा के महादद्दर नाम के पुत्र हुए। छोटे भाई का नाम था चूळ-दद्दर। वह क्रोधी कठोर स्वभाव का था और नाग-माणवको को गाली दिया करता तथा पीटा करता था । नागराजा को जब उसके कठोर स्वभाव का पता लगा तो उसने उसे नागभवन से निकाल देने की आज्ञा दी। महादद्दर ने पिता से क्षमा माँग आज्ञा टलवा दी। दूसरी बार भी राजा को उस पर क्रोध आया। दूसरी बार भी क्षमा माँग ली। लेकिन तीसरी बार उसने आज्ञा दी—तू इस अनाचारी को निकालने से मुझे रोकता है, जाओ तुम दोनो इस नागभवन से निकल वाराणसी मे कूडा फेंकने की जगह जाकर तीन वर्ष तक रहो। वे वहा जाकर रहने लगे।

उन्हे पानी तक कूडा फेंकने की जगह मे भोजन ढूंढते फिरते देख गाँव के लडके प्रहार करके, पत्थर लकडी आदि फेंकते और गाली देते थे—कौन है ये बडे-बडे सिरवाले, चीते (जैसे) पानी के सर्प। चूळदद्दर क्रोधी होने के कारण उनका यह अपमान सहन नही कर सकता था। वह बोला—भाई ! यह बालक हमारा मजाक उडाते है। वह नही जानते कि हम विषैले सर्प है। मैं इनका अपमान नही सह सकता हूँ। मैं इनको फुंकार मार कर नष्ट करूंगा। इस प्रकार भाई के साथ बातचीत करते हुए उसने पहली गाथा कही —

इमानि म दद्दर तापयन्ति
वाचा दुरुत्तानि मनुस्सलोके,

मण्डूकभक्खा उदकन्तसेवी
आसीविस म अविसा सपन्ति ॥

[हे दद्दर ! ये मनुष्यलोक की दूषित वाणियाँ मुझे दु ख देती है। ये निर्विष ग्राम-बालक मुझे 'मेढक खाने वाला तथा पानी के तट पर रहने वाला' कह कह कर गाली देते है।]

उसकी बात सुन महादद्दर ने शेष गाथायें कही—

सका रट्ठा पब्बाजितो अञ्ञ जनपद गतो
महन्त कोट्ठ कयिराथ दुरुत्तान निधेतवे ॥
यत्थ पोस न जानन्ति जातिया विनयेन वा,
न तत्थ मानं कयिराथ वसमञ्ञातके बने ॥
विदेसवास वसतो जातवेदसमेनपि,
खमितब्बं सपञ्ञेन अपि दासस्स तज्जित ॥

[अपने देश से निकाल दिये जाने पर तथा दूसरे जनपद मे जाने पर दुरुक्त वाणी (को रखने) के लिये आदमी अपने पास बडा कोठा रखे। अपरिचित जनो मे रहते समय, जहाँ कोई अपनी जाति तथा शील से परिचित न हो, मान न करे। अग्नि के समान (प्रचण्ड) होने पर भी बुद्धिमान आदमी को चाहिए कि वह विदेश मे रहते दास की घुडकी तक को भी क्षमा कर दे।]

इस प्रकार वे वहाँ तीन वर्ष तक रहे। तब उनके पिता ने उन्हे बुलवा लिया। उस समय से वे अभिमान रहित हो गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर क्रोधी भिक्षु अनागामी-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय चूळदद्दर क्रोधी भिक्षु था। महादद्दर तो मैं ही था।

३०५ सीलवीमसन जातक

"नत्थि लोके रहो नाम " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कामुकता के निग्रह करने के वारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा एकादश परिच्छेद के पाणीय जातक[1] मे आयेगी। यहा यह सक्षिप्त वर्णन है। जेतवन-निवासी पाच सौ भिक्षु आधी रात के बाद मन मे काम भोग सम्बन्धी सकल्प उठाने लगे। शास्ता दिन-रात के छओ हिस्सो मे उसी प्रकार भिक्षुओ पर सदा नजर रखते थे जैसे एक आख वाला अपनी (एक) आख की रक्षा करता है, एक ही पुत्र वाला अपने पुत्र की तथा चमरी अपनी पूँछ की। उन्होने रात को दिव्यचक्षु से जेतवन को देखा तो उन्हे वे भिक्षु ऐसे लगे जैसे चक्रवर्ती राजा के महल मे चोर घुस गये हो। गन्धकुटी खुलवा आनन्द स्थविर को बुलवा उन्होने कहा—"आनन्द! कोटि-सन्थार मे भिक्षुओ को इकट्ठा कर गन्धकुटी द्वार पर आसन बिछा दो।" उसने वैसा करके शास्ता को सूचना दी। शास्ता ने बिछे आसन पर बैठ भिक्षुओ को सामूहिक तौर पर आमन्त्रित कर "भिक्षुओ, पुराने पण्डितो ने यह सोचकर कि कोई भी जगह 'छिपी' नही होती, पाप नही किया" कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मणकुल मे पैदा हुए। बडे होने पर वही वाराणसी मे प्रसिद्ध आचार्य के पास पाच सौ विद्यार्थियो मे ज्येष्ठ होकर विद्या सिखाने लगे। आचार्य की आयु-प्राप्त लडकी थी। उसने सोचा कि इन विद्यार्थियो के शील की परीक्षा कर जो सदाचारी होगा उसे ही पुत्री दूंगा। उसने विद्यार्थियो को बुला कर कहा—तात! मेरी लडकी आयुप्राप्त हो गई। मैं इसका विवाह करूंगा।

---

१ पाणीय जातक (४५९)।

वस्त्रो तथा अलङ्कारो की अपेक्षा है। तुम अपने सम्बन्धियो की आख बचाकर चुराकर वस्त्र तथा अलङ्कार लाओ। जिसे किसी ने न देखा हो, ऐसे ही वस्त्रा-लङ्कार ग्रहण करूँगा। जिन्हे किसी ने देख लिया होगा ऐसे नही ग्रहण करूँगा। वे 'अच्छा' कह स्वीकार कर तब से सम्बन्धियो की आख बचा चुराकर वस्त्र तथा आभरण लाने लगे। आचार्य जो कुछ कोई लाता उसे पृथक पृथक ही रखते जाते। बोधिसत्व कुछ नही लाये। आचार्य ने पूछा—तात तू कुछ नही लाता ?

"आचार्य्य ! हाँ।"

"तात ! क्यो ?"

"तुम किसी के देखते लाई चीज ग्रहण नही करते। मैं पाप करने के लिए कोई 'छिपी' जगह नही देखता।"

यह प्रकट करते हुए ये दो गाथाये कहीं —

नत्थि लोके रहो नाम पापकम्म पकुब्बतो,
पस्सन्ति वनभूतानि त बालो मञ्ञती रहो।
अह रहो न पस्सामि सुञ्ञवापि न विज्जति,
यत्थ अञ्ञं न पस्सामि असुञ्ञ होति तमया॥

[पाप कर्म करने वाले के लिये ऐसी कोई जगह नही है जहाँ कोई न हो। मूर्ख आदमी उस स्थान को जहा वन के प्राणी देखते रहते है 'छिपी जगह' मानता है। मैं किसी जगह को 'छिपी' जगह नही देखता। कोई स्थान 'शून्य' स्थान नही है। जहा और कोई नही दिखाई देता उस स्थान पर मैं स्वय तो होता ही हूँ।]

आचार्य ने उस पर प्रसन्न हो कहा—तात ! मेरे घर मे धन है। मैं ने तो सदाचारी को लडकी देने की इच्छा से इन विद्यार्थियो की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। उसमे 'मेरी लडकी तुम्हारे ही योग्य है' कह, लडकी अलकृत कर बोधिसत्व को दी और शेष विद्यार्थियो से कहा—तुम जो धन लाये हो उसे अपने-अपने घर ले जाओ।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! अपनी दु शीलता के कारण ही उन दु शील विद्यार्थियो को वह स्त्री नही मिली। दूसरे पडित विद्यार्थियो ने शीलवान होने के ही कारण प्राप्त की।' इतना कह अभिसम्बुद्ध होने पर शेष दो गाथाएँ कही —

दुज्जच्चो च सुजच्चो च नन्दो च सुखवच्छको,
वेज्जो अदधुवसीलोच्च ते धम्मं जहुमत्थिका ।
ब्राह्मणो च कथ जहे सब्बधम्मानपारगू,
यो धम्ममनुपालेति घितिमा सच्चनिक्कमो ॥

[दुज्जच्च, सुजच्च, नन्द, सुखवच्छक, वेज्ज तथा अदधुव शील आदि स्त्री की अपेक्षा रखने वाले उन विद्यार्थियो ने धर्म छोड दिया । लेकिन सभी धर्मो मे पारगत ब्राह्मण जो धृतिमान है जो सत्य मे दृढ है, तथा जो धर्म का पालन करता है वह उसे कैसे छोडे ?]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो (के प्रकाशन) के अन्त मे वे पाच सौ भिक्षु अर्हत हो गये । उस समय आचार्य सारिपुत्र थे । पण्डित विद्यार्थी तो मैं ही था ।

३०६ सुजाता जातक

"कि अण्डका " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय मल्लिका देवी के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन उसका राजा से प्रेम-कलह हो गया—शयन-कलह भी कहा जाता है । राजा क्रोधित हो उसकी ओर से एकदम लापरवाह हो गया । मल्लिका देवी सोचने लगी—मैं समझती हूँ कि शास्ता यह नही जानते कि राजा मुझ पर क्रुद्ध है । शास्ता जानकर, 'इन दोनो का मेल कराऊँगा' सोच पूर्वाह्न समय पात्र-चीवर ले पाच सौ भिक्षुओ के साथ श्रावस्ती मे प्रविष्ट हो राजद्वार पर पहुँचे । राजा ने तथागत का पात्र ले, घर मे लिवा लाकर, बिछे आसन पर बिठाया । फिर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ के चरण धुला यवागू... को कुछ लाया । शास्ता ने पात्र को हाथ से ढककर पूछा—देवी

"भन्ते ! उससे क्या काम ? वह अपने यश के मान मे चूर है।"

"महाराज, स्वय यश देकर, स्त्री को ऊँचा स्थान दे, उसके द्वारा किये अपराध को न सहना अयोग्य है।"

राजा ने शास्ता का वचन सुन उसे बुलवाया। उसने शास्ता को परोसा। शास्ता 'परस्पर मिलकर रहना चाहिये' कह ऐक्य-रस की प्रशसा कर चले गये। उस समय से दोनो मिलकर रहने लगे।

भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बात चलायी—आयुष्मानो ! शास्ता ने एक शब्द से ही दोनो मे मेल करा दिया। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी किन्तु भिक्षुओ, मैने पहले भी एक उपदेश से ही इनमे मेल कराया है।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे। एक दिन राजा खिडकी खोले राजाङ्गन की ओर देखता खडा था। उसी समय एक माली की लडकी, जो सुन्दर थी और जिसकी चढती जवानी थी, बेरो की टोकरी सर पर रख, 'बेर लो, बेर लो' कहती हुई राजाङ्गन मे से गुजर गई। राजा ने उसका शब्द सुना तो आसक्त हो गया। यह जान कि वह किसी की नही है, उसने उसे बुलवा पटरानी बना, बहुत सपत्ति दी। वह राजा की प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली। एक दिन राजा सोने की थाली मे बैठा बेर खा रहा था। सुजाता देवी ने राजा को बेर खाते देख 'महाराज ! आप यह क्या खा रहे हैं ?' पूछते हुए पहली गाथा कही —

किं अण्डका इमे देव निक्खित्ता कसमल्लके,
उपलोहितका वग्गु तम्मे अक्खाहि पुच्छितो ॥

[देव ! यह सोने की थाली मे रखे हुए सुन्दर लालवर्ण अण्डे से क्या हैं ?—मैं पूछ रही हूँ, मुझे कहें।]

राजा ने क्रोधित हो 'वेर वेचनेवाली माली की लडकी अपने कुल के वेरो को भी नही पहचानती' कह दो गाथाएँ कही —

यानि पुरेतुव देवि भण्डुनन्तकवासिनी,
उच्छङ्गहत्था पचिनासि तस्सा ते कोलियं फलं ॥
उड्डय्हते न रमति भोगा विप्पजहन्ति त,
तत्थेविम पटिनेथ यत्थ कोलं पचिस्सति ॥

[हे देवि ! जिन्हे तुम पहले सिरमुँडी, चिथडे पहने, अपनी गोद मे इकट्ठे करती थी, ये वही तेरे कुल के फल है।

यह यहाँ उवल रही है, यहाँ मन नही लगता, इसे राज-भोग छोड रहे है। इसे वही ले जाओ जहाँ यह जाकर वेर चुगेगी।]

वोधिसत्व ने सोचा मुझे छोड कोई दूसरा इनका मेल न करा सकेगा। मैं राजा को समझा इसका घर से निकालना रोकूँगा। उसने चौथी गाथा कही —

होन्ति हेते महाराज इद्धिपत्ताय नारिया,
खम देव सुजाताय मास्सा कुज्झि रथेसभ ॥

[महाराज ! ऊँचे स्थान पर पहुँची स्त्रियो मे यह दोप होते ही हैं। हे देव ! सुजाता को क्षमा करें। हे राजश्रेष्ठ ! इस पर क्रोध न करें।]

राजा ने उसके वचन से देवी के उस अपराध को क्षमा कर दिया और उसे यथास्थान रहने दिया। तब से दोनो मेल से रहने लगे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी राजा कोशल-राजा थे। सुजाता मल्लिका थी। अमात्य तो मैं ही था।

३०७. पलास जातक

"अचेतन ब्राह्मण" यह शास्ता ने परिनिर्वाण-शैय्या पर लेटे-लेटे आनन्द स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह आयुष्मान् शोकाभिभूत हो उद्यान के बरामदे मे कुण्डी पकडे रो रहे थे कि आज रात को तडके ही शास्ता का परिनिर्वाण हो जायगा, मै अभी शैक्ष ही हूँ, मेरा जीवनोद्देश्य अभी पूरा नही हुआ, और मेरे शास्ता परि-निर्वृत्त हो जायेगे। मै पच्चीस वर्ष तक जो उनकी सेवा मे रहा वह सब निष्फल होगा। शास्ता ने उसे न देख, पूछा—आनन्द कहाँ है? वृत्तान्त ज्ञात होने पर उसे बुलवा शास्ता ने कहा—आनन्द! तू ने पुण्यार्जन किया है। प्रयत्न कर। तू शीघ्र ही अनाश्रव हो जायगा। चिन्ता मत कर। जब पूर्व जन्म मे सराग होने के समय भी तू ने मेरी जो सेवा की वह निष्फल नही हुई, तो अब जो तूने मेरी सेवा की है वह कैसे निष्फल होगी?

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते के समय बोधिसत्व वाराणसी से थोडी दूर पलास वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए। उस समय वारा-णसी-निवासी देवता-पूजक थे। नित्य बलि-कर्म आदि मे लगे रहने वाले। एक दरिद्र ब्राह्मण ने सोचा—मैं भी एक देवता की सेवा करूँगा। वह एक ऊँचाई पर खडे बडे-बडे पत्तो वाले वृक्ष की जड मे (भूमि) बराबर कर, घास छील, चारो ओर वालु बिछवा, झाड़ू दे, वृक्ष पर पञ्चागुलि का चिह्न बना माला, गन्ध, धूप से पूजा कर, दीपक जला तथा वृक्ष की प्रदक्षिणा कर जाता और कहता—सुखपूर्वक सोना। दूसरे दिन प्रातःकाल ही जाकर पूछता—सुख से तो सोये? एक दिन उस वृक्ष-देवता ने सोचा—यह ब्राह्मण मेरी बहुत सेवा करता है। मैं इसे पूछ कर जिस इच्छा की पूर्ति के लिये यह मेरी सेवा करता है वह पूरी करूँगा। उसने उस ब्राह्मण के आकर झाड़ू लगाते समय वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर, पास खडे हो पहली गाथा कही —

> अचेतन ब्राह्मण अस्सुणन्त,
> जानो अजानन्तमिम पलास।
> आरद्धविरियो धुव अप्पमत्तो,
> सुखसेय्य पुच्छसि किस्स हेतु?

[हे ब्राह्मण ! तू जान-बूझ कर मुझ चेतना-रहित, न सुन सकने वाले, न जान सकने वाले पलास-वृक्ष से क्यो नित्य आलस्य-रहित होकर पूछता है—क्या सुखपूर्वक सोये ? इसमे क्या हेतु है ?]

यह सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही —

दूरे सुतोचेव ब्रहाच रुक्खो,
देसे ठितो भूतनिवासरूपो।
तस्मा नमस्सामि इम पलास,
ये चेत्थ भूता ते च धनस्स हेतु॥

[दूर से ही प्रगट, महान्, (ऊँचे) प्रदेश मे स्थित, तथा देवता का निवास स्थान होने के योग्य है। इसीलिये इस पलास-वृक्ष और इसमे रहने वाले देवता की पूजा करता हूँ, जिससे मुझे धन की प्राप्ति हो।]

यह सुन ब्राह्मण पर प्रसन्न हो वृक्ष-देवता ने कहा—ब्राह्मण ! मैं इस वृक्ष पर रहने वाला देवता हूँ। डर मत। मैं तुझे धन दूंगा।

इस प्रकार उसे आश्वासन दे, अपने विमान-द्वार पर देव-प्रताप के साथ आकाश मे खडे हो शेष दो गाथाये कही —

सो ते करिस्सामि यथानुभाव,
कतञ्ञुत ब्राह्मण पेक्खमानो।
कथ हि आगम्म सत सकासे,
मोघानि ते अस्सु परिफन्दितानि॥
यो तिन्दुरुक्खस्स परो पिलक्खु,
परिवारितो पुब्बयञ्ञो उळारो।
तस्सेव मूलस्मि निधी निखातो,
अदायादो गच्छ त उद्धराहि॥

[हे ब्राह्मण ! मै अपने मे कृतज्ञता को देखता हूँ। इसलिये मैं यथा-सामर्थ्य तुम्हारा उपकार करूँगा। यह कैसे हो सकता है कि सत्पुरुष के पास आने पर भी तुम्हारा प्रयत्न असफल हो !

यह जो तिन्दु (?) वृक्ष के आगे पाकर-वृक्ष है, उसी की जड मे चारो ओर पूर्व-यज्ञो के फलस्वरूप विशाल खजाना गडा हुआ है। वह किसी का नही है। जा उसे खोद कर निकाल ले ?]

इतना कह चुकने पर उस देवता ने उसे फिर कहा —

"ब्राह्मण ! तुझे इसे खोद कर निकालने मे कष्ट होगा । तू जा । मैं ही इसे तेरे घर ले जाकर अमुक स्थान मे गाड दूंगा । तू आजन्म इस धन का भोग करना, दान देना और सदाचार-पूर्वक रहना ।"

इस प्रकार ब्राह्मण को उपदेश दे वह धन उसके घर पहुँचा दिया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल विठाया । उस समय ब्राह्मण आनन्द था । वृक्ष देवता तो मैं ही था ।

३०८. जवसकुण जातक

"अकरह्मस ते किच्च " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय देवदत्त की अकृतज्ञता के बारे मे कही । "भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नही है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है" कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश मे कठफोड पक्षी की योनि मे पैदा हुए । एक दिन मास खाते समय एक सिंह के गले मे हड्डी फँस गई । गला सूज गया । शिकार नही कर सकता था । बडी वेदना होती थी । चुगने जाते समय उस पक्षी ने शाखा पर बैठे ही बैठे उसे देखकर पूछा—मित्र ! तुझे क्या कष्ट है ? उसने वह हाल कहा । "मित्र ! मैं यह तेरी हड्डी निकाल दूँ । लेकिन भय से तेरे मुँह मे प्रविष्ट होने का साहस नही होता । कही मुझे खा ही न जाये !"

"मित्र ! डर मत । मैं तुझे नही खाऊँगा । मेरा प्राण बचा ।"

उसने 'अच्छा' कह उसे करवट लिटाया । फिर 'कौन जानता है यह क्या कर बैठे' सोच उसके नीचे और ऊपर के जबडे मे एक लकडी लगा जिसमे वह मुँह न बद कर सके, (उसके) मुँह मे घुस हड्डी के सिरे पर

चोच से चोट की। हड्डी गिर कर (बाहर) गई। उसने हड्डी गिरा, सिंह के मुँह से निकलते समय लकडी को चोच मे गिरा दिया और निकल कर शाखा पर जा बैठा। सिंह निरोग होकर एक दिन जगली भैसे को मार कर खा रहा था। पक्षी ने सोचा—इसकी परीक्षा करूँगा। उसने उसके ऊपर शाखा पर लटकते हुए उससे बातचीत करते हुए पहली गाथा कही —

अकरह्मस ते किच्च य बल अहुवह्मसे,
मिगराज नमो त्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे ॥

[हे मृगराज! यथाशक्ति हमने तेरा उपकार किया था। तुझे नमस्कार है। कुछ हमे भी मिले।]

यह सुन शेर ने दूसरी गाथा कही —

मम लोहितभक्खस्स निच्च लुद्दानि कुब्बतो,
दन्तन्तरगतो सन्तो त बहु यम्पि जीवसि ॥

[मेरे नित्य शिकार खेलने वाले, रक्त पीने वाले के मुँह मे जाकर यही बहुत है कि तू जीता है।]

यह सुन पक्षी ने शेष दो गाथाये कही —

अकतञ्ञुमकत्तार कतस्स अप्पतिकारक,
यस्मि कतञ्ञुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।
यस्स सम्मुखचिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति,
अनुसुय्यमनक्कोस सणिक तह्मा अपक्कमे ॥

[जो अकृतज्ञ है, जो कुछ कर नही सकता, जो उपकार के बदले मे प्रत्युपकार नही कर सकता, जिसमे कृतज्ञता का भाव नही है उसकी सेवा करना निरर्थक है।

जिसका साक्षात् उपकार करने पर भी मित्र-धर्म की प्राप्ति नही होती, उसके प्रति बिना असूय्या किये और उसे बिना बुरा भला कहे, उसके पास से शीघ्र ही दूर हो जाना चाहिये।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय सिंह देवदत्त था। पक्षी तो मैं ही था।

३०९ छवक जातक

"सब्ब इद चरिमवत " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय षड्वर्गीय भिक्षुओ के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा विनय (पिटक) मे[1] विस्तार से आई हो है । यहाँ यह सक्षेप से है । शास्ता ने षड्वर्गीय भिक्षुओ को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच नीचे आसन पर बैठ, ऊँचे आसन पर बैठे हुए को धर्मोपदेश देते हो ?"

"भन्ते ! हाँ ।"

शास्ता ने उन भिक्षुओ की निन्दा करते हुए कहा—भिक्षुओ, मेरे धर्म का इस प्रकार अपमान करना अनुचित है । पुराने पण्डितो ने नीचे आसन पर बैठ बाहरी मन्त्र बँचवाने वालो तक की भी निन्दा की है । इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व चाण्डाल योनि मे पैदा हो, बड़े होने पर कुटुम्ब पालने लगे । उसकी स्त्री को आम का दोहद पैदा हुआ । वह बोली—स्वामी ! आम खाना चाहती हूँ ।

"भद्रे ! इस समय आम नही है । कोई दूसरा खट्टा फल लाऊँगा ।"

"स्वामी ! मुझे आम मिलेगा तभी जीऊँगी, नहीं मिलेगा तो जीती नही रहूँगी ।"

---

१ विनयपिटक (सुत्त विभग, ६८, ६९) ।

चोच से चोट की। हड्डी गिर कर (बाहर) गई। उसने हड्डी गिरा, सिंह के मुंह से निकलते समय लकडी को चोच मे गिरा दिया और निकल कर शाखा पर जा बैठा। सिंह निरोग होकर एक दिन जगली भैसे को मार कर खा रहा था। पक्षी ने सोचा—इसकी परीक्षा करूँगा। उसने उसके ऊपर शाखा पर लटकते हुए उससे बातचीत करते हुए पहली गाथा कही —

अकरह्मस ते किच्च य बल अहुवह्मसे,
मिगराज नमो त्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे ॥

[हे मृगराज! यथाशक्ति हमने तेरा उपकार किया था। तुझे नमस्कार है। कुछ हमे भी मिले।]

यह सुन शेर ने दूसरी गाथा कही —

मम लोहितभक्खस्स निच्च लुद्दानि कुब्बतो,
दन्तन्तरगतो सन्तो त बहु यम्पि जीवसि ॥

[मेरे नित्य शिकार खेलने वाले, रक्त पीने वाले के मुँह मे जाकर यही बहुत है कि तू जीता है।]

यह सुन पक्षी ने शेष दो गाथाये कही —

अकतञ्ञुमकत्तार कतस्स अप्पतिकारक,
यस्मि कतञ्ञुता नत्थि निरत्था तस्स सेवना।
यस्स सम्मुखचिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति,
अनुसुय्यमनक्कोस सणिक तह्मा अपक्कमे ॥

[जो अकृतज्ञ है, जो कुछ कर नही सकता, जो उपकार के बदले मे प्रत्युपकार नही कर सकता, जिसमे कृतज्ञता का भाव नही है उसकी सेवा करना निरर्थक है।

जिसका साक्षात् उपकार करने पर भी मित्र-धर्म की प्राप्ति नही होती, उसके प्रति बिना असूय्या किये और उसे बिना बुरा भला कहे, उसके पास से शीघ्र ही दूर हो जाना चाहिये।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय सिंह देवदत्त था। पक्षी तो मैं ही था।

३०९ छवक जातक

"सव्व इद चरिमवत " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय षड्वर्गीय भिक्षुओ के बारे मे कही ।

क वर्तमान कथा

कथा विनय (पिटक) मे[1] विस्तार से आई ही है । यहाँ यह सक्षेप से है । शास्ता ने षड्वर्गीय भिक्षुओ को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच नीचे आसन पर बैठ, ऊँचे आसन पर बैठे हुए को धर्मोपदेश देते हो ?"

"भन्ते ! हाँ ।"

शास्ता ने उन भिक्षुओ की निन्दा करते हुए कहा—भिक्षुओ, मेरे धर्म का इस प्रकार अपमान करना अनुचित है । पुराने पण्डितो ने नीचे आसन पर बैठ वाहरी मन्त्र बँचवाने वालो तक की भी निन्दा की है । इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व चाण्डाल योनि मे पैदा हो, बडे होने पर कुटुम्ब पालने लगे । उसकी स्त्री को आम का दोहद पैदा हुआ । वह बोली—स्वामी ! आम खाना चाहती हूँ ।

"भद्रे ! इस समय आम नही है । कोई दूसरा खट्टा फल लाऊँगा ।"

"स्वामी ! मुझे आम मिलेगा तभी जीऊँगी, नही मिलेगा तो जीती नही रहूँगी ।"

---

१ विनयपिटक (सुत्त विभंग, ६८, ६९) ।

वह उसपर आसक्त था, सोचने लगा—आम कहाँ मिलेगा ? उस समय वाराणसी नरेश के उद्यान मे आम सदैव फलता था। उसने सोचा, वहाँ से पका आम लाकर इसका दोहद शान्त करूँगा। वह रात को उद्यान मे पहुँचा और आम के पेड पर आम्र-फल खोजता हुआ एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमता रहा। उसके वैसा करते रहते ही रात बीत गई। उसने सोचा—यदि अब उतर कर जाऊँगा, तो मुझे देखकर 'चोर' समझ पकड लेंगे। रात को ही जाऊँगा। वह एक वृक्ष पर चढ छिप रहा।

उस समय वाराणसी राजा पुरोहित से (वेद-) मन्त्र पढता था। वह उद्यान मे आम्रवृक्ष की छाया मे ऊँचे आसन पर बैठ, आचार्य को नीचे आसन पर बिठा, मन्त्र सीखता था। बोधिसत्व ने ऊपर बैठे-बैठे सोचा—यह राजा अधार्मिक है जो ऊँचे आसन पर बैठ कर मन्त्र सीखता है, ब्राह्मण भी अधार्मिक है जो नीचे आसन पर बैठ मन्त्र सिखाता है और मै भी अधार्मिक हूँ जो स्त्री के कारण अपने जीवन की परवाह न कर आम ले जा रहा हूँ। वह वृक्ष से उतरते हुए एक लटकती हुई शाखा के सहारे उन दोनो के बीच मे आ खडा हुआ, (और बोला—)महाराज ! मैं नष्ट हुआ, तुम मुर्ख हो और पुरोहित मर गया है। राजा ने पूछा—क्यो ? उसने पहली गाथा कही —

सब्ब इद चरिमवत उभो धम्म न पस्सरे,
उभो पकतिया चुता यो चाय मन्तज्झायति
यो च मन्त अधीयति ॥

[ये सब नीच-कर्म हैं।[1] धर्म[2] को दोनो नही देखते हो। दोनो ही धर्म से च्युत हो—जो यह मन्त्र सीखता है और यह जो मन्त्र सिखाता है।]

इसे सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही —

---

१ अपने चोर-कर्म की भी निन्दा करता है।

२ पुराने धर्म को। कहा भी है :—

धम्मो हवे पातुरहोसि पुब्बे,
पच्छा अधम्मो उदपादि लोके ॥

[पहले लोक मे धर्म ही प्रादुर्भूत हुआ, अधर्म पीछे पैदा हुआ।]

सालीन भोजन भुञ्जे सुचि मसूपसेचन,
तस्मा एत न सेवामि धम्म इसिहि सेवित ॥

[मैं (इस राजा के पास) अच्छी तरह पके मास के साथ शालि धान का भोजन खाता हूँ । इसीलिये ऋषियो द्वारा सेवित इस धर्म का पालन नही करता हूँ ।]

इसे सुन दूसरे ने दो गाथाये कही —

परिब्बज महालोको पचन्तञ्जेपि पाणिनो,
मा त अधम्मो आचरितो अस्मा कुम्भमिवाभिदा ।
धिरत्थु तं यसलाभ धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या वुत्तिविनिपातेन अधम्मचरणेन वा ॥

[इस स्थान को छोड अन्यत्र जा । यह ससार बडा है । दूसरे भी प्राणी (भोजन) पकाते ही हैं । ऐसा न हो कि यह तेरा आचरण किया अधर्म तुझे वैसे ही फोड दे जैसे पत्थर के घडे को । हे ब्राह्मण ! उस सम्पत्ति को धिक्कार है, उस धन को धिक्कार है, जो पापपूर्ण जीविका या अधर्माचरण से प्राप्त हो ।]

राजा ने उसके धार्मिक भाव से प्रसन्न हो पूछा—

"तुम्हारी जाति क्या है ?"

"देव ! मैं चाण्डाल हूँ ।"

"भो ! यदि तू जाति वाला होता तो मैं तुझे राजा बनाता, अब से मैं दिन का राजा होऊँगा तू रात का राजा हो ।"

उसने अपने गले मे पहनी फूलो की माला उसके गले से बाध उसे नगर का कोतवाल बना दिया । यही नगर कोतवालो के गले मे लाल फूलो की माला पडने की परम्परा है । तब से राजा उसका उपदेश मान, आचार्य्य का आदर कर, नीचे आसन पर बैठकर मन्त्र सीखने लगा ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय राजा आनन्द था । चाण्डाल-पुत्र तो मैं ही था ।

३१०. सय्ह जातक

"ससमुद्द परियाय " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती मे भिक्षा मागते समय एक सुन्दर स्त्री को देखकर उद्विग्न हो गया और (बुद्ध) शासन मे उसकी अरुचि हो गई। भिक्षु उसे भगवान के पास ले गये। भगवान ने पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त हुआ है?

"भन्ते! सचमुच।"

"तुझे किसने उद्विग्न किया है?"

उसने वह वृत्तान्त कहा। "इस प्रकार के कल्याणकारी शासन मे प्रव्रजित होकर भी तू क्यो उद्विग्न हुआ है? पूर्व समय मे पण्डितो को पुरोहित का पद मिलता था, तो भी उसे छोड वे प्रव्रजित हुए" कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने पुरोहित की ब्राह्मणी की कोख मे आ, जिस दिन राजा के पुत्र ने जन्म ग्रहण किया, उसी दिन जन्म ग्रहण किया। राजा ने अमात्यो से पूछा—कोई है जो मेरे पुत्र के साथ एक ही दिन पैदा हुआ हो?

"महाराज, पुरोहित का पुत्र है।"

राजा ने उसे मँगवा, धाइयो को दे, पुत्र के साथ इकट्ठा पालन-पोषण कराया। दोनो के गहने और खाना-पीना आदि सब समान था। बडे होने पर वे तक्षशिला जा, सब विद्यायें सीख कर आये। राजा ने पुत्र को युवराज बना दिया। बडी शान रही।

तब से बोधिसत्व और राजपुत्र साथ इकट्ठे खाने-पीने तथा सोने लगे। दोनो का परस्पर विश्वास दृढ हो गया। आगे चलकर पिता के मरने पर राज-पुत्र राजा बन बडी सम्पत्ति का उपभोग करने लगा। बोधिसत्व ने सोचा—मेरा मित्र राज्यानुशासन करता है। ध्यान आते ही मुझे पुरोहित-पद देगा। लेकिन मुझे गृहस्थ-जीवन से क्या? प्रव्रजित हो एकान्त सेवन करूगा। उसने माता-पिता को प्रणाम कर प्रव्रजित होने की आज्ञा मागी। (फिर) महा सम्पत्ति छोड, अकेला ही घर से निकल, हिमालय पहुँचा। वहाँ सुन्दर-प्रदेश मे कुटी बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीडा मे रत रहने लगा।

राजा ने उसे याद कर पूछा—मेरा मित्र दिखाई नही देता, कहाँ है? अमात्यो ने उत्तर दिया—वह प्रव्रजित हो गया है और सुन्दर वन-खण्ड मे रहता है। राजा ने उसका निवास-स्थान पूछ सय्ह नाम के अमात्य को कहा—जा, मेरे मित्र को लिवा ला। उसे पुरोहित-पद दूंगा।

उसने 'अच्छा' कह वाराणसी से निकल, क्रमश प्रत्यन्त-देश के गाँव मे पहुँच पडाव किया। फिर एक वनचर को साथ ले बोधिसत्व के निवास-स्थान पर पहुँच, बोधिसत्व को स्वर्ण-प्रतिमा की तरह कुटी के द्वार पर बैठा देखा। वह बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशल क्षेम पूछ कर बोला—भन्ते। राजा आप को पुरोहित-पद देना चाहता है। उसकी इच्छा है कि आप पधारे।

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—पुरोहित-पद की क्या बात! मैं सारा काशी, कोशल, जम्बुद्वीप का राज्य तथा चक्रवर्ती श्री मिलने पर भी नही जाऊँगा। पण्डित एक बार के छोडे भोगो को फिर नही ग्रहण करते। यह तो थूके को चाटने जैसा हो जाता है। इतना कह ये गाथायें कही—

समुद्दपरियाय महिंसागर कुण्डल,
न इच्छे सह निन्दाय एव सह्य विजानहि ॥१॥
धिरत्थु त यसलाभ धनलाभञ्च ब्राह्मण,
या वुत्ति विनिपातेन अधम्मचरणेन वा ॥२॥
अपिचे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,
सायेव जीविका सेय्यो याचाधम्मेन एसना ॥३॥

अपि चे पत्तमादाय अनागारो परिब्बजे,
अञ्ञं अहिंसयं लोके अपि रज्जेन त वरं ॥४॥

[चक्रवाल पर्वत सहित समुद्र के मध्य स्थित पृथ्वी को भी हे सय्ह ! तू जान ले, मैं निन्दनीय होकर ग्रहण करने की इच्छा नही करता ॥१॥

हे ब्राह्मण ! उस यश-लाभ तथा धन-लाभ को धिक्कार है जिसकी प्राप्ति नीच-वृत्ति या अधर्माचरण से हो ॥२॥

अधर्म से जीविका चलाने की अपेक्षा पात्र लेकर बे-घर हो प्रव्रजित हो जाना ही अच्छा है ॥३॥

दुनिया मे किसी की हिंसा न करते हुए पात्र लेकर अनागरिक हो प्रव्रजित होना राज्य-लाभ मे भी अच्छा है ॥४॥]

इस प्रकार उसके बार-बार प्रार्थना करने पर भी उसने अस्वीकार किया। सय्ह ने भी उसकी स्वीकृति न पा, प्रणाम कर जाकर राजा से कहा—वह नही आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यो का प्रकाशन हो चुकने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ। अनेक दूसरो ने भी स्रोतापत्तिफल आदि साक्षात किया। उस समय राजा आनन्द था। सय्ह सारिपुत्र। पुरोहित-पुत्र तो मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

२. पुचिमन्द वर्ग

३११ पुचिमन्द जातक

"उट्ठेहि चोर" यह शास्ता ने वेलुवन मे विहार करते समय आयुष्मान महामौद्गल्यायन के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर (महामौद्गल्यायन) राजगृह के पास आरण्य-कुटी मे विहार करते थे। एक चोर नगर-द्वार गाँव के एक घर मे सेंध लगा, जो कुछ मूल्यवान् पदार्थ हाथ मे आया, ले भाग कर, स्थविर की कुटी के आङ्गन मे जा घुसा। उसने सोचा—यहाँ मैं सुरक्षित रहूँगा। वह स्थविर की कुटिया के सामने लेट रहा। स्थविर ने उसे सामने सोया जान उस पर शङ्का कर सोचा—चोर का ससर्ग उचित नही है और बाहर निकल कर उसे खदेड दिया—यहाँ मत सो। चोर वहाँ से निकल पद-चिह्नो को बिगाडता हुआ भागा।

आदमी मशाल लेकर चोर के पद-चिह्न देखते हुए वहाँ आए। उसके आने का स्थान, ठहरने का स्थान, बैठने का स्थान तथा सोने का स्थान देखकर वे कहने लगे—यहाँ आया, यहाँ ठहरा, यहाँ बैठा और यहाँ सोया, लेकिन इस स्थान से भागा यह हमने नही देखा। इधर-उधर भटक कर वे बिना उसे देखे ही लौट गये।

अगले दिन स्थविर ने पूर्वाह्न समय राजगृह मे भिक्षाटन कर, लौट, वेलुवन जा शास्ता से वह समाचार कहा। "मौद्गल्यायन! केवल तुझे सशङ्कित विषय मे शङ्का नही हुई है, पुराने पण्डितो को भी हुई थी।" स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नगर के श्मशानवन मे नीम वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुए। एक दिन नगर-द्वार-गाँव मे चोरी करके एक चोर वहाँ पहुँचा। उस समय वहाँ नीम और पीपल के दो बडे वृक्ष थे। चोर नीम के वृक्ष के नीचे सामान रखकर सो गया। उन दिनो चोरो को पकडते थे तो उन्हे नीम के खूटे से त्रास देते थे। उस देवता ने सोचा—यदि मनुष्य आकर इस चोर को पकड लेंगे तो इसी नीम की शाखा छील, खूटा बना इसे त्रास देंगे। ऐसा होने से वृक्ष की हानि होगी। मैं इसे यहाँ से भगाऊँगा।

उसने उससे बात-चीत करते हुए पहली गाथा कही —

उट्ठेहि चोर कि सेसि को अत्थो सुपितेन ते,
मा तं गहेसुं राजानो गामे किब्बिसकारक ॥

[हे चोर! उठ। सोने से क्या लाभ? क्या सोता है? कही तुझ डाका डालने वाले को राजपुरुष आकर पकड न ले।]

उसे यह कह 'राजपुरुषो के आकर पकडने से पहले भाग जा' डरा कर भगा दिया। उसके भाग जाने पर पीपल वृक्ष के देवता ने दूसरी गाथा कही —

यन्नु चोर गहेस्सन्ति गामे किब्बिसकारकं,
कि तत्थ पुचिमन्दस्स बने जातस्स तिट्ठतो ॥

[यदि गाँव मे डाका डालने वाले चोर को (राजपुरुष) पकड लेंगे, तो बन मे पैदा हुए स्थित तुझ नीम-वृक्ष को इससे क्या लेना देना?]

इसे सुन नीम (-वृक्ष पर के) देवता ने तीसरी गाथा कही —

नत्वं अरसत्थ जानासि मम चोरस्स चन्तर,
चोर गहेत्वा राजानो गामे किब्बिसकारकं,
अप्पेन्ति निम्बसूलस्मि तस्मि मे सङ्कते मनो ॥

[हे पीपल-वृक्ष! तू मेरे और चोर के भेद को नही जानता। राज-पुरुष गाँव मे डाका डालने वाले चोर को पकड कर नीम-वृक्ष पर ही त्रास देंगे। मेरे मन मे यही आशङ्का थी।]

इस प्रकार उन देवताओ के परस्पर वार्तालाप करते समय ही सामान के मालिक, हाथ मे मशाल लिये वहाँ पहुँचे । उन्होंने पद-चिह्नो का अनुसरण करते हुए वहाँ पहुच और चोर के सोने की जगह देख सोचा—"भो ! चोर अभी उठकर भाग गया । हमे नही मिला । यदि मिलेगा तो या तो इसी नीम की शूलो पर ठोक कर जायेगे, या शाखा से लटका जायेंगे ।" वे इधर-उधर भटक चोर को बिना देखे ही चले गये । उनकी उस बात को सुन पीपल-वृक्ष ने चौथी गाथा कही —

सङ्क्येय्य सङ्कितब्बानि रक्खेय्यानागतभय
अनागतभया धीरो उभो लोके अवेक्खति ॥

[शङ्का करने योग्य बातो मे शङ्का करनी चाहिये। भावी भय से अपनी रक्षा करनी चाहिए। धीर आदमी भावी-भय से बचता हुआ दोनो लोको को देखता है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया । उस समय पीपल-वृक्ष पर उत्पन्न देवता सारिपुत्र था । नीम-देवता तो मैं ही था ।

३१२ कस्सप मन्दिय जातक

"अपि कस्सप मन्दिय" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक कुल-पुत्र काम-भोगो के दुष्परिणाम को देख शास्ता के पास प्रव्रजित हो, योगाभ्यास मे लग, शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुआ । आगे चलकर उसकी माता का देहान्त हो गया । माता के मरने पर उसने पिता और छोटे भाई को भी प्रव्रजित करा लिया । वे जेतवन मे रहे । वर्षावास के समय चीवर-प्राप्ति सुलभ जान, वे तीनो एक गाँव के आवास मे वर्षावास कर

फिर जेतवन लौटे। जेतवन के पास पहुँचने पर तरुण भिक्षु ने कहा—श्रामणेर ! स्थविर को विश्राम कराता हुआ ले आ। मैं आगे जाकर परिवेण को झाडता-बुहारता हूँ। वह जेतवन गया। बूढा स्थविर धीरे-धीरे चलता था। श्रामणेर सिर मे पीडा पहुँचाते हुए की तरह उसे बार-बार 'भन्ते ! चलें, भन्ते ! चलें' कह कर जबर्दस्ती ले चलता था। स्थविर 'तू मुझ पर हुक्म चलाता है' कह फिर आरम्भ से चलना आरम्भ करता। उनके इस प्रकार परस्पर कलह करते हुए ही सूर्य्यास्त हो गया। अधकार हो गया। दूसरे ने भी परिवेण साफ कर, पानी रख, उन्हे न आता देख मशाल ले अगवानी की। उन्हे आता देख पूछा—क्यो देर हुई ? बूढे ने वह कारण बताया। वह उन दोनो को आराम कराता हुआ शनै -शनै लाया। उस दिन उसे बुद्ध की सेवा मे जाने का अवकाश नही मिला। दूसरे दिन बुद्ध की सेवा मे पहुँच, प्रणाम कर बैठने पर शास्ता ने पूछा—कब आया ?

"भन्ते ! कल।"

"कल आकर आज बुद्ध की सेवा मे आया है ?"

उसने "हाँ भन्ते !" कह वह कारण बताया। शास्ता ने बूढे की निन्दा करते हुए कहा—"यह केवल अभी ऐसा काम नही करता है, पहले भी किया है। अब इसने तुझे कष्ट दिया है, पहले भी पण्डितो को कष्ट दिया है।" फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी-ग्राम मे एक ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। उसके बडे होने पर माता मर गई। उसने माता का शरीर-कृत्य कर महीना, आधा-महीना बीतने पर धन दान दे, पिता और छोटे भाई को ले, हिमालय प्रदेश मे जा, देव-दत्त वल्कल चीर पहन, ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण की। वहाँ वह जगह-जगह से चुनकर मूल-फलादि खाकर रमणीय वन-खण्ड मे रहने लगा। हिमालय मे वर्षा-काल मे जब मूसलाधार वर्षा होती है तब कन्दमूल खनना सम्भव नही होता और फलाफल तथा पत्ते भी गिर जाते हैं। प्राय तपस्वी हिमालय से उतर बस्ती मे चले आते है। उस समय बोधिसत्व भी पिता और छोटे भाई को ले बस्ती मे

चले आये। फिर हिमालय के फलने-फूलने पर उन दोनो को ले अपने आश्रम को लौटा। आश्रम के थोडी दूर रहने पर और सूर्य्य को अस्त होते देख 'तुम धीरे-धीरे आओ मैं आगे जाकर आश्रम को ठीक-ठाक करता हूँ' कह उन्हे छोड गया। छोटा तपस्वी पिता के साथ धीरे आता हुआ, उसे कमर मे सिर से टक्कर मारता हुआ 'चल चल' कह जबरदस्ती ले चलता था। बूढा 'तू मुझे अपनी इच्छानुसार ले चलता है' कह लौटकर फिर आरम्भ से आता। इस प्रकार उनके झगडा करते ही अँधेरा हो गया।

बोधिसत्व ने भी कुटी को साफ कर, पानी रख, मशाल लेकर उन्हे रास्ते मे आते देखा तो पूछा—इतनी देर क्या करते रहे? छोटे तपस्वी ने पिता की करनी कही। बोधिसत्व ने उन दोनो को शनै-शनै ले जा, कपडा-लत्ता सम्भाल, पिता को स्नान करा, पैर धोना, (तेल) मारवना, पीठ दबाना आदि कर्म कर अगीठी रखी। जब थकावट उतर गई तो पिता के पास बैठ कर कहा—तात! तरुण लडके मिट्टी के बरतनो की तरह होते है। क्षण भर मे टूट जाते हैं। एक बार टूट जाने पर फिर जुड नही सकते। वे गाली दें, मखौल करें तब भी बडो को सहन करना होता है। इस प्रकार पिता को उपदेश देते हुए बोधिसत्व ने ये गाथायें कही —

अपि कस्सप मन्दिया युवा सपत्ति हन्ति वा,
सब्बन्तं खमते धीरो पण्डितो त तितिक्खति ॥
सचेपि सन्तो विवदन्ति खिप्पं सन्धीयरे पुन,
बाला पत्ताव भिज्जन्ति न ते समथमज्झगु ॥
एते भिय्यो समायन्ति सन्धि तेस न जीरति,
यो चाधिपन्न जानाति यो च जानाति देसन ॥
एसोहि उत्तरितरो भारवाहो धुरन्धरो,
यो परेसाधिपन्नान सय सन्धातुमरहित ॥

[हे काश्यप! मन्द-बुद्धि युवक गाली भी दे देते है और मार भी बैठते है। धीर ये सब क्षमा करता है। पण्डित इसे सहन करता है। यदि सज्जन कभी विवाद करते है तो फिर मिल जाते हैं। मूर्ख (मिट्टी के) बरतनो की तरह टूटते है और शान्ति को प्राप्त नही होते। ये दो जन फिर मिल जाते है, इनकी परस्पर की सन्धि नष्ट नही होती—जो अपना दोष स्वीकार कर-

सकना है और जो दोष स्वीकार करने वाले को क्षमा कर सकता है। जो दूसरे दोषियो को स्वय मिला सकता है, वह बढकर है, वही भारवाह है, वही धुरन्धर है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पिता को उपदेश दिया। वह भी तब से शान्त हो गया, अच्छी प्रकार शान्त।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का पिता तपस्वी बूढा स्थविर था। छोटा तपस्वी श्रामणेर। पिता को उपदेश देने वाला तो मैं ही था।

३१३ खन्तिवादी जातक

"यो ते हत्थे च पादे च " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक क्रोधी भिक्षु के बारे मे कही। कथा पहले आ ही गई है। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु! तू अक्रोधी बुद्ध के शासन मे प्रव्रजित होकर क्रोध क्यो करता है? पुराने पण्डितो ने शरीर पर हजारो प्रहार होने पर, हाथ-पाँव, कान-नाक के काट लिये जाने पर भी, दूसरे के प्रति क्रोध नही किया' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे कलाबु नाम का काशीराज राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन वाले ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। उनका नाम था कुण्डकुमार। बडे होने पर वह तक्षशिला मे सब शिल्प सीख कर आया और कुटुम्ब को पालने लगा। माता-पिता के मरने पर उसने धनराशि की ओर देखते हुए सोचा—यह धन कमाकर मेरे सम्बन्धी इसे यही छोड गये, बिना साथ लिये ही चले गये। मुझे इसे साथ ले जाना चाहिए। उसने अपना वह सारा धन विचेय्यदान अर्थात् 'जो जो कुछ ले जाये वह

उसे दिया, करके दान दे दिया और अपने हिमालय मे प्रवेश कर, प्रव्रजित हो, फल-मूल खाता हुआ चिरकाल वही रहा। फिर नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती मे, क्रमानुसार वाराणसी पहुँच, राजोद्यान-मे रहने लगा। अगले दिन नगर मे भिक्षाटन करता हुआ सेनापति के गृहद्वार पर पहुँचा। सेनापति ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, घर मे लिवा लाकर, अपने लिये तैयार भोजन कराया और वचन लेकर वही राजोद्यान मे बसाया।

एक दिन कलावुराज शराब के नशे मे मस्त हो तमाशो मे घिरा हुआ बडी शान के साथ उद्यान मे पहुँचा। वहाँ उसने मङ्गल शिला-पट पर बिछौना बिछवाया और एक प्रिय मनोज्ञ स्त्री की गोद मे सोया। गाने बजाने मे होशियार नर्तकियाँ गाना बजाना करने लगी। देवेन्द्र शाक्र की तरह बडा ठाठ बाट था। राजा को नीद आ गई।

उन स्त्रियो ने सोचा—जिसके लिये हम गाना बजाना करती हैं, वह ही सो गया। अब गाने बजाने से क्या लाभ? वे वीणा, तुरिया आदि जहाँ तहाँ छोड उद्यान मे घूमने लगी और फूल, फल तथा पत्तो से अनुरक्त हो बाग मे रमण करने लगी। उस समय बोधिसत्व उस उद्यान मे पुष्पित शालवृक्ष की छाया मे प्रव्रज्या-सुख का आनन्द लेते हुए वैसे ही बैठे थे जैसे श्रेष्ठ मस्त हाथी हो।

उद्यान मे घूमती हुई वे स्त्रियाँ उसे देख 'आर्य्याओ, आओ इस वृक्ष की छाया मे प्रव्रजित बैठा है। जब तक राजा सोता है तब तक हम इस के पास बैठी रहकर कुछ सुनें' कह जाकर, प्रणाम कर घेर कर बैठी। वे बोली—हमारे योग्य कुछ उपदेश दें। बोधिसत्व ने उन्हे धर्मोपदेश दिया।

उस स्त्री की गोद के हिलने से राजा की आँख खुल गई। जब राजा ने जागने पर उन्हे न देखा तो वह बोला—कहाँ गई वे चाण्डालिनियाँ?

"महाराज! वे एक तपस्वी को घेर कर बैठी हैं।"

राजा को क्रोध आया। उसने तलवार निकाली और बडे वेग से चला—उस दुष्ट तपस्वी को सबक सिखाता हूँ।

उन स्त्रियो ने राजा को क्रोध मे भरा आता देखा तो उनमे जो राजा की अधिक प्रिया थी उसने जाकर राजा के हाथ से तलवार ले ली। इस प्रकार उन्होने राजा को शान्त किया। उसने आकर बोधिसत्व के पास खडे होकर पूछा

"श्रमण! तुम्हारा क्या वाद (मत) है?"

सकना है और जो दोप स्वीकार करने वाले को क्षमा कर सकता है। जो दूसरे दोपियो को स्वय मिला सकता है, वह बढकर है, वही भारवाह है, वही धुरन्धर है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पिता को उपदेश दिया। वह भी तब से शान्त हो गया, अच्छी प्रकार शान्त।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का पिता तपस्वी बूढा स्थविर था। छोटा तपस्वी श्रामणेर। पिता को उपदेश देने वाला तो मैं ही था।

३१३ खन्तिवादी जातक

"यो ते हत्थे च पादे च " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक क्रोधी भिक्षु के बारे मे कही। कथा पहले आ ही गई है। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु! तू अक्रोधी बुद्ध के शासन मे प्रव्रजित होकर क्रोध क्यो करता है? पुराने पण्डितो ने शरीर पर हजारो प्रहार होने पर, हाथ-पाँव, कान-नाक के काट लिये जाने पर भी, दूसरे के प्रति क्रोध नही किया' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे कलाबु नाम का काशीराज राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन वाले ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। उनका नाम था कुण्डकुमार। बडे होने पर वह तक्षशिला मे सब शिल्प सीख कर आया और कुटुम्ब को पालने लगा। माता-पिता के मरने पर उसने धनराशि की ओर देखते हुए सोचा—यह धन कमाकर मेरे सम्बन्धी इसे यही छोड़ गये, बिना साथ लिये ही चले गये। मुझे इसे साथ ले जाना चाहिए। उसने अपना वह सारा धन विचेय्यदान अर्थात् 'जो जो कुछ ले जाये वह

उसे दिया, करके दान दे दिया और अपने हिमालय मे प्रवेश कर, प्रव्रजित हो, फल-मूल खाता हुआ चिरकाल वही रहा। फिर नमक-खटाई खाने के लिए वस्ती मे, क्रमानुसार वाराणसी पहुँच, राजोद्यान-मे रहने लगा। अगले दिन नगर में भिक्षाटन करता हुआ सेनापति के गृहद्वार पर पहुँचा। सेनापति ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, घर मे लिवा लाकर, अपने लिये तैयार भोजन कराया और वचन लेकर वही राजोद्यान मे बसाया।

एक दिन कलावुराज शराब के नशे मे मस्त हो तमाशो मे घिरा हुआ वडी शान के साथ उद्यान मे पहुँचा। वहाँ उसने मङ्गल शिला-पट पर विछौना विछवाया और एक प्रिय मनोज्ञ स्त्री की गोद मे सोया। गाने वजाने मे होशियार नर्तकियाँ गाना वजाना करने लगी। देवेन्द्र शक्र की तरह वडा ठाठ वाट था। राजा को नीद आ गई।

उन स्त्रियो ने सोचा—जिसके लिये हम गाना वजाना करती है, वह ही सो गया। अब गाने वजाने से क्या लाभ ? वे वीणा, तुरिया आदि जहाँ तहाँ छोड उद्यान मे घूमने लगी और फूल, फल तथा पत्तो से अनुरक्त हो बाग मे रमण करने लगी। उस समय वोधिसत्व उस उद्यान मे पुष्पित शालवृक्ष की छाया मे प्रव्रज्या-सुख का आनन्द लेते हुए वैसे ही वैठे थे जैसे श्रेष्ठ मस्त हाथी हो।

उद्यान मे घूमती हुई वे स्त्रियाँ उसे देख 'आर्य्याओ, आओ इस वृक्ष की छाया मे प्रव्रजित वैठा है। जब तक राजा सोता है तब तक हम इस के पास वैठी रहकर कुछ सुने' कह जाकर, प्रणाम कर घेर कर वैठी। वे बोली—हमारे योग्य कुछ उपदेश दें। वोधिसत्व ने उन्हे धर्मोपदेश दिया।

उस स्त्री की गोद के हिलने से राजा की आँख खुल गई। जब राजा ने जागने पर उन्हे न देखा तो वह बोला—कहाँ गई वे चाण्डालिनियाँ ?

"महाराज। वे एक तपस्वी को घेर कर बैठी हैं।"

राजा को क्रोध आया। उसने तलवार निकाली और वडे वेग से चला—उस दुष्ट तपस्वी को सबक सिखाता हूँ।

उन स्त्रियो ने राजा को क्रोध मे भरा आता देखा तो उनमे जो राजा की अधिक प्रिया थी उसने जाकर राजा के हाथ से तलवार ले ली। इस प्रकार उन्होने राजा को शान्त किया। उसने आकर बोधिसत्व के पास खडे होकर पूछा

"श्रमण। तुम्हारा क्या वाद (मत) है ?"

"महाराज क्षमा-वाद ।"

"यह क्षमा क्या ?"

"गाली देने पर प्रहार करने पर, मजाक करने पर, *अक्रोधी रहना* ।" राजा ने "देखता हूँ अभी तुझमे क्षमा है वा नही ?" जल्लाद को बुलवाया।

वह अपने स्वभावानुसार कुल्हाडा और कब्जेदार चावुक लिये, पीतवस्त्र तथा लाल-माला धारण किये आ पहुँचा । आकर राजा को प्रणाम कर बोला—"क्या आज्ञा है ?"

"इस चोर दुष्ट तपस्वी को पकड, घसीट, जमीन पर गिरा, कटीला चावुक ले, आगे, पीछे और दोनो ओर दो हजार चावुक लगाओ ।"

उसने वैसा किया । बोधिसत्व की खलडी उतर गई, चमडी उघड गई, माँस फट गया आदि और खून बहने लगा ।

राजा ने फिर पूछा—"भिक्षु, क्या वादी हो ?"

"महाराज ! क्षमावादी । *क्या तुम समझते हो कि मेरी चमडी मे क्षमा* (छिपी) है ? नही महाराज, मेरी चमडी मे क्षमा नही है । तुम उसे नही देख सकते । क्षमा मेरे हृदय मे है ।"

चाण्डाल ने पूछा—क्या करूँ महाराज ?

"इस दुष्ट तपस्वी के दोनो हाथ काट डाज ।" उसने कुल्हाडा ले गण्डक पर रखकर हाथ काट डाले । तब कहा—

"पैर काट डाल ।'

उसने पाँव काट डाले । हाथ पाँव की जडो से घड़े के मुँह मे से लाख-रस बहने की तरह रक्त बहने लगा ।

राजा ने फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज, क्षमावादी । तुम समझते हो कि (क्षमा) हाथ पाँव के मूल मे है ? वह यहाँ नही है । मेरी क्षमा बडी गहराई मे प्रतिष्ठित है ।"

राजा ने आज्ञा दी—"कान नाक काट डाल ।" उसने कान नाक काट डाले । सारा शरीर लहू-लोहान हो गया ।

फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज ! क्षमावादी । ऐसा मत समझे कि मेरी क्षमा कान नाक के मूल मे प्रतिष्ठित है । मेरी क्षमा हृदय के अन्दर बहुत गहराई मे स्थित है ।"

राजा उसके हृदय-स्थल पर एक ठोकर मार कर चल दिया—

"दुष्ट तपस्वी! तेरी क्षमा तुझे उठाकर बिठाये।"

उसके चले जाने पर सेनापति ने बोधिसत्व के शरीर मे रक्त पोछ और हाथ, पाँव, कान तथा नाक के मूल पर वस्त्र बाँध, बोधिसत्व को धीरे से बिठा, प्रणाम किया। फिर एक ओर बैठ कर निवेदन किया कि भन्ते! यदि आप क्रोधित हो तो केवल इस राजा पर क्रोधित हो जिसने आपको इतना कष्ट पहुँचाया है, किसी और पर क्रोध न करे। उसने यह प्रार्थना करते हुए पहली गाथा कही —

यो ते हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,
तस्स कुज्झ महावीर मा रट्ठं विनस्स इद॥

[हे महावीर! जिसने आपके हाथ-पाँव तथा नाक-कान कटवाये उसी पर क्रोधित हो, इस (काशी) राष्ट्र का विनाश न करें।]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही —

यो मे हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,
चिर जीवतु सो राजा नहि कुज्झन्ति मा दिसा॥

[जिस राजा ने मेरे हाथ, पाँव तथा नाक-कान काट डाले वह चिर-काल तक जीवित रहे। मेरे जैसे (लोग) क्रोध नही करते।]

राजा ज्यो ही उद्यान से निकल बोधिसत्व की आँख से ओझल हुआ, यह दो लाख चालीस हजार योजन मोटी महापृथ्वी बैल के वस्त्र की तरह फट गई। अवीची (नरक) से ज्वाला निकल कर उसे वैसे ही लपेट लिया जैसे कुल-प्राप्त लाल कम्बल लपेट ले।

वह उद्यान के द्वार पर ही पृथ्वी मे घुस महावीची नरक मे पहुँचा। बोधिसत्व उसी दिन काल कर गये। राज-पुरुषो तथा नागरिको ने गन्धमाला तथा दीप-धूप हाथ मे ले, बोधित्व का शरीर-कृत्य किया। कोई कहते है कि बोधिसत्व हिमालय चले गये, सो यह सत्य नही है। ये दो सम्बुद्ध गाथायें है —

अहू अतीतमद्धान समणो खन्तिदीपनो,
त खन्तियायेव ठित कासिराजा अछेदयि॥

"महाराज क्षमा-वाद ।"

"यह क्षमा क्या ?"

"गाली देने पर प्रहार करने पर, मजाक करने पर, अक्रोधी रहना ।"

राजा ने "देखता हूँ अभी तुझमे क्षमा है वा नही ?" जल्लाद को बुलवाया ।

वह अपने स्वभावानुसार कुल्हाडा और कब्जेदार चाबुक लिये, पीतवस्त्र तथा लाल-माला धारण किये आ पहुँचा । आकर राजा को प्रणाम कर बोला—"क्या आज्ञा है ?"

"इस चोर दुष्ट तपस्वी को पकड, घसीट, जमीन पर गिरा, कटीला चाबुक ले, आगे, पीछे और दोनो ओर दो हजार चाबुक लगाओ ।"

उसने वैसा किया । बोधिसत्व की खलडी उतर गई, चमडी उधड गई, माँस फट गया आदि और खून बहने लगा ।

राजा ने फिर पूछा—"भिक्षु, क्या वादी हो ?"

"महाराज ! क्षमावादी । क्या तुम समझते हो कि मेरी चमडी मे क्षमा (छिपी) है ? नही महाराज, मेरी चमडी मे क्षमा नही है । तुम उसे नही देख सकते । क्षमा मेरे हृदय मे है ।"

चाण्डाल ने पूछा—क्या करूँ महाराज ?

"इस दुष्ट तपस्वी के दोनो हाथ काट डाल ।" उसने कुल्हाडा ले गण्डक पर रखकर हाथ काट डाले । तब कहा—

"पैर काट डाल ।'

उसने पाँव काट डाले । हाथ पाँव की जडो से घडे के मुँह मे से लाख-रस बहने की तरह रक्त बहने लगा ।

राजा ने फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज, क्षमावादी । तुम समझते हो कि (क्षमा) हाथ पाँव के मूल मे है ? वह यहाँ नही है । मेरी क्षमा बडी गहराई मे प्रतिष्ठित है ।"

राजा ने आज्ञा दी—"कान नाक काट डाल ।" उसने कान नाक काट डाले । सारा शरीर लहू-लोहान हो गया ।

फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज ! क्षमावादी । ऐसा मत समझे कि मेरी क्षमा कान नाक के मूल मे प्रतिष्ठित है । मेरी क्षमा हृदय के अन्दर बहुत गहराई मे स्थित है ।"

राजा उसके हृदय-स्थल पर एक ठोकर मार कर चल दिया—

"दुष्ट तपस्वी! तेरी क्षमा तुझे उठाकर बिठाये।"

उसके चले जाने पर सेनापति ने बोधिसत्व के शरीर से रक्त पोछ और हाथ, पाँव, कान तथा नाक के मूल पर वस्त्र बाँध, बोधिसत्व को धीरे से बिठा, प्रणाम किया। फिर एक ओर बैठ कर निवेदन किया कि भन्ते! यदि आप क्रोधित हो तो केवल इस राजा पर क्रोधित हो जिसने आपको इतना कष्ट पहुँचाया है, किसी और पर क्रोध न करे। उसने यह प्रार्थना करते हुए पहली गाथा कही —

यो ते हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,
तस्स कुज्झ महावीर मा रट्ठं विनस्स इद॥

[हे महावीर! जिसने आपके हाथ-पाँव तथा नाक-कान कटवाये उसी पर क्रोधित हो, इस (काशी) राष्ट्र का विनाश न करें।]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही —

यो मे हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेदयि,
चिर जीवतु सो राजा नहि कुज्झन्ति मा दिसा॥

[जिस राजा ने मेरे हाथ, पाँव तथा नाक-कान काट डाले वह चिर-काल तक जीवित रहे। मेरे जैसे (लोग) क्रोध नही करते।]

राजा ज्यो ही उद्यान से निकल बोधिसत्व की आँख से ओझल हुआ, यह दो लाख चालीस हजार योजन मोटी महापृथ्वी बैल के वस्त्र की तरह फट गई। अवीची (नरक) से ज्वाला निकल कर उसे वैसे ही लपेट लिया जैसे कुल-प्राप्त लाल कम्बल लपेट ले।

वह उद्यान के द्वार पर ही पृथ्वी मे घुस महावीची नरक मे पहुँचा। बोधिसत्व उसी दिन काल कर गये। राज-पुरुषो तथा नागरिको ने गन्धमाला तथा दीप-धूप हाथ मे ले, बोधित्व का शरीर-कृत्य किया। कोई कहते हैं कि बोधिसत्व हिमालय चले गये, सो यह सत्य नही है। ये दो सम्बुद्ध गाथायें है —

अहू अतीतमद्धान समणो खन्तिदीपनो,
त खन्तियायेव ठित कासिराजा अछेदयि॥

तस्स कम्मस्स फरुसस्स विपाको कटुको अहु,
य कासिराजा वेदेसि निरयम्हि समप्पितो ॥

[अतीत-काल मे क्षमावान् श्रमण हुआ। उसके क्षमाशील रहते काशी राजा ने उसे कटवा डाला। उस राजा के उस कठोर कर्म का फल (भी) कड़ुआ हुआ, जिसे काशीराज ने नरक मे जाकर भोगा।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल विठाया। सत्यो के अन्त मे क्रोधी भिक्षु अनागामीफल मे प्रतिष्ठित हुआ। बहुत जनो को स्रोतापत्तिफल आदि प्राप्त हुये। उस समय कलाबु राजा देवदत्त था। सेनापति सारिपुत्र था। क्षमावादी तपस्वी तो मैं ही था।

३१४. लोहकुम्भी जातक

"दुज्जीवित " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल राजा के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय कोशल नरेश ने रात को चार नारकीय प्राणियो की आवाज सुनी। एक केवल 'दु' बोला, दूसरा केवल 'स' बोला, तीसरा केवल 'न' बोला और चौथा केवल 'सो'।

वे पूर्वजन्म मे श्रावस्ती मे ही परस्त्री-गमन करने वाले राजपुत्र थे। उन्होने पराई, सुरक्षित, छिपाई स्त्रियो के प्रति अपराध कर, तरह तरह की विचित्र क्रीडायें कर, बहुत पापकर्म किया था। मृत्यु-चक्र से कट कर वे श्रावस्ती के पास ही चार लोहकुम्भियो मे पैदा हो साठ हजार वर्ष तक वही जलते रहे। लोहकुम्भियो के मुंह के घेरे को ऊपर की ओर उठा देख चारो बडे ऊँचे स्वर मे क्रमश चिल्लाये कि हम कब इस दुख से मुक्त होगे ? राजा ने

उनकी आवाज सुन मृत्युभय के कारण बैठे ही बैठे सारी रात विदा दी। अरुणोदय के समय ब्राह्मणो ने आकर पूछा—महाराज ! सुखपूर्वक सोये ?

"आचार्यो, मेरा सुखपूर्वक सोना कहाँ ! आज मैंने इस प्रकार के चार भयानक काण्ड सुने।" ब्राह्मणो ने हाथ पीटे।

"आचार्यो ! क्या बात है ?"

"महाराज ! खतरनाक शब्द हैं।"

"इनका कुछ इलाज है, या नही है ?"

"चाहे इलाज नही है, तो भी महाराज ! हम लोग कुशल हे।"

"क्या करके इससे बचाओगे ?"

"महाराज ! इसका प्रतिकर्म तो बहुत बडा हे, हो नही सकता, लेकिन हम सर्वचतुष्क यज्ञ करके इसका बचाव करेंगे।"

"तो शीघ्र ही चार हाथी, चार घोडे, चार बैल, चार आदमी, तीतर से आरम्भ करके सभी चार चार प्राणी ले, सर्वचतुष्क यज्ञ करके मुझे सकुशल करे।"

"महाराज ! अच्छा" कह उन्होने जो-जो चाहिये सब ले, जाकर यज्ञकुण्ड तैयार किया।

बहुत सारे पापियो को खम्भे के पास जाकर खडा किया। 'बहुत सा मत्स्यमांस खाने को मिलेगा और बहुत सा धन' सोच वे उत्साह से भर गए। 'देव, यह मिलना चाहिए, देव ! यह मिलना चाहिए' चिल्लाते हुए इधर से उधर घूमते थे। मल्लिका देवी ने पूछा—"महाराज ! क्या कारण है ब्राह्मण बहुत फूले फूले घूम रहे हैं ?"

"तुझे इससे क्या ! तू अपने ऐश्वर्य मे मस्त है। दुःख तो हमे ही है।"

"महाराज ! क्या है ?"

"देवि ! मैंने इस प्रकार का न सुनने योग्य शब्द सुना। तब ब्राह्मणो से पूछा कि इन शब्दो के सुनने का क्या प्रभाव पडेगा ? ब्राह्मणो ने कहा, महाराज ! आपके राज्य पर अथवा भोगो पर अथवा जीवन पर खतरा दिखाई देता है। सर्वचतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे। वे मेरे कहने मे यज्ञ-कुण्ड का निर्माण कर जिस-जिस चीज की जरूरत होती है, उसके लिए आते हैं।"

"देव ! क्या तुम्हे जो शब्द सुनाई दिये उनकी उत्पत्ति देवताओ सहित लोक मे जो अग्र-ब्राह्मण हैं उनसे पूछी ?"

"देवि ! कौन है यह देव सहित लोक अग्र-ब्राह्मण ?"

"महागौतम सम्यक् सम्बुद्ध।"

"देवि ! सम्यक् सम्बुद्ध को तो मैंने नही पूछा।"

"तो, जाकर पूछे।"

राजा उसकी बात सुन प्रात काल का भोजन करने के बाद श्रेष्ठ रथ पर चढ जेतवन पहुँचा। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर उसने पूछा—भन्ते ! मैंने रात मे चार आवाजे सुनी। तब ब्राह्मणो को पूछा। वे 'सर्वचतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे' कह यज्ञ-कुण्ड बनवा रहे हैं। उन आवाजो के सुनने से मुझे क्या होगा ?

"महाराज ! कुछ नही। नारकीय प्राणी दुख अनुभव करने के कारण इस प्रकार बोले हैं। यह शब्द केवल अभी तूने ही नहीं सुने हैं। पुराने राजाओ ने भी सुने ही है। वे भी ब्राह्मणो को पूछ कर पशुघात यज्ञ करना चाहते थे। पण्डितो की बात सुनकर यज्ञ नही किया। पण्डितो ने उन आवाजो का कारण बता प्राणियो को मुक्त करा कल्याण किया।"

उसके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी (-जनपद) के किसी गाँव मे ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर काम-भोगो को छोड ऋषियो की प्रव्रज्या ग्रहण की। ध्यान तथा अभिञ्जा उत्पन्न कर, ध्यान मे ही रत रह हिमालय मे रमणीय वनखण्ड मे रहते थे।

उस समय वाराणसी-राजा ने चारो नारकीयो की ये चारो आवाजें सुन इसी प्रकार ब्राह्मणो से पूछा। उन्होने तीन खतरो मे एक खतरे की बात कह, सर्वचतुष्क यज्ञ द्वारा उसे शान्त करने की बात कही। उनके ऐसा कहने पर (राजा ने यज्ञ कराना) स्वीकार किया। पुरोहित ने ब्राह्मणो के साथ यज्ञ-कुण्ड बनवाया। अनेक प्राणी खम्भे के पास लाये गए।

उस समय बोधिसत्व ने मैत्री-भावना युक्त चारिका करने हुए दिव्य-चक्षु मे लोक को देखा। जब उन्हे वह दिखाई दिया तो उन्होंने सोचा कि मुझे जाना चाहिए, अनेक जनो का कल्याण होगा। वह ऋद्धि-बल मे आकाश मे उठ, वाराणसी-राजा के उद्यान मे उतर, मगल शिलापट पर सुवर्ण-प्रतिमा की तरह बैठे।

तब पुरोहित के ज्येष्ठ शिष्य ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया, "आचार्य! क्या हमारे वेदो मे पराए को मार कर कल्याण करना असम्भव नही बताया है?" पुरोहित ने मना किया—"तू राजधन चाहता है, चुप रह। हम बहुत मत्स्य मांस खाएँगे और धन पायेंगे।" "मैं इसमे सहायक नही होऊँगा" कह निकल कर, वह राज-उद्यान मे पहुँचा। वहाँ बोधिसत्व को देख, प्रणाम कर कुशलक्षेम पूछ एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने पूछा—"माणवक! क्या राजा धर्मानुसार राज्य करता है?"

"भन्ते! राजा धर्मानुसार राज्य करता है। किन्तु, राजा को रात मे चार आवाजें सुनाई दी। उसने ब्राह्मणो से पूछा! ब्राह्मणो ने कहा—सर्व-चतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेगे। राजा पशुघात कर अपना कल्याण करना चाहता है। अनेक जन (यज्ञ) स्तम्भ के पास ले जाए गये है। क्या भन्ते! आप जैसे सदाचारियो के लिए यह उतिच नही है कि उन आवाजो की उत्पत्ति बताकर अनेक जनो को मृत्यु के मुख से बचाएँ?"

"माणवक! राजा हमे नही जानता, हम भी उसे नही जानते। लेकिन हम इन आवाजो की उत्पत्ति जानते है। यदि राजा हमारे पास आकर पूछे तो हम कह कर उसका शक मिटा देंगे।'

"तो भन्ते! मुहूर्त भर यही रहे। मैं राजा को लाऊँगा।"

"माणवक! अच्छा।"

उसने जाकर राजा को वह बात कही और राजा को ले आया।

राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"क्या आप सचमुच मेरे सुने शब्दो का कारण जानते हैं।"

"महाराज! हाँ।"

"भन्ते! कहे।"

"महाराज ! ये पूर्व जन्म मे दूसरो की स्त्रियो से व्यभिचार करने वाले रहे है, और वाराणसी के आस-पास चार लोह-कुम्भी नरको मे पैदा हुए। उबलते हुए, लहकते पिघले लोहे मे बुलबुले उठाते हुए पकते रहे ! तीस हजार वर्ष तक नीचे रह, कुम्भी-तल से टकरा, ऊपर उठ तीस हजार वर्ष बाद कुम्भीमुख देखा। चारो जने चार गाथाए पूरी कर कहना चाहते थे। वैसा न कर सके। एक एक अक्षर ही कह कर फिर लोह-कुम्भी मे डूब गए। उनमे से 'दु' कह कर डूब जाने वाला प्राणी यह कहना चाहता था —

दुज्जीवित अजीविम्ह ये सन्ते न ददम्हसे।
विज्जमानेसु भोगेसु दीप नाकम्ह अत्तनो॥

[पास होने पर भी जो नही दिया यह जीवन भी खराब जीवन ही रहा। भोगो के होने पर भी अपने लिये द्वीप नही बनाया।]

'लेकिन, सका नही' कह बोधिसत्व ने अपने ज्ञान से ही वह गाथा पूरी की। शेष गाथाओ मे भी इसी प्रकार। उनमे 'स' कह कर जो बोलना चाहता था उसकी यह गाथा है —

सट्ठिवस्ससहस्सानि परिपुण्णानि सब्बसो,
निरये पच्चमानानं कदा अन्तो भविस्सति॥

[हर प्रकार से पूरे साठ हजार वर्ष तक नरक मे जलते रहने का कब अन्त होगा?]

'न' कह कर बोलने की इच्छा रखने वाले की यह गाथा —

नत्थि अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो पटिदिस्सति।
तदाहि पकत पाप मय तुह्य च मारिस॥

[अन्त नही है। अन्त कहाँ से होगा ! अन्त दिखाई नही देता ! मित्र उस समय मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है।]

'स' कह कर बोलने की इच्छा रखने वाले की गाथा —

सोह नून इतो गन्त्वा योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्नो काहामि कुसल बहु॥

[अब मैं निश्चय से यहाँ से जा कर मनुष्य देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी ही बहुत कुशल-कर्म करूँगा।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने एक-एक गाथा कह राजा को समझाया—महाराज ! वह नारकीय प्राणी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था। लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका। वह अपने कर्म-फल को भोगता हुआ चिल्लाया। आपको इस आवाज के सुनने के कारण कोई खतरा नही है। आप न डरें।

राजा ने सब प्राणियो को मुक्त करा, सोने का ढोल पिटवा, यज्ञ-कुण्ड नष्ट करा दिया। बोधिसत्व प्राणियो का कल्याण कर, कुछ दिन रह, वही जा, ध्यानावस्थित हो, ब्रह्म-लोक मे पैदा हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पुरोहित-माणवक सारिपुत्र था। तपस्वी तो मैं ही था।

३१५. मस जातक

"फरुसा वत ते वाचा" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सारिपुत्र द्वारा जुलाब लेने वालो को सरस-भोजन के देने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन मे कुछ भिक्षुओ ने स्निग्ध जुलाब लिया। उन्हे सरस भोजन चाहिये था। रोगी सेवक 'रसपूर्ण भोजन लायेगे' सोच श्रावस्ती मे गये। उन्हे रसोइयो की गली मे भिक्षाटन करने पर भी सरस भोजन नही मिला। वे लौट आये। (सारिपुत्र) स्थविर दिन चढे भिक्षाटन के लिये निकले। उन भिक्षुओ को देख उन्होने पूछा—आयुष्मानो ! क्यो जल्दी ही लौट रहे हो ? उन्होने वह बात कही। 'तो आओ' कह स्थविर उन्हे ले उसी गली मे गये। मनुष्यो ने (पात्र) भर-भर कर रस-पूर्ण भोजन दिया। रोगी-सेवको ने विहार मे लाकर रोगियो को दिया। उन्होने रस का उपभोग किया

"महाराज! ये पूर्व जन्म मे दूसरो की स्त्रियो से व्यभिचार करने वाले रहे है, और वाराणसी के आस-पास चार लोह-कुम्भी नरको मे पैदा हुए। उवलते हुए, लहकते पिघले लोहे मे वुलवुले उठाते हुए पकते रहे! तीस हजार वर्ष तक नीचे रह, कुम्भी-तल से टकरा, ऊपर उठ तीस हजार वर्ष वाद कुम्भीमुख देखा। चारो जने चार गाथाए पूरी कर कहना चाहते थे। वैसा न कर सके। एक एक अक्षर ही कह कर फिर लोह-कुम्भी मे डूब गए। उनमे से 'दु' कह कर डूव जाने वाला प्राणी यह कहना चाहता था —

दुज्जीवित अजीविम्ह ये सन्ते न ददम्हसे।
विज्जमानेसु भोगेसु दीप नाकम्ह अत्तनो॥

[पास होने पर भी जो नही दिया यह जीवन भी खराव जीवन ही रहा। भोगो के होने पर भी अपने लिये द्वीप नही बनाया।]

'लेकिन, सका नही' कह बोधिसत्व ने अपने ज्ञान से ही वह गाथा पूरी की। शेष गाथाओ मे भी इसी प्रकार। उनमे 'स' कह कर जो बोलना चाहता था उसकी यह गाथा है —

सट्ठिवस्ससहस्सानि परिपुण्णानि सब्बसो,
निरये पच्चमानानं कदा अन्तो भविस्सति॥

[हर प्रकार से पूरे साठ हजार वर्ष तक नरक मे जलते रहने का कब अन्त होगा?]

'न' कह कर बोलने की इच्छा रखने वाली की यह गाथा —

नत्थि अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो पटिदिस्सति।
तदाहि पकतं पापं मय तुह्य च मारिस॥

[अन्त नही है। अन्त कहाँ से होगा! अन्त दिखाई नही देता! मित्र उस समय मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है।]

'स' कह कर बोलने की इच्छा रखने वाले की गाथा —

सोहं नून इतो गन्त्वा योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्नो काहामि कुसल वहुं॥

[अव मैं निश्चय से यहाँ से जा कर मनुष्य देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी हो बहुत कुशल-कर्म करूँगा।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने एक-एक गाथा कह राजा को समझाया—महाराज ! वह नारकीय प्राणी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था। लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका। वह अपने कर्म-फल को भोगता हुआ चिल्लाया। आपको इस आवाज के सुनने के कारण कोई खतरा नही है। आप न डरे।

राजा ने सब प्राणियो को मुक्त करा, सोने का ढोल पिटवा, यज्ञ-कुण्ड नष्ट करा दिया। बोधिसत्व प्राणियो का कल्याण कर, कुछ दिन रह, वही जा, ध्यानावस्थित हो, ब्रह्म-लोक मे पैदा हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पुरोहित-माणवक सारिपुत्र था। तपस्वी तो मै ही था।

३१५. मस जातक

"फरुसा वत ते वाचा" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सारिपुत्र द्वारा जुलाब लेने वालो को सरस-भोजन के देने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय जेतवन मे कुछ भिक्षुओ ने स्निग्ध जुलाब लिया। उन्हे सरस भोजन चाहिये था। रोगी सेवक 'रसपूर्ण भोजन लायेंगे' सोच श्रावस्ती मे गये। उन्हे रसोइयो की गली मे भिक्षाटन करने पर भी सरस भोजन नही मिला। वे लौट आये। (सारिपुत्र) स्थविर दिन चढे भिक्षाटन के लिये निकले। उन भिक्षुओ को देख उन्होने पूछा—आयुष्मानो ! क्यो जल्दी ही लौट रहे हो ? उन्होने वह बात कही। 'तो आओ' कह स्थविर उन्हे ले उसी गली मे गये। मनुष्यो ने (पात्र) भर-भर कर रस-पूर्ण भोजन दिया। रोगी-सेवको ने विहार मे लाकर रोगियो को दिया। उन्होने रस का उपभोग किया

एक दिन भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बात-चीत चलाई—आयुष्मानो ! स्थविर ने जुलाब लेने वालो के सेवको को रस-पूर्ण भोजन न पा लौटते देख, ले जाकर रसोइयो की गली मे से भिक्षाटन कर, बहुत रसपूर्ण भोजन भिजवाया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी सारिपुत्र को श्रेष्ठ मास मिला, पहले भी कोमल प्रिय-वचन बोल सकने वाले पण्डितो को मिला ही है।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सेठ-पुत्र थे। एक दिन एक शिकारी गाडी मे बहुत-सा मास लिए शहर मे बेचने के लिये चला आ रहा था। उसी समय वाराणसी-निवासी चार सेठ पुत्र नगर से निकल किसी सार्वजनिक स्थान पर बैठे कुछ देखा-सुना बतिया रहे थे। उनमे से एक सेठ-पुत्र ने मास की गाडी देख पूछा—इस शिकारी से मास-खण्ड मँगवाऊँ ?

"जा लिवा ला।"

उसने पास जाकर कहा—अरे शिकारी, मुझे मास का टुकडा दे। शिकारी बोला—"दूसरे से कुछ मागते समय प्रिय-भाषी होना चाहिये। तेरी वाणी के अनुरूप ही तुझे मास-खण्ड मिलेगा।" उसने पहली गाथा कही —

फरुसा वत ते वाचा नस याचनको असि,
किलोमसदिसी वाचा किलोम सम्मद ददामि ते॥

[तू मास माँगता है किन्तु तेरी वाणी कठोर है। मित्र ! तेरी वाणी नीरस है, इसलिये तुझे कठोर (मास-खण्ड) ही देता हूँ।]

उसने उसे एक नीरस मास-खण्ड उठाकर दे दिया।

दूसरे सेठ-पुत्र ने पूछा—क्या कहकर मागा ? 'अरे' कहकर। 'मैं भी मागूंगा' कह उसने जाकर माँगा—"बडे भाई ! मास-खण्ड दे।" 'तुझे तेरी वाणी के अनुसार मिलेगा', कह उसने दूसरी गाथा कही—

अङ्गमेत मनुस्सान भाता लोके पवुच्चति,
अङ्गस्स सदिसी वाचा अङ्ग सम्म ददामि ते ॥

[ससार मे 'भाई' मनुष्यो का 'अङ्ग' कहलाता है। तुम्हारी वाणी अङ्ग सदृश है, इसलिये हे मित्र, तुझे (मास का) अङ्ग देता हूँ।]

ऐसा कह उसने उसे (मास का) एक अङ्ग उठाकर दिया। तीसरे सेठ-पुत्र ने उसे भी पूछा—क्या कहकर माँगा? 'भाई' कहकर। 'मैं भी माँगूंगा' कह उसने जाकर माँगा—"तात! मुझे मास-खण्ड दें।" 'तुझे तेरी वाणी के अनुरूप मिलेगा' कह शिकारी ने तीमरी गाथा कही —

तातात पुत्तो वदमानो कम्पेति हदय पितु,
हदयस्स सदिसी वाचा हदय सम्म ददामि ते ॥

[पुत्र 'तात' कहता है तो पिता का हृदय काँप उठता है। तुम्हारी वाणी हृदय सदृश है, इसलिये मित्र! तुझे हृदय देता हूँ।]

इस प्रकार कह हृदय-मास के साथ मधुर-मास उठाकर दिया। चौथे सेठपुत्र ने पूछा—क्या कहकर माँगा? 'तात' कहकर। 'मै भी माँगूंगा' कह उसने भी जाकर याचना की—दोस्त! मुझ मास-खण्ड दे। 'तेरी वाणी के अनुसार मिलेगा' कह शिकारी ने चौथी गाथा कही—

यस्स गामे सखा नत्थि यथारञ्ञ तथेव तं,
सब्बस्स सदिसी वाचा सब्बं सम्म ददामि ते ॥

[जिसका गाँव मे कोई सखा नही है, उसके लिये वह (गाँव) वैसा ही है जैसा जगल। तुम्हारी वाणी 'सर्वस्व' सदृश है, इसलिये मित्र, मैं तुम्हे सारा मास देता हूँ।]

इतना कहकर वह बोला—मित्र! यह सारी मास की गाडी मैं तेरे घर ले चलता हूँ। सेठ-पुत्र उससे गाडी हँकवा अपने घर ले गया। वहाँ मास उतरवा, शिकारी का सत्कार-सम्मान किया। फिर उसके स्त्री-बच्चो को भी बुलवा उसे शिकारी के काम से छुडवा अपने कुटुम्ब मे बसा लिया। उसके साथ वह अभिन्न भाव से जीवन-भर एकचित्त होकर रहा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी सारिपुत्र था। सब मास प्राप्त करने वाला सेठ-पुत्र तो मैं ही था।

३१६. सस जातक

"सत्त मे रोहिता मच्छा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सभी आवश्यकताओ के दान के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे एक गृहस्थ ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु सघ के लिये सभी आवश्यक वस्तुओ के दान की तैय्यारी की। उसने गृह-द्वार पर मण्डप रचवा, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु सघ को निमन्त्रित कर, मण्डप मे बिछे श्रेष्ठ आसनो पर बिठाया। फिर नाना प्रकार के रस-पूर्ण श्रेष्ठ भोजन करा, अगले दिन के लिये, और फिर अगले दिन के लिए, इस प्रकार सात दिन तक दान दिया। सातवे दिन पाँच सौ भिक्षुओ को जिनमे बुद्ध प्रमुख थे, सभी आवश्यक वस्तुओ का दान किया। शास्ता ने भोजनानन्तर (दान-) अनुमोदन करते समय कहा— उपासक! तुझे प्रसन्न होना चाहिये। यह दान पुराने पण्डितो की परम्परा के अनुरूप है। पुराने पण्डितो ने याचको के आने पर अपना बलिदान कर अपना मास तक दिया है। उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व खरगोश की योनि मे उत्पन्न हो, जगल मे रहते थे। उस जगल के एक तरफ पर्वत, एक तरफ नदी और एक तरफ प्रत्यन्त-ग्राम था। उसके तीन मित्र भी थे—बन्दर, गीदड और ऊद-बिलाव।

ये चारो पण्डित एक साथ रहते हुये अपनी-अपनी जगह भोजन खोजकर शाम को एक जगह इकट्ठे होते। खरगोश पण्डित तीनो जनो को

उपदेश देता—दान देना चाहिये, शील की रक्षा करनी चाहिये, उपोसथ-व्रत रखना चाहिए। वे उसका उपदेश मान अपने-अपने निवास स्थान मे जाकर रहते।

इसे प्रकार समय व्यतीत होते रहने पर एक दिन बोधिसत्व ने आकाश मे चन्द्रमा को देख और यह जान कि कल ही उपोसथ (व्रत) का दिन है शेष तीनो जनो को कहा—कल उपोसथ है। तुम भी तीनो जने शील ग्रहण कर उपोसथ-व्रत धारी बनो। शील मे प्रतिष्ठित हो जो दान दिया जाता है उसका महान् फल होता है। इसलिये किसी याचक के आने पर अपने खाने के आहार मे से उसे देकर खाना। वे 'अच्छा' कह स्वीकार कर अपने निवास-स्थान पर चले गये।

अगले दिन उनमे से ऊदबिलाव प्रात काल ही शिकार खोजने के लिये निकल कर गङ्गा तीर पर पहुँचा। एक मछुवे ने सात रोहित मछलिया पकडी और उन्हें रस्सी मे बाध रो जाकर गगा किनारे बालू मे छिपा दिया। वह और मछलियाँ पकडने के लिए गगा के नीचे की ओर जा रहा था। ऊद-बिलाव ने मछली की गन्ध सूँघ, बालू हटा, मछलियो को देख, निकाल कर तीन बार घोषणा की—कोई इनका मालिक है ? जब उसे उनका मालिक न दिखाई दिया तो रस्सी के सिरे को मुँह से पकड अपने निवास-स्थान पर लाकर रख दिया—समय पर खाऊँगा। उन्हे देख वह अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

गीदड ने भी निकल कर, भोजन खोजते हुए एक खेत की रखवाली करने वाली की झोपडी मे, दो कबाब की सीखें, एक गोह और एक दही की हाडी देखी। उसने तीन-तीन बार घोषणा की—कोई इनका मालिक है ? जब कोई मालिक न दिखाई दिया तो दही की हाँडी लटकाने की रस्सी को गर्दन मे लटका, कबाब की सीख और गोह को मुँह मे उठा लाकर अपनी माँद मे रक्खा—समय पर खाऊँगा। वह भी अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बन्दर भी वन-खण्ड मे जा आमो का गुच्छा ले आया। वह भी उसे अपने निवास-स्थान पर रख 'समय पर खाऊँगा' सोच अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व तो समय पर ही निकल कर बढिया घास खाऊँगा सोच अपनी झाडी मे ही पडे-पडे विचार करने लगे—मेरे पास आने वाले मगतो को मैं घास नही दे सकता। तिल-तण्डुल आदि भी मेरे पास नही है। यदि मेरे पास मगता आयेगा तो मैं उसे अपना शरीर-मास दूँगा।

उसके शील तेज से शक्र का पाण्डुकम्बलवर्ण शिलासन गर्म हो गया। उसने ध्यान लगाकर कारण मालूम किया। तब सोचा—शशराज की परीक्षा लूँगा। वह पहले ऊद-बिलाव के निवास-स्थान पर पहुँच, ब्राह्मण वेश बना कर खडा हुआ। 'ब्राह्मण! किस लिए खडा है?' पूछने पर बोला—

"पण्डित? यदि कुछ आहार मिले तो उपोसथ व्रती होकर श्रमण धर्म पालन करूँ।"

उसने 'अच्छा' तुझे आहार दूँगा कह उससे बात-चीत करते हुए पहली गाथा कही —

सत्त मे रोहिता मच्छा उदका थलमुब्भता,
इद ब्राह्मण मे अत्थि एत भुत्वा वने वस॥

[हे ब्राह्मण! पानी मे से स्थल पर लाई हुई मेरे पास सात रोहित मछलियाँ हैं! इन्हे खाकर वन मे निवास कर।]

ब्राह्मण 'अभी सवेरा है, रहे पीछे देखूँगा' कह गीदड के पास गया। उसके भी 'किस लिए खडा है?' पूछने पर वही कहा! गीदड ने 'अच्छा दूँगा' कह उसके साथ बात-चीत करते हुए दूसरी गाथा कही —

दुस्स मे खेत्तपालस्स रत्तिभत्त अपाभतं,
मस सूला च द्वे गोधा एकञ्च दधिवारक,
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एत भुत्वा वने वस॥

[उस खेत की रखवाली करने वाले का रात्रि-भोजन लाया हुआ मेरे पास है—दो कबाब की सीखें, दो गोह और एक दही की हाडी! हे ब्राह्मण! वह मेरे पास है। इसे खाकर वन मे रह!]

ब्राह्मण 'अभी सवेरा ही है, पीछे देखूँगा' कह बन्दर के पास गया। उसके भी 'किस लिए खडा है?' पूछने पर वैसा ही उत्तर दिया। बन्दर ने 'अच्छा, देता हूँ' कह उससे बातचीत करते हुए तीसरी गाथा कही —

अम्बपक्कोदक सीतं सीतच्छायं मनोरम,
इद ब्राह्मण मे अत्थि एत भुत्वा वने वस ॥

[पके आम, ठण्डा जल और शीतल छाया—यह है हे ब्राह्मण ! मेरे पास । इसे खाकर बन मे रह ।]

ब्राह्मण 'अभी सवेरा ही है, पीछे देखूंगा' कह शश-पडित के पास गया । उसके भी 'किस लिये खडा है ?' पूछने पर वही वात कही । इसे सुन बोधिसत्व अति-प्रसन्न हो बोले—ब्राह्मण ! तूने अच्छा किया जो आहार के लिये मेरे पास आया । आज मैं ऐसा दान दूंगा जैसा पहले कभी नही दिया । तू सदाचारी है, इसलिये हिंसा नही करेगा । जा अनेक लकडियाँ इकट्ठी कर, अङ्गार बना कर मुझे सूचना दे । मैं आत्म-बलिदान कर अङ्गारो के बीच मे गिरूँगा । मेरे शरीर के पकने पर तू मास खाकर श्रमण-धर्म करना । इस प्रकार उससे बातचीत करते हुए बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

न ससस्स तिला अत्थि न मुग्गा नपि तण्डुला
इमिना अग्गिना पक्कं मम भुत्वा वने वस ॥

[शश के पास न तिल है, न मूँग है और न हैं चावल । इस आग से पके हुए मुझको ही खाकर बन मे रह ।]

शक्र ने उसकी बात सुन अपने प्रताप से एक अङ्गारो का ढेर रच बोधिसत्व को सूचना दी । उसने बढिया घास की शैय्या मे उठ तीन बार अपने शरीर को झाडा—यदि शरीर के बालो मे कोई प्राणी हो तो न मरे । फिर सारे शरीर को दान कर, उछलकर प्रसन्नचित्त हो अङ्गारो के ढेर पर ऐसे कूदा मानो राजहस कमलो के ढेर मे कूदा हो । वह आग बोधिसत्व के शरीर के रोम-छिद्र तक को भी गर्म नही कर सकी । ऐसा हुआ जैसे हिम-गृह मे प्रवेश किया हो । उसने शक्र को सम्बोधित कर पूछा—ब्राह्मण ! तेरी बनाई हुई आग अति शीतल है ? मेरे शरीर के रोम-छिद्र तक को गर्म नही कर सकी है । यह क्या बात है ।

"पण्डित ! मैं ब्राह्मण नही हूँ । मैं शक्र हूँ । तेरी परीक्षा लेने आया हूँ ।"

बोधिसत्व ने सिंह-नाद किया—शक्र ! तेरी तो बात क्या ! यदि यह सारा ससार भी मेरे दान की परीक्षा लेना चाहे, तो वह मुझमे न देने की इच्छा नही देख सकेगा ।

शक्र बोला—शश-पण्डित ! तेरा गुण सारे कल्पो तक प्रसिद्ध रहे। उसने पर्वत को निचोड, पर्वत का रस ले चन्द्रमण्डल मे शश का आकार बना दिया। फिर बोधिसत्व को बुला उस वन-खण्ड मे, उसी झुरमुट मे, नई दूब की घास पर लिटाया और (स्वय) अपने देवलोक को चला गया। वे चारो पण्डित भी एक मत हो, प्रसन्न-चित्त रहते हुये शील को पूरा कर, उपोसथ-व्रत का पालन कर कर्मानुसार (परलोक) गये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल विठाया। सत्यो के अन्त मे सभी आवश्यक वस्तुयें दान करने वाला गृहस्थ स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ऊद-बिलाव आनन्द था। गीदड मौद्गल्लायन था। बन्दर सारिपुत्र था। शक्र अनुरुद्ध था और शश-पण्डित तो मैं ही था।

३१७ मतरोदन जातक

"मतमतमेव रोदथ" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसका भाई मर गया था। वह उसके मरने से शोकाभिभूत हो न नहाता, न खाना खाता, न (चन्दनादि) लेप करता, प्रात काल ही श्मशान मे पहुँच शोकाकुल हो रोने लगता। शास्ता ने ब्राह्म-मुहूर्त मे लोक का विचार करते हुए उसकी स्रोतापत्ति फल प्राप्ति की सभावना को देखा। उन्होने सोचा कि इसके पूर्वजन्म की बात ला, शोक को शान्त कर इसे स्रोतापत्ति फल दे सकने वाला मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नही, इसलिये मुझे इसका सहारा होना चाहिये। अगले दिन भिक्षाटन से लौट भोजनानन्तर अनुगामी-श्रमण के साथ शास्ता उसके गृह-द्वार पर पहुँचे। गृहस्थ ने जब सुना कि शास्ता आये

हैं तो उसने आसन बिछा कर कहा—उन्हे लिवा लाओ। शास्ता अन्दर जाकर बिछे आसन पर बैठे। गृहस्थ भी आकर शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। तब शास्ता ने पूछा—

गृहस्थ! क्या चिन्तित हो?

"भन्ते! हाँ जब से मेरा भाई मरा है, मैं चिन्तित हूँ।"

"आयुष्मान्! सभी सस्कार अनित्य है, भेदन-स्वभाव भेदन होता ही है। उस विषय मे चिन्ता नही करनी चाहिए। पुराने पण्डितो ने भाई के मरने पर भी 'भेदन-स्वभाव का भेदन होता ही है' सोच चिन्ता नही की।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन वाले सेठ-कुल मे पैदा हुए। उसके बडे होने पर माता-पिता मर गये। उनके मरने पर बोधिसत्व का भाई कुटुम्ब को पोसता था। बोधिसत्व उसी के सहारे जीते थे। आगे चलकर वह भी किसी बीमारी से मर गया। ज्ञाति-मित्र इकट्ठे हो हाथ पकडकर रोते पीटते थे, एक जना भी होश मे नही रह सका। बोधिसत्व न रोते थे न पीटते। मनुष्यो ने निन्दा की—देखो, इसका भाई मर गया है, लेकिन इसके चेहरे पर एक चिन्ता की रेखा भी नही है। बहुत ही कठोर हृदय है। मालूम होता है दोनो हिस्से स्वय भोगने के लिये यह भाई का मरण ही चाहता है। रिश्तेदार भी निन्दा करने लगे—तू भाई के मरने पर रोता नही है।

उसने उनकी बात सुन कर पूछा—तुम अपने अन्धेपन के कारण, मूर्खता के कारण, आठ लोक-धर्मों से अपरिचित होने से 'मेरा भाई मरा है, कहकर रोते हो। मैं भी मरूँगा, तुम भी मरोगे, अपने आपको भी, 'हम भी मरेंगे' कह कर क्यो नही रोते हो? सभी सस्कार अनित्य है, होकर नही रहते है, ऐसा एक सस्कार भी नही है जो उसी अवस्था मे स्थिर रह सके। तुम अपने अन्धेपन तथा मूर्खता के कारण आठ लोकधर्मो से अपरिचित होने से रोते हो तो मैं क्यो रोऊँ? इतना कह ये गाथायें कही —

मतमतमेव रोदथ नहि तं रोदथ यो मरिस्सति,
सब्बेव सरीरधारिनो अनुपुब्बेन जहन्ति जीवित ॥
देवमनुस्सा चतुप्पदा पक्खिगणा उरगा च भोगिनो,
सम्हि सरीरे अनिम्सरा रममानाव जहन्ति जीवित ॥
एव चलित असण्ठित सुखदुक्ख मनुजेसु अपेक्खिय,
कन्दित-रुदित निरत्थकं किं वो सोकगणाभिकीररे ॥
धुता सोण्डा अकता बाला सूरा अयोगिनो,
धीर मञ्जन्ति बालोति ये धम्मस्स अकोविदा ॥

[मरे मरे को ही रोते हो, उसे नही रोते जो मरेगा। सभी शरीरधारी क्रमश जीवन त्याग करेगे। देवता, मनुष्य, चतुष्पाद, पक्षिगण, और बड़े फन वाले नाग तक अपने अपने शरीर पर कोई अधिकार न रख, भोगो मे आसक्त रहते ही शरीर त्याग करेंगे। इस प्रकार मनुष्यो मे सुख-दु ख जब चञ्चल है, अस्थिर है तो उसे देखते हुए रोना पीटना निरर्थक है। तुम ये सब शोक क्यो करते हो ? जो धूर्त है, जो सुरा आदि पीते हैं, जिन्होने शास्त्राभ्यास नही किया है, जो मूर्ख हैं, जो (अकर्तव्य मे) शूर हैं, जो अयोगी हैं और जो आठ लोकधर्मों से अपरिचित है वे (मेरे जैसे) धीर को समझते है कि यह मूर्ख है ।]

शास्ता ने यह धर्मोपदेश ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यो के अन्त मे गृहस्थ स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय जनता को धर्मोपदेश दे, उसके शोक को दूर करने वाला पण्डित मैं ही था।

३१८ कणवेर जातक

"पन्त वसन्तसमये " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्वभार्य्या के आकर्षण के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा

इन्द्रिय जातक[1] मे आएगी। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु! इसी के कारण पूर्वजन्म मे तलवार से तेरा सिर काटा गया है' कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व काशी (जनपद के) गाँव मे एक गृहस्थ के घर मे चोर-नक्षत्र मे पैदा हुए। बडे होने पर चोरी द्वारा जीविका चलाने लगे और लोक मे बडे बलवान बहादुर प्रसिद्ध हो गये। कोई भी उस चोर को पकड न सकता था। वह एक दिन एक सेठ के घर मे सेंध लगाकर बहुत सा धन ले गया। नागरिको ने आकर महाराज से शिकायत की—देव! एक डाकू नगर लूट रहा है। उसे पकडवाये। राजा ने नगर-कोतवाल को उसे पकडने की आज्ञा दी।

उसने रात को जहाँ-तहाँ लोगो की टोलियाँ बनाकर उन्हे नियुक्त कर उसे धन सहित पकड लिया और राजा को सूचना दी। राजा ने नगर-कोतवाल को ही आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो।

नगर-कोतवाल ने उसके दोनो हाथ पीछे कस कर बँधवा दिये, गर्दन मे लाल कनेर की माल डलवा दी, सिर पर ईंट का चूरा बिखरवा दिया और उसे चौरस्ते-चौरस्ते पर चाबुक मारता हुआ, जोर से ढोल बजवाकर वध-स्थान की ओर ले चला। सारा नगर क्षुब्ध हो उठा—इस नगर मे डाकू-चोर पकडा गया है।

उस समय वाराणसी मे हजार लेने वाली सामा नाम की वैश्या थी—राजा की प्रिया और पाँच सौ सुन्दर दासियो वाली। उसने महल की खिडकी खोल खडे हो उसे ले जाये जाते देखा।

वह रूपवान था, सुन्दर था, अत्यन्त शोभायमान था, देव-वर्ण वाला था, सभी का सिर-मौर प्रतीत होता था। उसे ले जाते देख, आसक्त हो वह सोचने लगी—किस उपाय से इस पुरुष को मैं अपना स्वामी बनाऊँ? उसे सूझा—एक उपाय है। उसने अपना काम करने वाली के हाथ नगर-कोतवाल के पास एक हजार मुद्रा भिजवाई और कहलवाया—यह चोर सामा

---

१ इन्द्रिय जातक (४२३)।

का भाई है। सामा के अतिरिक्त इसका और कोई सहारा नही है। तुम यह हजार लेकर इसे छोड दो। उस काम करने वाली ने वैसा किया। नगर-कोतवाल ने उत्तर दिया—यह प्रसिद्ध चोर है। इसे ऐसे नही छोड सकता। इसकी जगह कोई दूसरा आदमी मिले तो इसे गाडी मे छिपाकर, बिठाकर भेज सकता हूँ। उसने जाकर उसे कहा।

उस समय सामा पर आसक्त एक सेठ-पुत्र प्रतिदिन हजार दिया करता था। वह उस दिन भी हजार ले उसके घर पहुँचा। सामा हजार की थैली को जांघ मे दबा बैठ कर रोने लगी। 'क्या बात है ?' पूछने पर बोली—स्वामी ! यह चोर मेरा भाई है। मैं नीच-कर्म करती हूँ, इसलिये मेरे पास नही आता। नगर-कोतवाल के पास भेजने पर उसने सदेश भिजवाया है कि हजार मिलेगा तो छोड दूंगा। अब ऐसा कोई नही मिलता जो इस हजार को लेकर नगर-कोतवाल के पास जाय। उसने उस पर आसक्त होने के कारण कहा—मैं जाऊँगा। तो यह जो तुम लायें हो, यही लेकर जाओ।

वह उसे ले नगर-कोतवाल के घर पहुँचा। नगर-कोतवाल ने उस सेठ-पुत्र को छिपी जगह मे रख, चोर को छिपी गाडी मे बिठा, सामा के पास भेजा और कहलाया कि यह चोर देश भर मे प्रसिद्ध है, अच्छी तरह अन्धेरा हो जाने दे। उसने बहाना बनाया कि लोगो के सो जाने के समय इसे मरवाऊँगा। फिर थोडा समय व्यातीत होने पर, जब लोग सोने चले गये थे, उसने सेठ-पुत्र को बडे पहरे मे बध-स्थान पर ले जा तलवार से सिर काट शरीर को सूली पर टांग नगर मे प्रवेश किया।

उस समय से सामा किसी दूसरे के हाथ से कुछ न ग्रहण कर उसी के साथ रमण करती। वह सोचने लगा—यदि यह किसी दूसरे पर असक्त हो गई तो यह मुझे भी मरवाकर किसी दूसरे के साथ रमण करेगी। यह अत्यन्त मित्र-द्रोही है। मुझे चाहिये कि यहाँ न रह कर शीघ्र भाग जाऊँ। लेकिन हाँ जाते समय खाली हाथ नही जाऊँगा। इसके गहनो की गठडी लेकर जाऊँगा। यह सोच बोला —

"भद्रे ! हम पिञ्जरे मे बन्द मुर्गों की तरह नित्य घर मे ही रहते हैं। एक दिन उद्यान-क्रीडा के लिये चलें।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया

और सब खाद्य भोजन सामग्री तैयार करा, सभी गहनो से अलकृत हो उसके साथ पर्दे वाली गाडी मे बैठ उद्यान को गई ।

उससे उसके साथ खेलते हुए 'अब मुझे भागना चाहिए' सोच उसके साथ रमण करने जाते हुए की तरह, उसे कनेर के वृक्षो के बीच ले जा, उसका आलिङ्गन करने के बहाने, उसे दबाकर बेहोश कर गिरा दिया । फिर उसके सब गहने उतार, उसी की ओढनी मे गठरी बाँध, उन्हे कधे पर रख, बाग की दीवार लाँघ भाग गया ।

उसे होश आई तो उसने सेविकाओ के पास आकर पूछा—आर्य-पुत्र कहाँ है ? "आर्ये ! हम नही जानती ।" उसने सोचा—मुझे मरा समझ डर कर भाग गया होगा । वह दुखी हुई और घर पहुँच जमीन पर लेट रही—मैं तभी अलकृत शैय्या पर लेटूँगी जब अपने प्रिय स्वामी को देख सकूँगी ।

उसने अच्छे वस्त्र पहनने छोड दिये । दोनो शाम भोजन करना छोड दिया । गन्धमाला धारण करना छोड दिया । 'जिस किसी तरह भी आर्य-पुत्र का पता लगाकर उसे बुलवाऊँगी' सोच उसने नटो को बुलवाकर उन्हे एक हजार दिये । उन्होने पूछा —

"आर्ये ! क्या करें ?"

"ऐसी कोई जगह नही है, जहाँ तुम्हारी पहुँच न हो । तुम ग्राम-निगम तथा राजधानियो मे घूमते हुए तमाशा करते समय तमाशा देखने वालो के इकट्ठे होने पर पहले पहल यह गीत गाना ।" उसने नटो को पहली गाथा सिखाते हुए "यदि आर्य-पुत्र उस परिषद मे होगा तो तुम्हारे साथ बातचीत करेगा । उसे मेरा आरोग्य कहकर उसे लिवा लाना । यदि न आये तो मुझे सन्देशा भेजना" कह खर्चा दे विदा किया ।

वे वाराणसी से निकल जहाँ तहाँ तमाशा करते हुए एक प्रत्यन्त-ग्राम मे पहुँचे । वह चोर भी भाग कर वही रहता था । उन्होने तमाशा करते समय पहले पहल यही गीत गाया—

> यन्त वसन्तसमये कणवेरेसु भानुसु,
> साम बाहाय पीळेसि सा तं आरोग्यमब्रवि ॥

[तूने वसन्त समय मे लाल लाल कनेर के वृक्षो के बीच मे जिस सामा को हाथो से दबाया था, वह तुझे अपने आरोग्य की सूचना देती है ।]

चोर ने यह गीत सुन नट के पास आ "तू सामा जीती है कहता है, मैं इस पर विश्वास नही करता" कह उसके साथ बतियाते हुए दूसरी गाथा कही—

अब्भो न किर सद्धेय्य यं वातो पब्बत वहे,
पब्बतञ्च वहे वातो सब्बम्पि पठविं वहे
यत्थ सामा कालकता सामं आरोग्यमब्रुवि ॥

[भो ! इस पर विश्वास नही होता कि हवा पर्वत को बहा ले जा सकती है, यदि वह पर्वत को बहा ले जाये तो फिर वह सारी पृथ्वी को भी बहा ले जा सकती है। (इसी लिये इस पर विश्वास नही होता कि) जो सामा मर गई वह मुझे अपने आरोग्य की सूचना दे।]

उसका कथन सुन नट ने तीसरी गाथा कही—

न चेव सा कालकता न च सा अञ्ञमिच्छति,
एकभत्ता किर सामा तमेव अभिकङ्खति ॥

[न वह मरी है, न किसी दूसरे की इच्छा करती है। एक ही भर्ता वाली वह सामा उसी एक ही की इच्छा करती है।]

इसे सुन चोर ने 'चाहे वह जीती हो, चाहे न हो, मुझे उससे प्रयोजन नही' कह चौथी गाथा कही—

असन्थुत मं चिरसन्थुतेन
निमीनि सामा अधुवं धुवेन,
मयापि सामा निमिनेय्य अञ्ञं
इतो अहं दूरतरं गमिस्सं ॥

[सामा ने चिरकाल से संसर्ग किये हुए, ध्रुव-स्वामी को छोड कर मुझे जिसका पूर्व संसर्ग नही था और जो अध्रुव था अपनाया। अब सामा मुझसे भी किसी दूसरे को बदल सकती है, इसलिये मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ।]

'उसे मेरे यहाँ से भी चल देने की बात कहना' कह उसने उनके देखते ही देखते कपडे को और जोर से ओढा और भाग निकला।

नट ने जाकर उसका किया उसे सुनाया। उसने पश्चात्ताप करते हुए अपने ढङ्ग से ही दिन काटे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय सेठ-पुत्र यह भिक्षु था। सामा पूर्व-भार्य्या। चोर तो मैं ही था।

३१९ तित्तिर जातक

"सुमुख वत जीवामि" यह शास्ता ने कोसम्बी के बदरिकाराम मे विहार करते समय राहुल स्थविर के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा उक्त तिपल्लत्थ जातक[1] मे आ ही गई है। धर्मसभा मे भिक्षुओ के उस आयुष्मान के गुण कहने पर कि आयुष्मानो, राहुल शिक्षा-प्रेमी है, (बुरे कर्म मे) अति सकोची है, उपदेश सुनता है, शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ, न केवल अभी राहुल शिक्षा-प्रेमी है, (बुरे कर्म मे) अति-सकोची तथा उपदेश सुनने वाला है, पहले भी राहुल शिक्षा-प्रेमी, (बुरे कर्म मे) अति-सकोची तथा उपदेश सुनने वाला ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला मे सभी विद्यायें सीख, निकल कर, हिमालय प्रदेश मे ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त की। फिर ध्यान-क्रीडा मे रत रह रमणीय वन-खण्ड मे वास करते हुए निमक-खटाई खाने के लिए एक प्रत्यन्त-ग्राम मे पहुँचे। मनुष्यो

---

1 तिपल्लत्थमिग जातक (१६)।

ने उन्हे वहाँ देख उनके प्रति श्रद्धावान हो किसी जङ्गल मे पर्ण-कुटी बनवा सभी आवश्यक वस्तुयें पहुँचाते हुए (उस कुटी मे) बसाया।

उस समय उस गाँव का एक चिड़िमार एक फँसाऊ तीतर को अच्छी तरह से सिखा-पढा पिंजरे मे रख पालता था। वह उसे जगल मे ले जा उसकी आवाज पर जो जो तीतर आते उन्हे पकड कर जीविका चलाता। तीतर सोचने लगा—मेरे कारण मेरे बहुत से जाति-वाले मारे जाते है। मैं पाप का भागी होता हूँ। उसने आवाज लगानी बन्द कर दी। चिडीमार ने उसे चुप देखा तो वह बाँस की चपटी से उसके सिर पर मारने लगा। तीतर दुखित हो आवाज़ लगाता। इस प्रकार वह शिकारी उसकी मदद से तीतरो को पकड जीविका चलाता।

वह तीतर सोचने लगा—ये मरे ऐसी तो मेरी इच्छा नही है, लेकिन जिस कर्म के होने से मरते हैं वह कर्म मुझे स्पर्श करता है। मैं आवाज नही लगाता तब ये नही आते, आवाज लगाता हूँ तभी आते हैं। जो जो आ फँसते हैं, उन्हे यह शिकारी पकड कर मार डालता है। मुझे इसमे पाप लगता है वा नही ? उस समय से वह किसी ऐसे पण्डित को खोजता हुआ विचरने लगा जो उसके इस सन्देह को मिटा सके।

एक दिन शिकारी बहुत से तीतरो को पकड, टोकरा भर, पानी पीने के लिए बोधिसत्व के आश्रम गया। उस पिंजरे को बोधिसत्व के पास रख पानी पी, बालू पर लेट सो गया। उसे सोया जान तीतर ने सोचा कि मैं अपना सन्देह इस तपस्वी से पूछूं। जानता होगा तो मेरे सन्देह को दूर करेगा। उसने पिंजरे मे पडे ही पडे उसे पूछते हुए पहली गाथा कही —

सुसुख वत जीवामि लभामि चेव भुञ्जितुं,
परिपन्थे च तिट्ठामि कानु भन्ते गति मम ॥

[मैं सुख से रहता हूँ और खाना पाता हूँ लेकिन साथ ही उस रस्ते पर रहता हूँ (जहाँ मेरे जाति-वाले आकर फँसते है) भन्ते! मेरी क्या गति होगी ?]

उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

मनो चे ते पणमति पक्खि पापस्स कम्मुनो,
अब्यावटस्स भद्रस्स न पापमुपलिप्पति ॥

[हे पक्षि ! यदि तेरा मन पापकर्म की ओर नही झुकता तो पाप-कर्म न करने वाले तुम भद्र को पाप नही लगता ।]

उसे सुन तीतर ने तीसरी गाथा कही—

ञातको नो निसिन्नोति वहु आगच्छते जनो,
पटिच्चकम्म फुसति तस्मि मे सङ्कते मनो ॥

[हमारी जातिका वैठा है, समझ वहुत से आ जाते है। मेरे होने से इन्हे (प्राणि-हत्या का) कर्म स्पर्श करता है। इस विषय मे मेरे मन मे सन्देह है।]

उसे सुन वोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

पटिच्चकम्मं न फुसति मनो चे नप्पदुस्सति,
अप्पोसुक्कस्स भद्रस्स न पापमुपलिप्पति ॥

[यदि मन दूषित न हो तो प्रतीत्य-कर्म स्पर्श नही करता। जो पाप करने के लिए उत्सुक नही है, ऐसे भद्रजन को पाप नही लगता ।]

इस प्रकार वोधिसत्व ने तीतर को समझाया। वह भी उनके कारण निश्शक हो गया। चिडीमार जागने पर वोधिसत्व को प्रणाम कर पिंजरा ले चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय तीतर राहुल था तपस्वी तो मैं ही था ।

३२०. सुच्चज जातक

"सुच्चज वत नच्चजी" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक गृहस्थ के वारे मे कही ।

क वर्तमान कथा

वह गाँव मे कर्जा वसूल करने के लिए भार्य्या सहित वहाँ गया। कर्जा वसूल कर 'गाडी लाकर वाद मे ले जाऊँगा' सोच उसने वसूल किया हुआ

सामान एक गृहस्थ के घर मे रखदिया और श्रावस्ती की ओर चला। रास्ते मे उन्होने एक पर्वत देखा। उसकी भार्य्या बोली—स्वामी! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो जाय तो मुझे भी कुछ दोगे?

"तू कौन है, कुछ नही दूंगा"

वह असन्तुष्ट हो गई—कितना कठोर हृदय है यह! पर्वत के स्वर्णमय होने पर भी मुझे कुछ नही देगा। वे जेतवन के समीप आये तो पानी पीने के लिये विहार मे जा उन्होने पानी पिया। शास्ता भी अति प्रात काल ही उनकी प्रतीक्षा करते हुए गन्धकुटी के बरामदे मे बैठे थे, क्योंकि उन्होंने उनकी स्रोतापत्ति-फल प्राप्ति की सभावना को देखा था। उनके शरीर से छ वर्ण की रश्मियाँ निकल रही थी। वे भी पानी पी आकर शास्ता को प्रणाम कर बैठ रहे। शास्ता ने उनका कुशलक्षेम पूछने के बाद पूछा—कहाँ गये थे?

"भन्ते! अपने गाँव मे वसूली करने के लिये।"

"उपासिका! क्या नेरा स्वामी तेरा हितचिंतक है? तेरा उपकार करता है?"

"भन्ते! मैं तो इससे स्नेह करती हूँ, किन्तु यह मुझसे स्नेह नही करता। आज मैंने पूछा—यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो, तो मुझे कुछ देगा? यह बोला—तू कौन है? कुछ नही दूंगा। यह ऐसा कठोर-हृदय है।"

"उपासिका! यह ऐसा कहता भर है लेकिन जब यह तेरे गुणो को याद करता है तो तुझे सब ऐश्वर्य देता है।"

उनके प्रार्थना करने पर कि भन्ते! (पूर्व-जन्म की कथा) कहे, शास्ता ने पूर्ण-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्ण समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उसके सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। एक दिन राजा ने राजकुमार को सेवा में आते देख सोचा शायद यह मेरे विरुद्ध षडयन्त्र करे। उसने उसे बुलाकर आज्ञा दी—तात जब तक मैं जीता हूँ तुम नगर मे नही रह सकते, अन्यत्र रहकर मेरे मरने पर राज्य सँभालना।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पिता-को प्रणाम किया। ज्येष्ठ भार्या को साथ ले नगर से निकल पड़ा। प्रत्यत-देश मे पहुँच पर्ण-कुटी बना जगल के फल मूल खाकर रहने लगा। समय बीतने पर राजा मर गया।

उपराज ने नक्षत्र देख जाना, कि उसका पिता मर गया। वाराणसी आते हुये रास्ते मे एक पर्वत देखा।

भार्या बोली— देव! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो तो मुझे कुछ देंगे?

"तू कौन है कुछ नही दूगा।" वह असन्तुष्ट हो गई—मै इसके प्रति स्नेह न छोड सकने के कारण जगल मे आई और यह इस तरह बोलता है। अति कठोर-हृदय है। राजा होकर यह मेरा क्या भला करेगा?

उसने आकर राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर उसे पटरानी बनाया उसे यह यशमात्र दिया, और सत्कार सम्मान कुछ नही। मानो वह है ही नही। बोधिसत्व ने सोचा—इस देवी ने इस राजा का उपकार किया। अपने दु ख का ख्याल न कर इसके साथ जगल मे रही। लेकिन यह राजा इसका ख्याल न कर दूसरी के साथ रमण करता रहता है। मैं कुछ ऐसा करूँ जिसमे इसे सब ऐश्वर्य्य मिले। एक दिन बोधिसत्व ने उस देवी के पास आकर कहा—महादेवी! हमे तुम से भिक्षा-मात्र भी नही मिलता? हमारे प्रति इतनी उपेक्षा क्यो? आप बडी कठोर-हृदया है?

"तात! यदि मुझे मिले तो तुम्हे भी दूं। कुछ न मिलने पर क्या दूं? राजा भी मुझे अब क्या देगा जिसने रास्ते मे इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर 'मुझे कुछ दोगे?' पूछने पर 'तू कौन है? कुछ न दूंगा' उत्तर दिया था। जो आसानी से दिया जा सकता था वह भी नही दिया।

"क्या तुम राजा के सामने यह बात कह सकोगी।"

"तात! क्यो न कह सकूगी?"

"तो राजा की उपस्थिति मे पूछूगा। तुम कहना।"

"तात! अच्छा।"

बोधिसत्व ने देवी के राजा की सेवा मे आकर खडी होने पर कहा—आर्ये! हमे तुम से कुछ नही मिलता?

"तात! मुझे मिले तो मैं तुम्हे दू। मुझे ही कुछ नही मिलता। राजा भी मुझे अब क्या देगा। इसने तो जगल से लौटते समय मेरे एक पर्वत

को देखकर 'इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर मुझे दोगे ?' पूछने पर 'तू कौन है ? कुछ नही दूंगा' उत्तर दिया था जो आसानी से दिया जा सकता था वह भी नही दिया ।"

यही बात कहने के लिये उसने पहली गाथा कही—

सुच्चज वत नच्चजी वाचाय अदद गिरि,
किं हि तस्स चजन्तस्स वाचाय अदद पब्बत ॥

[वाणी से पर्वत का त्याग न कर जो सरलता से दिया जा सकता था, वह भी नही दिया । उसका त्याग करने मे क्या लगा था ? इसने वाणी से भी पर्वत नही दिया ।]

इसे सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

य हि कयिरा तहि वदे य न कयिरा न त वदे,
अकरोन्त भासमान परिजानन्ति पण्डिता ॥

[जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे । न करते हुए केवल कहने वाले को पण्डित जन पहचान लेते है ।]

इसे सुन देवी ने राजा के सामने हाथ-जोड तीसरी गाथा कही—

राजपुत्त नमो त्यत्यु सच्चे धम्मे ठितोवसि,
यस्स से व्यसन पत्तो सच्चस्मि रमते मनो ॥

[राजपुत्र ! तू सत्य और धर्म मे स्थित है । आपत्ति मे पडने पर भी तेरा मन सत्य मे ही रमण करता है, तुझे नमस्कार है ।]

इस प्रकार देवी के राजा का गुणानुवाद करने पर उसकी बात सुन बोधिसत्व ने उसके गुण कहने के लिये चौथी गाथा कही—

या दळिद्दी दळिद्दस्स अड्ढा अड्ढस्स कित्तिमा,
सा हिस्स परमा भरिया सहिरञ्जस्स इत्थियो ॥

[जो स्त्री दरिद्र पति के साथ दरिद्री बनकर रहती है और धनी होने पर धनवान बनकर रहती है, वही कीर्तिमान नारी ही उसकी पर श्रेष्ठ भार्य्या है, यूं धनवान की स्त्रियाँ तो होती ही है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवी के गुण कहे और राजा से निवेदन किया—महाराज ! यह तुम्हारी विपत्ति के समय तुम्हारे दुःख मे शामिल रही । इसका सम्मान करना चाहिये ।

राजा ने उसके कहने से देवी के गुणो का ध्यान कर 'पण्डित तेरे कहने से मुझे देवी के गुण याद आये' कह उसे मब ऐश्वर्य दिया। 'और तूने मुझे देवी का गुण याद कराया' कह बोधिसत्व का भी बडा सत्कार किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर पति-पत्नी स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुए।

उस समय वाराणसो राजा यह गृहस्था था। देवी यह उपासिका। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

३. कुटिदूसक वर्ग

३२१. कुटिदूसक जातक

"मनुस्सस्सेव ते सीस " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय महाकश्यप स्थविर की कुटि जला देने वाले तरुण भिक्षु के बारे मे कही। घटना राजगृह मे घटी।

क. वर्तमान कथा

उस समय स्थविर राजगृह के पास जगल मे कुटी मे रहते थे। दो तरुण (भिक्षु) उसकी सेवा मे थे। उनमे से एक स्थविर का उपकारी था और दूसरा बात न सहन करने वाला। वह दूसरे के किये को अपने किये जैसा करके दिखाता था। उपकारी भिक्षु के मुँह धोने का पानी आदि लाकर रखने पर वह स्थविर के पास जा प्रणाम कर 'भन्ते ! मैंने पानी रख दिया है, मुँह धोयें' आदि कहता। उसके प्रात काल ही उठकर स्थविर का परिवेण साफ करने पर स्थविर के बाहर निकलने के समय इधर उधर (झाड़ू) मार सारा परिवेण अपने साफ किया जैसा कर देता। कर्तव्य-परायण भिक्षु ने सोचा—यह, बात न सह सकने वाला जो कुछ मैं करता हूँ उसे अपना किया बना देता है। मैं इसकी करतूत प्रकट करूँगा। उसके गाँव मे जाकर, खाकर, आकर सोते समय नहाने का पानी गर्म कर पीछे की कोठरी मे रख दिया, और दूसरा आधी नाली मात्र पानी चूल्हे पर रख दिया। उसने उठकर आकर भाप उठती देखी। सोचा—पानी गर्म करके कोठरी मे रखा होगा। स्थविर के पास जाकर बोला—भन्ते ! स्नानागार मे पानी रखा है, स्नान करे। स्थविर 'नहाता हूँ' कह उसी के साथ आये। कोठरी मे जब पानी नही दिखाई दिया तो पूछा—कहाँ है ? उसने जल्दी से अग्निशाला मे पहुँच खाली बर्तन मे कड़छी घुमाई। कड़छी ने खाली बर्तन के तल मे

लग, 'सर' आवाज की। तबसे उसका नाम ही उलुङ्कशब्दक' अर्थात् उलुङ्क शब्द करने वाला पड गया। उस समय दूसरे ने पीछे की कोठरी मे से पानी लाकर कहा—भन्ते! स्नान करें। स्थविर ने स्नान कर विचार करने पर 'उलुङ्कशब्दक के बारे मे यह जान कि यह कठिनाई से बात मानने वाला है, शाम को उसके सेवा मे आने पर उसे उपदेश दिया—आयुष्मान! श्रमण को चाहिये कि अपने किये को ही किया कहे, अन्यथा जानबूझ कर झूठ बोलना होता है। अब से ऐसा न करना। वह स्थविर से क्रुद्ध हो अगले दिन स्थविर के साथ भिक्षाटन के लिये गाँव मे नही गया। स्थविर दूसरे के ही साथ गये। उलुङ्कशब्दक भी स्थविर के सेवक परिवार मे पहुँचा। वहाँ पूछा—भन्ते! स्थविर कहाँ है?

"अस्वस्थ होने से कारण विहार मे ही बैठे है।"

"भन्ते! तो क्या क्या चाहिये?"

"वह दें, वह दें" कह लेकर अपने मन की जगह जा, खाकर विहार मे पहुँचा। अगले दिन स्थविर उसी परिवार मे जाकर बैठे। मनुष्यो ने पूछा—भन्ते आर्य को क्या कष्ट है? कल विहार मे बैठे रहे। हमने अमुक तरुण के हाथ आहार भेजा। आर्य ने आहार ग्रहण किया? स्थविर ने चुपचाप भोजन समाप्त कर विहार जा शाम को उसके सेवा मे आने पर कहा—आयुष्मान अमुक गाँव मे अमुक परिवार मे स्थविर के लिए यह चाहिए कह तुम खा गये। मुँह से माँगना अनुचित है। फिर ऐसा अनाचार न करना।। इससे उसके मन मे स्थविर के प्रति वैर बढ गया। उसने सोचा, कल इसने केवल पानी के लिए मेरे साथ झगडा किया आज इसके सेवको के घर जो मैंने एक मुट्ठी भात खा लिया उसे न सह सकने के कारण फिर झगडा करता है। देखूँगा इसके साथ क्या करना चाहिए अगले दिन जब स्थविर भिक्षाटन के लिए गये, उसने मुग्दर ले काम मे आने वाले बर्तनो को तोड फोड दिया। और पर्णकुटी मे आग लगा कर भाग गया। वह जीते जी मनुष्य-प्रेत हो सूख गया और मरने पर अवीची नरक मे पैदा हुआ। उसका अनाचार जनता मे प्रकट हो गया। कुछ भिक्षु राजगृह से श्रावस्ती आये। उन्होने अनुकूल स्थान पर अपना पात्र चीवर सभाल कर रखा, और शास्ता के समीप जा प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने उनसे कुशल-प्रश्न करके पूछा—कहाँ से आये?

"भन्ते ! राज-गृह से ।"

"वहा उपदेश देने वाला आचार्य कौन है ?"

"भन्ते ? महाकाश्यप स्थविर ।"

"भिक्षुओ ! काश्यप सकुशल है ?"

"हाँ भन्ते ! स्थविर तो सुख से है, लेकिन उनका शिष्य उनके उपदेश देने से क्रोधित हो, जिस समय स्थविर भिक्षाटन के लिये गये थे, मुग्दर ले काम के वर्तनो को तोड फोड स्थविर की पर्ण-कुटी मे आग लगा भाग गया ।"

शास्ता ने कहा— भिक्षुओ इस प्रकार के मूर्ख के साथ रहने से काश्यप के लिए अकेले रहना ही अच्छा है । उन्होने धम्म पद की यह गाथा कही —

चर चे नाधिगच्छेय्य सेय्य सदिसमनोत्तनो
एकचरियं दळह कयिरा नित्थ बाले सहायता[1] ॥

[यदि अपने से श्रेष्ठ वा अपने जैसा साथी न मिले तो दृढता पूर्वक अकेला ही रहे । । मूर्ख की सगति अच्छी नही है ।]

यह कह उन भिक्षुओ को फिर सम्बोधन कर भगवान बोले

"भिक्षुओ न केवल अभी यह कुटी को नष्ट करने वाला है पहले भी यह कुटी को नष्ट करने वाला ही रहा है । न केवल अभी यह उपदेश देने वाले पर क्रोधित होता है पहले भी क्रोधितहुआ ही है ।" फिर उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बये की योनि मे पैदा हुए । बडे होने पर अपने लिये वर्षा से सुरक्षित सुन्दर घोसला बना, हिमालय प्रदेश मे रहने लगे । एक दिन मूसलाधार वर्षा के समय सर्दी से ठिठुरता हुआ दांत कटकटाता हुआ एक बन्दर बोधिसत्व के पास आ बैठा । बोधिसत्व ने उसे कष्ट पाते देख, उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही —

---

१ बाल वग्गा (२)

मनुस्ससेव ते सीस हत्थपादा च वानर,
अथ केन नु वण्णेन अगार ते न विज्जति ।।

[हे वानर! तेरा सिर भी मनुष्य के समान है और तेरे हाथ पांव भी। तो फिर क्या कारण है कि तुझे घर नहीं है ?]

इसे सुन बन्दर ने दूसरी गाथा कही —

मनुस्ससेव मे सीस हत्थपादा च सिंगिल,
याहु सेट्ठा मनुस्सेसु सा मे पञ्ञा न विज्जति ।।

[हे बये! मेरा सिर मनुष्य का ही है और हाथ पाँव भी। लेकिन मनुष्यो मे जो श्रेष्ठ कहलाती है वह प्रज्ञा मेरे पास नही है।]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कही —

अनवट्ठितचित्तस्स लहुचित्तस्स दुब्भिनो,
निच्च अध्धुवसीलस्स सुचिभावो न विज्जति।।
सो करस्सानुभाव वीतिवत्तस्सु सीलिय;
सीतवातपरित्ताण करस्सु कुटिकं कपि ।।

[जो अस्थिर-चित्त है, जो हलके चित्त का है, जो मित्रद्रोही है तथा जिसका शील स्थिर नही है उसे सुख नही होता। इसलिये हे कपि! तू दुश्शीलता को त्याग कर (कुछ) उपाय कर और एक घर बना, जो शीत-वात से रक्षा कर सके।]

बन्दर ने सोचा यह स्वय वर्षा से सुरक्षित स्थान मे बैठा होने के कारण मेरा परिहास करता है। इसे इस घोसले मे न बैठने दूंगा। वह बोधिसत्व को पकडने के लिये कूदा। बोधिसत्व उडकर अन्यत्र चले गये। बन्दर ने घोसले को नष्ट कर चूर्ण-विचूर्ण कर दिया और चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर (यह) कुटी जलाने वाला था। बया तो मैं ही था।

३२२. दद्दभ जातक

"दद्दभायति भद्दन्ते " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक तैर्थिक के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

तैर्थिक जेतवन के पास जहाँ तहाँ काँटो पर सोते थे, पचाग्नि ताप तपते थे तथा अन्य नाना प्रकार के मिथ्या तप करते थे । बहुत से भिक्षुओ ने श्रावस्ती मे भिक्षाटन कर जेतवन आते समय रास्ते मे उन्हे देखा । उन्होने शास्ता के पास जाकर पूछा—भन्ते ! इन अन्य सम्प्रदायो के श्रमण ब्राह्मणो के व्रतो मे सार है ? शास्ता ने उत्तर दिया—उनके व्रतो मे सार या विशेषता नही है, उन्हे कसौटी पर कसने पर या परीक्षा करने पर गोबर की पहाडी पर खरगोश की चिल्लाहट के समान ठहरते हैं । "भन्ते ! हम इसका चिल्लाहट जैसा होना नही जानते है, हमे कहे ।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने अतीत कथा कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व शेर की योनि मे पैदा हुए । बडे होने पर जगल मे रहते थे । उस समय पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड का बन था । वहाँ एक खरगोश बेल वृक्ष की जड मे एक ताड के गाछ के नीचे रहता था ।

एक दिन वह शिकार लेकर आया और ताड की छाया मे लेट रहा । उसने पडे-पडे सोचा यदि यह महान पृथ्वी उल्टे तो मैं कहाँ जाऊंगा ? उसी समय एक पका हुआ बेल ताड के पत्ते पर गिरा । उसने उसकी आवाज सुन समझा कि पृथ्वी उलट रही है और बिना पीछे देखे भागा । मरने के डर के मारे तेजी से भागते हुये उसे देख दूसरे खरगोश ने पूछा—भो ! क्या बात है, अत्यन्त डरकर भाग रहे हो ? "भो ! मत पूछ ।" क्या डर की बात है, पूछता हुआ वह भी पीछे दौडने लगा । दूसरे ने रुककर बिना देखे ही कहा—यहाँ पृथ्वी उलट रही है । वह भी उसके पीछे भागा । इस प्रकार उसे दूसरे ने

३२२. दद्दभ जातक

"दद्दभायति भद्दन्ते " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक तैर्थिक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

तैर्थिक जेतवन के पास जहाँ तहाँ काँटो पर सोते थे, पचाग्नि ताप तपते थे तथा अन्य नाना प्रकार के मिथ्या तप करते थे। बहुत से भिक्षुओ ने श्रावस्ती मे भिक्षाटन कर जेतवन आते समय रास्ते मे उन्हे देखा। उन्होने शास्ता के पास जाकर पूछा—भन्ते ! इन अन्य सम्प्रदायो के श्रमण ब्राह्मणो के व्रतो मे सार है ? शास्ता ने उत्तर दिया—उनके व्रतो मे सार या विशेषता नही है, उन्हे कसौटी पर कसने पर या परीक्षा करने पर गोबर की पहाडी पर खरगोश की चिल्लाहट के समान ठहरते हैं। "भन्ते ! हम इसका चिल्लाहट जैसा होना नही जानते हैं, हमे कहे।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने अतीत कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व शेर की योनि मे पैदा हुए। बडे होने पर जगल मे रहते थे। उस समय पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड का बन था। वहाँ एक खरगोश बेल वृक्ष की जड मे एक ताड के गाछ के नीचे रहता था।

एक दिन वह शिकार लेकर आया और ताड की छाया मे लेट रहा। उसने पडे-पडे सोचा यदि यह महान पृथ्वी उल्टे तो मैं कहाँ जाऊंगा ? उसी समय एक पका हुआ बेल ताड के पत्ते पर गिरा। उसने उसकी आवाज सुन समझा कि पृथ्वी उलट रही है और विना पीछे देखे भागा। मरने के डर के मारे तेजी से भागते हुये उसे देख दूसरे खरगोश ने पूछा—भो ! क्या बात है, अत्यन्त डरकर भाग रहे हो ? "भो ! मत पूछ।" क्या डर की बात है, पूछता हुआ वह भी पीछे दौडने लगा। दूसरे ने रुककर विना देखे ही कहा—यहाँ पृथ्वी उलट रही है। वह भी उसके पीछे भागा। इस प्रकार उसे दूसरे ने

देखा और फिर तीसरे ने और एक हजार खरगोश इकट्ठे होकर भागने लगे।

एक मृग भी उन्हे देख उनके पीछे भागा। एक सुअर, एक नील गाय, एक भैस, एक बैल, एक गैडा, एक व्याघ्र, एक सिह तथा एक हाथी भी उन्हे देख, यह क्या है ?' पूछ 'यहाँ पृथ्वी पलटती है' बताये जाने पर भागा। इस प्रकार क्रमश योजन भर की पशु-सेना हो गई।

तब बोधिसत्व ने उस सेना को भागते देख पूछा—यह क्या है ? जब उसने सुना यहाँ पृथ्वी उलटती है तो सोचा पृथ्वी उलटना कभी नही होता। नि सशय इन्होने कुछ देखा होगा। यदि मैं कुछ प्रयत्न न करूँगा तो यह सब नष्ट हो जायेंगे। मैं इन्हे जीवनदान दूंगा। उसने सिहवेग से आगे पहुँच पर्वत के दामन मे खडे हो तीन बार सिह-नाद किया। सिह-भय से भयभीत वे रुक कर इकट्ठे हो खडे हो गये।

सिह ने उनके बीच मे जा पूछा—क्यो भाग रहे हो ?

"पृथ्वी उलट रही है।"

"पृथ्वी को उलटते किसने देखा ?"

"हाथी जानते है।"

हाथियो से पूछा। वे बोले—हम नही जानते, सिह जानते हैं। सिह भी बोले—हम नही जानते, व्याघ्र जानते हैं। व्याघ्र भी—हम नही जानते, गैडे जानते हैं। गैडे भी—हम नही जानते, बैल जानते है। बैल भी—हम नही जानते, भैसे जानते हैं। भैसे भी—हम नही जानते, नीलगायें जानती हैं। नीलगायें भी—हम नही जानती, सुअर जानते हैं। सुअर भी हम नही जानते, मृग जानते हैं। मृग भी—हम नही जानते, खरगोश जानते हैं। खरगोशो से पूछने पर उन्होने वह खरगोश दिखाकर कहा—यह कहता है।

तब उसे पूछा—सौम्य ! क्या तूने ऐसा देखा कि पृथ्वी उलट रही है ?

"स्वामी ! हाँ मैंने देखा।"

"कहाँ रहते हुये देखा ?"

"पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड के बन मे रहता हूँ। मैंने वहाँ बेल-वृक्ष की जड मे, ताड-वृक्ष के ताड-पत्र की छाया मे लेटे-लेटे सोचा था,

पृथ्वी उलटी तो मैं कहाँ जाऊँगा ? उसी क्षण पृथ्वी के उलटने का शब्द सुन कर मैं भागा हूँ।"

सिंह ने सोचा, निश्चय से उस ताड-पत्र पर पका बेल गिरने से 'धव' शब्द हुआ होगा। उसी शब्द को सुन कर यह पृथ्वी पलट रही है समझ भागा होगा। मैं यथार्थ बात जानूँगा। उसने उस खरगोश को ले जनता को आश्वासन दिया—मैं जहाँ इसने देखा वहाँ पृथ्वी का उलटना वा न उलटना यथार्थ रूप से जानकर आऊँगा। जब तक मैं आऊँ तब तक तुम यहीं रहो।

उसने खरगोश को पीठ पर चढाया और सिंह-वेग से छलांग मार उसे ताड़-वन मे उतार कर कहा—आ, अपनी देखी जगह दिखा।

"स्वामी! साहस नही होता।"

"आ, डर मत।"

उसने बेल-वृक्ष के पास न जा सकने के कारण कुछ दूर पर ही खडे हो "स्वामी! यह 'धव' आवाज होने का स्थान है" कहते हुए पहली गाथा कही—

> दद्दभायति भद्दन्ते यस्मि वेले वसामहं,
> अहम्पेतं न जानामि किमेत दद्दभायति॥

[तुम्हारा भला हो, जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ 'धव' शब्द होता है। मैं भी नहीं जानता हूँ कि यह क्या है जो 'धव' आवाज करता है।]

ऐसा करने पर सिंह ने बेल-वृक्ष के नीचे जा ताड-वृक्ष के नीचे खरगोश के लेटे रहने की जगह और ताड के पत्ते पर गिरा हुआ पका बेल देखकर पृथ्वी के न पलटने की बात यथार्थ रूप से जानी। वह खरगोश को पीठ पर बिठा सिंह-वेग से पशुओ के संघ मे पहुँचा। और पशु समूह को आश्वासन दिया कि डरें नही। तब सिंह ने सब को विदा किया। यदि तब बोधिसत्व न होते तो सभी समुद्र मे गिरकर नष्ट हो जाते। बोधिसत्व के कारण सब के प्राण बचे।

ये तीन सम्बुद्ध गाथायें हैं —

> बेलुवं पतितं सुत्वा दद्दभति ससो जवि,
> ससस्स वचनं सुत्वा सन्तत्ता मिगवाहिनी॥

अप्पत्वा पदविञ्जाणं परघोसानुसारिनो,
पमादपरमावाला ते होन्ति परपत्तिया ॥
ये च सीलेन सम्पन्ना पञ्ञायुपसमे रता,
आरता विरता धीरा न होन्ति परपत्तिया ॥

[बेल के गिरने की 'धब' आवाज को सुनकर खरगोश भागा। खरगोश की बात सुन पशु-समूह त्रस्त हुआ। दूसरो की बात सुन वैसा ही करने वाले स्वय ज्ञान न प्राप्त कर, दूसरो का ही विश्वास करने वाले पर प्रमादी होते है। जो सदाचारी है, जो प्रज्ञा द्वारा (चित्ताग्नि को) शान्त करने मे रत है, जो (पाप कर्मो से) दूर है, जो विरत हैं, वे वीर-जन दूसरो का अन्धानुकरण करने वाले नही होते ॥ ३ ॥]

इसी से कहा गया है —

अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो,
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसी[1] ॥

[जो (अन्धी) श्रद्धा से रहित है, जो अकृत का ज्ञाता है, जो (जन्म मरण रूपी) सन्धि का छेद कर चुका है, जिसने (दुष्कर्म के अवकाश को नष्ट कर दिया, जिसकी सब आशायें जाती रही वही उत्तम पुरुष है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय सिंह मैं ही था।

३२३ ब्रह्मदत्त जातक

"द्वय याचनको राज" यह शास्ता ने आळवी के पास अग्गाळव चैत्य मे विहार करते समय कुटी बनाने के नियम के बारे मे कही।

---

१ धम्म-पद, अरहन्तवग्गो।

क. वर्तमान कथा

कथा ऊपर मणकण्ठ जातक[2] मे आ ही गई है। इस कथा में भगवान ने पूछा—भिक्षुओ! क्या तुम सचमुच अत्यधिक याचना करते, अत्यधिक माँगा करते हो? 'भन्ते! हाँ' कहने पर भगवान ने उन भिक्षुओ की निन्दा की और बोले—भिक्षुओ, पुराने पण्डितो मे राजा के मागने का आग्रह करने पर भी पत्तो की छतरी और एक तले का जूती-जोडा माँगने की इच्छा रहने पर भी लज्जाभय के कारण जनता के सामने न माग, एकान्त मे ही माँगा। इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कम्पिल राष्ट्र मे उत्तर-पञ्चाल नगर मे पाञ्चाल-राज के राज्य करते समय बोधिसत्व एक निगम-ग्राम मे ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न हुये। बडे होने पर तक्षशिला जा, सब शिल्प सीखे। फिर तपस्वी प्रव्रज्या ले हिमालय मे फल-मूल चुगकर खाते हुए जीवनयापन करने लगे। चिर काल तक हिमालय मे रह नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती की ओर आ उत्तर पञ्चाल-नगर मे पहुँचे। वहाँ राजोद्यान मे ठहर, अगले दिन भिक्षार्थ नगर मे जाकर वापिस उद्यान मे लौटे।

राजा ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, उसे महान् तल्ले पर बिठा राज-भोजन खिलवाया। फिर प्रतिज्ञा ले राजोद्यान मे ही बसाया। उसने नित्य राजा के यहाँ ही भोजन करते हुये वर्षाकाल की समाप्ति पर हिमालय लौटना चाहा। उसकी इच्छा हुई कि रास्ता चलते समय उसके पास एक तले का जूता और एक पत्तो का छाता होना चाहिये। उसने सोचा—राजा से मागूँगा। एक दिन राजा उद्यान मे आकर प्रणाम करके बैठा। उसे देख सोचा, जूता और छाता मागूँगा। फिर सोचा—दूसरे से 'यह दो' (मागने वाला) माँगते समय रोता है, दूसरा भी 'नही है' कहता हुआ रोता है। जनता

---

२ मणिकण्ठ जातक (२५३)।

मुझे और राजा को रोता हुआ न देखे । एकान्त मे छिपे हुये स्थान पर दोनो रोकर चुप हो जायेंगे ।

उसने राजा से कहा—महाराज ! एकान्त चाहिये । राजा ने सुना तो राज-पुरुषो को दूर हटा दिया । बोधिसत्व ने सोचा—यदि मेरे याचना करने पर राजा ने न दिया तो हमारी मैत्री टूटेगी । इसलिये नही मांगूंगा । उस दिन नाम न ले सकने के कारण कहा—महाराज ! जाये फिर किसी दिन देखूंगा ।

फिर एक दिन राजा के उद्यान आने पर उसी तरह, और फिर उसी तरह, इस प्रकार याचना न करते हुए ही बारह वर्ष बीत गये । तब राजा ने सोचा—आर्य ! मुझसे एकान्त चाहते हैं । लेकिन परिषद के चले जाने पर कुछ नही कह सकते । कहने की इच्छा रक्खे ही रक्खे बारह वर्ष बीत गये । इन्हे ब्रह्मचारी अवस्था मे रहते चिरकाल बीत गया । मालम होता है उद्विग्न-चित्त हो भोग भोगने की इच्छा से राज चाहते है । लेकिन राज्य का नाम न ले सकने के कारण चुप हो जाते हैं । आज मैं इन्हे राज्य से लेकर जो चाहेंगे सो दूँगा ।

उसने उद्यान मे जा, प्रणाम कर, बैठने पर, जब बोधिसत्व ने एकान्त चाहा तब लोगो के चले जाने पर, बोधिसत्व के कुछ भी न कह सकने पर कहा—तुम बारह वर्ष से 'एकान्त चाहिये' कह एकान्त मिलने पर कुछ भी नही कह सकते । मैं राज्य से लेकर सब कुछ देने को तैयार हूँ । जो इच्छा हो, वह निर्भय होकर माँगें ।

"महाराज ! जो मैं मांगूंगा, वह देंगे ?"

"भन्ते ! दूंगा ।"

"महाराज ! मुझे रास्ता चलते समय एक तलेवाला एक जोडा जूता और एक पत्तो का छाता चाहिये ।"

"भन्ते ! बारह वर्ष तक आप यह न माँग सके ?"

"महाराज ! हाँ ।"

"भन्ते ! ऐसा क्यो किया ?"

"महाराज ! जो 'यह मुझे दो' कह कर माँगता है, वह रोता है, जो 'नही है,' कहता है, वह रोता है । यदि तुम मेरे मागने पर न दो तो हम दोनो का रोना जनता न देखे, इसीलिये एकान्त चाहता रहा ।"

यह कह आरम्भ से तीन गाथाये कही—

> द्वय याचनको राज ब्रह्मदत्त निगच्छति,
> अलाभ धनलाभ वा एव धम्मा हि याचना।
> याचन रोदन आहु पञ्चालान रथेसभ,
> यो याचनं पच्चक्खाति तमाहु पटिरोदन ॥
> मा मद्दसु रोदन्त पञ्चाला सुसमागता,
> तुव वा पटिरोदन्त तस्मा इच्छामह रहो ॥

[हे ब्रह्मदत्त राजन्! मागने वाले की दो हो गतियाँ होती हैं—धन-प्राप्ति अथवा अप्राप्ति। याचना का यही धर्म है ॥१॥ हे पञ्चालेश्वर! माँगना रुदन कहलाता है और जो मागने पर न देना है वह प्रतिरुदन कहलाता है ॥२॥ इसलिये मैं एकान्त चाहता रहा जिसमे यहाँ इकट्ठे हुये पञ्चाल मेरा रुदन और तेरा प्रतिरुदन न देख सकें ॥३॥]

राजा ने बोधिसत्व के आत्म-गौरव के भाव पर प्रसन्न हो, वर देते हुये चौथी गाथा कही —

> ददामि ते ब्राह्मण रोहिणीन
> गव सहस्सं सह पुङ्गवेन,
> अरियो हि अरियस्स कथ न दज्जे,
> सुत्वान गाथा तव धम्मयुत्ता ॥

[ब्राह्मण! मैं तुझे बैलो सहित हजार लाल गौवें देता हूँ। तुम्हारी धर्म-युक्त गाथाओ को सुनकर एक (आर्य) दूसरे (आर्य) को कैसे न देवे?]

'महाराज! मुझे वस्तुओ की इच्छा नही है। जो मैं चाहता हूँ तुझे वही दे दें।' एक तले का जूता और पत्तो का छाता ले उन्होने राजा को उपदेश दिया—महाराज! प्रमाद रहित रहे। दान दें। शील की रक्षा करें। उपोसथ-कर्म करें। फिर, राजा ठहरने का आग्रह ही करता रह गया, वे हिमालय चले गये। वहाँ अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३२४ चम्मसाटक जातक

"कल्याणरूपो वतय " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक चम्मसाटक नामक परिव्राजक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चमड़ा ही उसका पहनना-ओढना होता था। वह एक दिन परिव्राजकाराम से निकलकर भिक्षाटन करता हुआ मेढो के लडने की जगह पहुँचा। मेढा उसे देख टक्कर मारने के लिये पीछे हटा। परिव्राजक ने सोचा यह मेरे प्रति गौरव प्रकट कर रहा है। वह न हटा। मेढे ने जोर से आ उसकी जाँघ मे टक्कर मार गिरा दिया। उसका इस प्रकार चण्ड के पास जाना भिक्षु-सघ मे प्रसिद्ध हो गया। भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! चर्म-साटक परिव्राजक चण्ड के पास जाने से विनाश को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, केवल अभी नही, यह पहले भी चण्ड के पास जाकर विनाश को प्राप्त हो चुका है।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक व्यापारी-कुल मे पैदा हो व्यापार करते थे। उस समय चम्मसाटक परि-व्राजक वाराणसी मे भिक्षाटन करता हुआ मेढो के युद्ध करने की जगह पहुँचा। जब उसने मेढे को पीछे हटता देखा तो समझा मेरे प्रति गौरव प्रदर्शित करता है। वह पीछे नही हटा। उसने सोचा इतने मनुष्यो मे यह

मेढा ही मेरे गुणो से परिचित है। उसने हाथ जोडे खडे ही खडे पहली गाथा कही—

कल्याणरूपो वतयं चतुप्पदो,
सुभद्दको चेव सुपेसलो च,
यो ब्राह्मण जातिमन्तुपपन्न,
अपचायति मेण्डवरो यसस्सी ॥

[जो यह यशस्वी मेढा जाति मन्त्रयुक्त ब्राह्मण के प्रति गौरव प्रदर्शित करता है, वह यह चतुष्पाद सुन्दर है, भद्र है, प्रियकर है।]

उस समय दुकान पर बैठे हुये पडित-व्यापारी ने उस परिव्राजक को मना करते हुए दूसरी गाथा कही—

मा ब्राह्मण इत्तरदस्सनेन,
विस्सासमापज्जि चतुप्पदस्स,
दळ्हप्पहार अभिकङ्खमानो,
अपसक्कति दस्सति सुप्पहारं ॥

[ब्राह्मण! क्षण-मात्र के दर्शन से चौपाये का विश्वास मत कर। यह जोर की चोट मारने के लिये पीछे हटा है। यह जोर की चोट करेगा।]

उस पण्डित-व्यापारी के कहते ही समय मेढे ने जोर से आकर जाँघ पर चोट कर उसे वही गिरा दिया। वह वेदनामय हो गया। और पडा-पडा चिल्लाता था।

शास्ता ने उस बात को प्रकट करते हुये तीसरी गाथा कही—

ऊरट्ठि भाग पतितो खारिभारो,
सब्ब भण्ड ब्राह्मणस्सेव भिन्न।
उभोपि बाहा पग्गय्ह कन्दति,
अभिधावथ हञ्जति ब्रह्मचारि ॥

[जाँघ की हड्डी टूट गई। खारि-भार गिर पडा। ब्राह्मण के सभी भाण्डे टूठ गये। अब दोनो बाहेँ पकड कर रोता है—दौडो, ब्रह्मचारि मारा जाता है।]

परिव्राजक ने चौथी गाथा कही —

एव सो निहतो सेति यो अपूजं पसंसति,
यथाहमज्ज पहतो हतो मेण्डेन दुम्मति ॥

[जो अपूज्य की प्रशसा करता है वह इसी तरह मारा जाता है जैसे मैं मूर्ख उस मेढे द्वारा चोट खा गया ।

वह रोता-पीटता वही मर गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय का चम्मसाटक अब का चम्मसाटक ही था । पण्डित व्यापारी तो मैं ही था ।

३२५ गोध जातक

"समण त मञ्ञमानो " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय ढोंगी भिक्षु के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

कथा पहले आ ही गई है । यहाँ भी उस भिक्षु को शास्ता के सामने लाकर भिक्षुओ ने कहा—भन्ते ! यह भिक्षु ढोंगी है । शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी यह ढोंगी ही रहा है' कह पूर्वजन्म की कथा कही ।

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गोह की योनि मे पैदा हुए । बडी आयु तथा शरीर के होने पर जङ्गल मे रहने लगे ।

एक दुराचारी तपस्वी उससे कुछ ही दूर पर्ण-कुटी बना रहता था । बोधिसत्व ने शिकार खोजते हुए उसे देख समझा सदाचारी तपस्वी की पर्ण-कुटी होगी । वहाँ जा तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान पर गये ।

एक दिन उस कुटिल तपस्वी को सेवकों के घर पका मधुर मास मिला। पूछा—यह क्या मास है ? यह सुन कर कि गोह का माँस है, रस-तृष्णा से अभिभूत होने के कारण उसने सोचा कि जो गोह मेरे आश्रम पर नित्य आती है उसे मार कर यथारुचि पका कर खाऊँगा। घी, दही और मसाले आदि ले वहाँ जा काषाय-वस्त्र से मुँगरी को ढक, पर्ण-कुटी के दरवाजे पर बोधिसत्व की प्रतीक्षा करता हुआ शान्त, दान्त की तरह बैठा।

गोह ने आकर उसकी द्वेष-भरी शक्ल देख, सोचा इसने हमारी जाति के किसी का माँस खाया होगा। मैं इसकी जाँच करती हूँ। उसने जिधर हवा जा रही थी उधर खड़े होकर शरीर की गन्ध सूँघी। उसे पता लग गया कि उसकी जाति के किसी का मास खाया गया है। वह तपस्वी के पास आकर लौट गई। तपस्वी ने भी उसे न आते देख मुँगरी फेंकी। मुँगरी शरीर पर न लग, पूँछ के सिरे पर लगी। तपस्वी बोला, जा मैं चूक गया। बोधिसत्व ने उत्तर दिया, मुझे तो चूक गया लेकिन चार अपायों को नहीं चूकेगा। उसने भाग कर चङ्क्रमण के सिरे पर स्थित, बिल में घुस दूसरे छिद्र से सिर निकाल कर उससे बात करते हुये दो गाथाएँ कहीं—

समणं तं मञ्ञमानो उपगञ्छि असञ्ञतं।
सो मं दण्डेन पाहासि यथा अस्समणो तथा॥
किन्ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरं ते गहणं बाहिरं परिमज्जसि॥

[तुझे श्रमण समझ कर (तुझ) असयत के पास आयी। जैसे कोई अश्रमण मारे वैसे ही तूने मुझे डण्डे से मारा। हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ ?) और मृगचर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तू मैला है, बाहर से धोता है।]

इसे सुन तपस्वी ने तीसरी गाथा कही—

एहि गोध निवत्तस्सु भुञ्ज सालीनमोदनं
तेलं लोणञ्च मे अत्थि पहूतं मय्हं पिप्फली।

[हे गोह ? आ रुक, शाली धान का भात खा। मेरे पास तेल है, नमक है (और हींग, जीरा, अदरक, मिरच तथा) पिप्फली आदि मसाले भी बहुत हैं।]

इसे सुन बोधिसत्व ने चौथी गाथा कही—

एस भीय्यो पवेक्खामि वम्मिकं सतपोरिसं,
तेलं लोणञ्च कित्तेसि अहितं मय्ह पिप्फली ॥

[इस सौ पोरसे के बिल मे फिर प्रवेश करूँगी। तू तेल और नमक की बडाई करता है। पिप्फली मेरे अनुकूल नही पडती।]

ऐसा कह कर फिर उस कुटिल तपस्वी को डराया—अरे कुटिल जटिल! यदि यहाँ रहेगा तो आस पास के मनुष्यो द्वारा 'यह चोर है' कह पकडवा, अपमानित कराऊँगी। शीघ्र भाग जा! कुटिल जटिल वही से भाग गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय कुटिल जटिल तो यह ढोगी भिक्षु ही था। गोह-राजा तो मैं ही था।

३२६. कक्कारु जातक

"कायेन यो नावहरे " वह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसके सघ मे फूट डालकर अग्र-श्रावको तथा परिषद के साथ चले जाने पर मुँह से गर्म खून गिरा। भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बात चलाई—आयुष्मानो! देवदत्त ने झूठ बोलकर सघ मे फूट डाली। अब रोगी होकर महान दु ख भोग रहा है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो! 'अमुक बातचीत' कहने पर 'न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी यह मृषावादी ही था, न केवल अभी मृषावाद के कारण यह दु ख भोगता है, पहले भी भोगा ही है' कह शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व त्रयोत्रिंश-भवन मे एक देव-पुत्र हुए। उस समय वाराणसी मे महोत्सव था। बहुत से नाग, गरुड और भुम्मट्ठक देवताओ ने आकर उत्सव देखा। त्रयोत्रिंश भवन से भी चारो देवपुत्र कक्कारु नाम के दिव्य पुष्पो से बने गजरे पहन उत्सव देखने आये। बारह योजन का नगर उन फूलो की सुगन्ध से महक गया। मनुष्य सोचते थे—इन पुष्पो को किसने पहना है ? उन देवपुत्रो ने जब देखा कि लोग हमे खोज रहे हैं तो वे राजाङ्गण मे ऊपर उठ महान् देवता-प्रताप से आकाश मे स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा, सेट्ठी तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे।

लोगो ने पूछा—स्वामी! किस देवलोक से आना हुआ ?

"त्रयस्त्रिंश देवलोक से आये हैं।"

"किस कार्य्य से आये हैं ?"

"उत्सव देखने के लिये।"

"इन फूलो का क्या नाम है ?"

"यह दिव्य-कक्कारु पुष्प हैं।"

"स्वामी! आप दिव्यलोक मे दूसरे पहन लें। यह हमे दे दें।"

"यह दिव्य-पुष्प बडे प्रताप वाले हैं। देवताओ के ही योग्य है। मनुष्य-लोक मे रहने वाले खराब, मूर्ख, तुच्छ-विचार वाले, दुश्चरित्र लोगो के योग्य नही। लेकिन जिन लोगो मे यह गुण हो उनके योग्य है।"

इतना कह, उनमे जो ज्येष्ठ, देवपुत्र था, उसने यह पहली गाथा कही —

> कायेन यो नावहरे वाचाय न मुसाभणे,
> यसो लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति ॥

[जो काय से किसी की कोई चीज हरण न करे, वाणी से झूठ न बोले तथा ऐश्वर्य्य मिलने पर प्रमादी न हो, वही कक्कारु के योग्य है।]

इसलिये जो इन गुणो से युक्त हो, मागे, दे देंगे।

यह सुन पुरोहित ने सोचा, यद्यपि मुझमे इन गुणो मे से एक भी गुण नही है, तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले पहनूं। इससे जनता मुझे इन गुणो से युक्त समझेगी। 'मैं इन गुणो से युक्त हू' कह उसने वे पुष्प मँगवा कर पहने। तब उसने दूसरे देवपुत्र से याचना की—

धम्मेन वित्तमेसेय्य न निकत्या धन हरे,
भोगे लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति॥

[जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और भोग्य-वस्तुओ के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पाने के योग्य है।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणो से युक्त हूँ' कह मँगवा, पहन कर, तीसरे देव-पुत्र से याचना की। वह तीसरी गाथा बोला—

यस्स चित्त अहाळिद्द सद्धा च अविरागिनी,
एको सादु न भुञ्जेय्य सवे कक्कारुमरहति॥

[जिन का चित्त हल्दी की तरह नही अर्थात् स्थिर प्रेम वाला है और जिसकी श्रद्धा दृढ है और जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेला नही खाता वही कक्कारु के योग्य है।]

पुरोहित ने "मैं इन गुणो से युक्त हूँ" कह उन फूलो को मगवा, पहन कर, चौथे देव-पुत्र से याचना की। उसने चौथी गाथा कही—

सम्मुखा वा तिरोक्खा वा यो सन्ते न परिभासति,
यथावादी तथाकारी सवे कक्कारुमरहति॥

[जो न सामने और न अनुपस्थिति मे ही सन्त-जनो की हँसी उडाता है, जो जैसा कहता है वैसा ही करता है वह कक्कारु के योग्य है।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणो से युक्त हूँ" कह उन्हे भी मगवा कर पहना।

चारो देव-पुत्र चारो गजरे पुरोहित को ही देकर देव-लोक गये। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर मे बडा दर्द हुआ। ऐसा लगता था जैसे तेज धार से काटा जाता हो वा लोहे के पट्टे से रगडा जाता हो। वह दुख से पीडित हो इधर-उधर लोटता हुआ जोर से चिल्लाया। क्या बात है? पूछने पर बोला —

"मैंने अपने मे जो गुण नही हैं उनके बारे मे झूठ ही हैं कह कर उन देव-पुत्रो से ये पुष्प मागे। इन्हे मेरे सिर पर से ले जाओ।"

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व त्रयोत्रिंश-भवन मे एक देव-पुत्र हुए। उस समय वाराणसी मे महोत्सव था। बहुत से नाग, गरुड और भुम्मट्ठक देवताओ ने आकर उत्सव देखा। त्रयोत्रिंश भवन से भी चारो देवपुत्र कक्कारु नाम के दिव्य पुष्पो से बने गजरे पहन उत्सव देखने आये। बारह योजन का नगर उन फूलो की सुगन्ध से महक गया। मनुष्य सोचते थे—इन पुष्पो को किसने पहना है? उन देवपुत्रो ने जब देखा कि लोग हमे खोज रहे हैं तो वे राजाङ्गण मे ऊपर उठ महान् देवता-प्रताप से आकाश मे स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा, सेट्ठी तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे।

लोगो ने पूछा—स्वामी! किस देवलोक से आना हुआ?

'त्रयस्त्रिंश देवलोक से आये हैं।"

"किस कार्य्य से आये हैं?"

"उत्सव देखने के लिये।"

"इन फूलो का क्या नाम है?"

"यह दिव्य-कक्कारु पुष्प हैं।"

"स्वामी! आप दिव्यलोक मे दूसरे पहन लें। यह हमे दे दें।"

"यह दिव्य-पुष्प बडे प्रताप वाले है। देवताओ के ही योग्य हैं। मनुष्य-लोक मे रहने वाले खराब, मूर्ख, तुच्छ-विचार वाले, दुश्चरित्र लोगो के योग्य नही। लेकिन जिन लोगो मे यह गुण हो उनके योग्य है।"

इतना कह, उनमे जो ज्येष्ठ, देवपुत्र था, उसने यह पहली गाथा कही —

> कायेन यो नावहरे वाचाय न मुसाभणे,
> यसो लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति ॥

[जो काय से किसी की कोई चीज हरण न करे, वाणी से झूठ न बोले तथा ऐश्वर्य्य मिलने पर प्रमादी न हो, वही कक्कारु के योग्य है।]

इसलिये जो इन गुणो से युक्त हो, मागे, दे देंगे।

यह सुन पुरोहित ने सोचा, यद्यपि मुझमे इन गुणो मे से एक भी गुण नही है, तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले पहनूं। इससे जनता मुझे इन गुणो से युक्त समझेगी। 'मैं इन गुणो से युक्त हू' कह उसने वे पुष्प मँगवा कर पहने। तब उसने दूसरे देवपुत्र से याचना की—

धम्मेन वित्तमेसेय्य न निकत्या धन हरे,
भोगे लद्धा न मज्जेय्य स वे कक्कारुमरहति॥

[जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और भोग्य-वस्तुओं के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पाने के योग्य है।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणो से युक्त हूँ' कह मँगवा, पहन कर, तीसरे देव-पुत्र से याचना की। वह तीसरी गाथा बोला—

यस्स चित्त अहाळिद्द सद्धा च अविरागिनी,
एको सादु न भुञ्जेय्य सवे कक्कारुमरहति॥

[जिन का चित्त हल्दी की तरह नही अर्थात् स्थिर प्रेम वाला है और जिसकी श्रद्धा दृढ है और जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेला नही खाता वही कक्कारु के योग्य है।]

पुरोहित ने "मैं इन गुणो से युक्त हूँ" कह उन फूलो को मगवा, पहन कर, चौथे देव-पुत्र से याचना की। उसने चौथी गाथा कही—

सम्मुखा वा तिरोक्खा वा यो सन्ते न परिभासति,
यथावादी तथाकारी सवे कक्कारुमरहति॥

[जो न सामने और न अनुपस्थिति मे ही सन्त-जनो की हँसी उड़ाता है, जो जैसा कहता है वैसा ही करता है वह कक्कारु के योग्य है।]

पुरोहित ने 'मैं इन गुणो से युक्त हूँ' कह उन्हे भी मगवा कर पहना।

चारो देव-पुत्र चारो गजरे पुरोहित को ही देकर देव-लोक गये। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर मे बडा दर्द हुआ। ऐसा लगता था जैसे तेज धार से काटा जाता हो वा लोहे के पट्टे से रगडा जाता हो। वह दुःख से पीडित हो इधर-उधर लोटता हुआ जोर से चिल्लाया। क्या बात है? पूछने पर बोला —

"मैंने अपने मे जो गुण नही है उनके बारे मे झूठ ही हैं कह कर उन देव-पुत्रो से ये पुष्प मागे। इन्हे मेरे सिर पर से ले जाओ।"

उन्हे निकालने का प्रयत्न करने पर न निकाल सके। लोहे के पट्टे से जकड़े जैसे हो गये।

उसे उठाकर घर ले गये। उसके वहाँ चिल्लाते हुये सात दिन बीत गये। राजा ने अमात्यो को बुलाकर पूछा—दुश्चरित्र ब्राह्मण मर जायगा, क्या करें?

"देव! फिर उत्सव करायें। देव-पुत्र फिर आयेंगे।"

राजा ने फिर उत्सव कराया। देव-पुत्र फिर आये और सारे नगर को फूलो की सुगन्धि से महकाकर उसी तरह राजाङ्गण मे स्थित हुए।

जनता ने इकट्ठे हो उस दुष्ट ब्राह्मण को ला देवताओ के सामने सीधा पीठ के बल लिटा दिया। उसने देव-पुत्रो मे याचना की—स्वामी मुझे जीवन दान दे।

वे देव-पुत्र बोले—ये-फूल तुझ दुष्ट, दुश्शील पाजी के योग्य नही हैं। तू ने सोचा इन्हे ठगूगा। तुझे अपने झूठ बोलने का फल मिला। इस प्रकार देव-पुत्र जनता के बीच मे उसकी निन्दा कर, सिर से फूलो का गजरा उतार, जनता को उपदेश दे, अपने स्थान पर चले गये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया, उस समय ब्राह्मण देवदत्त था। उन देव-पुत्रो मे एक काश्यप, एक महामोद्गल्यायन, एक सारिपुत्र। ज्येष्ठ देव-पुत्र तो मैं ही था।

३२७. काकाती जातक

"वाति चाय ततो गन्धो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—भिक्षु क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है?

"भन्ते ! सचमुच।"

"किस लिये उद्विग्न-चित्त है ?"

"भन्ते ! राग के कारण ?"

"भिक्षु ! स्त्रियो की रक्षा नही की जा सकती। वे अरक्षणीय होती हैं। पुराने-पण्डितो ने स्त्रियो को समुद्र के बीच मे, सेमर वृक्ष पर बसाकर उनको सुरक्षित रखना चाहा। वे नही रख सके।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुये। बड़े होने पर पिता की मृत्यु के अनन्तर राज्य करने लगे। काकाती नामक उसकी पटरानी थी, सुन्दर देवाप्सरा सदृश। यह यहाँ सक्षिप्त कथा है। विस्तृत अतीत-कथा कुणाल जातक[1] मे आयेगी।

उस समय एक गरुड-राज मनुष्य-भेस मे आया। वह राजा के साथ जुआ खेलता हुआ पटरानी पर अनुरक्त हो उसे गरुड-भवन ले गया। वहाँ उसने उसके साथ रमण किया। राजा को जब देवी नही दिखाई दी तो उसने नटकुबेर नामक गधर्व को उसे खोजने के लिये कहा। उसने पता लगाया कि वह गरुड-राज के पास है और वह एक सरोवर मे एरक-वन मे लेटा है। जिस समय गरुड-राज वहाँ से जाने लगता वह उसके पखो मे से एक मे छिप रहता। इस प्रकार गरुड-भवन पहुँच, वहाँ पख मे से निकल उसके साथ रमण करता। फिर उसके पख मे ही छिप, आकर, जिस समय गरुड-राज राजा के साथ जुआ खेलता तो वह अपनी वीणा ले, जुआ खेलने के स्थान पर राजा के पास खड़ा हो पहली गाथा गाता —

> वाति चाय ततो गन्धो यत्थ मे वसति पिया,
> दूरे इतो हि काकाती यत्थ मे निरतो मनो॥

---

१ कुणाल जातक (५३६)।

[यह सुगन्धि जहाँ मेरी प्रिया रहती है वही से आती है। इस स्थान से दूर जहाँ मेरा मन रत है, वही काकाती रहती है।]

इसे सुन गरुड राज ने दूसरी गाथा कही—

कथ समुद्दमतरि कथं अतरि केबुकं,
कथ सत्त समुद्दानि कथ सिम्बलिमारुहि ॥

[कैसे तो समुद्र पार किया और कैसे केबुक नदी, कैसे सात समुद्र लाघे और कैसे सेमर वृक्ष पर चढा ?]

इसे सुन नट कुबेर ने तीसरी गाथा कही—

तया समुद्दमतरि तया अतरि केबुक,
तया सत्तसमुद्दानि तथा सिम्बलिमारुहि ॥

[तेरे (साहाय्य) से ही समुद्र लाघा तेरे (साहाय्य) से ही केबुक नदी पार की और तेरे से ही सात समुद्र लाघे। तेरे (साहाय्य) से ही सेमर वृक्ष पर चढा।]

तब गरुड-राज ने चौथी गाथा कही—

धिरत्थु म महाकाय धिरत्थु म अचेतनं,
यत्थ जायायहं जार आवहामि वहामि च ॥

[मेरे महान् शरीर को धिक्कार है, मेरी जडता को धिक्कार है जो मैं अपनी पत्नी के जार को उठाकर लाता हूँ और ले जाता हूँ।]

उसने उसे लाकर राजा को दे दिया और फिर नगर मे नही गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बिठाया। सत्यो की समाप्ति पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय नट-कुबेर उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। राजा तो मैं ही था।

३२८. अननुसोचिय जातक

"वहून विज्जति भोति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे मे, जिसकी भार्य्या मर गई थी, कही।

क. वर्तमान कथा

वह भार्य्या के मरने से न नहाता था, न खाता था, न कुछ काम करता था, केवल श्मशान भूमि मे आकर रोता-पीटता घूमता था। लेकिन घडे में प्रदीप की तरह इसके भीतर स्रोतापत्ति-मार्ग का आधार प्रज्वलित था।

शास्ता ने प्रात काल लोक पर दृष्टि डाली तो उसे देख सोचा—मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नही है जो इसका शोक दूर कर उसे स्रोतापत्ति मार्ग दे सके। मैं इसका आधार होऊँगा। वह भिक्षाटन से लौट, भोजनानन्तर सेवक-श्रमण को साथ ले उसके घर गये। गृहस्थ ने जब आना सुना तो उसने स्वागत सत्कार करके विठाया और स्वय आकर एक ओर बैठा। शास्ता ने पूछा —

"उपासक! क्या चिन्तित है?"

"भन्ते! हाँ मेरी भार्य्या मर गई है। उसकी सोच करता हुआ चिन्तित हूँ।"

"उपासक! जिसका धर्म टूटना है वह टूटता ही है। उसके टूटने पर चिन्तित होना अनुचित है। पूर्वकाल मे पण्डित लोगो ने भार्य्या के मरने पर 'जिसका धर्म टूटना है वह टूट गया' सोच चिन्ता नहीं की।"

शास्ता ने उसके प्रार्थना करने पर अतीत-कथा कही। अतीत-कथा दसवें परिच्छेद मे चुल्लबोधि जातक[1] मे आयगी। यह तो यहाँ सक्षेप है —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला मे सब शिल्प सीख

---

१. चुल्लबोधि जातक (५५३)।

माता-पिता के पास लौटे। इस जातक मे बोधिसत्व कुमार-ब्रह्मचारी थे। माता-पिता ने उसे सूचना दी कि हम तेरे लिये भार्य्या खोजते है। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—मुझे गृहस्थी से काम नही। तुम्हारे बाद प्रव्रजित होऊँगा। उनके बार-बार आग्रह करने पर एक स्वर्ण कुमारी बनवाकर कहा—ऐसी मिलेगी तो ग्रहण करूगा।

उसके माता-पिता ने उस स्वर्ण-प्रतिमा को ढकी गाडी मे रखा और अनेक अनुयाइयो के साथ आदमियो को भेजा कि जाओ और जम्बुद्वीप भर मे घूमते हुये जहाँ इस तरह की ब्राह्मण-कुमारी दिखाई दे वहाँ यह प्रतिमा देकर उसे ले आओ। उस समय एक पुण्यवान् प्राणी ब्रह्म लोक से च्युत होकर काशी राष्ट्र मे ही एक निगम-ग्राम मे अस्सी करोड धन वाले ब्राह्मण के घर मे लडकी होकर पैदा हुआ। उसका नाम रक्खा गया सम्मिल-हासिनी।

वह सोलह वर्ष की होने पर सुन्दरी थी, मनोरम, देवाप्सरा सदृश और सभी अङ्गो से सम्पूर्ण। उसके मन मे भी कभी राग उत्पन्न नही हुआ था, अत्यन्त ब्रह्मचारिणी थी। स्वर्ण-मूर्ति लिए घूमने वाले उस गाँव पहुँचे। मनुष्यो ने उस मूर्ति को देखा तो बोल उठे—अमुक ब्राह्मण की लडकी सम्मिल-हासिनी यहाँ किस लिये खडी है?

उन मनुष्यो ने यह बात सुनी तो ब्राह्मण के घर जा सम्मिल-हासिनी को वरा। उसने माता-पिता के पास सन्देश भेजा—मुझे गृहस्थी से काम नही। मैं तुम्हारे मरने पर, प्रव्रजित होऊँगी। "लडकी! क्या कहती है?" कह उन्होने वह स्वर्ण-प्रतिमा ले उसे बडी शान-बान के साथ विदा किया। बोधिसत्व और सम्मिल-हासिनी दोनो की इच्छा न रहते भी विवाह कर दिया गया। उन्होने एक घर मे रहते हुए एक शैय्या पर सोते हुए भी एक दूसरे को रागदृष्टि से नही देखा। वे दो भिक्षुओ, दो ब्राह्मणो की तरह एक जगह रहे।

आगे चलकर बोधिसत्व के माता-पिता काल कर गये। उसने उनका शरीर-कृत्य समाप्त कर सम्मिल-हासिनी को बुलाकर कहा—भद्रे! मेरे कुल का अस्सी करोड और अपने कुल का अस्सी करोड लेकर इस परिवार को पाल। मैं प्रव्रजित ही होऊँगा।"

"आर्यपुत्र! तुम्हारे प्रव्रजित होने पर मैं भी प्रव्रजित होऊँगी। मैं तुम्हे नहीं छोड सकती।"

ये दोनो सारा धन दान कर, सम्पत्ति को थूक की तरह छोड हिमालय चले गये। वहाँ दोनो ने तपस्वी-प्रव्रज्या ली। चिरकाल तक जगल के फलमूल खाते रहकर वे नमक-खटाई खाने के लिए हिमालय मे उतर क्रमश वाराणसी पहुँच राजोद्यान मे रहने लगे।

उनके वहाँ रहते समय सुकुमारी परिव्राजिका को रुखा-सूखा, मिला-जुला भोजन खाने से रक्त-विकार रोग हो गया। उचित औषधि न मिलने से दुर्बल हो गई। बोधिसत्व भिक्षाटन के समय उसे नगर-द्वार तक ले जाते और वहाँ एक शाला मे पटडे पर लिटा स्वय भिक्षा के लिए (नगर मे) प्रवेश करते। वह उनकी अनुपस्थिति मे ही मर गई। जनता परिव्राजिका का सौन्दर्य देख उसे घेर रोने-पीटने लगी। बोधिसत्व भिक्षा से लौटे तो उसे मरा देखा। उन्होने यह सोच कि जिसका स्वभाव टूटना है वह टूटता है, सभी सस्कार अनित्य है और यही इनकी गति है, जिस फट्टे पर वह पडी थी उसी पर बैठ मिला-जुला भोजन खा मुँह धोया। घेर कर खडे लोगो ने पूछा—

"भन्ते! यह परिव्राजिका तुम्हारी कौन होती थी?"

"गृहस्थ रहते यह मेरी चरण-सेविका थी।"

"भन्ते! हम सहन नही कर सकते, रोते है, पीटते हैं—तुम क्यो नही रोते?"

"जीती थी तो यह मेरी कुछ लगती थी, अब परलोक-वासिनी होने से मेरी कुछ नही लगती। जो दूसरो के वश मे चली गई है, उसके लिए मैं क्यो रोऊँ?"

बोधिसत्व ने जनता को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथाएँ कही —

बहून विज्जति भोती तेहि मे किं भविस्सति,
तस्मा एत न सोचामि पिय सम्मिल्लहासिनि ॥१॥
त तञ्चे अनुसोचेय्य य य तस्स न विज्जति,
अत्तानमनुसोचेय्य सदा मच्चुवस पत्त ॥२॥
नहेव ठित नासीन न सयान न पद्धगु,
याव पाति निमिसति तत्रापि सरती वयो ॥३॥
तत्थत्तनि वतप्पद्धे विनाभावे असंसये,
भूत सेस दयितब्ब वीत अननुसोचियं ॥४॥

[वे आप बहुतो के बीच मे है, उनके बीच मे रहती हुई अब मेरी क्या लगती है ? इसीलिये मैं इस प्रिय सम्मिल्ल-हासिनि के बारे मे शोक नही करता हूँ ॥१॥ उसी की सोच करे जो मनुष्य के अपने पास न हो। (यदि मृत्यु के लिए शोक करे) तो सदैव मृत्यु के वश मे अपने आप के ही बारे मे शोक करे ॥२॥ खडे रहने, बैठने, लेटने तथा चलने के समय की तो बात ही क्या आँख खोलने और बन्द करने के समय भी आयु का क्षय होता ही रहता है ॥३॥ जब अपनी आधी आयु पूर्ण होने पर अपना मरण भी सशय-रहित है, तो सभी प्राणियो पर दया करनी चाहिये और जो बीत जाये उनके बारे मे शोक नही करना चाहिये ॥४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चार गाथाओ द्वारा अनित्यता को प्रकाशित करते हुये धर्मोपदेश दिया। जनता ने परिव्राजिका का शरीर-कृत्य किया। बोधिसत्व हिमालय मे प्रवेश कर, ध्यान तथा अभिञ्ञा प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे गृहस्थ स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय सम्मिल्ल-हासिनि राहुल-माता थी। तपस्वी तो मैं ही था।

३२९. कालबाहु जातक

"य अन्नपाणस्स "यह शास्ता ने वेळुवन मे विहरते समय देवदत्त के बारे मे, जिसका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया था कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त ने तथागत के प्रति अकारण ही मन मे वैर-भाव रख उन्हें मारने के लिये धनुषधारियो को नियुक्त किया और नालागिरि हाथी भेजा तो उसका द्वेष प्रकट हो गया। जो उसे नियमित बँधा भोजन पहुँचाते थे, वह

उन मनुष्यो ने वद कर दिया। राजा ने भी उसके पास आना बन्द कर दिया। जब उसका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया तो वह गृहस्थो से माँग-माँग कर खाता हुआ घूमने लगा। भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बातचीत चलाई— आयुष्मानो! देवदत्त ने लाभ-सत्कार पैदा करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह जो प्राप्त था उसे भी स्थिर न रख सका।

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बात चीत।" "न केवल अभी, भिक्षुओ, यह पहले भी नष्ट-लाभ-सत्कार ही रहा है," कह शास्ता ने पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे धनञ्जय के राज्य करने के समय बोधिसत्व राध नामक तोता हुए। बडा परिवार, पूर्ण शरीर। छोटे भाई का नाम था पोट्ठपाद।

एक शिकारी ने उन दोनो जनो को बाँध ले जाकर वाराणसी-राजा को दिया। राजा उन्हे सोने के पिंजरे मे बन्द रख, सोने की थाली मे मीठे खील और शरबत पिला कर पालता था। बडा सत्कार होता था। लाभ और यश दोनो सबसे अधिक थे।

एक वनचर ने काळबाहु नाम का एक बडा काला बन्दर लाकर राजा को दिया। वह पीछे आया होने से उसका अधिक लाभ-सत्कार होने लगा। तोतो का लाभ-सत्कार कम हुआ। बोधिसत्व मे चित्त की स्थिरता थी, वह कुछ नही बोला। छोटे मे चित्त की स्थिरता नही थी। वह बोला—भाई! इस राजकुल मे हमे ही स्वादिष्ट सरस भोजन मिलते थे। अब हमे नही मिलते, काळबाहु बन्दर को ही मिलते हैं। जब हमे यहाँ धनञ्जय राजा के पास लाभ-सत्कार नही मिलता तो यहाँ क्या करेंगे? आ, जङ्गल मे ही चलकर रहे। उसने भाई के साथ बातचीत करते हुए पहली गाथा कही—

यं अन्नपाणस्स पुरे लभाम
तन्दानि साखामिगमेव गच्छति,
गच्छामदानि वनमेव राध
असक्कताचस्म धनञ्जयाय॥

[इस राजा से हमे जो अन्न-पान मिलता था वह अब बन्दर को ही प्राप्त होता है। हे राध ! हम वन को जायें। हम धनञ्जय के द्वारा असत्कृत है।]

इसे सुन राध ने दूसरी गाथा कही—

लाभो अलाभो अयसो यसोच
निन्दा पससा च सुखञ्च दुक्ख,
एते अनिच्चा मनुजेसु धम्मा
मा सोची किं सोचसि पोट्ठपाद ॥

[हे पोट्ठपाद ! लाभ, हानि, यश, अपयश. निंदा, प्रशसा, सुख तथा दु ख यह मनुष्यलोक के अनित्य-धर्म हैं। क्या चिन्ता करता है ? चिन्ता मत कर।]

इसे सुन बन्दर के प्रति ईर्ष्या दूर करने मे असमर्थ पोट्ठपाद ने तीसरी गाथा कही—

अद्धा तुव पण्डितकोसि राध
जानासि अत्थानि अनागतानि,
कथं नु साखामिगं दक्खिसाम
निधापित राजकुलतोव जम्म ॥

[माना। तू हे राध ! निश्चय से पण्डित है। भावी बातो को जानता है। यह बता कि इस नीच बन्दर को राज-कुल से निकाला जाता कैसे देखेंगे ?]

यह सुन राध ने चौथी गाथा कही—

चालेति कण्ण भकुटिं करोति
मुहुं मुहुं भाययते कुमारे,
सयमेव तं काहति काळबाहु
येनारका ठस्सति अन्नपाणा ॥

[कानो को हिलाता है और मुंह चिढाता है, इस प्रकार बार-बार (राज-) कुमारो को डराता है। यह काळबाहु स्वय ही ऐसा करेगा जिससे अन्न-पान से दूर हो जाये।]

काळवाहु ने भी कुछ ही दिन मे राजकुमारो के सामने कान हिलाना आदि करके उन्हे डरा दिया। वे डरकर चिल्लाये। राजा ने पूछा—क्या बात है? कारण मालूम होने पर 'इसे निकालो' कह उसे निकलवा दिया। तोतो का लाभ-सत्कार फिर पूर्ववत् हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय काळवाहु देवदत्त था। पोट्ठपाद आनन्द था। राध तो मैं ही था।

३३० सीलवीमस जातक

"सील किरेव कल्याण" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय सदाचार की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे मे कही।

ख. अतीत कथा

दो कथायें पहले कही जा चुकी है।[1] इस (अतीत) कथा मे बोधिसत्व वाराणसी राजा के पुरोहित हुए। उसने अपने सदाचार की परीक्षा लेने के लिये तीन दिन सोने के तख्ते पर से कार्षापण उठाये। उसे 'चोर' मान कर राजा के सामने पेश किया। वह राजा के पास खडे हो, इस पहली गाथा से शील की महिमा का वर्णन कर, राजा से प्रव्रजित होने की आज्ञा माँग प्रव्रज्या लेने गया —

सील किरेव कल्याण सील लोके अनुत्तर,
पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति ॥

[ससार मे सदाचार ही कल्याणकारी है, सदाचार ही श्रेष्ठ है। देखो, घोर विषैला सर्प भी 'सदाचारी' समझे जाने के कारण मारा नही जाता।]

---

१. सीलवीमस जातक (८६)।

इस प्रथम गाथा से शील की प्रशसा कर, राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा ले, प्रव्रजित होने के लिये गया। एक कसाई की दुकान से एक बाज ने मास का टुकडा लिया और आकाश मे उड गया। दूसरे पक्षियो ने उसे घेर पैर, नाखून तथा चोच से मारना शुरू किया। उसने वह दु ख न सह सकने के कारण माँस का टुकडा छोड दिया। तब दूसरे ने ले लिया। जो कोई उसे लेता पक्षी उसी का पीछा करते। जो-जो छोड देता वह सुखी हो जाता। बोधिसत्व ने यह देख सोचा कि यह काम-भोग इस मास के टुकडे ही की तरह है, जो ग्रहण करता है वही दुखी होता है, जो छोडता है वह सुखी होता है। उसने दूसरी गाथा कही —

यावदेवस्सहू किञ्चि तावदेव अखादिसु,
सङ्गम्म कुळला लोके न हिसन्ति अकिञ्चन ॥

[जब तक इस चील के पास कुछ था, तभी तक पक्षी इकट्ठे होकर इसे खाते रहे। लोक मे जिसके पास कुछ नही, उसकी हिंसा नही करते।]

वह नगर से निकल रास्ते मे एक गाँव मे शाम के समय किसी के घर सोया। वहाँ पिङ्गला नाम की दासी ने किसी पुरुप के साथ इशारा किया कि इस समय आना। उसने मालिको के पाँव धो, उनके सो जाने पर दालान मे बैठ 'अब आता होगा, अब आता होगा' प्रतीक्षा करते हुए प्रथम-याम और फिर मध्यम-याम रात्रि भी बिता दी। प्रत्यूष समय मे 'अब नही आएगा' निराश हो लेट कर सो गई। बोधिसत्व ने देखा कि यह दासी उस पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा मे इतनी देर आशा लगाये बैठी रही, अब आने की सभावना न रहने पर निराश हो सुख से सोती है। उसने सोचा—काम-भोगो के प्रति आशा रखना ही दु ख है। निराश रहना ही सुख है। यह तीसरी गाथा कही—

सुख निरासा सुपति आसा फलवती सुखा,
आसं निरास कत्वान सुख सुपति पिङ्गला ॥

[आशारहित सुख से सोता है, आशा फलती है तो 'सु आशा से निराश होकर पिङ्गला सुख से सोती है।]

अगले दिन उस गाँव से जगल मे जाते समय जगल मे एक तपस्वी को ध्यानारूढ बैठे देख सोचा, इस लोक और परलोक मे ध्यान-सुख से बढकर सुख नही। यह चौथी गाथा कही—

न समाधिपरो अत्थि अस्मि लोके परह्मि च,
न पर नापि अत्तान विहिसति समाहितो ॥

[इस लोक तथा परलोक मे समाधि से बढ कर सुख नही है। एकाग्र-चित्त न अपने को दुख देता है, न दूसरे को।]

उसने जगल मे प्रविष्ट हो, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यान तथा अभिञ्ञा उत्पन्न की और ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।। उस समय तपस्वी मैं ही था।

इस प्रथम गाथा से शील की प्रशसा कर, राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा ले, प्रव्रजित होने के लिये गया। एक कसाई की दुकान से एक बाज ने मास का टुकडा लिया और आकाश मे उड गया। दूसरे पक्षियो ने उसे घेर पैर, नाखून तथा चोच से मारना शुरू किया। उसने वह दु ख न सह सकने के कारण माँस का टुकडा छोड दिया। तब दूसरे ने ले लिया। जो कोई उसे लेता पक्षी उसी का पीछा करते। जो-जो छोड देता वह सुखी हो जाता। बोधिसत्व ने यह देख सोचा कि यह काम-भोग इस मास के टुकडे ही की तरह हैं, जो ग्रहण करता है वही दुखी होता है, जो छोडता है वह सुखी होता है। उसने दूसरी गाथा कही —

यावदेवस्सहू किञ्चि तावदेव अखादिसु,
सङ्गम्म कुळला लोके न हिसन्ति अकिञ्चन ॥

[जब तक इस चील के पास कुछ था, तभी तक पक्षी इकट्ठे होकर इसे खाते रहे। लोक मे जिसके पास कुछ नही, उसकी हिंसा नही करते।]

वह नगर से निकल रास्ते मे एक गाँव मे शाम के समय किसी के घर सोया। वहाँ पिङ्गला नाम की दासी ने किसी पुरुष के साथ इशारा किया कि इस समय आना। उसने मालिको के पाँव धो, उनके सो जाने पर दालान मे बैठ 'अब आता होगा, अब आता होगा' प्रतीक्षा करते हुए प्रथम-याम और फिर मध्यम-याम रात्रि भी बिता दी। प्रत्यूष समय मे 'अब नही आएगा' निराश हो लेट कर सो गई। बोधिसत्व ने देखा कि यह दासी उस पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा मे इतनी देर आशा लगाये बैठी रही, अब आने की सभावना न रहने पर निराश हो सुख से सोती है। उसने सोचा—काम-भोगो के प्रति आशा रखना ही दु ख है। निराश रहना ही सुख है। यह तीसरी गाथा कही—

सुख निरासा सुपति आसा फलवती सुखा,
आसं निरास कत्वान सुख सुपति पिङ्गला ॥

[आशारहित सुख से सोता है, आशा फलती है तो 'सुख' होता है। आशा से निराश होकर पिङ्गला सुख से सोती है।]

अगले दिन उस गाँव से जगल मे जाते समय जगल मे एक तपस्वी को ध्यानारूढ बैठे देख सोचा, इस लोक और परलोक मे ध्यान-सुख से बढकर सुख नही। यह चौथी गाथा कही—

न समाधिपरो अत्थि अस्मि लोके परह्मि च,
न पर नापि अत्तान विहिंसति समाहितो ॥

[इस लोक तथा परलोक मे समाधि से बढ कर सुख नही है। एकाग्र-चित्त न अपने को दुख देता है, न दूसरे को।]

उसने जगल मे प्रविष्ट हो, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यान तथा अभिञ्ञा उत्पन्न की और ब्रह्मलोक-गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।। उस समय तपस्वी मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

४. कोकिल वर्ग

३३१ कोकालिक जातक

"यो वे काले असम्पत्ते" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोकालिक के बारे मे कही। (वर्तमान-) कथा तक्कारिय जातक[1] मे विस्तार से आई है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके मन्त्री-रत्न हुए। राजा बडा वाचाल था। बोधिसत्व उसकी वाचालता रोकने के लिये एक उपमा खोजते घूमते थे।

एक दिन राजा उद्यान मे पहुँच मङ्गल शिला पर बैठा। उसके ऊपर आम का वृक्ष था। उस पर एक कौवे के घोसले मे काली कोयल अपना अण्डा रख गई। कौवी उस कोयल के अण्डे को पोसती रही। आगे चलकर उसमे से कोयल का बच्चा निकला। कौवी उसे अपना पुत्र समझ चोच से चोगा ला उसे पालती थी। उसने असमय ही, जब उसके पर भी नहीं निकले थे कोयल की आवाज की। कौवी ने सोचा, यह अभी और तरह की आवाज करता है, बडा होने पर क्या करेगा? उसने चोच से ठोगे मार-मार कर उसकी हत्या कर दी और घोसले से नीचे गिरा दिया। वह राजा के पैरो मे गिरा। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—मित्र! यह क्या है? बोधिसत्व ने सोचा, मैं राजा को (अधिक बोलने से) रोकने के लिये एक उपमा खोजता रहा, अब मुझे वह मिल गई। उसने कहा—महाराज! अति वाचाल, बहुत बोलने वालो की यह गति होती है। महाराज! यह कोयल का बच्चा कौवी द्वारा पोसा

---

१ तक्कारिय जातक (४८१)।

गया। इसने असमय ही, जब इसके पर नही उगे थे, कोयल की आवाज लगाई। उस कौवी को जब यह मालूम हुआ कि यह मेरा पुत्र नही है तो उसने चोच से ठोगे मार-मार कर इसकी हत्या कर दी और घोसले से गिरा दिया। 'चाहे मनुष्य हो चाहे पशु-पक्षी असमय अधिक बोलने से इस तरह का दुःख भोगते है' कह ये गाथाये कही—

यो वे काले असम्पत्ते अतिवेल पभासति,
एव सो निहतो सेति कोकिलायिव अत्रजो ॥१॥
न हि सत्थ सुनिसित विस हलाहलम्मिव,
एव निकट्ठे पातेनि वाचा दुब्भासिता यथा ॥२॥
तस्मा काले अकाले च वाच रक्खेय्य पण्डितो,
नातिवेल पभासेय्य अपि अत्तसमम्हि वा ॥३॥
यो च कालेमित भासे मतिपुब्बो विचक्खणो,
सब्बे अमित्ते आदेति सुपण्णो उरगम्मिव ॥४॥

[जो समय से पूर्व दीर्घकाल तक बोलता है, वह इसी प्रकार मरकर पड़ा रहता है जैसे यह कोयल का बच्चा ॥१॥ जिस प्रकार हलाहल विष के समान दुर्भाषित वाणी उसी क्षण गिरा देती है, उस प्रकार अच्छी तरह से तेज किया हुआ शस्त्र भी नही ॥२॥ इसलिये पण्डित आदमी को चाहिये कि वह समय-असमय वाणी की रक्षा करे, अपने ही समान हो तो भी किसी के साथ बहुत अधिक बातचीत न करे ॥३॥ जो बुद्धिमान् समय पर विचार-पूर्वक थोड़ा बोलता है वह सब पशुओ को उसी प्रकार अपने अधिकार मे ले लेता है जैसे गरुड सर्प को ॥४॥]

राजा बोधिसत्व का धर्मोपदेश सुनने के बाद से मितभाषी हो गया। उसने बोधिसत्व को बहुत सम्पत्ति दी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कोयल-बच्चा कोकालिक था। पण्डित-अमात्य तो मैं ही था।

३३२. रथलट्ठि जातक

"अपि हन्त्वा हतो ब्रूति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल-राज के पुरोहित के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह रथ से अपनी जमीदारी के गाँव की ओर जा रहा था। अडचन की जगह पर रथ हाकते हुए उसने गाडियो के काफले को आते देख कहा—अपनी गाडियो को हटाओ, हटाओ। गाडियो के न हटाये जाने पर क्रोधित हो, उसने चाबुक की लकडी से पहली गाडी के गाडीवान की गाडी के रथ की धुरि पर प्रहार किया। वह लकडी रथ की धुरी से उचट कर उसी के माथे मे लगी। उसी समय माथे पर गोला पड गया। उसने रुककर राजा से कहा—मुझे गाडीवानो ने मारा। गाडीवानो को बुलाकर फैसला करने वालो को उसी का दोष दिखाई दिया।

एक दिन (भिक्षुओ ने) धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! राजा के पुरोहित ने मुकदमा किया कि गाडीवानो ने उसे मारा, किन्तु स्वय पराजित हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत।" "न केवल अभी, भिक्षुओ, पहले भी इसने ऐसा ही किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसी के न्याय-मन्त्री थे। राजा का पुरोहित अपनी जमीदारी के गाँव मे जाता हुआ (सब उपरोक्त की तरह ही)। लेकिन इस कथा मे राजा के कहने पर, उसने स्वय न्याय करना आरम्भ कर, बिना मुकदमा किये ही गाडीवानो को बुलाकर कहा कि तुमने मेरे पुरोहित को पीटकर उसके सिर मे गोला उठा दिया, और उनके सर्वस्व हरण की आज्ञा दी। बोधिसत्व ने निवेदन किया—महाराज! तुमने बिना मुकदमा किये ही इनका सर्वस्व हरण कराया। कोई-

कोई स्वय अपने को चोट लगाकर भी 'दूसरे ने मारा' कहते है। इसलिये विना न्याय किये कुछ करना उचित नही। राज्य करने वाले को सुनकर ही फैसला करना चाहिये।

इतना कह ये गाथाये कही —

अपि हन्त्वा हतो ब्रूति जेत्वा जितोति भासति,
पुब्बमक्खायिनो राज एकदत्थु न सद्दहे ॥१॥
तस्मा पण्डितजातियो सुणेय्य इतरस्सपि,
उभिन्न वचन सुत्वा यथाधम्मो तथा करे ॥२॥
अलसो गिही कामभोगी न साधु
असञ्ञतो पब्बजितो न साधु
राजा न साधु अनिसम्मकारी
यो पण्डितो कोधनो त न साधु ॥३॥
निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,
निसम्मकारिनो रञ्ञो यसो कित्ति च वड्ढति ॥४॥

[कोई-कोई स्वय पीटकर 'पीटा गया' तथा स्वय जीतकर 'जीता गया' भी कहते हैं। इसलिये राजन्! जो पहले आकर कहे उसी की बात एकदम नही मान लेनी चाहिये। पण्डित को चाहिये कि दूसरे की बात भी सुने और दोनो का कथन सुनकर जो न्याय हो सो करे ॥१-२॥ आलसी गृहस्थ काम-भोगी अच्छा नही। असयमी साधु अच्छा नही। बिना विचारे करने वाला राजा अच्छा नही। जो पण्डित होकर क्रोध करे वह भी अच्छा नही ॥३॥ क्षत्रिय को विचार कर करना चाहिये, राजा को बिना विचारे नही करना चाहिये। विचार-पूर्वक (काम) करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढती है ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व की बात सुन धर्मानुसार न्याय किया। धर्म से फैसला करने पर ब्राह्मण का ही दोष निकला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का ब्राह्मण अब का ब्राह्मण ही था। पण्डित-अमात्य तो मैं ही था।

३३३. पक्कगोध जातक

"तदेव मे त्व " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान) कथा पहले विस्तार से आ ही गई है[1]। इस उनके उधार वसूली करके आते समय रास्ते मे उन्हे एक शिकारी ने पकी गोह दी कि दोनो जने खायें। उस आदमी ने भार्य्या को पानी के लिये भेजा और स्वय सब गोह खा गया। जब वह लौटकर आई तो बोला—भद्रे! गोह भाग गई। वह बोली—अच्छा स्वामी! जब पकी गोह भाग जाती है तब क्या किया जा सकता है?

जेतवन मे पानी पीकर जब वह शास्ता के पास बैठी थी, तो शास्ता ने पूछा—उपासिका! क्या यह (पति) तेरा हित-चिंतक है, स्नेही है, उपकारी है?

"भन्ते। मैं तो इसकी हित-चिन्तक हूँ, स्नेही हूँ, उपकारिणी हूँ, लेकिन यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है।"

"रहने दे, अभी यह ऐसा करता है, लेकिन जब तेरे गुणो का स्मरण करता है तो तुझे सब ऐश्वर्य्य दे देता है।"

उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

अतीत कथा भी पूर्वोक्त सदृश ही है। इस कथा मे उनके लौटते समय रास्ते मे शिकारी ने उन्हे थका देख एक पकी गोह दी कि दोनो जने

---

१ सुच्चज जातक (३२०)।

खायें। राज-कन्या उसे लता से बाध लेकर चली। वे एक तालाव देख रास्ते से हट एक पीपल के नीचे बैठे। राज-पुत्र बोला—भद्रे! जा तालाव से कवल-पत्र मे पानी ले आ, मास खायें। वह गोह को शाखा पर टाग पानी के लिये गई। दूसरे ने सारी गोह खा ली और पूँछ का सिरा हाथ मे ले दूसरी ओर मुँह करके बैठ रहा। जब वह पानी लेकर आई तो बोला—भद्रे! गोह शाखा से उतर बिल मे घुस गई। मैं ने दौड कर पूँछ के सिरे से पकडा। जो हाथ मे था उतना हिस्सा हाथ मे ही छोड तुडा कर घुस गई।

"हो देव! पकी गोह जब भाग जाय तब क्या करे? चलें।"

वे पानी पी वाराणसी पहुँचे। राज-पुत्र ने राज्य प्राप्त होने पर उसे केवल पटरानी बना दिया। सत्कार-सम्मान उसका कुछ नही।

बोधिसत्व ने उसका सत्कार-सम्मान कराने की इच्छा से राजा के पास खडे हो कहा—आर्ये! हमे तुम से कुछ नही मिलता न? क्या हमारी ओर नही देखती?

"तात! मुझे ही राजा से कुछ नही मिलता, तुम्हे क्या दूँ? और राजा भी अब मुझे क्या देगा, जो जगल से आने के समय पकी गोह को अकेला ही खा गया।"

"आर्ये! ऐसा मत कहे। देव ऐसा नही करेंगे।"

"तात! उसका तुम्हे पता नही। राजा को और मुझे ही पता है।"

यह कह उसने पहली गाथा कही—

तदेव मे त्वं विदितो वनमज्झे रथेसभ,
यस्स ते खग्गबन्धस्स सन्नद्धस्स तिरीटिनो,
अस्सत्थदुमसाखाय पक्का गोधा पलायथ ॥१॥

[हे राजन! मैंने तुम्हे उसी समय जान लिया था, जब तुम्हारे वल्कल-धारी, जर्रा-बक्तर पहने और तलवार बाधे हुये रहते पीपल के पेड से बधी गोह भाग गई।]

इस प्रकार राजा के दोष को लोगो के सामने प्रकट करके कहा।

यह सुन बोधिसत्व ने 'आर्ये! जब से देव तुम्हे प्यार नही करता तब से दोनो के लिये कष्टकर होकर यहाँ क्यो रहती हो?' कह ये दो गाथायें कही —

नमे नमन्तस्स भजे भजन्त
किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्चं,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
असम्भजन्तम्पि न सम्भजेय्य ॥२॥
चजे चजन्त वनथ न कयिरा
अपेतचित्तेन न सम्भजेय्य,
दिजो दुम खीणफल व ञत्वा
अञ्ञ समेक्खेय्य महा हि लोको ॥३॥

[जो अपने प्रति नम्र हो, उसके प्रति नम्र होवे, जो अपने साथ रहना चाहे, उसके साथ रहे, जो अपना काम करे, उसका काम करे, जो अपना अनर्थ चाहता हो उसका अर्थ न करे और जो अपने साथ न रहना चाहता हो उसके साथ न रहे ॥२॥ जो अपने को छोडे उसे छोड दे, तृष्णा-स्नेह न करे, विरक्त-मन वाले की सगति न करे। जिस प्रकार वृक्ष को फलरहित जान यती अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार (अपने लिये) दूसरा स्थान खोजे। ससार बडा है ॥३॥]

राजा ने बोधिसत्व के कहते ही कहते उसके गुणो को याद कर कहा —भद्रे, इतने समय तक मैंने तेरे गुणो की कदर नही की। पण्डित की बात से ही जाने। तुम मेरे अपराधो को सहन करती रही। तुम्हे ही मैं यह सारा राज्य देता हूँ। यह कह चौथी गाथा कही—

सो ते करिस्सामि यथानुभावं
कतञ्ञतं खत्तिये पेक्खमानो,
सब्बञ्च ते इस्सरिय ददामि
यस्सिच्छसि तस्स तुव ददामि ॥

[हे क्षत्रिये! तेरा कृतज्ञ होने के कारण यथासामर्थ्य तेरे लिये सब करूँगा। तुझे सारा ऐश्वर्य्य दूंगा। जिसकी तू इच्छा करे, वही तुझे दूंगा ॥४॥]

यह कह राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य्य दिया। 'इसने मुझे इसका गुण याद कराया' सोच पण्डित को भी बहुत ऐश्वर्य्य दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन समाप्त होने पर दोनो पति-पत्नी स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए। उस समय के पति-पत्नी इस समय के पति-पत्नी ही थे। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३३४. राजोवाद जातक

"गवञ्चे तरमानान " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय राजोपदेश के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

(वर्तमान) कथा सकुण जातक[1] मे आयेगी। इस कथा मे शास्ता ने 'महाराज! पुराने राजागण भी पण्डितो की बात सुन धर्मानुसार राज्य कर स्वर्ग पधारे' कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की बात कही।

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर सब शिल्प सीखे। फिर ऋषि-प्रव्रज्या ले अभिञ्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर रमणीय हिमालय प्रदेश मे फल-मूल का आहार करते हुए रहने लगे।

उस समय राजा अपने दोष ढूंढने वाला हो, किसी ऐसे आदमी को खोजता था जो उसके दोष कहे। उसने अन्दर के आदमियो, बाहर के आदमियो, नगर के आदमियो तथा नगर के बाहर के आदमियो मे से किसी को भी अपने दोष कहने वाला न पाया। उसने सोचा 'जनपद' मे कहेगे।

---

१ सकुण जातक (?)।

इसलिये भेस वदल जनपद मे घूमा । जब वहाँ भी कोई दोप कहने वाला न मिला, गुण ही सुनने को मिले तो यह सोच कि हिमालय प्रदेश मे कहेगे, वह जगल मे घूमता-घूमता बोधिसत्व के आश्रम पर पहुँचा और प्रणाम किया । बोधिसत्व ने कुशल क्षेम पूछा । वह एक ओर बैठा ।

तब बोधिसत्व जगल से पके गोदे लाकर खाते थे । वे मीठे थे, शक्ति-वर्धक थे और शक्कर समान थे । उसने राजा को भी सम्बोधित कर कहा—"महापुण्य ! यह गोदे खाकर पानी पियो ।" राजा ने गोदे खा, पानी पी, बोधिसत्व से पूछा—भन्ते ! क्या बात है यह गोदे बहुत ही मीठे है ?

"महापुण्य ! राजा निश्चय से धर्मानुसार न्याय से राज्य करता है । उसी से यह मीठे हैं ।"

"भन्ते ! राजा के अधार्मिक होने पर अमधुर हो जाता है ?"

"हाँ महापुण्य ! राजाओ के अधार्मिक होने पर तेल, मधु, शक्कर आदि तथा जगल के फल-मूल भी अमधुर हो जाते है, ओज-रहित हो जाते है । केवल ये ही नही, सारा राष्ट्र ही ओज रहित हो जाता है, खराव हो जाता है । उनके धार्मिक होने पर वे मधुर होते हैं, शक्ति-वर्धक होते हैं और सारा राष्ट्र शक्तिशाली होता है ।"

राजा 'भन्ते ! ऐसा होगा' कह और अपना राजा होना बिना प्रकट किये बोधिसत्व को प्रणाम कर वाराणसी चला आया । उसने सोचा तपस्वी के कथन की परीक्षा करूँगा । 'अधर्म से राज्य कर, अब देखूँगा' सोच, कुछ समय बिता, वह फिर यहाँ पहुँचा । प्रणाम करके एक ओर बैठा ।

बोधिसत्व ने भी उसे बैठो ही कह पके गोदे दिये । वह उसे कड़ुए लगे । राजा ने अस्वादिष्ट जान थूक सहित फेंक कहा—भन्ते ! कड़ुआ है ।

"महापुण्य ! राजा निश्चय से अधार्मिक होगा । राजाओ के अधार्मिक होने पर जगल के फल-मूल से लेकर सभी नीरस हो जाता है, ओज-रहित हो जाता है ।'

यह कह ये गाथायें कही—

गव चे तरमानान जिह्म गच्छति पुङ्गवो,
सब्बा गावी जिह्मं यन्ति नेते जिह्म गते सति ॥१॥

एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो,
सो चे अधम्म चरित पगेव इतरा पजा,
सब्ब रट्ठ दुक्ख सेति राजा चे होति अधम्मिको ॥२॥
गव चे तरमानान उजु गच्छति पुङ्गवो,
सब्बदा गावी उजु यन्ति नेत्ते उजुगते सति ॥३॥
एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो,
सो चेपि धम्म चरति पगेव इतरा पजा,
सब्ब रट्ठ सुख सेति राजा चे होति धम्मिको ॥४॥

[गौवो के (नदी) तैरने के समय यदि बैल टेढा जाता है तो नेता के टेढे जाने के कारण सभी गौवें टेढी जाती हैं ॥१॥ इस प्रकार मनुष्यो मे जो श्रेष्ठ माना जाता है यदि वह अधर्म करता है तो शेष प्रजा पहले ही अधर्म करती है। राजा के अधार्मिक होने पर सारा राज्य दुःख को प्राप्त होता है ॥२॥ गौओ के (नदी) तैरने के समय यदि बैल सीधा जाता है तो नेता के सीधा जाने के कारण सभी गौवें सीधी जाती हैं ॥३॥ इसी प्रकार मनुष्यो मे जो श्रेष्ठ माना जाता है यदि वह धर्म करता है तो शेष प्रजा पहले ही धर्म करती है। राजा के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुख प्राप्त करता है ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व से धर्म सुन, अपना राजा होना प्रकट किया— भन्ते! मैंने ही पहले गोदो को मीठा कर फिर कड़ुआ किया। अब फिर मीठा करूंगा। उसने बोधिसत्व को प्रणाम कर नगर मे जा धर्मानुसार राज्य कर सब कुछ प्राकृतिक अवस्था मे कर दिया।

शास्ता ने वह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३३५ जम्बुक जातक

"ब्रह्मा पवट्ठकायो सो" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के तथागत की नकल करने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पहले आ ही चुकी है।[१] यहाँ पर संक्षिप्त है। शास्ता ने पूछा—सारिपुत्र! देवदत्त ने तुम्हे देखकर क्या किया? स्थविर बोले—भन्ते! वह आपकी नकल करता हुआ मेरे हाथ मे पखा देकर लेट रहा। तब कोकालिक ने उसकी छाती मे घुटने की चोट मारी। इस प्रकार आप की नकल करने जाकर उसने दु ख भोगा।

यह सुन शास्ता ने 'सारिपुत्र! न केवल अभी देवदत्त ने मेरी नकल करने जाकर दु ख भोगा है, पहले भी भोगा ही है' कह स्थविर के प्रार्थना करने पर पूर्वजन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व सिंह-योनि मे पैदा हुए। वह हिमालय मे एक गुफा मे रहता था। एक दिन भैंसे को मार, मास खा, पानी पी गुफा को लौटते समय एक शृगाल ने जब उसे देख तो भाग न सकने के कारण छाती के बल लेट रहा। सिंह ने पूछा—जम्बुक! क्या है? "भद्र! मैं आपकी सेवा करूँगा।" "तो आ" कह सिंह उसे अपने वास-स्थान पर ले गया और रोज-रोज मास लाकर पोसने लगा। सिंह का मारा हुआ शिकार खा-खा कर मोटे हुए जम्बुक के दिल मे एक दिन अभिमान पैदा हो गया। वह सिंह के पास आकर बोला—"स्वामी! मेरे कारण आप को नित्य असुविधा होती है। आप नित्य मास लाकर मुझे पोसते हैं। आज आप यही रहे। मैं एक हाथी को मार, मास खा, आप के लिये भी लाऊँगा।"

"जम्बुक! अच्छा हो, यदि तू ऐसी इच्छा न करे। तू हाथी मार कर मास खाने वाली योनि मे पैदा नही हुआ। मैं तुझे हाथी मार कर दूँगा। हाथी बडे डील-डौल वाले होते है। उलटी बात मत कर। मेरा कहना मान।"

सिंह ने यह कह पहली गाथा कही —

---

१ लक्खण जातक (११)।

ब्रहा पवड्ढकायो सो दीघदाठो च जम्बुक,
न त्व तम्हि कुले जातो यत्थ गण्हन्ति कुञ्जर ॥

[हे जम्बुक । वह मोटा, बडे शरीर वाला तथा लवे दाँतो वाला होता है । तू उस कुल मे पैदा नही हुआ है जिसमे पैदा होकर हाथियो को पकडते है ।]

शृगाल सिंह के मना करने पर भी गुफा से निकल, तीन बार 'हुक्का हुक्का' गीदड की आवाज लगा, पर्वत के शिखर पर चढ गया। वहाँ पर्वत के नीचे उसने एक काले हाथी को जाते देखा, तो सोचा उछल कर इसके माथे पर जा बैठूगा । वह उसके पाँव मे आकर गिरा । हाथी ने अगला पाँव उठा उसके मस्तक पर रख दिया । सिर फूट कर चूर्ण-विचूर्ण हो गया और वह चिल्लाता हुआ वही ढेर हो गया । हाथी क्रौंच-नाद करता हुआ चला गया । बोधिसत्व ने जा, पर्वत के शिखर पर खडे हो, उसे नाश को प्राप्त हुआ देख, 'अपने अभिमान के कारण यह शृगाल विनाश को प्राप्त हुआ' कहा और ये तीन गाथाये कही —

असीहो सीहमानेन यो अत्तान विकुब्बति,
कोत्थुव गजमासज्ज सेति भुम्या अनुत्थुन ॥२॥
यसस्सिनो उत्तमपुग्गलस्स
सञ्जातखन्धस्स महब्बलस्स,
असमेक्खिय थामबलूपपत्ति
ससेति नागेन हतोव जम्बुको ॥
यो चीध कम्म कुरुते पमाय
थामबल अत्तनि सविदित्वा,
जप्पेन मन्तेन सुभासितेन
परिक्खवासो विपुल जिनाति ॥

[जो सिंह न होकर सिंह का अभिमान करता है, वह हाथी पर आक्रमण करने वाले शृगाल की तरह चिल्लाता हुआ भूमि पर ढेर हो जाता है ॥२॥ यशस्वी, उत्तम व्यक्ति, अच्छे सुदृढ शरीर वाले तथा महाबलवान की शक्ति, बल और योनि को न देख कर (जो उसकी बराबरी करता है) वह हाथी द्वारा मारे गये जम्बुक की तरह ढेर हो जाता है ॥३॥ जो अपनी

शक्ति और बल को जान कर शक्ति के भीतर काम करता है, वह विचार पूर्वक काम करने वाला अध्ययन, मन्त्रणा और निर्दोष वाणी से बड़े अर्थ को प्राप्त कर लेता है ।।४।।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन तीन गाथाओ द्वारा इस लोक मे जो कर्तव्य है, सो बताया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय शृगाल देवदत्त था । सिंह तो मैं ही था ।

३३६ ब्रह्मछत्त जातक

"तिण तिणन्ति लपसि " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय ढोंगी भिक्षु के बारे मे कही । वर्तमान कथा आ ही चुकी है ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक अमात्य हुये । वाराणसी-नरेश ने बड़ी सेना से कोशल-राज पर चढाई कर, श्रावस्ती जा, युद्ध करके नगर मे दाखिल हो राजा को पकड लिया । कोशलराज का छत्र नामक पुत्र था । सो भेस बदल कर निकल तक्षशिला गया । वहाँ तीनो वेद और अट्ठारह विद्याये सीख तक्षशिला से निकल (रास्ते मे) सब तरह के शिल्प सीखता हुआ एक प्रत्यन्त-ग्राम मे पहुँचा । उसके आश्रय से पाँच सौ तपस्वी जगल मे कुटी बना कर रहते थे । कुमार ने उनके पास जा सोचा कि उनसे भी कुछ सीखूँ और प्रव्रजित हो जो वे जानते थे वह सब सीख लिया । वह आगे चलकर गण का शास्ता हो गया ।

एक दिन ऋषि-गण को सम्बोधित कर उसने पूछा—

'मित्रो ! मध्यम-देश क्यो नही जाते ?"

"मित्रो। मध्यम-देश के लोग पण्डित होते हैं। वह प्रश्न पूछते है। (पुण्य-) अनुमोदन कराते है। मङ्गल (-सूत्र) का पाठ कराते है। असमर्थ होने पर निन्दा करते है। हम इसी डर से नही जाते है।"

"तुम मत डरो। मै यह सब करूँगा।"

"तो चलें।"

सभी अपनी तरह-तरह की चीजे ले क्रमश वाराणसी पहुँचे। वाराणसी-राजा ने कोशल नरेश को अपने आधीन कर, वहाँ राज्याधिकारी नियुक्त किये और वहाँ जो धन था उसे वाराणसी ले आया। उस धन से उसने लोहे की गागरें भरवा उन्हे उद्यान मे गडवा दिया। स्वय वह वाराणसी मे ही रहने लगा।

वे ऋषि-गण रात भर राजा के उद्यान मे रह, अगले दिन भिक्षार्थ नगर मे जा राज-द्वार पर पहुँचे। राजा ने उनकी चर्य्या से प्रसन्न हो उन्हे बुलवाया और महान् तल्ले पर बिठा यवागु और खज्जक खिलाया। फिर भोजन के समय तक अनेक प्रश्न पूछता रहा। छत्त ने राजा के चित्त को प्रसन्न करते हुये सभी प्रश्नो का उत्तर दे भोजनोपरान्त विचित्र दानानुमोदन किया।

राजा ने बहुत प्रसन्न हो वचन ले, उन सभी को उद्यान मे टिकाया। छत्त खजाना निकालने का मन्त्र जानता था। उसने वहाँ रहते हुए मन्त्र-बल से पता लगाया कि इसने मेरे पिता का धन कहाँ छिपा रखा है? उसे पता लग गया कि राजोद्यान मे है। 'यह धन लेकर मैं अपना राज्य वापिस लूँगा' सोच उसने तपस्यिो को सम्बोधित कर कहा—मित्रो! मैं कोशल-राज का पुत्र हूँ। वाराणसी के राजा ने हमारा राज्य छीन लिया है। भेस बदल कर इतने दिन अपने जीवन की रक्षा की। अब अपने कुल का धन मिल गया है। मैं इसे ले जाकर अपना राज्य लूँगा। तुम क्या करोगे?

"हम तेरे साथ ही चलेंगे।"

उसने 'अच्छा' कह चमडे के बडे-बडे थैले बनवाये और रात को भूमि खनवा कर धन की गागरें निकलवायी। (फिर) थैलो मे धन को डाल गागरो मे तिनके भरवा दिये। पाँच सौ ऋषियो और अन्य मनुष्यो से धन लिवा भाग कर श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ राज्याधिकारियो को पकडवा, (अपना) राज्य वापिस लिया। फिर चार-दीवारी तथा अटारी आदि की मरम्मत करा

उसे ऐसा बनवा दिया कि फिर भी वह राजा उसे न ले सके। स्वय नगर मे रहने लगा।

वाराणसी-राजा को भी खबर दी गई कि तपस्वी उद्यान से धन लेकर भाग गये। उसने उद्यान जा, गागरों को निकलवाया तो उनमे तृण-मात्र दिखाई दिया। धन (चला जाने) के कारण उसको शोक हुआ। वह नगर मे जा 'तृण, तृण' पुकारता घूमने लगा। कोई उसके शोक का शमन नही कर सकता था। वोधिसत्व ने सोचा—राजा को शोक बहुत है। विलाप करता घूमता है। मुझे छोड कोई दूसरा इसके शोक का शमन नही कर सकता। मैं इसके शोक को दूर करूँगा। उसने एक दिन उसके साथ सुख से बैठे हुए उसके विलाप करने के समय पहली गाथा कही —

तिण तिणन्ति लपसि कोनु ते तिणमाहरि,
किन्नु ते तिण किच्चत्थि तिणमेव पभाससि ॥१॥

[तृण-तृण ही प्रलाप करता है, कौन है जो तेरे तृण ले गया? तुझे तृण की क्या आवश्यकता है? तू केवल तृण ही तृण कहता है।]

राजा ने यह सुन दूसरी गाथा कही—

इधागमा ब्रह्मचारी ब्रहा छत्तो बहुस्सुतो,
सो मे सब्ब समादाय तिण निक्खिप्प गच्छति ॥२॥

[यहाँ छत्त नाम का एक बडा और बहुश्रुत ब्रह्मचारी आया। वह मेरा सब लेकर और तृण डालकर चला गया।]

यह सुन वोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही —

एवेत होति कत्तब्ब अप्पेन बहुमिच्छता,
सब्ब सकस्स आदानं अनादान तिणस्स च,
तिणस्स चाटिसु गतो तत्थ का परिदेवना ॥३॥

[जो थोडे से बहुत की इच्छा करता है उसे ऐसा ही करना होता है, अपने सारे धन का लेना और तृण का न लेना। तृण के घडो मे जाने पर रोना-पीटना क्या?]

यह सुन राजा ने चौथी गाथा कही —

सीलवन्तो न कुब्बन्ति बालो सीलानि कुब्बति,
अनिच्चसील दुस्सील्य किं पण्डिच्च करिस्सति ॥४॥

[सदाचारी (ऐसा) नही करते, मूर्ख ही (ऐसा) सदाचार करता है। जिसका शील स्थिर नही, जो दुश्शील है उसका पाण्डित्य किस काम का ?]

इस प्रकार उसकी निन्दा कर बोधिसत्व की उन गाथाओ मे निश्शोक हो राजा ने धर्मानुसार राज्य किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय बडा छत्त ढोगी भिक्षु था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३३७. पीठ जातक

"नते पीठमदायिम्हृ " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह जनपद मे जेतवन पहुँचा। पात्र चीवर सभाल, रख, शास्ता को प्रणाम कर उसने तरुण श्रमणेरो से पूछा—आयुष्मानो! अतिथि भिक्षुओ का उपकार कौन करते हैं ?

"आयुष्मान्! अनाथपिण्डिक नाम का महासेठ और विसाखा नाम की महा-उपासिका, दोनो माता-पिता के समान उपकार करते हैं ?

वह 'अच्छा' कह अगले दिन जब एक भी भिक्षु ने नगर मे प्रवेश नही किया था, अनाथ-पिण्डिक के गृह-द्वार पर पहुँचा। असमय गया होने से किसी ने ध्यान नही दिया। वहाँ कुछ न पाकर वह विसाखा के गृह-द्वार पर पहुँचा। वहाँ भी बहुत सवेरे पहुँचने के कारण कुछ न मिला। फिर जहाँ-तहाँ घूम कर यवागु समाप्त होने पर पहुँचा। और फिर जहाँ-तहाँ घूम कर भात के समाप्त होने पर पहुँचा[1]। वह विहार पहुँचकर दोनो परिवारो को

---

१ इस प्रकार न उसे प्रात काल की भिक्षा मिली और न मध्याह्न का भोजन।

३३८. थुस जातक

"विदित थुस " यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय अजात-शत्रु के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

उसके माता की कोख मे रहने पर उसकी माँ कोशलराज-पुत्री के मन मे राजा बिम्बिसार की जाघ का खून पीने का दोहद पैदा हुआ और वह दृढ हो गया । सेविकाओ के पूछने पर उसने उन्हे वह बात कही । राजा ने भी सुना तो लक्षणज्ञो को बुलाकर पूछा—इस का क्या अर्थ है ? लक्षणज्ञो ने कहा कि देवी की कोख मे जो प्राणी है वह तुम्हे मारकर राज्य लेगा । राजा बोला—यदि मेरा पुत्र मुझे मारकर राज्य लेगा तो इस मे क्या हर्ज है ? उसने दाहिनी जाँघ को शस्त्र से फाड, सोने के कटोरे मे खून ले, भेजकर, देवी को पिलवाया । उसने सोचा—यदि मेरी कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता को मारेगा तो मुझे ऐसे पुत्र से क्या ? गर्भ गिराने के लिये उसने कोख मलवाई । राजा को मालूम हुआ तो देवी को बुलवाकर उसने कहा—"भद्रे ! मेरा पुत्र मुझे मारकर राज्य लेगा । मैं अजर-अमर तो हूँ नही । मुझे पुत्र-मुख देखने दे । अब से इस तरह का काम न करना ।" तब वह उद्यान मे जाकर वहाँ कोख मलवाने लगी । राजा को मालूम हुआ तो उसने उद्यान जाना रोक दिया । उसने गर्भ पूरा होने पर पुत्र को जन्म दिया । नाम-करण के दिन, अजात होने पर भी पिता के प्रति शत्रुता रखने के कारण उसका नाम अजात-शत्रु ही रखा गया । वह पाला-पोसा जाकर बडा हो रहा था । एक दिन शास्ता पाँच सौ भिक्षुओ के साथ राजा के घर जाकर बैठे । राजा बुद्ध-प्रमुख भिक्षु सघ को श्रेष्ठ खाद्य भोज्य परोस शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठ कर धर्म सुनने लगा । उसी समय कुमार को अलकृत कर राजा को दिया । राजा ने स्नेह की अधिकता से पुत्र को ले, गोद में बिठा लिया । वह पुत्र-प्रेम

के कारण पुत्र से ही लाड-प्यार करता था—धर्म नही सुनता था। शास्ता ने राजा का प्रमाद देखा तो कहा—महाराज! पहले के राजा पुत्र पर आशङ्का कर उसे किसी जगह छिपा देते थे और आज्ञा देते थे कि मेरे मरने के बाद इसे निकाल कर राज्य पर बिठाना।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तक्षशिला मे सर्वत्र प्रसिद्ध आचार्य्य हो बहुत से राजकुमारो तथा ब्राह्मण कुमारो को विद्या पढाते थे। वाराणसी के राज-पुत्र ने सोलह वर्ष की आयु होने पर उसके पास जा तीनो वेद और सब शिल्प सीख आचार्य्य से विदा मागी। आचार्य्य ने अङ्ग-विद्या से जाना कि इसे पुत्र से खतरा है। उसने सोचा कि मैं अपने प्रताप से इसका खतरा दूर करूँगा। उसने चार गाथायें बना कुमार को दी और नियम किया—तात! पहली गाथा राज-गद्दी पर बैठ, जब तेरा पुत्र सोलह वर्ष का हो तेरे साथ बैठा भोजन करता हो उस समय कहना, दूसरी बडे दरबार के समय, तीसरी महल पर चढने के समय सीढियो के शिखर पर खडे हो और चौथी शयनागार मे प्रवेश करते समय बरामदे मे खडे होकर। वह 'अच्छा' कह, स्वीकार कर आचार्य्य को प्रणाम कर गया और उपराज बन पिता के मरने पर राजा बना। उसके पुत्र ने सोलह वर्ष का होने पर उद्यान-क्रीडा आदि के लिये बाहर निकले राजा का ऐश्वर्य्य देखकर उसे मार राज्य पाने की इच्छा की। उसने अपने सेवको से कहा। वे बोले—देव! बुढापे मे ऐश्वर्य्य मिला तो किस काम का? जिस किस उपाय से राजा को मार कर राज्य ग्रहण करना चाहिये। कुमार ने सोचा—विष खिला कर मारूँगा। वह पिता के साथ शाम को भोजन करते समय विष पास लेकर बैठा। राजा ने थाली मे भात डालते ही पहली गाथा कही —

विदित थुस उन्दुरान विदित पन तण्डुल,
थुस थूलं विवज्जित्वा तण्डुल पन खादरे ॥१॥

[चूहो को तुष का भी पता है और तण्डुल का भी पता है। वे स्थूल - तुष को छोड तण्डुल खाते हैं।]

कुमार ने समझा, मेरा पता लग गया। वह भय के मारे थाली मे विष नही डाल सका और राजा को प्रणाम करके चला गया। उसने यह बात अपने सेवको को सुना कर पूछा—आज तो मेरा पता लग गया। अब कैसे मारूँ ? उन्होने उद्यान जाते समय छिपकर सलाह की और सोचा—एक उपाय है। उन्होने व्यवस्था दी—तलवार को तैयार रख, राज-दरबार मे जाने के समय, अमात्यो के बीच मे खडे हो, राजा को असावधान देख, तलवार का प्रहार कर मारना चाहिये। कुमार ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और दरबार के समय तलवारबद्ध होकर वहाँ जा इधर-उधर राजा पर प्रहार करने का अवसर खोजने लगा। उस समय राजा ने दूसरी गाथा कही —

या मन्तना अरञ्ञस्मि या च गामे निकण्णिका,
यञ्चेतं इतिचिति च एतम्पि विदित मया ॥२॥

[जो जगल मे मन्त्रणा हुई और जो गाँव मे काना-फूसी हुई तथा यह जो इधर-उधर अवसर ढूँढता है यह भी मुझे मालूम हो गया।]

कुमार समझ गया कि पिता मेरे वैरी-भाव को जानता है। उसने भाग कर सेवको से कहा। उन्होने सात-आठ दिन बीतने पर कहा—पिता तुम्हारे वैरी होने को नही जानता। तुम अन्दाजे से ही ऐसा समझते हो। उसे मारो। वह एक दिन तलवार ले सीढियो के ऊपर कमरे के द्वार पर खडा हुआ। राजा ने सीढियो के शिखर पर खडे हो तीसरी गाथा कही —

धम्मेन किर जातस्स पिता पुत्तस्स मक्कटो,
दहरस्सेव सन्तस्स दन्तेहि फलमच्छिदा ॥३॥

[बन्दर-पिता ने धर्म से पैदा हुए अपने पुत्र से यह आशङ्का होने के कारण कि वह यूथ-पति हो जायगा, बाल-काल मे ही दाँतो से बधिया कर दिया।]

कुमार ने समझा पिता मुझे पकडवाना चाहता है। वह डर के मारे भागा और सेवको से जाकर कहा कि पिता ने मुझे धमकाया है। उन्होने आधा-महीना बीत जाने के बाद कहा—कुमार ! यदि राजा तुझे जान जाता तो इतने दिन सहन न करता। उसने अन्दाजे से ही कहा है। उसे मार। वह एक दिन तलवार ले ऊपर महल मे शयनागार के अन्दर घुस पलग के नीचे लेट रहा कि आते ही उस पर प्रहार करूँगा। राजा ने शाम का

भोजन कर 'लेटूंगा' कह सेवक-जन को विदा किया और शयनागार मे प्रवेश कर बरामदे मे ही खड़े हो चौथी गाथा कही —

यमेत परिसप्पसि अजकाणोव आसये,
योपायहेट्ठतो सेसि एतम्पि विदित मया ॥४॥

[यह जो सरसो के खेत मे कानी बकरी की तरह भय से इधर से उधर सरकता है और यह जो नीचे लेटा है—यह भी मुझे ज्ञात है ।]

कुमार ने सोचा, पिता को मेरा पता लग गया है, अब मुझे नष्ट करवायेगा । उसने भयभीत हो, पलग के नीचे से निकल, राजा के पैरो मे तलवार रख दी और चरणो मे साष्टाग लेट गया—देव ! क्षमा करे । राजा ने उसे धमकाया—तू समझता है कि मेरी करतूत को कोई नही जानता । उसने उसे जजीर से बधवा, कैदखाने मे डलवा दिया और उस पर पहरा बिठवा दिया । तब राजा ने बोधिसत्व का गुण समझा । राजा आगे चलकर मर गया । उसका शरीर-कृत्य करने के बाद कुमार को कैदखाने से निकाल राज्य पर बिठाया गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला "महाराज ! इस प्रकार पुराने पण्डित लोग सशकित विषय मे आशङ्का करते थे" कह यह बात समझाई । ऐसा कहने पर भी राजा ने ध्यान नही दिया । शास्ता ने जातक का मेल बिठाया । उस समय तक्षशिला मे प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था ।

३३९. बावेरु जातक

"अदस्सनेन मोरस्स " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय नष्ट लाभ-सत्कार तैर्थिको के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध के उत्पन्न होने से पहले तैर्थिको को लाभ और यश की प्राप्ति थी, बुद्ध के उत्पन्न होने पर उनका लाभ और यश जाता रहा, उनकी दशा

ऐसी ही हो गई जैसी सूर्य्य के उदय होने पर जुगनुओ की। उनके इस समाचार के बारे मे धर्मसभा मे बातचीत चली। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे थे? 'अमुक बातचीत।' "न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी जब तक गुणवान् पैदा नही हुए, तभी तक गुण-हीनो को श्रेष्ठ लाभ और श्रेष्ठ यश मिलता रहा। गुणवानो के पैदा होने पर गुण-हीनो का लाभ सत्कार जाता रहा।"

इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व मोर की योनि मे पैदा हो, बड़े होने पर विशेष सुन्दर हो जङ्गल मे विचरने लगे। उस समय कुछ बनिये दिशा-कौआ[1] ले कर जहाज से बावेरु[2] राष्ट्र गये। उस सम्य बावेरु राष्ट्र मे पक्षी नही होते थे। उस राष्ट्र के जो-जो निवासी आते उस कौवे को पिंजरे मे पड़ा देख कहते—इसकी चमडी के वर्ण को देखो। गले तक चोच है। मणि की गोलियो जैसी आँखें हैं। इस प्रकार कौवे की प्रशसा करते हुए उन्होने उन व्यापारियो से कहा—आर्यो! यह पक्षी हमे दे दो। हमे भी इसकी जरूरत है। तुम्हे अपने राष्ट्र मे दूसरा मिल जायगा।

"तो कीमत देकर ले लो।"

"पाँच कार्षापण लेकर दे दें।"

"न देंगे।"

इस प्रकार क्रमश बढाने पर सौ कार्षापण तक पहुँचे। 'हमारे लिये यह बहुत काम का है, लेकिन खैर तुम्हारी मैत्री का ख्याल है' कह सौ कार्षापण लेकर दे दिया।

उन्होने उसे सोने के पिंजरे मे रख नाना प्रकार के मछली-मास तथा फलाफल से पाला। दूसरे पक्षियो के न होने के कारण यह दुर्गुणो से युक्त कौवा भी श्रेष्ठ लाभी हुआ। अगली बार वे बनिये एक मोर को जो चुटकी बजाने पर आवाज लगाता और ताली बजाने पर नाचता, सिखा-पढा कर

---

१. (स्थल की) दिशा जानने के लिये जहाज पर जो कौआ रखा जाता था।

साथ ले गये। वह जनता के इकट्ठा हो जाने पर, नौका की धुर पर खडा हो, परो को झाड, मधुर-स्वर से आवाज लगाता हुआ नाचा। मनुष्यो ने प्रसन्न हो कहा—आर्यो! यह सुन्दर सुशिक्षित पक्षी-राज हमे दो।

"पहले हम कौवा लेकर आये, वह ले लिया। अब एक मोर-राज लेकर आये वह भी लेना चाहते हो। तुम्हारे राष्ट्र मे पक्षी लेकर आना ही कठिन है।"

आर्यो! जो भी हो। अपने राष्ट्र मे दूसरा मिल जायगा। यह हमे दें।" उन्होने कीमत बढाकर उसे हजार मे लिया।

उसे सात रत्नो के सुन्दर पिंजरे मे रख, मछली-मास, फलादि तथा मधु-खील और शर्बत से पाला। मोर-राज को श्रेष्ठ लाभ और यश मिला। जब से वह पहुँचा तब से कौवे का लाभ-सत्कार घट गया। कोई उसकी ओर देखना भी नही चाहता था। कौवे को जो खाना-भोजन नही मिला, तब वह 'का, का' चिल्लाता हुआ जाकर कूडा-कर्कट गिराने की जगह पर उतरा। शास्ता ने दो गाथायें मिला, अभि-सम्बुद्ध होने पर ये दो गाथायें कही —

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुभाणिनो,
काक तत्थ अपूजेसु मसेन च फलेन च ॥१॥
यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा,
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ ॥२॥
याव नुप्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभङ्करो,
ताव अञ्ञे अपूजेसु पुथु समणब्राह्मणे ॥३॥
यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्म अदेसयि,
अथ लाभो च सक्कारो तित्थियान अहायथ ॥४॥

[जब तक मधुर-भाषी, शिखी मोर नही देखा तब तक वहाँ माँस और फल से कौवे की पूजा हुई ॥१॥ जब स्वर-युक्त मोर बावेरु राष्ट्र पहुँचा, तो कौवे का लाभ सत्कार घट गया ॥२॥ इसी तरह जब तक प्रभङ्कर धर्म-राज पैदा नही हुए तब तक अनेक दूसरे श्रमण-ब्राह्मणो की पूजा हुई, लेकिन जब स्वर-युक्त बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया तो तैर्थिको का लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।]

यह चार गाथायें कह जातक का मेल बैठाया। उस समय कौवा निगण्ठ नाथ पुत्र (निर्ग्रन्थ ज्ञाति-पुत्र) था। मोर राजा तो मैं ही था।

३४०. विसय्ह जातक

'अदासि दानानि ' यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अनाथ-पिण्डिक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त खदिरङ्गार जातक[1] मे आ ही गई है। इस कथा मे शास्ता ने अनाथ-पिण्डिक को सम्बोधन कर "हे गृहपति ! पुराने पण्डितो ने शक्र के आकाश मे खडे हो कर 'दान मत दो' कहने को अस्वीकार करके भी दान दिया" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड धन के मालिक विसय्ह नाम के सेठ हुए। वह पाँच शीलो से युक्त था और स्वभाव का दानी। वह चारो नगर-द्वारो पर, नगर के मध्य मे तथा अपने दरवाजे पर छ जगहो पर दानशालायें बनवा दान देता। प्रति दिन छ लाख खर्च करता। उसके सारे जम्बुद्वीप को उद्वेलित कर दान देने से, दान के प्रताप से, शक्र का भवन काँप उठा। देवेन्द्र का पाण्डु (-वर्ण) कम्बल-शिलासन गर्म हो उठा।

शक्र सोचने लगा—कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है? उसने देखा कि यह विसय्ह नाम का महासेठ ही है जो अत्यधिक पैर फैलाकर सारे जम्बू-द्वीप मे हलचल मचाता हुआ दान देता है। सम्भव है इस दान के प्रताप से मुझे च्युत कर स्वय शक्र हो जाय। उसने सोचा—मैं

---

१. खदिरङ्गार जातक (४०)।

इसके धन का नाश कर इसे दरिद्र बनाऊँगा। जिसमे यह दान न दे सके। तब, उसने उसका सारा धन-धान्य, तेल, मधु, शक्कर, और तो और दास, नौकर-चाकर आदि भी अन्तर्धान कर दिये। दान-प्रबन्धको ने आकर कहा—स्वामी, दान-शालाएँ खाली हो गई, जहाँ जो रखा था कही कुछ नही दिखाई देता।

दान-उच्छेद मत होने दो, खर्चा यहाँ से ले जाओ, कह उसने भार्य्या को बुलाकर कहा—भद्रे, दान चालू कराओ।

उसने सारा घर खोजा। जब उसे आधे मासे भर भी कही कुछ न दिखाई दिया, तो बोली—आर्य्य, जो वस्त्र हम पहने हैं उन्हे छोड कही कुछ नही दिखाई देता। सारा घर खाली है। सात रत्नो से भरे कोठो के द्वार खुलवाने पर भी कुछ न दिखाई दिया। सेठ और उसकी भार्य्या को छोड दूसरे दास, नौकर-चाकर भी नही दिखाई दिये।

महासत्व ने फिर भार्य्या को सम्बोधित किया—भद्रे! दान नही बन्द किया जा सकता। सारे घर मे खोजकर कुछ अवश्य निकालो।

उसी समय एक घसियारा दराँती, बहँगी और घास बाँधने की रस्सी दरवाजे के अन्दर फेककर भाग गया। सेठ की भार्य्या ने वही लाकर दी—स्वामी! इन्हे छोड घर मे और कुछ नही दिखाई देता। महासत्व ने कहा—भद्रे! इससे पहले मैंने कभी घास नही काटी है। लेकिन आज घास छील कर, लाकर, वेचकर, यथायोग्य दान दूँगा। वह दान देना बन्द न हो, इस डर से दराँती, बहँगी और रस्सी ले नगर से निकल घास की जगह पर गया। वहाँ घास छील, दो ढेरियाँ बाँध, बहँगी पर रखकर यह सोच नगर मे बेचने के लिये लाया कि एक हिस्से का दाम हमारे लिए होगा और दूसरे हिस्से के दाम से दान देंगे। नगर द्वार पर घास बेचने से उसे जो मासक मिले उनका एक हिस्सा उसने याचको को दे दिया। याचक बहुत थे। उनके 'मुझे भी दे' चिल्लाने पर दूसरा हिस्सा भी देकर भार्य्या सहित वह उस दिन निराहार ही रहा।

इस प्रकार छ दिन बीत गये। सातवें दिन जब वह घास ला रहा था, निराहार रहते तथा अति सुकुमार होने के कारण माथे पर सूर्य्यातप के लगते ही उसकी आँखें चकरा गईं। वह होश न सँभाले रख सका और घास को

बिखेर, गिर पड़ा। शक्र उसकी करनी को देखता हुआ विचरता था। उसी क्षण उसने आकाश में खड़े हो पहली गाथा कही —

अदासि दानानि पुरे विसय्ह,
ददतो च ते खयधम्मो अहोसि।
इतो परञ्चे न ददेय्य दान,
तिट्ठेय्यु ते सयमन्तस्स भोगा॥

[विसय्ह! तूने पूर्व समय से दान दिये है। दान देते-देते तेरे धन का क्षय हो गया है। यदि भविष्य मे दान देना छोड दे तो (दान देने से) सयत रहने पर तेरा सब धन तुझे प्राप्त हो जाय।]

महासत्व ने उसकी बात सुनकर पूछा—तू कौन है?

"मैं शक्र हूँ।"

"शक्र तो स्वय दान देकर, शील का पालन कर, उपोसथ-कर्म कर, सात व्रतो की पूर्तिकर, शक्रत्व को प्राप्त हुआ। लेकिन तू तो अपने ऐश्वर्य्य के कारण दान को रोक रहा है। यह अनार्य-कृत्य है?"

इतना कह तीन गाथायें कही —

अनरियमरियेन सहस्सनेत्त,
सुदुग्गतेनापि अकिच्चमाहु।
मा वो धनं त अहु देवराज,
य भोगहेतु विजहेमु सद्ध॥१॥
येन एको रथो याति याति तेन परो रथो,
पोराण निहित वट्ट वत्ततञ्जेव वासव॥२॥
यदि हेस्सति दस्साम असन्ते किं ददामसे,
एव भूतापि दस्साम मा दान पमदाम्हसे॥३॥

[हे सहस्रनेत्र! दरिद्रता को प्राप्त हुए आर्य के लिये भी यह उचित नही कि वह अनार्य-कर्म करे। हे देवराज! जिस धन को भोगने के लिये (दान) श्रद्धा का त्याग करना पडे, वह धन ही न रहे॥१॥ जिस (मार्ग) मे एक रथ जाता है, उसीसे दूसरा रथ जाता है। हे वासव! यह पुराना (दान का) रास्ता चलता ही रहे॥२॥ जब तक पास होगा देगें, न होने पर क्या देंगे? ऐसी अवस्था होने पर भी देंगे। दान मे प्रमादी न बनाइये।]

शक्र जब उसे रोक न सका, तो पूछा—दान किस लिये देता है ?

"न शक्रत्व की इच्छा है, न ब्रह्मत्व की, मैं तो सर्वज्ञता की प्रार्थना करता हुआ दान देता हूँ।"

शक्र ने उसकी बात सुन प्रसन्न हो उसकी पीठ पर हाथ फेरा। बोधिसत्व का शरीर उसी क्षण भोजन खाये हुए के शरीर की भाँति भर गया। शक्र के प्रताप से उसका सारा धन भी पूर्ववत् हो गया। तब शक्र उसे अपरिमित धन दे और दान देने के लिये प्रेरित कर अपने निवासस्थान को गया। वह कहता गया—महासेठ! अब से तू प्रति दिन बारह-बारह हजार का दान दे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सेठ की भार्य्या राहुल-माता थी। विसय्ह तो मैं ही था।

चौथा परिच्छेद

५. चूलकुणाल वर्ग

३४१. किन्नरी जातक

"नरानमारामकरासु" इस जातक की विस्तृत कथा कुणाल जातक[1] मे आयेगी।

३४२. वानर जातक

"असक्खि वत अत्तान" यह शास्ता ने वेळुवन मे रहते समय देवदत्त के वध करने के प्रयत्न के बारे मे कही। कथा पूर्व मे आ ही चुकी है[2]।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश मे बन्दर की योनि मे पैदा हो, बडे होने पर गङ्गा-तट पर रहने लगा।

तब गङ्गा मे रहने वाली एक मगरमच्छनी ने बोधिसत्व का हृदय मास खाने का दोहद उत्पन्न कर मगरमच्छ से कहा। उसने उस बन्दर को पानी मे डुबा, मार, हृदय-मास मगरमच्छनी को देने का विचार कर बोधिसत्व से कहा—मित्र, आ द्वीप मे आम खाने चलें।

---

१ कुणाल जातक (५३६)।

२ सुसुमार जातक (२०८), वानरेन्द्र जातक (५७)।

"मैं कैसे जा सकूँगा ?"

"तुझे अपनी पीठ पर बिठा कर ले जाऊँगा।"

वह उसके मन की वात न जानने के कारण उछलकर पीठ पर जा वैठा। मगरमच्छ ने थोडी दूर जा डुबकी लगाना आरम्भ किया।

बन्दर ने उसे पूछा—भो! क्यो मुझे पानी मे डुबाते हो?

"मैं तुझे मार कर तेरा हृदय-मास अपनी भार्य्या को दूँगा।"

"तू भी मूर्ख है जो समझता है कि मेरा हृदय-मास मेरी छाती मे है।"

"तो तूने कहाँ रखा है?"

"उस गूलर के पेड पर लटकता हुआ नही दिखाई देता?"

"देखता हूँ, लेकिन तू मुझे देगा?"

"हाँ, दूगा।"

मगरमच्छ जड-बुद्धि होने के कारण उसे ले नदी-तट पर गूलर के वृक्ष के नीचे पहुँचा। बोधिसत्व ने उसकी पीठ पर से छलाग मार गूलर के पेड पर बैठ थे गाथायें कही —

> मसक्खि वत अत्तान उद्धातु उदका थल,
> नवानाह पुन तुम्ह वस गच्छामि वारिज ॥१॥
> अलमेतेहि अम्बेहि जम्बूहि पणसेहि च,
> यानि पार समुद्दस्स वरं मय्ह उदुम्बरो ॥२॥
> यो च उप्पतित अत्थ न खिप्पमनुबुज्झति,
> अमित्तवसमन्वेति पच्छा च अनुतप्पति ॥३॥
> यो च उप्पतित अत्थ खिप्पमेव निबोधति,
> मुच्चते सत्तुसम्बाधा न च पच्छानुतप्पति ॥४॥

[हे मगरमच्छ! मैं अपने आप को पानी से स्थल पर लाकर बचा सका हूँ अब मैं फिर तेरे वश मे नही आऊँगा ॥१॥ जो आम, जामुन तथा पणस समुद्र (गङ्गा) पार है उनकी मुझे अपेक्षा नही। मेरे लिये गूलर ही अच्छा है ॥२॥ जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही नही समझ लेता है, वह शत्रु के वशी-भूत हो पीछे अनुताप को प्राप्त होता है ॥३॥ जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के हाथ से बच निकलता है और उसे पीछे पछताना नही होता ॥४॥]

इस प्रकार इन चार गाथाओ द्वारा उसने लौकिक-कृत्यो की सफलता का कारण कहा और फिर वन-खण्ड को ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगरमच्छ देवदत्त था। बन्दर तो मैं ही था।

३४३. कुन्तिनी जातक

"अवसिह्य यवागारे" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल नरेश के घर मे रहने वाले एक क्रौञ्च-पक्षी के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह राजा की दूतिनी थी। दो उसके बच्चे भी थे। राजा ने उसे सन्देसा देकर एक राजा के पास भेजा। उसके चले जाने पर राज-कुल के बच्चो ने उन बच्चो को हाथो से मसलकर मार डाला। उसने आकर उन्हे मरा देख, पूछा—मेरे बच्चो को किसने मार डाला ?

"अमुक ने, और अमुक ने।"

उस समय राजकुल मे एक पोसा हुआ व्याघ्र था, कठोर, परुष, बँधा हुआ ही रहता। वे बच्चे उसे देखने गये। वह भी उनके साथ साथ गई और यह सोच कि जैसे इन्होने मेरे बच्चे मार डाले, मैं भी वैसा ही करूँगी, उसने उन बच्चो को व्याघ्र के सामने फेंक दिया। व्याघ्र ने तोड-मरोड खा डाला। वह अब मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया, सोच, उडकर हिमालय को चली गई। इस बात को सुन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! राजकुल मे क्रौञ्च-पक्षी, जिन्होने उसके बच्चे मारे उन बच्चो को व्याघ्र के पैरो मे फेंक हिमालय गई। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, केवल अभी नही। पहले भी यह अपने बच्चो को मारने वाले लडको को व्याघ्र के सामने फेंक हिमालय हो चली गई थी।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे बोधिसत्व धर्मानुसार न्याय से राज्य करते थे। उसके घर मे एक क्रौञ्च-पक्षी सन्देश ले जाने वाली थी। (सभी पूर्व सदृश हो, यह विशेष बात है) उसने बच्चो को मरवा डालने के बाद सोचा—अब मैं यहाँ नही रह सकती हूँ। जाऊँगी। राजा को बिना सूचित किये ही जाऊगी। लेकिन उसने (फिर) सोचा राजा को कहकर ही जाऊँगी। वह राजा के पास जा, एक ओर खडी होकर बोली —

'स्वामी! तुम्हारी ला-परवाही से लडको ने मेरे बच्चे मार दिये। मैंने भी क्रोध के वशीभूत हो उन बच्चो को मरवा डाला। अब मैं यहाँ नही रह सकती।"

उसने पहली गाथा कही—

अवसिम्हा तवागारे निच्च सक्कतपूजिता,
त्वमेवदानिमकरि हन्द राज वजाम्ह ॥१॥

[तेरे घर मे नित्य सत्कृत तथा पूजित होकर रही। अब तू ही मेरे जाने का कारण हुआ। हन्त! राजन! अब मैं जाती हूँ।]

राजा ने दूसरी गाथा कही —

यो वे कते पटिकते किब्बिसे पटिकिब्बिसे,
एवन्त सम्मति वेर वस कुन्तिनी मा गम ॥२॥

[जो समझता है कि बुरे कर्म के बदले मे बुरा कर्म किया गया है, उसका वैर शान्त हो जाता है। हे क्रौञ्च-पक्षी रह। मत जा।]

यह सुन क्रौञ्च-पक्षी ने तीसरी गाथा कही—

न कतस्स च कत्ता च मेत्ति सन्धीयते पुन,
हदय नानुजानाति गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥३॥

[दोषी तथा जिसके प्रति दोष किया गया है, उनकी फिर मैत्री नही होती। राजन्! अब मेरा दिल रहने की आज्ञा नही देता। मैं जाती ही हूँ।]

यह सुन राजा ने चौथी गाथा कही —

कतस्स चेव कत्ता च मेत्ति सन्धीयते पुन,
धीरान नो च बालान वस कुन्तिनी मा गम ॥४॥

[दोषी तथा जिसके प्रति दोष किया गया है, उनकी फिर भी मैत्री हो जाती है—किन्तु धीर पुरुषो की, मूर्खों की नही। हे क्रौञ्च-पक्षी! रह। मत जा।]

ऐसा होने पर भी 'स्वामी! मैं यहाँ नही रह सकती' कह राजा को प्रणाम कर वह उडकर हिमालय को ही चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जो क्रौञ्च पक्षी, वही इस समय क्रौञ्च-पक्षी। वाराणसी, राजा तो मैं ही था।

३४४. अम्ब जातक

"यो नीलिय मण्डयति" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक आम-रक्षक स्थविर के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह वृद्धावस्था होने पर प्रव्रजित हो जेतवन की सीमा पर आम्रवन मे पर्णकुटी बनाकर आमो की रखवाली करता हुआ रहता था। गिरे हुए पके आमो को खाता और अपने परिचित मनुष्यो को भी देता। उसके भिक्षाटन के समय आम-चोर आमो को गिरा खाते और ले जाते। उस समय चार सेठ लडकियाँ अचिरवती मे स्नान कर घूमती-घामती उसके आम्रवन मे चली आई। बूढे ने आकर उन्हे देख कहा—तुम मेरे आम खा गई।

"भन्ते! हम अभी आई हैं। हम ने तुम्हारे आम नही खाये।"

"तो कसम खाओ।"

"भन्ते! कसम खाती हैं।"

वृद्ध ने उनसे कसम खिलवा, लज्जित कर विदा किया। उसकी यह करतूत सुन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक वृद्ध ने अपने निवासस्थान आम्रवन मे आई सेठ लडकियो को कसम खिलवा, लज्जित कर विदा किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी भिक्षुओ! इसने पहले भी आम्र-रक्षक हो, सेठ की लडकियो से कसम खिलवा, उन्हे लज्जित कर विदा किया है।"

यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पुर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुय थे। उस समय एक दुष्ट जटाधारी वाराणसी के पास नदी के किनारे आम्रवन मे पर्णकुटी बना कर आमो की रखवाली करता हुआ रहता था। वह गिरे पके आमो को खाता, सम्बन्धी मनुष्यो को देता तथा नाना प्रकार की मिथ्या-जीविकाओ से जीविका चलाता था। उस समय देवराज शक्र लोक मे यह देख रहा था कि कौन हैं जो माता-पिता की सेवा करते हैं, कौन है जो बडो का आदर करते हैं, कौन है जो दान देते हैं, कौन है जो शील की रक्षा करते हैं, कौन हैं जो उपोसथ व्रत करते है, कौन हैं जो प्रव्रजित हो श्रमण-धर्म का ठीक-ठीक पालन करते है, तथा कौन हैं जो दुराचारी हैं? इस प्रकार देखते हुए उसने इन आमो की रखवाली करने वाले दुराचारी, जटाधारी को देखा। और सोचा कि यह दुष्ट जटिल योगाभ्यास आदि अपने श्रमण-धर्म को छोड आम्र-वन की रखवाली करता रहता है। इसे धमकाऊँगा। उसने जिस समय वह भिक्षार्थ गाँव मे गया था अपने प्रताप से आमो को गिराकर ऐसा कर दिया मानो चोर लूट ले गये हो।

उस समय वाराणसी से चार सेठ की लडकियाँ उस आम्र-वन मे घुसी। दुष्ट तपस्वी ने उन्हे देख रोका—तुमने मेरे आम खाये है।

"भन्ते, हम अभी आई है। तुम्हारे आम नही खाए।"

"तो कसम खाओ।"

"कसम खाने से जा सकोंगी ?"

"हाँ जा सकोगी।"

"अच्छा भन्ते" कह उनमे मे ज्येष्ठ ने कसम खाते हुए पहली गाथा कही—

यो नीलिय मण्डयति सण्डासेन विहञ्ञति,
तस्स सा वसमन्वेतु या ते अम्बे अवाहरि ॥१॥

[जो (सफेद बालो को) काले करता है और जो (सफेद बालो को) चिमटी से (उखाडता हुआ) कष्ट पाता है, जिसने तुम्हारे आम लिए हो उसे वैसा पति मिले।]

तपस्वी ने 'तू एक ओर खडी रह' दूसरी सेठ की लडकी से कसम खिलवाई। उसने कसम खाते हुए दूसरी गाथा कही —

वीस वा पञ्चवीस या ऊनतिसव जातिया
तादिसा पतिमालद्धा या ते अम्बे अवाहरि ॥२॥

[बीस, पच्चीस या उनत्तीस वर्ष की ही होने पर उसे पति मिले जिसने तेरे आम लिए हो।]

उसके भी कसम खाकर एक ओर खडी होने पर तीसरी ने तीसरी गाथा कही —

दीघं गच्छतु अद्धानं एकिका अभिसारिया,
सङ्केते पतिमाद्दस या ते अम्बे अवाहरि ॥३॥

[वह अभिसारिका बडी दूरी तक अकेली जाये और जिस जगह सकेत किया हो वहाँ उसे पति न मिले जिसने तेरे आम लिए हो।]

उसके भी कसम खाकर एक ओर खडी होने पर चौथी ने चौथी गाथा कही —

अलङ्कता सुवसना मालिनी चन्दनुस्सदा,
एकिका सयने सेतु या ते अम्बे अवाहरि ॥४॥

[अलकृत हो, अच्छे वस्त्र पहन, माला धारण कर तथा चन्दन का लेप कर वह अकेली शय्या पर सोये, जिसने तेरे आम लिए हो।]

तपस्वी ने उन्हे छोड दिया—तुमने बहुत भारी भारी कसमे खाई है। आम दूसरो ने खाये होगे अब जाओ। शक्र ने भैरव रूप दिखा दुष्ट तपस्वी को वहाँ से भगाया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल विठाया। उस समय दुष्ट तपस्वी यह आम की रखवाली करने वाला बूढा था। चारो सेठ की लड़कियाँ यही थी। देवराज शक्र तो मैं ही था।

३४५ गजकुम्भ जातक

"वन यदग्गि दहति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक आलसी भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र (बुद्ध-) शासन मे हृदय से प्रव्रजित होकर भी आलसी था। (बुद्धवचन का) पाठ करने मे, जिज्ञासा मे, उचित रूप से सोचने मे तथा कर्त्तव्य पालन मे (सीमा से) बाहर था। वह नीवरणो (चित्त-मलो) से अभिभूत था और बैठने-उठने आदि मे जहाँ का तहाँ रहता था। उसके उस आलसीपन के बारे मे धर्मसभा मे बातचीत चली—आयुष्मानो, अमुक भिक्षु इस प्रकार के कल्याणकारी (बुद्ध) शासन मे प्रव्रजित होकर भी आलसी बन, नीवरणो से युक्त हो विचरता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी भिक्षुओ, यह पहले भी आलसी ही था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका मन्त्री-रत्न था। वाराणसी राजा आलसी था। बोधिसत्व उसको शिक्षा देने के उद्देश्य से एक उपमा की खोज मे थे।

एक दिन राजा अमात्यो सहित उद्यान मे विहार कर रहा था। उस समय उसने एक गजकुम्भ नामक आलसी (जन्तु) देखा। उस प्रकार के आलसी (जन्तु) सारा दिन चलते रहने पर भी एक दो अगुल मात्र जाते हैं। राजा ने उसे देख बोधिसत्व से पूछा—मित्र ! यह कौन जन्तु है ?

बोधिसत्व ने उत्तर दिया —महाराज ! यह गजकुम्भ नाम का आलसी (जन्तु) है। इस तरह का आलसी (जन्तु) सारे दिन चलते रहने पर भी एक दो अगुल मात्र जाता है।

फिर बोधिसत्व ने उस गजकुम्भ से बात करते हुए पूछा—भो गजकुम्भ ! तुम्हारी चाल इतनी सुस्त है, इस जगल मे दावानल उठने पर क्या करोगे ? और पहली गाथा कही —

वन यदग्गि दहित पावको कण्हवत्तनी,
कथ करोसि पचलक एव दन्धपरक्कमो ॥१॥

[हे पचलक ! तू इस प्रकार मन्द पराक्रमी है। वन को जो आग= पावक=कृष्णवर्तनी जला देती है, उसके लगने पर तू कैसे करेगा ?]

यह सुन गजकुम्भ ने दूसरी गाथा कही—

बहूनि रुक्खछिद्दानि पठव्या विवरानि च,
तानि च नाभिसम्भोम होति नो कालपरियायो ॥२॥

[बहुत से वृक्षछिद्र है तथा पृथ्वी मे विवर हैं। यदि उन तक न पहुँचे, तो मरण हो।]

इसे सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कही —

यो दन्धकाले तरति तरणीये च दन्धति,
सुक्खपण्णव अवकम्म अत्थ भञ्जति अत्तनो ॥३॥
यो दन्धकाले दन्धेति तरणीये च तारयि,
ससीव रत्ति विभज तस्सत्थो परिपूरति ॥४॥

[जो शनै:-शनै काम करने के समय पर जल्दबाजी करता है, और शीघ्रता करने के समय पर आलस्य करता है, वह अपने अर्थ को उसी प्रकार चूर्ण-विचूर्ण कर नष्ट कर देता है जैसे कोई सूखे पत्ते को पैर के नीचे दबाकर (चूर्ण-विचूर्ण कर देता है)। जो शनै -शनै करने के समय शनै -शनै करता है और शीघ्रता करने के समय शीघ्रता करता है, उसका अर्थ उसी प्रकार पूर्णता को प्राप्त होता है जैसे (शुक्ल-पक्ष की) रात को (कृष्णपक्ष की रात से) पृथक करता हुआ चन्द्रमा पूर्णता को प्राप्त होता है।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गजकुम्भ आलसी भिक्षु था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३४६. केसव जातक

"मनुस्सिन्द जहित्वान" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय विश्वस्त-भोजन के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथ-पिण्डिक के घर पाँच सौ भिक्षुओ का नित्य का भोजन बधा था। उसका घर क्या था भिक्षुओ की इच्छा-पूर्ति का स्रोत था, नित्य काषाय वस्त्र से प्रज्वलित रहता और ऋषियो की हवा बहती रहती।

एक दिन राजा ने नगर की प्रदक्षिणा करते समय सेठ के घर भिक्षु-सघ को देखकर सोचा—मैं भी आर्यसघ को नित्य भोजन कराऊँगा। उसने विहार जा, शास्ता को प्रणाम कर पाँच सौ भिक्षुओ को नित्य भोजन दिया जाना निश्चित किया। उस समय से राजा के महल मे नित्य भिक्षा दी जाने लगी। तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित शाली धान का भात होता, किन्तु विश्वास से, स्नेह से अपने हाथ से परोसने वाले न थे। राजा के अफसर दिलाते थे। भिक्षु बैठकर खाना न चाहते थे। नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ले, अपने

अपने सेवको के घर पहुँच, वह उन्हे दे और उनका दिया हुआ रूखा वा सूखा जैसा मिलता वैसा भोजन करते। एक दिन राजा के लिये बहुत से फला-फल लाये गये। राजा ने कहा—भिक्षुसघ को दो। भिक्षुओ ने दानशाला मे पहुँच एक भिक्षु को भी नही देखा। उन्होने राजा से कहा—एक भिक्षु भी नही है।

"अभी तो समय है न ?"

"हाँ समय है। लेकिन भिक्षु तुम्हारे घर से भोजन ले जाकर अपने विश्वस्त सेवको के घरो पर जा, वह भोजन उन्हे दे और उनका दिया हुआ रूखा-सूखा वा श्रेष्ठ जैसा मिला वैसा भोजन ग्रहण करते हैं।"

राजा ने सोचा—हमारा भोजन बढिया होता है। किस कारण से उसे न ग्रहण कर दूसरा ग्रहण करते हैं ? शास्ता से पूछूंगा। उसने विहार जा शास्ता को प्रणाम करके पूछा।

शास्ता ने उत्तर दिया—महाराज, भोजन मे विश्वास ही बडी चीज है। तुम्हारे घर विश्वास उत्पन्न कर, स्नेह पूर्वक भिक्षा देने वालो के न होने से भिक्षु भोजन ले जाकर अपनी-अपनी विश्वस्त-जगह पर खाते हैं। महाराज, विश्वास के समान दूसरा रस नही है। अविश्वासी का दिया हुआ चार प्रकार का मधुर-रस विश्वासी के दिए हुए तक्र की भी बराबरी नही करता। पुराने पण्डितो ने रोग उत्पन्न होने पर राजा द्वारा पाँच वैद्यकुलो की औषधि कराने पर भी स्वस्थ न हो, विश्वस्त जनो के पास जा, बिना नमक का सामाक-नीवार तथा यवागु और बिना नमक के ही पानी मे उबाले पत्ते खाकर स्वास्थ्य लाभ किया है—

फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशीराष्ट्र मे ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। उसका नाम रक्खा गया कल्प कुमार। वह बडा होने पर तक्षशिला जा सब विद्यायें सीख आगे चलकर ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ। उस समय केशव नामक तपस्वी पाँच सौ तपस्वियो का शास्ता बन हिमालय मे रहता था। बोधिसत्व उसके पास जाकर

पाँच सौ शिष्यो मे प्रधान शिष्य हो रहने लगा। केशव तपस्वी का आशय मैत्री तथा स्नेह-पूर्ण था। वे परस्पर अति विश्वासी हो गये।

आगे चलकर उन तपस्वियो सहित केशव तपस्वी नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती आया। वह वाराणसी पहुँच, राजोद्यान मे रह अगले दिन भिक्षार्थ नगर मे प्रविष्ट हो राज-द्वार पर पहुँचा। राजा ने ऋषि-गण को देख, बुला, महल के अन्दर भोजन करा, वचन ले उद्यान मे बसाया। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर केशव तपस्वी ने राजा से विदा चाही। राजा बोला—भन्ते आप बृद्ध है, अभी हमारे पास रहे। तरुण तपस्वियो को हिमालय भेज दें।

उसने अच्छा कह स्वीकार किया और प्रधान-शिष्य के साथ उन तपस्वियो को हिमालय भेज स्वय अकेला रह गया। कल्प भी हिमालय जा तपस्वियो के साथ रहने लगा। केशव बिना कल्प के रहता हुआ उद्विग्न रहने लगा। उसे देखने की इच्छा से उसे नीद न आती। नीद न आने से भोजन ठीक-ठीक न पचता। खून के जुलाब लग गये। तीव्र वेदना होने लगी।

राजा ने पाँच वैद्य परिवारो को ले तपस्वी की सेवा की।

रोग शान्त नही होता था। केशव ने राजा से पूछा—

"क्या चाहते हो मैं मर जाऊँ अथवा स्वस्थ हो जाऊँ?"

"भन्ते! स्वस्थ होना।"

"तो मुझे हिमालय भेजें।"

"भन्ते, अच्छा' कह राजा ने नारद नाम के अमात्य को बुलाकर कहा—"नारद! हमारे भदन्त को ले वनचरो के साथ हिमालय जाओ।"

नारद उसे वहाँ पहुँचाकर लौट आया। केशव ने भी ज्यो ही कल्प को देखा, उसका चैतसिक-रोग शान्त हो गया और उद्विग्नता जाती रही। कल्प ने उसे बिना नमक के, बिना छौंके, केवल पानी मे उबले पत्तो के साथ सामाक-नीवार-यवागु दिया। उसी क्षण उसके खून के जुलाब बन्द हो गये। राजा ने फिर नारद को भेजा—जा केशव तपस्वी का समाचार ला। उसने जा उसे स्वस्थ देख पूछा—भन्ते! वाराणसी नरेश पाँच वैद्य-परिवारो को लेकर आप की सेवा-सुश्रूषा करता हुआ भी आपको स्वस्थ न कर सका। कल्प ने आपकी सेवा-सूश्रूषा कैसे की?

यह पुछते हुए उसने पहली गाथा कही—

मनुस्सिन्द जहित्वान सब्बकामसमिद्धिनं,
कथ नु भगवा केसी कप्पस्स रमति अस्समे ॥१॥

[सब कामनाओ के पूरा करने मे समर्थ राजा को छोडकर भगवान् केशव कल्प के आश्रम मे कैसे रमण करते है ।]

इस प्रकार दूसरे से बातचीत करते हुए की तरह केशव के मन लगने का कारण पूछा । केशव ने दूसरी गाथा कही —

साधूनि रमणीयानि सन्ति रुक्खा मनोरमा,
सुभासितानि कप्पस्स नारद रमयन्तिम ॥२॥

[सुन्दर, रमणीय तथा मनोहर वृक्ष हैं । और हे नारद ! कल्प के सुभाषित (वचन) मेरे मन को लगाये हैं ।]

इतना कहकर यह भी कहा कि कल्प ने मुझे बिना नमक के बिना छौंके, केवल पानी मे उबले पत्तो के साथ सामाक-नीवार-यवागु पिलाया । उसी से मेरा रोग शान्त हुआ और मैं निरोग हो गया । इसे सुन नारद ने तीसरी गाथा कही —

सालीन ओदन भुञ्जे सुचिमंसूपसेचनं,
कथं सामाकनीवार अलोण छादयन्ति त ॥३॥

[तुम शुद्ध मास के साथ शाली का भात खाते थे । तुम्हें बिना नमक का सामाक-नीवार कैसे अच्छा लगा ?]

इसे सुन के सब ने चौथी गाथा कही—

सादु वा यदि वासादु अप्पं वा यदि वा बहुं,
विस्सट्ठो यत्थ भुञ्जेय्य विस्सासपरमा रसा ॥४॥

[स्वादु हो अथवा अस्वादु, थोडा हो या बहुत, विश्वस्त होकर जहाँ खाया जाता है (वही अच्छा लगता है) । रसो मे विश्वास ही प्रधान है ।]

नारद ने उसकी बात सुन राजा के पास जाकर कहा कि केशव ऐसा कहता है ।

शास्ता ने धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय राजा आनन्द था । नारद सारिपुत्र । केशव बक-महाब्रह्मा । कल्प तो मैं ही था ।

३४७ अयकूट जातक

"सब्बासयकूट　" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय लोकोपकार के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा महाकण्ह जातक[1] मे आयेगी।

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख मे गर्भ धारण किया। बडे होने पर शिल्प सीख, पिता के मरने पर, राजा हो, धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगे।

उस समय मनुष्य देव-पूजक होने के कारण अनेक भेड बकरियो को मार देवाताओ को बलि चढाते थे। बोधिसत्व ने मुनादी कराई कि प्राणियो की हत्या न की जाय। यक्षो को बलि न मिली तो वह बोधिसत्व पर बिगडे। उन्होने हिमालय मे सभा कर एक यक्ष को बोधिसत्व की हत्या करने के लिये भेजा। वह बल्ली जितना बडा जलता हुआ लोहे का टुकडा ले, आकर आधीरात के बाद बोधिसत्व की शैय्या के सिर पर खडा हो गया कि इसके प्रहार से मारूगा। उस समय शक्र का आसन गर्म हुआ। उसने विचार करने पर वह बात मालूम की और इन्द्रवज्र ले आकर यक्ष के ऊपर खडा हो गया। बोधिसत्व ने यक्ष को देख, यह जानने के लिये कि यह मेरी रक्षा करने के लिये खडा है, अथवा मुझे मारने के लिये, उससे बात करते हुए पहली गाथा कही—

सब्बासय　　कूटमतिप्पमाण
पग्गय्ह यो तिट्ठसि अन्तलिक्खे,
रक्खाय म त्व विहितोनुसज्ज
उदाहु मे वायमसे वधाय ॥१॥

---

१ महाकण्ह जातक (४६९)।

[बड़े अयस-कूट को लेकर जो तू अन्तरिक्ष मे खड़ा है सो तू आज मेरी रक्षा के लिये तैयार है अथवा मुझे मारने के लिये ?]

बोधिसत्व यक्ष को ही देखते थे, शक्र को नही। लेकिन यक्ष शक्र के भय से बोधिसत्व पर प्रहार नही कर सकता था। उसने बोधिसत्व की बात सुन उत्तर दिया—महाराज! मैं तुम्हारी रक्षा के लिये नही हूँ किन्तु इस ज्वलित अयस-कूट के प्रहार से तुम्हे मारने के लिये आया हूँ। शक्र के भय से तुम्हे नही मार सकता हूँ। यही बात प्रकट करते हुए उसने दूसरी गाथा कही—

दूतो अहं राजिध रक्खसान
वधाय तुय्हं पहितोहमस्मि,
इन्दो च तं रक्खति देवराजा
तेनुत्तमङ्गं न ते फालयामि॥

[हे राजन्! मैं राक्षसो का दूत हूँ और तुम्हारे वध के लिये भेजा गया हूँ। लेकिन देवराज इन्द्र तुम्हारी रक्षा कर रहा है। इसी से मैं तुम्हारा सिर नही फाड डाल रहा हूँ।]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष दो गाथायें कही—

सचे च म रक्खति देवराजा
देवानमिन्दो मघवा सुजम्पति,
कामं पिसाचा विनदन्तु सब्बे
न सन्तसे रक्खसिया पजाय॥
कामं कन्दन्तु कुम्भण्डा सब्बे पसुपिसाचका
नाल पिसाचा युद्धाय महती सा विभिंसिका॥४॥

[यदि देवराज, देवेन्द्र, मघवा, सुजम्पति मेरी रक्षा करता है तो फिर चाहे सभी पिशाच निनाद करें, राक्षसी प्रजा से मुझे डर नही॥३॥ चाहे सारे कुम्भण्ड (राक्षस) तथा पशु-पिशाच क्रन्दन करें उनकी विभीषिका बडी होने पर भी वे युद्ध के लिये समर्थ नही हैं।]

शक्र ने यक्ष को भगाकर महासत्व को उपदेश दिया—महाराज डरें नही। अब से आपकी रक्षा का भार मुझ पर है। यह कह वह अपने स्थान को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शक्र अनुरुद्ध था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

३४८ अरञ्ञ जातक

"अरञ्ञा गाममागम्म " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रौढ कुमारी के साथ आशक्ति के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा चुल्लनारद कस्सप जातक[1] मे आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने ब्राह्मण-कुल मे जन्म लिया। बडे होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख, भार्य्या के मरने पर पुत्र सहित ऋषि-प्रव्रज्या ली। वह हिमालय मे रहते समय पुत्र को आश्रम मे छोड फल-मूल के लिये जाता।

उस समय चोरो ने सीमा पर के गावो को लूटा था और वे बन्दियो को लिये जा रहे थे। एक कुमारी भाग कर उस आश्रम मे पहुँची। उसने तपस्वी-कुमार को आकर्षित कर उसका शील नष्ट कर कहा—आ चलें।

"मेरा पिता आ जाये, उससे आज्ञा लेकर जाऊँगा।"

"तो आज्ञा लेकर आ" कह वह निकल कर रास्ते मे बैठी। तपस्वी-कुमार ने पिता के आने पर पहली गाथा कही—

अरञ्ञा गाममागम्म किं सील किं वत अहं,
पुरिस तात सेवेय्य त मे अक्खाहि पुच्छितो ॥१॥

[तात! अरण्य से बस्ती मे जाने पर मैं किस शील, किस व्रत वाले पुरुष की सगति करूँ? मैं पूछता हूँ, कहे।]

---

१ चुल्लनारद कस्सप जातक (४७७)।

उसके पिता ने उपदेश देते हुए तीन गाथाये कही—

यो त विस्सासये तात विस्सासञ्च खमेय्यते,
सुस्सूसीच तितिक्खी च त भजेहि इतोगतो ॥२॥
यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कटं,
ओरसीव पतिट्ठाय त भजे हि इतो गतो ॥३॥
हलिद्दराग कपिचित्त पुरिस रागविरागिनं,
तादिस तात मा सेवि निम्मनुस्सम्पिचेसिया ॥४॥

[जो तेरा विश्वास करे और जिसका तू विश्वास कर सके, जो तेरी बात सुनना चाहे और तेरे दोष को सहन कर सके यहाँ से जाने पर ऐसे पुरुष की सगत करना ॥२॥ जो काय, वाणी तथा मन से दुष्कर्म न करता हो, जो औरस-पुत्र की तरह प्रतिष्ठित हो, यहाँ से जाने पर ऐसे पुरुष की सगत करना ॥३॥ हे तात! चाहे कोई मनुष्य न भी मिले तो भी जो हल्दी के रग की तरह अस्थिर हो, जिसका चित्त बन्दर के चित्त की तरह चञ्चल हो, जो थोडी देर मे रागी और थोडी ही देर मे विरागी होता हो, ऐसे पुरुष की सगति मत करना ॥४॥]

यह सुन तपस्वी-कुमार रुक गया, बोला—तात! इन गुणो से युक्त पुरुष मुझे कहाँ मिलेगा। मैं नही जाऊँगा। तुम्हारे ही पास रहूँगा। उसके पिता ने उसे योग-विधि कही। दोनो ध्यान-प्राप्त हो ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पुत्र और कुमारी ये ही थे। तपस्वी तो मैं ही था।

३४९ सन्धिभेद जातक

"नेव इत्थीसु सामञ्ञ " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय चुगल खोरी न करने की शिक्षा के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने जब यह सुना कि पड्वर्गीय भिक्षु चुगली खाते फिरते है तो उन्हे बुलवाकर पूछा—

"भिक्षुओ, क्या तुम सचमुच झगडते हुए, कलह करते हुए, विवाद करते हुए, भिक्षुओ की चुगली खाते फिरते हो ? उससे नये अनुत्पन्न झगडे पैदा हो जाते हैं, पैदा हुए झगडे अधिक बढ जाते है ?"

"हाँ सचमुच ।"

भगवान् ने उनकी निन्दा करते हुए कहा—भिक्षुओ, चुगल-खोरी तीक्ष्ण शस्त्र-प्रहार जैसी होती है, उससे दृढ विश्वास भी शीघ्र टूट जाता है, और उसे लेकर आदमी वैसे ही अपनी मैत्री नष्ट कर देता है जैसे सिंह और बैलो की कथा मे ।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका पुत्र होकर जन्मे । बडे होने पर तक्षशिला मे शिल्प ग्रहण कर पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगे ।

उस समय एक ग्वाला जगल मे गौवें चराकर वापिस लौटते समय एक गाभिन गौ को भूल, उसे जगल मे छोड लौट आया । उसकी एक सिंहनी के साथ दोस्ती हो गई । वे दोनो पक्की दोस्त हो एक जगह चरती थी । आगे चलकर गौ ने बछडे को तथा सिंहनी ने शेर के बच्चे को जन्म दिया । वे दोनो कुलागत मैत्री के कारण पक्के दोस्त हो इकट्ठे रहते थे ।

एक जगली आदमी ने जगल मे दाखिल हो उनकी मैत्री देखी । जब उसने जगल मे पैदा हुआ सामान ले जाकर वाराणसी-राजा को दिया तो उसने पूछा—मित्र ! तू ने जगल मे कोई आश्चर्य्य की बात देखी ?

"देव ! और तो कुछ नही देखा एक सिंह और एक बैल को परस्पर मित्र हो साथ चरते देखा है ।"

"इन मे तीसरा आ मिलने पर विपत्ति आएगी। जब इनमे किसी तीसरे को देखे तो मुझे कहना।"

"देव ! अच्छा।"

जगली आदमी के वाराणसी जाने पर एक गीदड सिंह और बैल की सेवा मे रहने लगा। जगली आदमी ने जगल मे जा उन्हे देख सोचा कि मैं अब तीसरे के आ मिलने की बात राजा से कहूँगा। वह नगर को गया। गीदड ने सोचा—सिंह और बैल के मास को छोड कर दूसरा कोई ऐसा मास नहीं है जो मैंने न खाया हो। इनमे फूट डाल कर इनका मास खाऊँगा। उसने 'यह तुझे ऐसा कहता है, और यह तुझे ऐसा कहता है' कह दोनो मे परस्पर फूट डाल उन्हे ऐसा कर दिया कि शीघ्र ही लडकर मर जायें।

जगली आदमी ने आकर राजा को सूचना दी—देव ! उनमे तीसरा आ मिला है।

"वह कौन है ?"

"देव ! गीदड है"

'वह दोनो मे फूट डाल उन्हे मार डालेगा। हम उनके मरने के समय पहुँचेंगे' कह राजा रथ पर चढ जगली आदमी के बताए मार्ग से चलकर वहाँ उस समय पहुँचा जब वे परस्पर लडकर मर चुके थे। गीदड प्रसन्न-चित्त हो एक बार सिंह का मांस खाता, एक बार बैल का मांस। राजा ने उन दोनो को मरे देख, रथ पर बैठे ही बैठे सारथी से बात-चीत करते हुए यह गाथाएँ कहीं—

> नेव इत्थीसु सामञ्ञ नपि भक्खेसु सारथि,
> अथस्स सन्धिभेदस्स पस्स याव सुचिन्तितं ॥१॥
> असि तिक्खोव मंसम्हि पेसुञ्ञ परिवत्तति,
> यत्थूसभञ्च सीहञ्च भक्खयन्ति मिगाधमा ॥२॥
> इम सो सयन सेति यमिम पस्ससि सारथि,
> यो वाच सन्धिभेदस्स पिसुणस्स निबोधति ॥३॥
> ते जना सुखमेधन्ति नरा सग्गगतारिव,
> ये वाचं सन्धिभेदस्स नावबोधन्ति सारथि ॥४॥

[न इनमे स्त्रियो की समानता है न भोजन की (इस प्रकार कलह का कोई भी कारण उपस्थित नही), इसलिये इस फूट डालने वाले की चतुराई देख। चुगल खोरी तेज तलवार की तरह मास मे घुसती है, इसीलिये अधम-पशु सिह और वृषभ को खाते हैं। सारथी! जो आदमी चुगल-खोर फूट डालने वाले के वचन को सुनता है, वह यह जो तू देखता है इसी अवस्था को प्राप्त होता है। और हे सारथी! जो फूट डालने वाले चुगल खोर की वाणी की ओर ध्यान नही देते वह स्वर्ग-गामी आदमियो की तरह सुख से सोते है।]

राजा गाथायें कह सिह के केसर, चर्म, नख, दाढ आदि लिवा नगर को गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा मैं ही था।

३५०. देवतापञ्ह जातक

"हन्ति हत्थेहि पादेहि " यह देवता-प्रश्नावलि उम्मग्ग जातक[1] मे आयेगी।

---

१. उम्मग्ग जातक (५४६)।

पाँचवाँ परिच्छेद

१ मणिकुण्डल वर्ग

३५१. मणिकुण्डलजातक

"जीनो रथस्स मणिकुण्डले च ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल-राज के अन्त पुर के सर्वार्थसाधक दुष्ट अमात्य के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा पहले कह ही दी गई है।

लेकिन इस कथा मे बोधिसत्व वाराणसी राजा था। दुष्ट अमात्य ने कोशल राज को ला काशी राष्ट्र को जितवा, वाराणसी नरेश को कैद करा कारागार मे डलवाया। राजा ध्यानावस्थित हो आकाश मे पालथी मार बैठा। चोर-राजा का शरीर जलने लगा। उसने वाराणसी नरेश के पास आ पहली गाथा कही—

जीनो रथस्समणिकुण्डले च
पुत्ते च दारेच तथेव जीनो,
सब्बेसु भोगेसु असेसितेसु
कस्मा न सन्तप्पसि सोककाले ॥१॥

[हे राजन! तेरे रथ, अश्व, तथा मणि-कुण्डल जाते रहे और तू पुत्र-दारा से भी रहित हो गया। सभी अशेष भोगो के (जाते रहने पर भी) तू शोक के समय क्यो दुखी नही होता?]

यह सुन बोधिसत्व ने ये दो गाथाये कही —

पुब्बेवमच्चं विजहन्ति भोगा।
मच्चो वा ते पुब्बतरं जहाति,
असस्सता भोगिनो कामकामि
तस्मा न सोचामहं सोककाले ॥२॥
उदेति आपूरति वेति चन्दो
अत्थं तपेत्वान पलेति सूरियो,

विदिता मया सत्तुक लोकधम्मा
तस्सा न सोचामहृ सोककाले ॥३॥

[हे कामकामि ! भोग ही आदमी को पहले ही त्याग देते है, अथवा आदमी ही उन्हे पहले छोड देता है। भोग भोगने वाले अनित्य हैं। इसलिये मैं (औरो के) शोक करने के समय भी शोक नही करता हूँ ॥२॥ हे शत्रुक ! चन्द्रमा उदय होता है, बढता है (फिर क्षय को प्राप्त होता है) वा सूर्य्य भी ससार को तपाकर अस्त होता है, उसी तरह सभी लोकधर्मों को मैं ने (उदयास्त-स्वभाव वाले) जाना है। इसलिये मैं शोक के समय शोक नही करता हूँ ॥३॥

इस प्रकार बोधिसत्व ने चोर-राजा को धर्मोपदेश दे, फिर उसी की निन्दा करते हुए ये गाथायें कही —

अलसो गिही कामभोगी न साधु
असञ्ञतो पब्बजितो न साधु,
राजा न साधु अनिसम्मकारी
यो पण्डितो कोधनो त न साधु ॥४॥
निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,
निसम्मकारिनो रञ्ञो यसो कित्तिञ्च वड्ढति[१] ॥५॥

[आलसी गृहस्थ कामभोगी अच्छा नही। असयमी साधु अच्छा नही। बिना विचारे करने वाला राजा अच्छा नही। जो पण्डित होकर क्रोध करे, वह भी अच्छा नही ॥४॥ क्षत्रिय को विचार कर करना चाहिये, राजा को बिना बिचारे नही करना चाहिये। विचार पूर्वक (काम) करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढती है ॥५॥

चोर राजा बोधिसत्व से क्षमा माँग, (उसे) राज्य सौंप, स्वय जनपद ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय कोशल राजा आनन्द था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

---

१ ये दोनों गाथायें पूर्वोक्त रथलट्ठि जातक (३३२) मे आ चुकी हैं।

३५२. सुजात जातक

"किन्नुसन्तरमानोव " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक गृहस्थ के बारे मे कही, जिसका पिता मर गया था।

क. वर्तमान कथा

वह पिता के मरने पर रोता-पीटता फिरता था। शोक को रोक नहीं सकता था। शास्ता ने उसके स्रोतापत्ति-फल-प्राप्त होने की सम्भावना को देखा तो श्रावस्ती मे भिक्षार्थ घूमते हुए एक श्रमण को साथ लिये उसके घर पहुँचे। वहाँ बिछे आसन पर बैठ, उस उपासक के प्रणाम कर बैठने पर पूछा—उपासक! क्या सोच करता है? "भन्ते! हाँ" कहने पर "उपासक पुराने पण्डितो ने पण्डितो की बात सुन पिता के मरने पर चिन्ता नही की" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व (एक) गृहस्थ के घर मे पैदा हुए। उसका नाम रखा गया सुजात कुमार। उसके बडे होने पर उसका पितामह मर गया। उसका पिता (अपने) पिता के मरने के बाद से शोकाकुल हो गया। उसने श्मशान जा, वहाँ से हड्डियाँ ला, अपने उद्यान मे मिट्टी का स्तूप बनाया। उन हड्डियो को उस स्तूप मे रखा। फिर समय असमय स्तूप की पुष्पो से पूजा करता, चैत्य के चारो ओर चक्कर काटता हुआ रोता-पीटता, न स्नान करता, न (चन्दनादि का) लेप करता, न खाता और न (खेती का) काम देखता।

यह देख बोधिसत्व ने सोचा कि अय्या के मरने के बाद से पिता शोकातुर है। मुझे छोड और कोई इसे नही समझा सकता। एक उपाय

से इसका शोक दूर करूँगा। उसने गाँव के बाहर एक मरा बैल देखा और घास-पानी ले उसके सामने कर 'खा खा, पी पी' कहने लगा। जो कोई आता उसे देख कहता—सुजात! क्या पगले हो? मरे हुए बैल को घास-पानी देते हो? वह कुछ उत्तर न देता। उन्होने उसके पिता से जाकर कहा—तेरा पुत्र पगला गया है। मरे बैल को घास-पानी देता है। यह सुन गृहस्थ का पितृ-शोक जाता रहा, उसकी जगह पुत्र-शोक उत्पन्न हो गया। उसने जल्दी-जल्दी आकर पूछा—"तात सुजात! क्या तू पण्डित नही है? मरे बैल को घास-पानी क्यो देता है?"

यह कह उसने दो गाथायें कही—

किन्नु सन्तरमानोव लायित्वा हरित तिणं,
खाद खादाति विलपि गतसत्तं जरग्गव ॥१॥
नहि अन्नेन पाणेन मतो गोणो समुट्ठहे,
त्वञ्च तुच्छ विलपसि यथा त दुम्मती तथा ॥२॥

[यह क्या जल्दबाज की तरह हरे-घास को लेकर निष्प्राण बूढे बैल के सामने 'खा खा' कह कर विलाप करता है? ॥१॥ अन्न से और पानी से मरा बैल नही जी उठता। तू मूर्ख की तरह बेकार विलाप करता है ॥२॥

तब बोधिसत्व ने दो गाथाये कही—

तथेव तिट्ठति सीस हत्थपादा च वाळधि,
सोता तथेव तिट्ठन्ति मञ्ञे गोणो समुट्ठहे ॥३॥
नेवय्यकस्स सीसं वा हत्थपादा न दिस्सरे,
रुद मत्तिकथूपस्मि ननु त्वञ्ञेव दुम्मती ॥४॥

[उसका सिर वैसे ही है, उसके हाथ-पाँव और पूँछ वैसी ही है तथा उसके कान भी वैसे ही है, इसलिये मैं सोचता हूँ कि (शायद) बैल जी उठे ॥३॥ लेकिन, अय्या का तो न सिर दिखाई देता है, न हाथ-पैर दिखाई देते हैं। क्या तू ही दुमर्ती नही है, जो उसे मिट्टी का स्तूप बना कर रोता है? ॥४॥]

यह सुन बोधिसत्व के पिता ने सोचा, मेरा पुत्र पण्डित है, इहलोक-कृत्य तथा परलोक-कृत्य दोनो जानता है। मुझे समझाने के लिये ही उसने यह कर्म किया है। वह बोला—तात सुजात पण्डित! मैं समझ गया कि

सभी सस्कार अनित्य हैं। पिता का शोक हरण करने वाले पुत्र को ऐसा ही होना चाहिये। यह कह पुत्र की प्रशसा करते हुए कहा —

आदित्त वत म सन्तं घतसित्तंव पावकं,
वारिना विय ओसिञ्च सब्ब निब्बापये दरं॥
अब्बूळहं वत मे सल्ल सोक हदयनिस्सित,
यो मे सोकपरेतस्स पितुसोक अपानुदि॥
सोह अब्बूळहसल्लोस्मि वीतसोको अनाविलो
न सोचामि न रोदामि तव सुत्वान माणव॥
एव करोन्ति सप्पञ्ञा ये होन्ति अनुकम्पका,
विनिवत्तयन्ति सोकम्हा सुजातो पितर यथा॥

[घी पडी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे (हृदय के) दु ख को पानी से अग्नि शान्त कर देने की तरह शान्त कर दे। मेरे हृदय मे लगे हुए शोक-शल्य को निकाल दिया, जो यह मुझ शोकातुर का पितृ-शोक दूर कर दिया। हे माणव! तेरी बात सुनकर मैं शोक-रहित हो गया हूँ, चञ्चलता रहित हो गया हूँ, शल्य-रहित हो गया हूँ। अब मैं न चिन्ता करता हूँ, न रोता हूँ। इस प्रकार जिन प्रज्ञावानो के हृदय मे अनुकम्पा होती है, वे (दूसरो को) शोक से उसी प्रकार मुक्त कर देते हैं जैसे सुजात ने पिता को।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे गृहस्थी स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय सुजात मैं ही था।

३५३ धोनसाख जातक

"नीयद निच्च भवितब्ब" यह शास्ता ने भग्ग (जनपद) मे सुसुमार-गिरि के पास भेसकलावन मे विहार करते समय बोधि-राजकुमार के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय उदयन का बोधि-राजकुमार नाम का पुत्र सुसुमार-गिरि मे रहता था। उसने एक चतुर बढई को बुलवा, कोकनद नाम का एक ऐसा प्रासाद बनवाया जैसा और किसी राजा का न हो। प्रासाद बनवा चुकने पर उसने ईर्ष्या के कारण उस बढई की आँखे निकलवा दी, जिसमे कही वह किसी दूसरे राजा का भी वैसा ही प्रासाद न बना दे। उसकी आँख निकलवा देने की बात भिक्षु सघ मे प्रकट हो गई। भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! बोधि-राजकुमार ने वैसे बढई की आँखें निकलवा दी। ओह! वह कितना कठोर है, परुष है, दुस्साहसिक है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बात चीत' कहने पर 'भिक्षुओ, न केवल अभी यह कठोर, परुष तथा दुस्साहसिक है, न केवल अभी किन्तु पहले भी हजार क्षत्रियो की आँखें निकलवा कर उनके मास की बलि दिलवाई' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तक्षशिला मे प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। जम्बुद्वीप भर के क्षत्रिय-विद्यार्थी तथा ब्राह्मण विद्यार्थी उसी के पास विद्या सीखते थे। वाराणसी-राज के पुत्र ब्रह्म-दत्त कुमार ने भी उसके पास तीनो वेद पढे। वह स्वभाव से कठोर, परुष तथा दुस्साहसी था। बोधिसत्व ने उसके शरीर-लक्षणो से ही उसका कठोर, परुष तथा दुस्साहसिक स्वभाव पहचान उसे उपदेश दिया—तात! तू कठोर, परुष तथा दुस्साहसी है। इस प्रकार के आदमी द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य्य स्थायी नही होता। ऐश्वर्य्य नष्ट होने पर उसे वैसे ही आश्रय नही मिलता जैसे समुद्र मे नौका के नष्ट होने पर। इसलिये ऐसा मत हो। उसने दो गाथायें कही —

> नयिद निच्च भवितब्ब ब्रह्मदत्त,
> खेमं सुभिक्खं सुखताच काये,

अत्थच्चये मा अहु, सम्पमूळ्हो,
भिन्नप्लवो सागरस्सेव मज्झे ॥१॥
यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति,
कल्याणकारी कल्याणं पापकारीच पापकं,
यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फल ॥२॥

[हे ब्रह्मदत्त ! कल्याण, अच्छी पैदावार तथा शरीर का सुख—ये सब सदैव (एकसा) नही रहता। इसलिये जिस प्रकार सागर के मध्य मे नौका टूट जाने पर (आदमी) दिशा-मूढ हो जाता है, उसी प्रकार अर्थ का क्षय होने पर तू भी मूढ न होना ॥१॥ मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उन्हे अपने भोगता है—शुभ-कर्म करने वाला शुभ-फल भोगता है, अशुभ-कर्म करनेवाला अशुभ-फल। जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल पाता है ॥२॥]

वह आचार्य्य को प्रणाम कर, वाराणसी जा, पिता को शिल्प दिखा, युवराज-पद पर प्रतिष्ठित हो, पिता के मरने पर राजा बना। उसका पिङ्गिय नाम का पुरोहित था कठोर, पुरुष। उसने ऐश्वर्य्य के लोभ से सोचा कि, मैं इस राजा द्वारा सकल जम्बुद्वीप के सारे राजा पकडवाऊँ। ऐसा होने पर यह एकछत्र राजा होगा और मैं एक ही पुरोहित। उसने उस राजा को अपनी बात समझाई।

राजा ने बडी भारी सेना के साथ निकल एक राजा के नगर को घेर उसे पकड लिया। इसी प्रकार सारे जम्बुद्वीप के राज्य ले, हजार राजाओ के साथ तक्षशिला का राज्य लेने के लिये वहाँ पहुँचा। बोधिसत्व ने नगर की मरम्मत करा उसे ऐसा बना दिया कि दूसरे उसका ध्वस न कर सकें।

वाराणसी-राज भी गङ्गा नदी के तट पर, बडे वटवृक्ष के नीचे, कनात घिरवा और उस पर चन्दवा तनवा, उसके नीचे शैय्या बिछवाकर रहने लगा। उसने जम्बुद्वीप के हजार राजाओं को जीतकर तक्षशिला को न जीत सकने पर पुरोहित से पूछा—आचार्य्य ! हम इतने राजाओ के साथ आकर भी तक्षशिला नही ले सकते। क्या करना चाहिये ?

"महाराज ! हजार नरेशो की आँखें निकाल, (उन्हे) मार, कोख चीर, पाँच प्रकार का मधुर-मास ले इस वट वृक्ष पर रहने वाले देवता की

बलि दें, आतो की बत्ती से वृक्ष को घेर, लहु के पञ्चङगुली-चिह्न लगायें। इस प्रकार शीघ्र ही हमारी जय होगी।"

राजा ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर कनात के अन्दर महायोधा मल्लो को रखा। फिर एक-एक राजा को बुलवा, दबवा कर बेहोश करवा, आँखें निकलवा (उन्हे) मरवा डाला। मास लेकर लाशें गङ्गा मे बहा दी गई। फिर जैसे कहा गया है वैसे ही बलि चढा, बलि-भेरी बजवा युद्ध के लिये निकला। तब अञ्जिसकत नाम का एक यक्ष आया और राजा की दाहिनी आँख निकाल कर ले गया। बडी वेदना हुई। वह पीडा से बेहोश हो आकर वट-वृक्ष के नीचे बिछे आसन पर चित पडा रहा।

उस समय एक गीध ने एक तीक्ष्ण सिरे वाली हड्डी ले, वृक्ष की शाखा पर बैठ, मास खा गिरा दी। हड्डी की नोक आकर राजा की बाई आँख मे लोहे के काटे की तरह लगी और उसकी आख फोड दी। उस समय उसे बोधिसत्व का वचन याद आया। उसने कहा—मालूम होता है हमारे आचार्य्य ने यह देखकर ही कहा था कि जिस प्रकार बीज के अनुरूप फल होता है, उसी प्रकार कर्मानुरूप विपाक अनुभव करते है। उसने विलाप करते हुए दो गाथाये कही —

इदं तदाचरियवचो पारासरियो तदब्रवि,
मास्सु त्व अकरा पाप य त पच्छा कत तपे ॥३॥
अवमेव सो पिङ्गिय वेनसाखो,
यम्हि घातयिं खत्तियान सहस्से,
अलङ्कते चन्दनसारलित्ते,
तमेव दुक्खं पच्चागत ममं ॥४॥

[यही वह आचार्य्य का वचन है, पाराशर्य (आचार्य्य) ने जो कहा था कि तू पाप न करे जो तुझे पीछे कष्ट दे ॥३॥ हे पिङ्गिय! यही वह विस्तृत शाखाओ वाला वट-वृक्ष है, जहाँ अलकृत तथा चन्दनसार लगाये हुए हजार क्षत्रियो को मार डाला। अब वही दु ख मेरे पास लौट आया है ॥४॥]

इस प्रकार रोते-पीटते उसने पटरानी को याद किया—

सामापि खो चन्दन लित्तगत्ता,
सिङ्गूव सोभञ्जनकस्स उग्गता,

अदिस्वाव कालं करिस्सामि उब्बरिं,
त मे इतो दुक्खतरं भविस्सति ॥५॥

[चन्दन लिप्त गातवाली, सिङ्गु (?) वृक्ष की लता के समान ऊपर उठी हुई शोभायमान (मेरी) श्यामा भार्य्या है। अब मैं उस उब्बरि को बिना देखे ही मर जाऊँगा यह मेरे लिये इससे भी अधिक दुखदायक होगा।]

वह इस प्रकार विलाप करता हुआ ही मरकर नरक मे पैदा हुआ। न वह ऐश्वर्य्य-लोभी पुरोहित ही उसकी रक्षा कर सका, न उसका अपना ऐश्वर्य्य। उसके मरते ही भारी सेनायें तितर-बितर हो भाग गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा बोधिसत्व-राजकुमार था। पिङ्गिय देवदत्त था। प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था।

३५४. उरग जातक

"उरगोव तच जिण्ण" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक ऐसे गृहस्थ के बारे मे कही, जिसका पुत्र मर गया था।

क. वर्तमान कथा

कथा उसकी (कथा) सी ही जिसकी भार्य्या और पिता मर गया था। इस (कथा) मे भी शास्ता वैसे ही उसके घर गये। वह आकर प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने पूछा—आयुष्मान! क्यो क्या चिन्ता करता है?"

"हाँ भन्ते! जब से पुत्र मरा है तब से मैं सोच मे पडा हूँ।"

"आयुष्मान! जिसका टूटने का स्वभाव है वह टूट जाता है, जिसका नष्ट होने का स्वभाव है, वह नष्ट हो जाता है। वह न एक ही को होता है, न एक ही गाँव मे। अनन्त चक्रवालो तथा तीनो-भवो मे एक भी ऐसा नही जिसका मरण न हो। उसी अवस्था मे ठहरने वाला एक भी शाश्वत सस्कार

नही है। सभी प्राणी मरणशील हैं, सस्कार अनित्य है (टूटने वाले) है। पुराने पण्डितो ने भी पुत्रो के मरने पर 'नष्ट होने वाले नष्ट हो गये' सोच चिन्ता नही की।"

यह कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी के द्वार पर के गाँव मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हो कृषी-कर्म से जीविका चलाते थे। उसका पुत्र और पुत्री, दो बच्चे थे। आयु होने पर वह पुत्र के लिये समान-कुल की लडकी ले आया।

दासी के सहित वे छ जने हो गये—बोधिसत्व, भार्य्या, पुत्र, लडकी, पुत्र-बधु और दासी। वे आपस मे बडे मेल से, प्रसन्न-चित्त, प्रेम-पूर्वक रहते थे। बोधिसत्व शेष पाँचो को इस प्रकार उपदेश देते—तुम जो मिले उसमे से दान दो, शील की रक्षा करो, उपोसथ-व्रत रखो, मरण-स्मृति की भावना करो, अपने मरण का ख्याल करो, इन प्राणियो का मरना निश्चित है, जीना अनिश्चित है, सभी सस्कार अनित्य है, क्षय-व्यय स्वभाव वाले हैं। रात-दिन अप्रमादी होकर विचरो।

वे 'अच्छा' कह, उपदेश ग्रहण कर, अप्रमादी हो मरण-स्मृति की भावना करते थे।

एक दिन बोधिसत्व पुत्र के साथ खेत पर जा, हल चला रहे थे। पुत्र कूडा निकाल जला रहा था। उसके पास एक बिल मे विषैला साँप था। धुआँ उसकी आँखो मे लगा। उसने क्रोधित हो, निकल यह सोच कि इसी से मुझे भय है, चारो दाँत गडा कर उसे डस लिया। वह मरकर ही गिर पडा। बोधिसत्व ने लौट उसे गिरा देखा तो बैलो को रोक, जाकर उसे मरा पाया, उठा लाकर एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया और कपडे से ढक दिया। वह न रोया, न चिल्लाया। इस प्रकार अनित्यता का विचार कर कि टूटने के स्वभाव वाला टूट गया, मरण-स्वभाव वाला मर गया, सभी सस्कार अनित्य है, मरण-शील है, वह हल चलाने लगा।

उसने खेत के पास से जाने वाले एक विश्वस्त आदमी को देख कर पूछा—तात ! घर जाते हो ?

"हाँ।"

"तो हमारे घर जाकर ब्राह्मणी को कहना कि आज पूर्व की तरह दो जनो का भोजन न ला एक ही जने का भोजन लाये। पहले अकेली दासी ही भोजन लाती थी, आज चारो-जने शुद्ध वस्त्र पहन, हाथ मे सुगन्धि-फूल लिये आयें।"

उसने 'अच्छा' कह ब्राह्मणी से वैसे ही जा कहा।

"तात ! यह सन्देश तुझे किसने दिया ?"

"आर्ये ! ब्राह्मण ने।"

वह जान गई कि मेरा पुत्र मर गया है, किन्तु उसे कम्पन मात्र भी नही हुआ। इसी प्रकार सुसयत-चित्त वाली वह स्वच्छ वस्त्र पहन हाथ मे सुगन्धि-फूल ले, आहार लिवा बाकियो के साथ खेत पर पहुँची। एक भी न रोई, न चिल्लाई। बोधिसत्व ने जहाँ पुत्र पडा था, वही छाया मे बैठकर खाया। भोजनानन्तर सब ने लकडियाँ ले, चिता पर रख, गन्ध-पुष्पो से पूजा कर आग लगाई। किसी की आँख से एक बूंद भी आँसू नही गिरा। सभी ने मरणानुस्मृति का अभ्यास किया था। उनके शील के तेज से शक्र का भवन गर्म हो गया।

उसने विचार किया—कौन है जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है ? उसे पता लगा कि उनके गुण-तेज से ही उसका महल गर्म हुआ है। वह प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि मुझे इनके पास जा इनसे सिंह-घोषणा करा, सिंह-घोषणा कर चुकने पर इनके घर को सात रत्नो से भर देना चाहिये। वह शीघ्रता से वहाँ पहुंचा और दाह-क्रिया के स्थान पर एक ओर खडा होकर बोला—"तात ! क्या करते हो ?"

"स्वामी ! एक मनुष्य को जला रहे है।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम मनुष्य को नही जला रहे हो, किन्तु एक मृग को मार कर पका रहे हो।"

"नही, स्वामी ! मनुष्य को ही जला रहे हैं।"

"तो किसी बैरी मनुष्य को जला रहे होगे ?"

"स्वामी ! वैरी-पुरुष नही है, ओरस-पुत्र है।"

"तो अप्रिय-पुत्र होगा।"

"स्वामी ! मेरा अति-प्रिय पुत्र है।"

"तो क्यो नही रोते हो ?"

उसने न रोने का कारण कहते हुए पहली गाथा कही—

> उरगोव तच जिण्णं हित्वा गच्छति सतनु
> एवं सरीरे निब्भोगे पेते कालकते सति।
> डय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवित,
> तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥१॥

[जिस प्रकार सर्प अपनी केचुली को छोडकर चला जाता है, उसी प्रकार (प्राणी) अपने शरीर को छोडकर चला जाता है। इस प्रकार भोगहीन शरीर के काल कर जाने पर जब उसे जलाया जाता है तो वह रिश्तेदारो के रोने को नही जानता है। इसलिए मैं इसका सोच नही करता हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥१॥]

शक्र ने बोधिसत्व की बात सुन ब्राह्मणी से पूछा—"माँ ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! दस महीने कोख मे लेकर, स्तन पान करा, हाथ-पाँव ठीक कर पाला-पोसा हुआ पुत्र।"

"माँ ! पिता चाहे पुरुष होने के कारण न रोये, किन्तु माता का हृदय कोमल होता है, तू क्यो नही रोती ?"

उसने न रोने का कारण कहते हुये ये दो गाथायें कही—

> अनब्भितो ततो आग अननुञ्ञातो इतो गतो,
> यथागतो तथागतो तत्थ का परिदेवना ॥१॥
> डय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
> तस्मा एत न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[बिन बुलाये वहाँ से आया, बिना आज्ञा लिये यहाँ से गया। जैसे आया, वैसे चला गया, उसमे अब रोना-पीटना क्या ? ॥१॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारो के रोने-पीटने को नही जानता। इसलिये मैं उसका सोच नही करती हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥२॥]

तब शक्र ने ब्राह्मणी की बात सुन बहन से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा भाई होता था।"

"अम्म ! बहनो का भाई से प्रेम होता है। तू क्यो नही रोती ?"

उसने भी न रोने का कारण कहते हुए ये दो गाथायें कही —

सचे रोदे किसा अस्स तस्सा मे किं फलं सिया,
ञातिमित्तासुहज्जानं भीयो नो अरती सिया ॥१॥
उय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[यदि रोऊँ तो कृष हो जाऊँगी, उससे मुझे क्या लाभ होगा ? हमारे ञाती-मित्र तथा सुहृदो को और भी अरुचि होगी ॥१॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारो के रोने-पीटने को नही जानता। इसलिये मैं उसका सोच नही करती हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥२॥]

शक्र ने बहन की बात सुन उसकी भार्य्या से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या था ?"

"स्वामी ! मेरा पति था।"

"पति के मरने पर स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, अनाथ। तू क्यो नहीं रोती ?"

उसने भी उसे (अपना) न रोने का कारण बताते हुए ये दो गाथायें कही—

यथापि दारकोचन्दं गच्छन्तं अनुरोदति,
एवं सम्पदमेवेतं योपेतमनुसोचति ॥१॥
उय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं,
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[जैसे बालक जाते हुए चन्द्रमा को देख (उसे लेने के लिये) रोता है, वैसा ही उसका आचरण है जो किसी मरे हुए को रोता है ॥१॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारो के रोने-पीटने को नही जानता। इसीलिये मैं उसका सोच नही करती हूँ। वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥२॥]

शक्र ने भार्य्या की बात सुन दासी से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा आर्य ।"

"निश्चय से उसने तुझे पीडित कर पीटकर काम लिया होगा, इसी से तू सोचती है कि अच्छा हुआ यह मर गया, और रोती नही है ।"

"स्वामी ? ऐसा न कहे । यह इनके योग्य नही है । क्षमा, मैत्री तथा दया से युक्त मेरा आर्य-पुत्र हृदय से पाले पुत्र के समान था ।"

"अम्म ! तो तू क्यो नही रोती है ?"

उसने भी अपना न रोने का कारण कहते हुए दो गाथाये कही—

यथापि उदककुम्भो भिन्नो अप्पटिसन्धियो,
एव सम्पदमेवेतं यो पेतमनुसोचति ॥१॥
उय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[जैसे टूटा हुआ पानी का घडा फिर जुड नही सकता (और उसके लिये रोना बेकार होता है) वैसा ही उसका आचरण है जो मरे के लिये रोता है ॥१॥ जलाया जाता हुआ ॥२॥]

शक्र ने सब की धर्म-कथा सुन प्रसन्न होकर कहा "तुमने अप्रमादी हो मरणानुस्मृति का अभ्यास किया है । अब से तुम अपने हाथ से काम न करो । मैं शक्रदेवराज हूँ । मैं घर मे अनन्त सात-रत्न कर दूँगा । तुम दान दो, शील रखो, उपोसथ व्रत करो और अप्रमादी रहो ।" उन्हे उपदेश दे और उनके घर को असीम धन से भर शक्र चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो का प्रकाशन होने पर गृहस्थ स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ । उस समय दासी खज्जुत्तरा थी । लडकी उत्पल-वर्णा थी । पुत्र राहुल था । माता खेमा थी । ब्राह्मण तो मैं ही था ।

तब शक्र ने ब्राह्मणी की बात सुन बहन से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा भाई होता था ।"

"अम्म ! बहनो का भाई से प्रेम होता है । तू क्यो नही रोती ?"

उसने भी न रोने का कारण कहते हुए ये दो गाथायें कही —

सचे रोदे किसा अस्स तस्सा मे कि फल सिया,
ञातिमित्तासुहज्जान भीयो नो अरती सिया ॥१॥
उय्हमानो न जानाति ञातीन परिदेवित,
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[यदि रोऊँ तो कृष हो जाऊँगी, उससे मुझे क्या लाभ होगा ? हमारे ञाती-मित्र तथा सुहृदो को और भी अरुचि होगी ॥१॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारो के रोने-पीटने को नही जानता । इसलिये मैं उसका सोच नही करती हूँ । वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥२॥]

शक्र ने बहन की बात सुन उसकी भार्य्या से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या था ?"

"स्वामी ! मेरा पति था ।"

"पति के मरने पर स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, अनाथ । तू क्यो नही रोती ?"

उसने भी उसे (अपना) न रोने का कारण बताते हुए ये दो गाथायें कही—

यथापि दारकोचन्द गच्छन्त अनुरोदति,
एव सम्पदमेवेत योपेतमनुसोचति ॥१॥
उय्हमानो न जानाति ञातीन परिदेवित,
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[जैसे बालक जाते हुए चन्द्रमा को देख (उसे लेने के लिये) रोता है, वैसा ही उसका आचरण है जो किसी मरे हुए को रोता है ॥१॥ जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारो के रोने-पीटने को नही जानता । इसीलिये मैं उसका सोच नही करती हूँ । वह जो उसकी गति होगी, वहाँ गया ॥२॥]

शक्र ने भार्य्या की बात सुन दासी से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा आर्य ।"

"निश्चय से उसने तुझे पीडित कर पीटकर काम लिया होगा, इसी से तू सोचती है कि अच्छा हुआ यह मर गया, और रोती नही है ।"

"स्वामी ? ऐसा न कहे । यह इनके योग्य नही है । क्षमा, मैत्री तथा दया से युक्त मेरा आर्य-पुत्र हृदय से पाले पुत्र के समान था ।"

"अम्म ! तो तू क्यो नही रोती है ?"

उसने भी अपना न रोने का कारण कहते हुए दो गाथायें कही—

यथापि उदककुम्भो भिन्नो अप्पटिसन्धियो,
एवं सम्पदमेवेतं यो पेतमनुसोचति ॥१॥
उय्हमानो न जानाति ञातीनं परिदेवितं
तस्मा एतं न सोचामि गतो सो तस्स या गति ॥२॥

[जैसे टूटा हुआ पानी का घडा फिर जुड नही सकता (और उसके लिये रोना बेकार होता है) वैसा ही उसका आचरण है जो मरे के लिये रोता है ॥१॥ जलाया जाता हुआ ॥२॥]

शक्र ने सब की धर्म-कथा सुन प्रसन्न होकर कहा "तुमने अप्रमादी हो मरणानुस्मृति का अभ्यास किया है । अब से तुम अपने हाथ से काम न करो । मैं शक्रदेवराज हूँ । मैं घर मे अनन्त सात-रत्न कर दूँगा । तुम दान दो, शील रखो, उपोसथ व्रत करो और अप्रमादी रहो ।" उन्हे उपदेश दे और उनके घर को असीम धन से भर शक्र चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो का प्रकाशन होने पर गृहस्थ स्रोतापत्तिफल मे प्रतिष्ठित हुआ । उस समय दासी खज्जुत्तरा थी । लडकी उत्पल-वर्णा थी । पुत्र राहुल था । माता खेमा थी । ब्राह्मण तो मैं ही था ।

३५५ घत जातक

"अञ्ञेसोचन्ति रोदन्ति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोशल राज के एक अमात्य के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा उक्त कथा के समान ही है। इस (कथा) मे राजा ने अपने उपकारी अमात्य को बहुत-सा ऐश्वर्य दे, (फिर) फूट डालने वालो की बात पर विश्वास कर उसे बँधवा कारागार मे डलवा दिया। उसने वहाँ बैठे बैठे स्रोतापत्ति-मार्ग प्राप्त कर लिया। राजा ने उसके गुणो को याद कर उसे छुडवाया। वह सुगन्धि-माला ले, शास्ता के पास जाकर प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने उसे पूछा—

"तेरे साथ अनर्थ हुआ ?"

"हाँ भन्ते! लेकिन अनर्थ मे से मुझे अर्थ प्राप्त हो गया। स्रोतापत्ति-मार्ग का लाभ हुआ।"

"उपासक! तूने ही अनर्थ से अर्थ की प्राप्ति नही की है, पुराने पण्डितो ने भी अनर्थ से अर्थ की प्राप्ति की है।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख मे गर्भ धारण किया। उसका नाम रखा गया घृत कुमार। वह आगे चलकर तक्षशिला जा, शिल्प सीख धर्मानुसार राज्य करने लगा। उसके अन्त पुर मे एक अमात्य ने दुराचार किया। उसने उसका दोष प्रत्यक्ष देख उसे देश से निकाल दिया।

उस समय श्रावस्ती मे धङ्कराजा राज्य करता था। उसने उसके पास जा उस की सेवा मे रह, अपनी बात मना, वाराणसी राज्य जितवा दिया। उसने राज्य ले बोधिसत्व को जजीर से बँधवा, कारागार मे डलवा दिया। बोधिसत्व

ध्यानारूढ हो आकाश मे पालथी मार बैठे। घङ्क का शरीर जल उठा। उसने जाकर बोधिसत्व के मुँह को देखा। वह सोने के दर्पण की तरह, खिले कमल की तरह शोभा-युक्त था। उसने बोधिसत्व को पूछते हुए यह पहली गाथा कही —

अञ्ञे सोचन्ति रोदन्ति अञ्ञे अस्सुमुखा जना,
पसन्नमुखवण्णोसि कस्मा घत न सोचसि ॥

[हे घृत ! तुझे छोड कर अन्य लोग रोते हैं, अन्यो के मुँह पर आँसू हैं। तेरा मुख-वर्ण-प्रसन्न है। तू क्यो नही रोता है ?]

बोधिसत्व ने उसे अपने न सोचने का कारण कहते हुए शेष गाथायें कही—

नाऽभतीतहरो सोको नानागतसुखावहो,
तस्मा धङ्क न सोचामि नत्थि सोके दुतीयता ॥
सोच पण्डु किसो होति भत्तञ्चस्स न रुच्चति,
अमित्ता सुमना होन्ति सल्लविद्धस्स रुप्पतो ॥
गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले,
ठित म नागमिस्सति एव दिट्ठपदो अह ॥
यस्सत्ता नालमेकोव सब्बकामरसाहरो,
सब्बापि पठवी तस्स न सुख आवहिस्सति ॥

[न तो बीते सुख को ला सकता है, न भविष्यत् के सुख को। शोक किसी प्रकार सहायक (-द्वितीय) नही होता। इसलिये हे धङ्क ! मैं चिन्ता नही करता। चिन्ता करने से पाण्डु-वर्ण हो जाता है, कृषगात्र हो जाता है। चिन्ता करने वाले को भात भी अच्छा नही लगता। शोक-शल्य से दुःख पाने वाले के शत्रु प्रसन्न होते है ॥ हे धङ्क ! मैंने अब वह पद प्राप्त कर लिया है कि चाहे मैं गाँव मे रहूँ, चाहे आरण्य मे रहूँ, चाहे निम्न स्थान मे रहूँ, चाहे स्थल पर रहूँ—कही रहूँ—मेरे पास पाण्डु-वर्ण होना आदि दुःख नही आयेंगे ॥ जिसका अकेला, अपना आप ही उसे सब काम-रस (सुख) नही दे सकता, उसे सारी पृथ्वी भी सुखी नही कर सकती ॥]

धङ्क यह चारो गाथायें सुन, बोधिसत्व से क्षमा माँग, राज्य सौंप, चला गया। बोधिसत्व भी अमात्यो को राज्य सौंप, हिमालय को जा, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यानावस्थित हो, ब्रह्मलोकगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय धङ्क राजा आनन्द था। धूत-राजा तो मैं ही था।

३५६. कारण्डिय जातक

"एको अरञ्ञे " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय धर्म-सेनापति के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर जो जो दुराचारी आते—शिकारी, मछुवे आदि—जिसे जिसे देखते सभी को 'शील लो, शील लो' कह शील देते। वह स्थविर के प्रति आदर का भाव होने से और उनकी आज्ञा का उल्लघन न कर सकने के कारण शील ले लेते, किन्तु शील ग्रहण कर उसकी रक्षा न करते। (शिकार करना, मछली पकडना आदि) अपना काम ही करते। स्थविर ने अपने साथियो को बुलाकर कहा—आयुष्मानो, इन मनुष्यो ने मुझसे शील ग्रहण किये। लेकिन ग्रहण करके उनकी रक्षा नही की।

"भन्ते! आप उनकी अरुचि से उन्हे शील देते हैं। यह आप की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण ग्रहण करते हैं। आप अब से ऐसो को शील न दें।"

स्थविर असन्तुष्ट हो गये। यह समाचार सुन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, आयुष्मान सारिपुत्र जिसे देखते हैं उसे शील देते हैं। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बातचीत।" "न केवल अभी भिक्षुओ, यह पहले भी जिसे देखते उसे बिना माँगे ही शील देते थे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण कर, बडे होने पर तक्षशिला के प्रसिद्ध शिष्य हुए। नाम था कारण्डिय।

उस सयम वह आचार्य्य जिसे जिसे देखते—मछुओ आदि को—बिना मागे ही 'शील लो, शील लो' कह शील देते। वे ग्रहण करके भी नही रखते थे। आचार्य ने वह बात अपने शिष्यो से कही। शिष्यो ने उत्तर दिया—भन्ते! आप इनकी अरुचि से ही शील देते है। इसीलिये शील भङ्ग करते है। अब से मांगने वालो को ही शील दे, बिना मांगे नही। वह असन्तुष्ट हुए। किन्तु ऐसा होने पर भी जिसे जिसे देखते शील दे ही देते।

एक दिन एक गाँव से लोग आये और उन्होने आचार्य्य को पाठ करने के लिये[1] निमन्त्रित किया। उसने कारण्डिय माणव को बुलाकर भेजा—तात! मैं नही जाता हूँ। तू इन पांच सौ ब्रह्मचारियो को ले, वहाँ जा, पाठ समाप्त कर हमारा हिस्सा ले आ।

उसने जा लौटते समय रास्ते मे एक कन्दरा को देख कर सोचा—हमारा आचार्य्य जिसे देखता है, बिना मांगे ही शील दे देता है। अब से ऐसा करूँगा कि वह शील की माग करने वालो को ही शील दे। जिस समय वह ब्रह्मचारी सुख से बैठे थे, उसने उठकर एक बडी शिला उठा कर कन्दरा मे फेंकी। फिर (एक और भी) फेंकी। फिर भी फेंकी।

उन ब्रह्मचारियो ने उठकर पूछा—आचार्य्य! क्या करते हो? वह कुछ नही बोला। उन्होने जल्दी से आकर आचार्य्य से कहा। आचार्य्य ने आकर उसके साथ बातचीत करते हुए पहली गाथा कही—

> एको अरञ्ञे गिरिकन्दराय,
> पग्गय्ह पग्गय्ह सिल पवेज्झसि,
> पुनप्पुन सन्तरमानरूपो,
> कारण्डिय को नु तवयिधत्थो ॥१॥

---

१ ब्राह्मण वाचन-कथा।

[कारण्डिय ! तू अकेला जगल मे पर्वत-कन्दरा पर चढ-चढकर बार-बार बहुत जल्द-बाज की तरह शिला फेंक रहा है, इससे तुझे क्या लाभ है ?]

उसने उसकी बात सुन आचार्य्य को दोषी ठहराने के लिये दूसरी गाथा कही—

अहं हिमं सागरसेवितन्तं,
समं करिस्सामि यथापि पाणि,
विकिरिय सानूनि च पब्बतानि च,
तस्मा सिल दरिया पक्खिपामि ॥२॥

[मैं इस सागर से घिरी पृथ्वी की बालू-पर्वत तथा शिलापर्वतो को बिखेर कर हाथ की हथेली के समान बराबर कर दूँगा। इसीलिये कन्दरा मे शिलाओ को फेंक रहा हूँ ।।२।।]

इसे सुन ब्राह्मण ने तीसरी गाथा कही—

नयिम महिं अरहति पाणिकप्प,
समं मनुस्सो करणायमेको,
मञ्ञामि मञ्ञेव दरिं जिगिस,
कारण्डिय हाहसि जीवलोक ॥३॥

[कारण्डिय ! अकेला मनुष्य इस पृथ्वी को हाथ की हथेली के समान करने मे असमर्थ है। मैं मानता हूँ कि इसी एक कन्दरा को भरने का प्रयत्न करते हुये (तू) जीव-लोक को छोड जायेगा ।।३।।]

यह सुन ब्रह्मचारी ने चौथी गाथा कही—

सचे अयं भूतधर न सक्को,
सम मनुस्सो करणायमेको,
एवमेव त्व ब्रह्मे इमे मनुस्से
नानादिट्ठिके नानयिस्ससि ते ॥४॥

[यदि एक मनुष्य इस पृथ्वी को समान नही कर सकता, तो हे ब्रह्म ! तू भी इन नाना दृष्टि के लोगो को (अपने मत मे) न ला सकेगा।]

इसे सुन आचार्य्य ने सोचा, कारण्डिय ठीक कहता है। अब से ऐसा न करूँगा। उसने 'अपने से विरुद्ध होना' जान पाचवी गाथा कही—

सद्धितरूपेन भव ममत्थं,
अक्खासि कारण्डिय एवमेत,
यथा न सक्का पठवीसमाय,
कातुं मनुस्सेन तथा मनुस्सा ॥५॥

[कारण्डिय ! आपने मुझे सक्षेप से यह बात समझाई कि जिस प्रकार (एक) मनुष्य इस पृथ्वी को समान नही कर सकता, उसी प्रकार कोई (सारे) मनुष्यो को भी ॥५॥]

इस प्रकार आचार्य्य ने ब्रह्मचारी की प्रशसा की। वह भी उसे समझा कर घर ले गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ब्राह्मण सारिपुत्र था, कारण्डिय-पडित तो मैं ही था।

३५७ लट्टुकिक जातक

"वन्दामि त कुञ्जर सट्ठिहायन " यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त कठोर है, परुष है, दुस्साहसी है। प्राणियो के प्रति उसमे करुणा भी नही है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'न केवल अभी, भिक्षुओ यह पहले भी करुणा-रहित ही था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

[कारण्डिय ! तू अकेला जंगल मे पर्वत-कन्दरा पर चढ-चढकर बार-बार बहुत जल्द-बाज की तरह शिला फेंक रहा है, इससे तुझे क्या लाभ है ?]

उसने उसकी बात सुन आचार्य्य को दोषी ठहराने के लिये दूसरी गाथा कही—

अहं हिमं सागरसेवितन्त,
समं करिस्सामि यथापि पाणि,
विकिरिय सानूनि च पब्बतानि च,
तस्मा सिल दरिया पक्खिपामि ॥२॥

[मैं इस सागर से घिरी पृथ्वी को बालू-पर्वत तथा शिलापर्वतो को बिखेर कर हाथ की हथेली के समान बराबर कर दूँगा। इसीलिये कन्दरा मे शिलाओ को फेक रहा हूँ ॥२॥]

इसे सुन ब्राह्मण ने तीसरी गाथा कही—

नयिम महिं अरहति पाणिकप्प,
समं मनुस्सो करणायमेको,
मञ्ञामि मञ्ञेव दरिं जिगिस,
कारण्डिय हाहसि जीवलोक ॥३॥

[कारण्डिय ! अकेला मनुष्य इस पृथ्वी को हाथ की हथेली के समान करने मे असमर्थ है। मैं मानता हूँ कि इसी एक कन्दरा को भरने का प्रयत्न करते हुये (तू) जीव-लोक को छोड जायेगा ॥३॥]

यह सुन ब्रह्मचारी ने चौथी गाथा कही—

सचे अयं भूतधरं न सक्को,
समं मनुस्सो करणायमेको,
एवमेव त्वं ब्रह्मे इमे मनुस्से
नानादिट्ठिके नानयिस्ससि ते ॥४॥

[यदि एक मनुष्य इस पृथ्वी को समान नही कर सकता, तो हे ब्रह्म ! तू भी इन नाना दृष्टि के लोगो को (अपने मत मे) न ला सकेगा।]

इसे सुन आचार्य्य ने सोचा, कारण्डिय ठीक कहता है। अब से ऐसा न करूँगा। उसने 'अपने से विरुद्ध होना' जान पाचवी गाथा कही—

सङ्खित्तरूपेन भवं ममत्थं,
अक्खासि कारण्डिय एवमेतं,
यथा न सक्का पठवीसमायं,
कातुं मनुस्सेन तथा मनुस्सा ॥५॥

[कारण्डिय ! आपने मुझे सक्षेप से यह बात समझाई कि जिस प्रकार (एक) मनुष्य इस पृथ्वी को समान नहीं कर सकता, उसी प्रकार कोई (सारे) मनुष्यो को भी ॥५॥]

इस प्रकार आचार्य्य ने ब्रह्मचारी की प्रशसा की। वह भी उसे समझा कर घर ले गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ब्राह्मण सारिपुत्र था, कारण्डिय-पडित तो मैं ही था।

३५७ लट्टुकिक जातक

"वन्दामि त कुञ्जर सट्ठिहायन " यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

क वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त कठोर है, परुष है, दुस्साहसी है। प्राणियो के प्रति उसमे करुणा भी नही है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'न केवल अभी, भिक्षुओ यह पहले भी करुणा-रहित ही था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हाथी की योनि मे पैदा हुए। बडे होने पर सुन्दर, महान् शरीर वाले हो, अस्सी हजार हाथियो के नेता बन, हिमालय प्रदेश मे रहने लगे।

उस समय एक लटुकिका चिडी ने हाथियो के विचरने की जगह पर अण्डे दिये। अण्डे सेये जाकर उनमे से चोगे बाहर आये। अभी जब उनके पर नही निकले थे, जब वह उड नही सकते थे, उसी समय हजार हाथियों के साथ बोधिसत्व चरते-चरते वहा आ पहुँचे। उसे देख लटुकिका ने सोचा—यह हस्ति-राज मेरे बच्चो को कुचल कर मार देगा। हन्त! मैं इन बच्चो की रक्षा के लिये इससे धार्मिक-याचना करूँ। उसने दोनो पङ्ख जोड उसके आगे खडी हो पहली गाथा कही—

> वन्दामि तं कुञ्जरसट्ठिहायन,
> आरञ्ञक यूथपति यसस्सि,
> पक्खे हि त पञ्जलिक करोमि,
> मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥१॥

[हे आरण्यक! हे यूथपति! हे यशस्वी! हे साठे हाथी! मैं तुम्हे नमस्कार करती हूँ। मैं पङ्खो से तुम्हारे सामने हाथ जोडती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रो का वध मत करो ॥१॥]

बोधिसत्व ने कहा—लटुकिके! मै तेरे पुत्रो की रक्षा करूँगा। तू चिन्ता न कर। वह उन बच्चो के ऊपर खडे हो गये। फिर अस्सी हजार हाथियो के चले जाने पर लटुकिका को सम्बोधित कर कहा—हमारे पीछे एक अकेला हाथी आता है। वह हमारा कहना नही मानता। उसके आने पर उससे भी प्रार्थना कर पुत्रो की रक्षा करना। यह कह चला गया।

उसने उसका स्वागत कर दो पङ्खो से हाथ जोड दूसरी गाथा कही—

> वन्दामि तं कुञ्जरएकचारि
> आरञ्जक पब्बतसानुगोचर,
> पक्खेहि तं पञ्जलिक करोमि
> मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥२॥

[हे आरण्यक ! हे पर्वत-वासी ! हे एकचारी कुञ्जर ! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ । मैं पह्लों से तुम्हारे सामने हाथ जोडती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रो का वध मत करें ।]

उसने उसकी बात सुन तीसरी गाथा कही —

वधिस्सामि ते लटुकिके पुत्तकानि
किं मे तुव काहसि दुब्बलासि,
सत सहस्सानिपि तादिसी न
वामेन पादेन पपोथयेय्य ॥

[लटुकिके ! तू दुर्बल है, मेरा क्या करेगी ? मैं तेरे बच्चो को मारूँगा । तेरे जैसी लाखो को भी मैं बाँये पाँव से कुचल दूँगा ।]

यह कह वह उसके बच्चो को पाँव से चूर्ण-विचूर्ण कर उन्हे अपने मूत्र मे बहा चिंघाडता हुआ चला गया । लटुकिका ने वृक्ष की शाखा पर बैठ— हाथी ! अब तो तू चिंघाडता हुआ जाता है । कुछ दिन मे मेरी क्रिया देखेगा । तू नही जानता है कि शरीर-बल से ज्ञान-बल बढ कर है । अच्छा तुझे जनाऊँगी । उसे धमकाते हुए चौथी गाथा कही —

न हेव सब्बत्थ बलेन किच्च
बल हि बालस्स वधाय होति,
करिस्सामि ते नागराजा अनत्थ
यो मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥

[बल ही सर्वत्र काम नही देता । बल मूर्ख के वध का कारण होता है । हे नागराज ! तूने मुझ दुर्बल के बच्चो को मारा है, मैं भी तेरा अनर्थ करूँगी ।]

यह कह उसने कुछ दिन एक कौवे की सेवा की । कौवे ने प्रसन्न होकर पूछा—तेरे लिये क्या करूँ ?

"स्वामी ! मैं और कुछ नही कराना चाहती, केवल यही आशा करती हूँ कि आप अपनी चोंच से इस अकेले घूमने वाले हाथी की आख फोड दें ।"

उसके 'अच्छा' कह स्वीकार कर लेने पर उसने एक मक्खी की सेवा की । उसके भी 'तेरे लिये क्या करूँ ?' पूछने पर 'इस कौवे द्वारा इस अकेले

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हाथी की योनि मे पैदा हुए। बडे होने पर सुन्दर, महान् शरीर वाले हो, अस्सी हजार हाथियो के नेता बन, हिमालय प्रदेश मे रहने लगे।

उस समय एक लटुकिका चिडी ने हाथियो के विचरने की जगह पर अण्डे दिये। अण्डे सेये जाकर उनमे से चोगे बाहर आये। अभी जब उनके पर नही निकले थे, जब वह उड नही सकते थे, उसी समय हजार हाथियों के साथ बोधिसत्व चरते-चरते वहा आ पहुँचे। उसे देख लटुकिका ने सोचा—यह हस्ति-राज मेरे बच्चो को कुचल कर मार देगा। हन्त! मैं इन बच्चो की रक्षा के लिये इससे धार्मिक-याचना करूँ। उसने दोनो पङ्ख जोड उसके आगे खडी हो पहली गाथा कही—

> वन्दामि त कुञ्जरसट्ठिहायन,
> आरञ्ञक यूथपति यसस्सि,
> पक्खे हि त पञ्जलिक करोमि,
> मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥१॥

[हे आरण्यक! हे यूथपति! हे यशस्वी! हे साठे हाथी! मैं तुम्हे नमस्कार करती हूँ। मैं पङ्खो से तुम्हारे सामने हाथ जोडती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रो का बध मत करो ॥१॥]

बोधिसत्व ने कहा—लटुकिके! मैं तेरे पुत्रो की रक्षा करूँगा। तू चिन्ता न कर। वह उन बच्चो के ऊपर खडे हो गये। फिर अस्सी हजार हाथियो के चले जाने पर लटुकिका को सम्बोधित कर कहा—हमारे पीछे एक अकेला हाथी आती है। वह हमारा कहना नही मानता। उसके आने पर उससे भी प्रार्थना कर पुत्रो की रक्षा करना। यह कह चला गया।

उसने उसका स्वागत कर दो पङ्खो से हाथ जोड दूसरी गाथा कही—

> वन्दामि तं कुञ्जरएकचारि
> आरञ्ञक पब्बतसानुगोचर,
> पक्खेहि त पञ्जलिक करोमि
> मा मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥२॥

[हे आरण्यक ! हे पर्वत-वासी ! हे एकचारी कुञ्जर ! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। मैं पङ्खो से तुम्हारे सामने हाथ जोडती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रो का वध मत करें।]

उसने उसकी बात सुन तीसरी गाथा कही —

वधिस्सामि ते लटुकिके पुत्तकानि
किं मे तुव काहसि दुब्बलासि,
सत सहस्सानिपि तादिसी न
वामेन पादेन पपोथयेय्य ॥

[लटुकिके ! तू दुर्बल है, मेरा क्या करेगी ? मैं तेरे बच्चो को मारूँगा। तेरे जैसी लाखो को भी मैं बाँये पाँव से कुचल दूँगा।]

यह कह वह उसके बच्चो को पाँव से चूर्ण-विचूर्ण कर उन्हे अपने मूत्र मे बहा चिंघाडता हुआ चला गया। लटुकिका ने वृक्ष की शाखा पर बैठ—हाथी ! अब तो तू चिंघाडता हुआ जाता है। कुछ दिन मे मेरी क्रिया देखेगा। तू नही जानता है कि शरीर-बल से ज्ञान-बल बढ कर है। अच्छा तुझे जनाऊँगी। उसे धमकाते हुए चौथी गाथा कही —

न हेव सब्बत्थ बलेन किच्च
बल हि बालस्स वधाय होति,
करिस्सामि ते नागराजा अनत्थ
यो मे वधी पुत्तके दुब्बलाय ॥

[बल ही सर्वत्र काम नही देता। बल मूर्ख के वध का कारण होता है। हे नागराज ! तूने मुझ दुर्बल के बच्चो को मारा है, मैं भी तेरा अनर्थ करूँगी।]

यह कह उसने कुछ दिन एक कौवे की सेवा की। कौवे ने प्रसन्न होकर पूछा—तेरे लिये क्या करूँ ?

"स्वामी ! मैं और कुछ नही कराना चाहती, केवल यही आशा करती हूँ कि आप अपनी चोंच से इस अकेले घूमने-वाले हाथी की आख फोड दे।"

उसके 'अच्छा' कह स्वीकार कर लेने पर उसने एक मक्खी की सेवा की। उसके भी 'तेरे लिये क्या करूँ ?' पूछने पर 'इस कौवे द्वारा इस अकेले

घूमने वाले हाथी की आँख फोड दिये जाने पर, मैं तुमसे चाहती हूँ कि तुम उस जगह पर अण्डा दे देना।' उसने भी 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तब उसने एक मेढक की सेवा की। उसने पूछा—"क्या करूँ ?"

"जब अकेला घूमने वाला हाथी अन्धा हो पानी की खोज करे, तब तुम पर्वत के ऊपर खडे हो आवाज करना और उसके पर्वत पर चढ जाने पर, तुम उतर कर (नीचे) प्रपात मे आवाज लगाना। मैं इतना ही तुमसे चाहती हूँ।"

उसने उसकी बात सुन 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन कौवे ने हाथी की दोनो आँखें चोच से फोड दी। मक्खी ने आकर अण्डे दे दिये। वह कीडो से खाया जाता हुआ, वेदना से व्याकुल हो, पानी खोजता हुआ घूमता था। उसी समय मेढक ने पर्वत के ऊपर खडे हो आवाज दी। हाथी 'यहाँ पानी होगा' समझ पर्वत पर चढा। मेढक ने उतर प्रपात मे खडे हो आवाज लगाई। हाथी 'पानी होगा' समझ प्रपात की ओर जाता हुआ फिसल कर पर्वत के नीचे गिरा और मर गया।

लटुकिका ने उसे मरा जाना, तो प्रसन्न हुई कि शत्रु की पीठ देख ली। वह उसके शरीर पर चल फिर कर यथा-कर्म (परलोक) गई।

"भिक्षुओ! किसी के साथ वैर नही करना चाहिये। इस प्रकार के बलवान हाथी को भी इन चार जनो ने मिलकर मार डाला" कह शास्ता ने निम्नलिखित अभिसम्बुद्ध गाथा कही और जातक का मेल बैठाया —

काकञ्च पस्स लटुकिक मण्डूकनीलमक्खिक,
एते नाग अघातेसु पस्स वेरस्स वेरिन,
तस्मा वेर न कयिराथ अप्पियेनपि केनचि ॥

[वैरियो के वैर की (दुर्गति) देखो—कौवे, लटुकिका, मेढक और मक्खी ने (मिलकर) हाथी मार डाला। इसलिये किसी अप्रिय से भी वैर न करे।]

तब अकेला विचरने वाला हाथी देवदत्त था। हाथियो के समूह का नेता तो मै ही था।

३५८. चुल्लधम्मपाल जातक

"अहमेव दूसिया भूनहता ..." यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बध करने के प्रयत्न के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

दूसरी जातक कथाओ मे देवदत्त बोधिसत्व को त्रास भी नही पहुँचा सका। लेकिन इस चुल्लधम्महाल जातक[1] मे तो सात महीने की अवस्था मे बोधिसत्व के हाथ, पैर, सिर कटवा कर असिमालक बनाया। दद्दर जातक[2] मे गर्दन मरोड कर मार डाला और चूल्हे पर मांस पका कर खाया। खन्ति-वादि जातक[3] मे दो चाबुको से हजार चाबुक मार, हाथ, पाव तथा कान, नाक, काट जटाओ से पकड कर खीचा और चित लिटाकर छाती मे पैर की ठोकर लगा भाग गया। बोधिसत्व ने उसी दिन प्राण त्याग किया। चुल्ल नन्दिय जातक[4] तथा महाकपि जातक[5] मे भी मार ही डाला। इस प्रकार दीर्घकाल तक बध के लिए प्रयत्न करते रह बुद्ध (होने के) समय भी प्रयत्न किया। एक दिन भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बात चलाई—आयुष्मान देवदत्त बुद्धो के मारने का उपाय करता है। सम्यक सम्बुद्ध को मारने के लिये उसने धनुर्धारियो को नियुक्त किया, शिला गिराई, नालागिरी (हाथी) भेजा। शास्ता ने पूछा—भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'न केवल अभी किन्तु भिक्षुओ, पहले भी मेरे बध के लिये प्रयत्न

---

१ चुल्लधम्मपाल जातक (३५८)।
२ दद्दर जातक (१७२)।
३ खन्ति-वादि जातक (३१३)।
४ चुल्लनन्दिय जातक (२२२)।
५ महाकपि जातक (४०७)।

किया है, अब तो त्रास मात्र भी नही दे सका है, किन्तु पहले धर्मपाल-कुमार के समय अपने पुत्र समान मुझे मरवा कर असिमालक बनवाई' कह पूर्व जन्म की कथा कही।

ख, अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे महाप्रताप राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व उसकी चन्दा देवी नामक पटरानी की कोख से पैदा हुए। नाम धर्मपाल रक्खा गया। सात महीने की अवस्था मे माता उसे सुगन्धित जल से नहला, सजा, बैठी खिला रही थी। राजा उसके निवास-स्थान पर गया। वह पुत्र से खेल रही थी। इसलिये स्नेह के वशीभूत हो वह राजा को देख कर भी नही उठी। राजा ने सोचा—यह अभी पुत्र के कारण मान करती है, मुझे कुछ भी नही समझती। पुत्र के बढने पर मुझे मनुष्य भी नही समझेगी। अभी मरवाता हूँ।

उसने लौट, जाकर, राज्यासन पर बैठ घातक को आज्ञा भिजवाई—अपनी तैय्यारी के साथ आये। वह काषाय वस्त्र पहने, लाल माला धारण किये, कन्धे पर फरसा लिये, अपने सिर के नीचे रखने के बर्तन तथा हाथ-पाँव जकडने के दण्डो के साथ आ पहुँचा और राजा को प्रणाम कर बोला—देव! क्या करूँ।

"देवी के शयनागार मे जा धर्मपाल को ले आ।" देवी भी राजा के क्रुद्ध होकर लौटने की बात समझ बोधिसत्व को छाती से लगाए बैठी रो रही थी।

घातक ने जाकर उसकी पीठ पर मुक्का मार हाथ से कुमार को छीन लिया और राजा के सामने लाकर बोला—देव! क्या करूँ? राजा ने आज्ञा दी—एक पटडा मगवा कर, सामने बिछवा। इसे उस पर लिटा। उसने वैसा ही किया। चन्दा देवी पुत्र के पीछे रोती हुई आई। घातक ने फिर पूछा—देव! क्या करूँ?

धर्मपाल के हाथ काट। चन्दादेवी—महाराज! मेरा पुत्र सात महीने का बच्चा है। कुछ नही जानता। इसका कुछ दोष नही है। दोष बड़ा होने पर भी मेरा ही होगा, इसलिए मेरे हाथ कटवायें।

यही बात प्रगट करते हुए उसने पहली गाथा कही —

अहमेव दूसिया भूनहता रञ्ञो महापतापस्स,
एतं मुञ्चतु धम्मपालं हत्थे मे देव छेदेहि ॥

[मै भ्रूण हत्यारी ही राजा महाप्रताप की दोषी हूँ। देव! इस धमपाल को छोड दें, मेरे हाथ काट दें।]

राजा ने घातक की ओर देखा। देव! क्या करूँ? देर न करके हाथ काट डाल। उसी क्षण घातक ने तेज फरसा ले कुमार के नये बाँस के पोरे के समान दोनो हाथ काट डाले। हाथ कटते समय न वह रोया न चिल्लाया। शान्ति तथा मैत्री को आगे करके (दु ख) सह लिया।

चन्दादेवी कटे हाथो को गोद मे ले, लहू से तर-बतर हो, रोती-पीटती घूमने लगी। घातक ने फिर पूछा—देव! क्या करूँ? "दोनो पाँव काट।" यह सुन चन्दा देवी ने दूसरी गाथा कही —

अहमेव दूसिया भूनहता रञ्ञो महापतापस्स,
एतं मुञ्चतु धम्मपालं पादे मे देव छेदेहि ॥

[अर्थ पूर्वोक्तानुसार ही है] राजा ने भी फिर घातक को आज्ञा दी। उसने दोनो पाँव काट डाले। चन्दा देवी ने कटे पैरो को गोद मे ले लहू से तर-बतर हो रोते-चिल्लाते हुए कहा—स्वामिन! महाप्रताप क्या तुम्हारे द्वारा कटे हाथ पैर वाले बच्चो का पालन पोषण माताओ द्वारा नही कराया जाना चाहिए? मैं मजदूरी करके इसे पोस लूंगी। मुझे इसे दें। घातक ने पूछा—देव, राजाज्ञा का पालन हुआ, क्या मेरा काम समाप्त है?

"नही, अभी समाप्त नही"

"तो क्या करूँ?"

"इसका सिर काट डाल।"

चन्दा देवी ने तीसरी गाथा कही—

अहमेव दूसिया भूनहता रञ्ञो महापतापस्स,
एतं मुञ्चतु धम्मपालं सीसं मे देव छेदेहि ॥

यह कह उसने अपना सिर आगे कर दिया। घातक ने फिर पूछा—देव! क्या करू?

"इसका सिर काट डाल।"

उसने सिर काट कर पूछा—देव ! राजाज्ञा का पालन हो गया ?

"नही, अभी नही ।"

"देव ! क्या करूँ ?"

तलवार की नोक पर इसे ले 'असिमाला' बनाओ।

उसने उसकी लाश को आकाश मे फेंक तलवार की नोक पर ले 'असिमाला' बना महान तल्ले पर बिखेर दिया। चन्दादेवी बोधिसत्व के मांस को गोद मे ले महान तल्ले पर रोती-पीटती ये गाथायें बोली —

> नहनूनिमस्स रञ्ञो मित्ता मच्चाव विज्जरे सुहदा,
> ये न वदन्ति राजान मा घातयि ओरस पुत्त ॥
> नहनूनिमस्स रञ्ञो मित्ता ञातीव विज्जरे सुहदा,
> ये न वदन्ति राजान मा घातयि अत्रज पुत्त ॥

[निश्चय से इस राजा के कोई मित्र, अमात्य या सुहृद (ऐसे) नहीं है जो राजा को कहे कि अपने औरस-पुत्र की हत्या मत करा।]

ये दो गाथाये कह चन्दा देवी ने दोनो हाथो से हृदय-मास को सँभालते हुए तीसरी गाथा कही —

> चन्दनसारानुलित्ता बाहा छिज्जन्ति धम्मपालस्य
> दायादस्य पठव्या पाणा मे देव रुज्झन्ति ॥

[पृथ्वी (राज्य) के उत्तराधिकारी धम्मपाल की चन्दन सार से लिप्त बाहे छीज रही हैं (पैर छीज रहे हैं, सिर छीज रहा है), और (यह देख) हे देव ! मेरे प्राण अवरुद्ध होते है।]

उसके इस प्रकार रोते हुए, जलते वेणुवन मे वेणु के फटने के समान उसका हृदय फट गया। उसका वही शरीरात हो गया। राजा सिंहासन पर न बैठा रह सका। महान तल्ले पर गिरा। दरार फट गई। वह वहाँ से पृथ्वी पर आ पडा। दो लाख चौरानवे योजन घनी मोटी पृथ्वी भी उसका दुर्गुण न सह सकने के कारण फट पडी और उसने रास्ता दिया। अवीची (नरक) से ज्वाला उठी और उसने कुल-प्रदत्त कम्बल मे लपेट लेने की तरह उसे लपेट अवीची नरक मे फेंका। आमात्यो ने चन्दा और बोधिसत्व का शरीर-कृत्य किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा देवदत्त था। चन्दा देवी महा प्रजापती गौतमी। धम्मपाल कुमार तो मैं ही था।

३५९ सुवण्णमिग जातक

"विक्कम रे महामिग" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय श्रावस्ती की एक कुल-कन्या के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती मे दोनो प्रधान-श्रावस्को के सेवक-परिवार की लडकी थी—श्रद्धालु, बुद्ध, धर्म तथा सघ को प्यार करने वाली, सदाचारिणी, पण्डिता और दान आदि पुण्य-कर्मों मे रत। उसे श्रावस्ती मे ही दूसरे समान जाति के कुल मे, जो मिथ्या-मत मानने वाला था, ब्याह दिया गया। उसके माता पिता ने कहा—हमारी लडकी श्रद्धालु है, तीनो रत्नो को प्यार करती है, और दानादि पुण्य क्रियाओ मे रत है। तुम मिथ्या दृष्टि वाले होने से इसे भी यथा रुचि दान देना, धर्म सुनना, विहार जाना, शील पालन करना अथवा उपोसथ-व्रत धारण करना न करने दोगे। इसलिये हम इसे तुम्हे नही देंगे। अपने जैसे मिथ्या-दृष्टि कुल से ही कुमारी ले आओ।" वे बोले—"तुम्हारी लडकी हमारे घर जाकर यथारुचि यह सब करे। हम उसे नही रोकेंगे। हमे दें।"

"तो ले जाओ।"

वह शुभ नक्षत्र मे (विवाह-) मङ्गल कर उसे अपने घर ले आये।

वह लडकी कर्तव्य-परायण सदाचारिणी थी, पति को देवता तुल्य समझती थी और सास-श्वसुर तथा पति (की सेवा आदि) के कर्तव्य किये ही रहती थी। एक दिन उसने अपने पति से कहा—

"आर्यपुत्र ! मैं अपने कुल-विश्वस्त स्थविरो को दान देना चाहती हूँ।"

"भद्रे ! अच्छा यथा-रुचि दे।"

उसने स्थविरो को निमन्त्रण भिजवा बडा सत्कार कर, प्रणीत भोजन करा, एक ओर बैठ कर प्रार्थना की—भन्ते ! यह मिथ्या-दृष्टि कुल है, अश्रद्धावान् तीनो रत्नो के गुणो से अपरिचित। अच्छा हो, आर्य ! जब तक इस कुल के लोग तीन रत्नो के गुणो से परिचित रो, तब तक यही भिक्षा ग्रहण करे।

स्थविरो ने स्वीकार किया और प्रति दिन उसी घर मे भोजन करने लगे।

उसने फिर अपने पति से कहा—आर्य पुत्र ! स्थविर यहाँ प्रतिदिन आते है। तुम क्यो उनके दर्शन नही करते ?

"अच्छा, करूँगा।"

उसने अगले दिन फिर स्थविरो के भोजन कर चुकने पर उसे कहा। वह जाकर स्थविरो से कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा। धर्म-सेनापति ने उसे धर्मोपदेश दिया। वह स्थविर के धर्मोपदेश तथा उनकी चर्या पर प्रसन्न हुआ और तब से स्थविरो के लिए आसन बिछाता, पानी छानता और भोजनान्तर धर्मोपदेश सुनता। आगे चलकर उसकी मिथ्या-दृष्टि जाती रही। एक दिन स्थविर ने उन दोनो को धर्मोपदेश देते हुए (आर्य) सत्यो को प्रकाशित किया। सत्यो के अन्त मे दोनो श्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुए। उसके बाद उनके माता-पिता से आरभ कर दास तथा नोकरो-चाकरो तक सभी मिथ्यादृष्टि छोड बुद्ध, धर्म तथा सघ के भक्त हो गये। एक दिन उस लडकी ने पति से निवेदन किया—आर्य पुत्र ! मुझे गृहस्थी से क्या ? मैं प्रव्रजित होना चाहती हूँ। वह बोला—भद्रे, अच्छा मैं भी प्रव्रजित होऊँगा और अनेक लोगो के साथ उसे भिक्षुणी-उपाश्रय मे जाकर प्रव्रजित कराया और स्वय भी शास्ता के पास जा प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उसे प्रव्रज्या तथा उपसपदा दी। उन दोनो ने विदर्शना-भावना का अभ्यास कर अचिर काल मे ही अर्हत्व प्राप्त किया। एक दिन धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक नाम की तरुण भिक्षुणी अपनी सहायक हुई। अपने स्वामी को।

वह स्वय भी प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुई और उसे भी अर्हत्व की प्राप्ति कराई। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर 'भिक्षुओ! न केवल अभी इसने स्वामी को राग-पाश से मुक्त किया है, किन्तु इसने पहले भी पुराने पण्डितो को मरण-पाश से मुक्त किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व मृगयोनि मे पैदा हुए। बडे होने पर सुन्दर हुआ, मनोरम हुआ, दर्शनीय हुआ। वह स्वर्णवर्ण का था, उसके हाथ पाँव ऐसे थे मानो लाखरस से चित्रित हो, सीग ऐसे थे मानो चाँदी की माला हो, आँखें ऐसी थी मानो मणियाँ हो, मुँह ऐसा था मानो लाल-कम्बल की गेंद हो। उसकी भार्या भी तरुण मृगी सुन्दर थी, मनोरम थी। वे मेल से रहते थे। अस्सी हजार सुन्दर मृग बोधिसत्व की सेवा मे थे। उस समय शिकारी मृगो का वध करते थे, जाल लगाते थे।

एक दिन बोधिसत्व मृगो के आगे-आगे जा रहा था। उसका पाँव जाल मे फँस गया। जाल को तोड-डालूँगा, सोच उसने पाँव खीचा। चमडा छिल गया। और खीचा तो मास कट गया, नस कट गई और जाल हड्डी पर जाकर ठहरा। जब वह जाल को न छेद सका तो उसने मरण-भय से भयभीत हो बन्धन-शब्द किया। उसे सुन भयभीत मृग-समूह भाग गया। लेकिन उसकी भार्या ने भागते समय, जब उसे मृगो मे नही देखा तो सोचा, यह खतरा मेरे प्रिय स्वामी को पैदा हुआ होगा। वह शीघ्रता से उसके पास पहुँची और आँखो मे आँसू भर उसे उत्साहित करती हुई बोली—स्वामी, तू महा बलवान है। क्या इस जाल को नही सहन कर सकता? झटका देकर तोड डाल।

उसने पहली गाथा कही —

> विक्कम रे महामिग विक्कम रे हरिपद,
> छिन्द वारत्तिक पास नाह एका वने रमे॥

[हे महामृग! विक्रम कर, हे स्वर्णपाद! विक्रम कर, यह चर्म-जाल तोड दे। मैं अकेली वन मे नही रह सकती।]

यह सुन मृग ने दूसरी गाथा कही —

विक्कमामि न पारेमि भूमि सुम्भामि वेगसा,
दळ्हो वारत्तिको पासो पाद मे परिकन्तति ॥

[भद्रे, पराक्रम करता हूँ, जमीन को जोर से झटका देता हूँ किन्तु (जाल को तोड) नही सकता हूँ। चमडे का जाल मजबूत है। यह मेरे पाँव काटता है।]

तब मृगी बोली—स्वामी डरें नही। मैं अपने बल से शिकारी से याचना कर तुम्हारी रक्षा करूँगी। यदि याचना करके सफल न होऊँगी तो अपने प्राण देकर भी तुम्हारे प्राणो की रक्षा करूँगी। इस प्रकार बोधिसत्व को आश्वासन दे लहू से लथपथ बोधिसत्व को ले खडी हुई। शिकारी भी तलवार और शक्ति ले कल्पान्त-अग्नि की तरह आया। वह उसे आता देख बोली—स्वामी, शिकारी आता है। मैं अपना प्रयत्न करूँगी। आप मत डरें। उसे आश्वासन दे वह शिकारी के रास्ते मे जा लौट कर एक ओर खडी हुई और उसे नमस्कार कर बोली—स्वामी, मेरा पति स्वर्ण-वर्ण का है, सदाचारी है, अस्सी हजार मृगो का राजा है। इस प्रकार बोधिसत्व की प्रशसा कर मृगराज के खडे रहते ही उसने अपने बध की याचना करते हुए तीसरी गाथा कही :—

अत्थरस्सु पलासानि असिं निब्बाह लुद्दक,
पठमं म वधित्वान हन पच्छा महामिग ॥

[शिकारी! (मांस रखने के लिए) पत्तो को फैला और तलवार निकाल कर पहले मेरा बध कर, पीछे महामृग का।]

यह सुन शिकारी ने सोचा—मनुष्य होकर भी (लोग) स्वामी के लिए अपने प्राण नही देते, यह पशु होकर भी अपना प्राण परित्याग कर रही है, और मनुष्य-भाषा मे मधुर-स्वर से बोल रही है। आज इसे और इसके पति को जीवन दूँगा। उसने प्रसन्न-चित्त हो चौथी गाथा कही —

न मे सुत वा दिट्ठ वा भासन्ति मानुसि मिगिं,
त्वञ्च भद्दे! सुखी होहि एसो चापि महामिगो ॥

[मैंने मानुषी भाषा बोलने वाली मृगी न देखी, न सुनी। भद्रे! तू सुखी हो, और यह महामृग भी सुखी होवे।]

[इस प्रकार दोनो जनो को आश्वासन दे शिकारी ने बोधिसत्व के पास जा छुरी-कुल्हाडी से चमडे का बन्धन काट दिया और पाँव से लगा हुआ फन्दा धीरे से हटा, नसो को नसो से, मांस को मांस से तथा चमडी को चमडी से ढक पाँव पर हाथ फेरा। उसी क्षण बोधिसत्व द्वारा पूरी की गई पारमिताओ के प्रताप से, शिकारी के मैत्री चित्त के प्रताप से और मृगी के मैत्रीधर्म के प्रताप से मास, चर्म और नसें पूर्ववत् हो गई। बोधिसत्व भी सुखी दुख-रहित हो खडा हुआ।]

मृगी ने बोधिसत्व को सुखी देख प्रसन्न चित्त हो शिकारी का अनुमोदन करते हुए पाँचवी गाथा कही —

एव लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिहि
यथाहमज्ज नन्दामि मुत्त दिस्वा महामिग ॥

[शिकारी, सभी जातियो के साथ उसी तरह आनन्दित होओ जैसे मैं महामृग को मुक्त देखकर आज प्रसन्न हूँ।]

बोधिसत्व ने 'यह शिकारी मेरा उपकारी हुआ, मुझे भी इसका उपकारी होना चाहिए' सोच चरने की जगह पर एक मणि-ढेरी देख, उसे देकर कहा—सौम्य, अब से प्राणी-हिंसा मत करना। इससे कुटुम्ब का पालन करते हुए, बच्चो का पोषण करते हुए, दान शीलादि पुण्य कर्म करना। इस प्रकार इसे उपदेश दे बोधिसत्व जगल को गये।

शास्ता ने धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी छन्न था। मृगी तरुण भिक्षुणी। मृगराज तो मैं ही था।

३६० सुसन्धि जातक

"वातिगन्धो तिमिरान " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उद्विग्न-चित्त-भिक्षु के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ? 'हाँ सचमुच' कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्न-चित्त हुआ ? वह बोला—अलकृत स्त्री को देख कर। तब शास्ता ने कहा—यह जो स्त्री है, इसको सुरक्षित रखा नही जा सकता, पुराने पण्डित गरुड-भवन मे ले जाकर सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने पर भी असमर्थ रहे।

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे तम्ब-राजा नामक राजा राज्य करता था। उसकी सुसन्धि नामक भार्य्या थी, उत्तम रूप वाली। उस समय बोधिसत्व गरुड-योनि मे पैदा हुए थे, और उस समय नाग-द्वीप का नाम सेरुम द्वीप था। बोधिसत्व इस द्वीप मे गरुड-भवन मे रहते थे। वह गरुड-भवन से निकल वाराणसी जा तम्ब-राजा के साथ युवक के वेष मे जुआ खेलते थे। उसका रूप-सौन्दर्य्य देख परिचारिकाओ ने सुसन्धि से कहा—हमारे राजा के साथ इस प्रकार का युवक जुआ खेलता है। यह सुन वह एक दिन उसे देखने की इच्छा से सज-सजाकर जुआ खेलने के स्थान पर आई और परिचारिकाओ मे खडी होकर उसने उसे देखा। उसने भी देवी को देखा। दोनो परस्पर आकर्षित हो गये। गरुड-राज ने अपने प्रताप से नगर मे आँधी उठा दी। घरो के गिरने के डर से राज-महल के निवासी बाहर निकल पडे।

तब उसने अपने प्रताप से अँधेरा कर दिया और देवी को आकाश मार्ग से ले जा नाग द्वीप मे अपने भवन मे प्रविष्ट हुआ। कोई नही जानता था कि सुसन्धि कहाँ गई। वह उसके साथ रमण कर जाकर राजा के साथ जुआ खेलता। राजा का अग्र नामक गन्धर्व था। राजा को जब देवी के जाने की जगह का पता नही लगा तो उसने उस गन्धर्व को बुला कर प्रेरित किया—तात ! सब स्थल-पथो तथा जल-पथो मे घूमकर पता लगाओ कि देवी कहाँ गई ?

वह खर्चा ले द्वार-गाम से ही खोज करता-करता भरुकच्छ[1] पहुंचा। उस समय भरुकच्छ के व्यापारी नौका से स्वर्ण-भूमि जाते थे। वह उनके पास जाकर बोला—

मैं गन्धर्व हूँ। नौका का किराया न देकर उसकी बजाय तुम्हारे लिये गाना-बजाना करूँगा। मुझे भी नौका में ले चलें।

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नौका छोड़ दी। सुख से चली जा रही नौका में उन्होंने उसे बुलाकर कहा—

"हमारे लिये गाना-बजाना करो।"

"यदि मैं गाऊँ-बजाऊँगा, तो मेरे गाने-बजाने पर मछलियाँ चञ्चल हो जायेगी। तुम्हारी नौका टूट जायगी।"

"मनुष्य-मात्र के गाना-बजाना करने से मछलियाँ चञ्चल नहीं होतीं। (गाना-बजाना) करो।"

"तो मुझ पर क्रोधित न होना।"

उसने वीणा खोली, तार के स्वर से गीत का स्वर और गीत के स्वर से तार का स्वर मिला कर गाना-बजाना किया। उसके स्वर से मस्त होकर मच्छ चञ्चल हो गये।

एक मगर-मच्छ उछल कर नाव में आ पड़ा। नौका तोड़ दी। वह अग्ग लकड़ी के तख्ते से चिपटा हुआ, वायु के अनुसार बहता-बहता नाग-द्वीप में गरुड-भवन के पास निग्रोध-वृक्ष के समीप पहुँचा। सुसन्धि देवी भी गरुड-राज के जुआ खेलने जाने पर विमान से उतर समुद्र-तट पर विचरती थी। उसने उस अग्ग गन्धर्व को देख, पहचान कर पूछा—

"कैसे आया?" उसने सब कहा। 'तो डर मत' कह उसे बाँहों से पकड़, विमान पर ले जा शैय्या पर लिटाया। विश्राम कर चुकने पर दिव्य भोजन दे, दिव्य गन्धोदक से नहला, दिव्य वस्त्र पहना, दिव्य सुगन्धित पुष्पों से सजा उसे फिर दिव्य शैय्या पर लिटाया।

इस प्रकार उसकी सेवा करती हुई वह गरुड-राज के आने के समय उसे छिपाकर रखती, चले जाने पर उसके साथ रमण करती। तब महीने

---

१ वर्तमान भड़ौच (गुजरात)।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न-चित्त है ? 'हाँ सचमुच' कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्न-चित्त हुआ ? वह बोला—अलङ्कृत स्त्री को देख कर। तब शास्ता ने कहा—यह जो स्त्री है, इसको सुरक्षित रखा नही जा सकता, पुराने पण्डित गरुड-भवन मे ले जाकर सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने पर भी असमर्थ रहे।

इतना कह उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे तम्ब-राजा नामक राजा राज्य करता था। उसकी सुसन्धि नामक भार्य्या थी, उत्तम रूप वाली। उस समय बोधिसत्व गरुड-योनि मे पैदा हुए थे, और उस समय नाग-द्वीप का नाम सेरुम द्वीप था। बोधिसत्व इस द्वीप मे गरुड-भवन मे रहते थे। वह गरुड-भवन से निकल वाराणसी जा तम्ब-राजा के साथ युवक के वेष मे जुआ खेलते थे। उसका रूप-सौन्दर्य्य देख परिचारिकाओ ने सुसन्धि से कहा—हमारे राजा के साथ इस प्रकार का युवक जुआ खेलता है। यह सुन वह एक दिन उसे देखने की इच्छा से सज-सजाकर जुआ खेलने के स्थान पर आई और परिचारिकाओ मे खडी होकर उसने उसे देखा। उसने भी देवी को देखा। दोनो परस्पर आकर्षित हो गये। गरुड-राज ने अपने प्रताप से नगर मे आँधी उठा दी। घरो के गिरने के डर से राज-महल के निवासी बाहर निकल पडे।

तब उसने अपने प्रताप से अँधेरा कर दिया और देवी को आकाश मार्ग से ले जा नाग द्वीप मे अपने भवन मे प्रविष्ट हुआ। कोई नही जानता था कि सुसन्धि कहाँ गई। वह उसके साथ रमण कर जाकर राजा के साथ जुआ खेलता। राजा का अग्र नामक गन्धर्व था। राजा को जब देवी के जाने की जगह का पता नही लगा तो उसने उस गन्धर्व को बुला कर प्रेरित किया—तात ! सब स्थल-पथो तथा जल-पथो मे घूमकर पता लगाओ कि देवी कहाँ गई ?

वह खर्चा ले द्वार-गाम से ही खोज करता-करता भरुकच्छ[1] पहुँचा। उस समय भरुकच्छ के व्यापारी नौका से स्वर्ण-भूमि जाते थे। वह उनके पास जाकर बोला—

मैं गन्धर्व हूँ। नौका का किराया न देकर उसकी बजाय तुम्हारे लिये गाना-बजाना करूँगा। मुझे भी नौका मे ले चलें।

उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नौका छोड दी। सुख से चली जा रही नौका मे उन्होने उसे बुलाकर कहा—

"हमारे लिये गाना-बजाना करो।"

"यदि मैं गाऊँ-बजाऊँगा, तो मेरे गाने-बजाने पर मछलियाँ चञ्चल हो जायेंगी। तुम्हारी नौका टूट जायगी।"

"मनुष्य-मात्र के गाना-बजाना करने से मछलियाँ चञ्चल नही होती। (गाना-बजाना) करो।"

"तो मुझ पर क्रोधित न होना।"

उसने वीणा खोली, तार के स्वर से गीत का स्वर और गीत के स्वर से तार का स्वर मिला कर गाना-बजाना किया। उसके स्वर से मस्त होकर मच्छ चञ्चल हो गये।

एक मगर-मच्छ उछल कर नाव मे आ पडा। नौका तोड दी। वह अग्र लकडी के तख्ते से चिपटा हुआ, वायु के अनुसार बहता-बहता नाग-द्वीप मे गरुड-भवन के पास निग्रोध-वृक्ष के समीप पहुँचा। सुसन्धि देवी भी गरुड-राज के जुआ खेलने जाने पर विमान से उतर समुद्र-तट पर विचरती थी। उसने उस अग्र गन्धर्व को देख, पहचान कर पूछा—

"कैसे आया?" उसने सब कहा। 'तो डर मत' कह उसे बाँहो से पकड, विमान पर ले जा शैय्या पर लिटाया। विश्राम कर चुकने पर दिव्य भोजन दे, दिव्य गन्धोदक से नहला, दिव्य वस्त्र पहना, दिव्य सुगन्धित पुष्पो से सजा उसे फिर दिव्य शैय्या पर लिटाया।

इस प्रकार उसकी सेवा करती हुई वह गरुड-राज के आने के समय उसे छिपाकर रखती, चले जाने पर उसके साथ रमण करती। तब महीने

---

१ वर्तमान भडोच (गुजरात)।

डेढ महीने के बाद वाराणसी-निवासी व्यापारी लकडी-पानी लेने के लिये उस द्वीप के निग्रोध-वृक्ष के पास पहुँचे। वह उनके साथ नौका पर चढ वाराणसी पहुँचा। वहाँ राजा को देखते ही, उसके जुआ खेलते समय, वीणा ले, राजा के सम्मुख गाना-बजाना करते हुए उसने पहली गाथा कही—

वाति गन्धो तिमिरान कुसमुद्दा च घोसवा,
दूरे इतो हि सुसन्धि तम्ब कामा तुदन्ति मं ॥

[(जहाँ) तिमिर (-वृक्षो) की गन्ध बहती है, समुद्र घोषणा करता है, (वहाँ) यहाँ से दूर सुसन्धि है, हे तम्ब! काम मुझे बीधते है।]

यह यह सुन गरुड-राज ने दूसरी गाथा कही—

कथ समुद्दमतरि कथ अद्दक्खि सेरुम,
कथ तस्स च तुय्हञ्च अहु अग्ग समागमो ॥

[कैसे समुद्र पार किया? कैसे सेरुम देखा? हे अग्ग! उसका और तुम्हारा समागम कैसे हुआ?]

तब अग्ग ने तीन गाथायें कहीं—

भरुकच्छा पयातानं वाणिजान धनेसिनं,
मकरेहभिन्दा नावा फलकेनाहमप्लविं ॥
सा म सण्हेन मुदुना निच्च चन्दनगन्धिनी,
अङ्गेन उद्धरी भद्दा माता पुत्तंव ओरसं ॥
सा म अन्नेन पाणेन वत्थेन सयनेन च,
अत्तनापि च मद्दक्खी एव तम्ब विजानहि ॥

[भरुकच्छ से चले अनेच्छुक व्यापारियो की नौका मगर-मच्छो ने तोड दी। मैं उसी नाव के तख्ते से तट पर लगा। उस भद्रा ने—जो नित्य चन्दन की सुगन्धी देती है—प्रिय तथा मृदु-वाणी के साथ (मेरा) अङ्ग पकड कर मेरा उद्धार किया, वैसे ही जैसे माता ओरस-पुत्र का। उस मस्त-आँख वाली ने, हे तम्ब! तू यह जान ले कि अन्न-पान, वस्त्र, शयन तथा अपने-आप से (मेरी सेवा की)।]

गरुड-राज को गन्धर्व के कहने के ही समय पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा—मैं गरुड-भवन मे रहता हुआ भी इसको सुरक्षित नहीं रख सका,

मुझे इस दुश्शीला से क्या ? वह उसे लाया और राजा को लौटा कर चला गया। फिर उसके बाद नही आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो की समाप्ति पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा आनन्द था। गरुड-राज तो मैं ही था।

पाँचवाँ परिच्छेद

२. वण्णारोह वर्ग

३६१ वण्णारोह जातक

"वण्णारोहेन " यह शास्ता ने श्रावस्ती के पास जेतवन मे विहार करते समय दोनो प्रधान-श्रावको के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

एक बार दोनो महास्थविर 'इस वर्षा-काल मे आरण्य-वास करेगे' सोच, शास्ता से आज्ञा ले, मण्डली छोड, अपना-अपना पात्र-चीवर स्वय अपने ही उठा, जेतवन से निकल, एक प्रत्यन्त-गाँव के पास के जङ्गल मे रहने लगे। एक उच्छिष्ट खाने वाला आदमी भी स्थविरो की सेवा करता हुआ वही एक ओर रहने लगा। उसने स्थविरो को मेल-मिलाप से रहते देख सोचा—यह अत्यन्त प्रेम से रहते है। क्या मैं इनमे परस्पर फूट डाल सकता हूँ? वह सारि-पुत्र स्थविर के पास गया और पूछने लगा—भन्ते! क्या आर्य महामौदगल्यायन स्थविर के साथ आपका किसी प्रकार का वैर है?

"क्यो, आयुष्मान!"

"भन्ते, यह मेरे आने पर आपकी यही कह कर निन्दा करते है कि सारिपुत्र जाति, गोत्र, कुल अथवा सुत्तन्त अथवा ज्ञान अथवा ऋद्धि मे मेरा क्या मुकाबला कर सकता है?"

स्थविर ने मुस्कराकर कहा—आयुष्मान तू जा। दूसरे दिन वह महामौदगल्यायन स्थविर के पास जाकर भी यही बोला। उसने भी मुस्कराकर कहा—आयुष्मान तू जा। महामौदगल्यायन स्थविर ने सारिपुत्र स्थविर के पास जाकर पूछा—आयुष्मान! यह उच्छिष्ट-भोजी तुम्हारे पास आकर कुछ कहता था?

"आयुष्मान, यह मुझसे भी कहता था इसे निकाल देना चाहिए"।

"अच्छा आयुष्मान, निकाल" कहने पर स्थविर ने "यहां मत रह" कह चुटकी बजाकर उसे निकाल दिया। वे दोनो मेल मिलाप से रहे। फिर शास्ता के पास जा प्रणाम कर बैठे। शास्ता के कुशल क्षेम पूछने के बाद प्रश्न किया—भन्ते! एक उच्छिष्ट-भोजी ने हममे फूट डालने का प्रयत्न किया। वह असफल रहा और भाग गया।

"न केवल अभी सारिपुत्र, इससे पहले भी तुममे फूट डालने का प्रयत्न किया, परन्तु असमर्थ रहा और भाग गया।"

शास्ता ने उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जगल मे वृक्ष-देवता हुए। उस समय एक सिंह और व्याघ्र जंगल मे पर्वत गुफा मे रहते थे। एक गीदड उनकी सेवा मे रह कर उच्छिष्ट खाकर मोटा हो गया और एक दिन सोचने लगा—मैंने सिंह और व्याघ्र का मास कभी नही खाया। मुझे इन दोनो जनो मे फूट डालनी चाहिए। जब ये झगडा कर मरेंगे तब इनका मास खाऊँगा। उसने सिंह के पास जाकर पूछा—"स्वामी! क्या आपका व्याघ्र के साथ कुछ वैर है?"

"सौम्य, क्या बात है?"

"भन्ते, यह मेरे आने के समय तुम्हारी यह कह कर निन्दा ही करता है कि सिंह न शरीर-वर्ण मे, न शरीर की गठन मे, न जाति मे, न बल मे और न वीर्य मे ही मेरा एक हिस्सा भी है।"

सिंह ने उत्तर दिया—तू जा। यह ऐसा नही कहेगा। उसने व्याघ्र के पास भी जाकर इसी प्रकार कहा। व्याघ्र यह सुन सिंह के पास पहुँचा। उसने 'मित्र क्या तूने यह कहा?' पूछते हुए पहली गाथा कही—

वण्णारोहेन जातिया बलनिक्खमणेन च,
सुबाहु न मया सेय्यो सुदाठ इति भाससि॥

[हे मृगराज! क्या तूने यह कहा है कि सुबाहु न वर्ण मे, न शरीर-गठन मे, न जाति मे, न काय-बल मे और न पराक्रम मे ही मुझसे बढकर है?]

यह सुन सुदाठ ने शेष चार गाथायें कही—

वण्णारोहेन जातिया बलनिक्खमणेन च,
सुदाठो न मया सेय्यो सुबाहु इति भाससि ।
एवञ्चे मंविहरन्तं सुबाहु सम्म दुब्भसि,
तदानाहं तया सद्धिं सवासं अभिरोचये ॥
यो परेस वचनानि सद्दहेय यथातथ,
खिप्प भिज्जेथ मित्तस्मि वेरञ्च पसवे बहुं ॥
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो
भेदासङ्की रन्धमेवानुपस्सी,
यस्मिञ्च सेति उरसीव पुत्तो
सवे मित्तो यो अभेज्जो परेहि ॥

[हे मित्र सुबाहु ! जब से उसने मुझे यह कह कर कि सुबाहु मुझे ऐसा कहता है कि सुदाठ न वर्ण मे, न शरीर-गठन मे, न जाति मे, न काय-बल मे और न पराक्रम मे ही मुझ से बढकर है मेरे मन मे द्वेष पैदा करना चाहा है तब से मुझे इसके साथ रहना पसन्द नही । जो दूसरो के जैसे तैसे वचनो का विश्वास कर लेता है वह जल्दी ही मित्रो से फूट पडता है और उसके मन मे बहुत वैर पैदा हो जाता है । जो सदा फूट की आशका से अप्रमादी हो मित्र के छिद्र ही ढूढता रहता है, वह मित्र नही है । मित्र तो वही है, जिसे दूसरे फोड नही सकते और जिसकी गोद मे ऐसे सिर रख कर सोया जा सकता है, जैसे पुत्र (माता की गोद मे) ।]

इन चार गाथाओ द्वारा सिंह ने जब मित्र के गुणो का वर्णन किया तो व्याघ्र ने अपने को दोषी समझ सिंह से क्षमा मागी । वे उसी प्रकार मेल मिलाप से रहे । लेकिन शृगाल भागकर अन्यत्र चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय मृग उच्छिष्ट-भोजी था । सिंह सारिपुत्र ! व्याघ्र मौदगल्यायन । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला तथा उस वन मे रहने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।

३६२ सीलवीमस जातक

"सील सेय्यो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक सदाचार की परीक्षा करने वाले ब्राह्मण के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

राजा उसे अन्य ब्राह्मणो की अपेक्षा विशेष मानता था, (क्योकि) वह सदाचारी था। उसने सोचा—क्या राजा सदाचारी होने के कारण मेरा सम्मान करता है अथवा (बहु-) श्रुत होने के कारण ? मैं परीक्षा करूँगा कि सदाचार अधिक महत्व का होता है वा (बहु-) श्रुत होना ? उसने एक दिन सराफ के तख्ते पर से कार्षापण उठा लिया। सराफ गौरव का ख्याल कर कुछ न बोला। दूसरी बार भी उसने कुछ न कहा। लेकिन तीसरी बार तो उसे पकड़ ले जाकर राजा को दिखाया—यह डाकू-चोर है। राजा ने पूछा—इसने क्या किया ?

"कुटुम्ब (की सम्पत्ति) लूटता है।"

"ब्राह्मण ! क्या सचमुच ?"

"महाराज ! कुटुम्ब (की सम्पत्ति) नही लूटता हूँ। मेरे मन मे सन्देह उत्पन्न हुआ था कि सदाचार अधिक महत्व की चीज है वा (बहु-) श्रुत होना। इसलिये इन दोनो मे कौन अधिक महत्व का है, परीक्षा करने के लिये मैंने तीन बार कार्षापण उठाये। यह मुझे बाँध कर तुम्हारे पास ले आया है। अब मैं समझ गया हूँ कि (बहु-) श्रुत होने की अपेक्षा सदाचारी होना बढ़कर है। मुझे गृहस्थी नही चाहिये। मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

उसने प्रव्रज्या की स्वीकृति ले, बिना घर द्वार की ओर देखे जेतवन जा शास्ता से प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उसे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा दिलवाई। वह उपसम्पदा के थोड़े ही समय बाद विपश्यना-भावना का अभ्यास कर अग्र-फल[1] मे प्रतिष्ठित हुआ। भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बात-

---

[1] अग्र-फल = अर्हत्व।

चीत चलाई—आयुष्मानो ! अमुक ब्राह्मण अपने शील की परीक्षा कर, प्रव्रजित हो अर्हत्व को प्राप्त हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी पण्डितो ने अपने शील की परीक्षा कर, प्रव्रजित हो, अपने आपको प्रतिष्ठित किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर उसने तक्षशिला जा, सब विद्यायें सीख, वाराणसी लौट राजा से भेंट की। राजा ने उसे अपना पुरोहित बनाया। वह पञ्चशीलो की रक्षा करता था। राजा भी उसे सदाचारी जान उसका आदर करता था। उसने सोचा क्या राजा मेरा आदर सदाचारी होने के कारण करता है अथवा (बहु-) श्रुत होने के कारण सारी कथा 'वर्तमान-कथा' के समान है। लेकिन इस कथा मे उस ब्राह्मण ने 'अब मैंने (बहु-) श्रुत होने की अपेक्षा सदाचारी होने को बडा समझ लिया' कह ये पाँच गाथायें कही —

सीलं सेय्यो सुतं सेय्यो इति मे ससयो अहु,
सोलमेव सुता सेय्यो इति मे नत्थि संसयो ॥
मोघा जाति च वण्णो च सीलमेव किरुत्तमं,
सीलेन अनुपेतस्स सुतेन अत्थो न विज्जति ॥
खत्तियो च अधम्मट्ठो वेस्सो चाधम्मनिस्सितो,
ते परिच्चजजुभो लोके उपपज्जन्ति दुग्गति ॥
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाल पुक्कुसा,
इध धम्म चरित्वान भवन्ति तिदिवे समा ॥
न वेदा सम्परायाय न जाति न पि बन्धवा,
सकञ्च सीलं संसुद्धं सम्पराय सुखावहं ॥

[सदाचारी होना श्रेष्ठ है, अथवा (बहु-) श्रुत होना श्रेष्ठ है, इस बारे मे मुझे सशय था। लेकिन अब मुझे सशय नही है, सदाचार ही (बहु-) श्रुतता से श्रेष्ठ है ॥१॥ जाति और वर्ण व्यर्थ है, शील ही श्रेष्ठ है। जो

शील से युक्त है, उसे (बहु-) श्रुत होने से काम नही ॥२॥ अधार्मिक क्षत्रिय हो, चाहे अधार्मिक वैश्य हो, वे (देव-लोक तथा मनुष्य-लोक) दोनो लोको को छोड दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥३॥ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल तथा पुक्कुस[1]—सभी इस लोक मे धर्माचरण करने से देवताओ के समान होते हैं ॥४॥ न वेद, न जाति और न बन्धु ही परलोक मे सुख दे सकते हैं, अपना शुद्ध शील ही परलोक मे सुख का दायक होता है ॥५॥]

इस प्रकार बोधिसत्व शील की प्रशसा कर, राजा से प्रव्रज्या की स्वीकृति ले, उसी दिन हिमालय चला गया और वहाँ ऋषि-प्रव्रज्या ले, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्म-लोक-गामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय शील की परीक्षा कर ऋषि-प्रव्रज्या लेने वाला मैं ही था ।

३६३. हिरि जातक

"हिरिं तरन्त" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अनाथ पिण्डिक के मित्र प्रत्यन्त-निवासी सेठ के बारे मे कही ।

(क) वर्तमान कथा (ख) अतीत कथा

दोनो कथायें प्रथम परिच्छेद के नौवे वर्ग के अन्तिम जातक मे विस्तार से आ ही गई हैं । लेकिन उस कथा मे जब प्रत्यन्त (देश) निवासी सेठ के आदमियो ने वाराणसी सेठ से कहा कि हम सब सम्पत्ति छिन जाने पर, अपने पास का माल कुछ भी पास न रहने पर भागे तो वाराणसी सेठ ने 'जो अपने

---

१ शव छोडने वाले चण्डाल तथा फूल (= हड्डियाँ ?) छोड़ने वाले पुक्कुस ।

पास आने वालो के प्रति अपना कर्तव्य पूरा नही करते, उन्हे भी कोई उपकार करने वाला नही मिलता' कह ये गाथाये कही —

हिरिं तरन्त विजिगुच्छमानं
तवाहमस्मि इति भासमान,
सेय्यानि कम्मानि अनादियन्त
ने सो ममन्ति इति न विजञ्ञा ॥
य हि कयिरा त हि वदे यं न कयिरा न त वदे,
अकरोन्त भासमान परिजानन्ति पण्डिता ॥
न सों मित्तों यों सदा अप्पमत्तों
भेदासङ्की रन्धमेवानुपस्सी,
यस्मिञ्च सेति उरसीव पुत्तो
सवे मित्तो यो अभेज्जो परेहि
पामोज्जकरण ठान पसंसावहन सुख,
फलानिससो भावेति वहन्तो पोरिस धुर ॥
पविवेक रस पीत्वा रस उपसमस्स च,
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरस पिय ॥

[लज्जा-रहित, घृणित, 'मैं तेरा हूँ' यू ही बात बनाने वाला, उचित कर्मों का न करने वाला (जो आदमी हो) उसे जान ले कि यह मेरा नही है। जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे, बिना किये (केवल) कहने वाले को पण्डित जान जाते हैं। जो सदा फूट की आशङ्का से अप्रमादी हो मित्र के छिद्र ही ढूंढता रहता है, वह मित्र नही है, मित्र तो वही है, जिसे दूसरे फोड नही सकते ॥ प्रमोद देनेवाले, प्रशसा देने वाले तथा सुख देने वाले मैत्री-भाव को पुरुष के कर्तव्य को करने वाले (प्रमोद प्रशसा और सुख के) फल की आशा से बढाते हैं ॥ एकान्त (-वास) तथा शान्ति के रस को पान कर आदमी निडर होता है और धर्म के प्रेम-रस को पान कर निष्पाप ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पाप-मित्र ससर्ग से उद्विग्न हो (एकान्त-) वास के रस से अमृत महानिर्वाण की प्राप्ति करा धर्म-देशना को ऊँचे से ऊँचे उठाया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का प्रत्यन्त वासी अबका प्रत्यन्त-वासी ही था। उस समय का वाराणसी सेठ मैं ही था।

३६४. खज्जोपनक जातक

"कोनु सन्तम्हि पज्जोते—" यह खज्जोपनक-पञ्हो महा-उम्मग्ग जातक[1] मे विस्तर से आई है।

३६५ अहिगुण्डिक जातक

"धुत्तोम्हि " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक वृद्ध भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त सालक जातक[2] मे आई है। इस कथा मे भी वह वृद्ध ग्राम-बालक को साधु बना गाली देता और पीटता था। लडका भाग गया और साधु नही रहा। दूसरी बार भी उसे साधु बना वैसा ही किया। दूसरी बार भी वह साधु नही रहा। और फिर कहने पर उधर देखना भी नही चाहता था। भिक्षुओ ने धर्म सभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो, अमुक वृद्ध न

---

१ महाउम्मग्ग जातक (५४६)

२. सालक जातक (२४९)

अपने श्रामणेर के साथ रह सकता है न उसके बिना। लडका उसका दोष देख फिर इधर देखना भी नही चाहता। कुमार का दिल अच्छा है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "अमुक बात चीत" कहने पर भिक्षुओ ने न केवल अभी किन्तु पहले भी यह श्रामणेर सुहृदय ही रहा है और एक बार दोष देखकर फिर उधर देखना भी नही चाहा" कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व धान्य व्यापारी के कुल मे पैदा हो बडे होने पर धान्य विक्री करके ही जीविका चलाते थे। एक सपेरा बन्दर ले, उसे सिखा, साँप का खेल करता था। वाराणसी मे उत्सव की घोषणा होने पर वह उस बन्दर को धान्य व्यापारी के पास छोड तमाशा करता हुआ सात दिन-विचरता रहा। उस व्यापारी ने बन्दर को खाद्य भोज्य दिया। सपेरे ने सातवें दिन लौट उत्सव-क्रीडा की मस्ती के कारण उस बन्दर को बास की छपटी से तीन बार मारा। वह उसे लेकर उद्यान गया और बाध कर सो गया। बन्दर बन्धन खोल आम के वृक्ष पर चढ गया और बैठ कर आम खाने लगा। सपेरे ने उठकर वृक्ष पर बन्दर को देखा और सोचा, मुझे इसे बहका कर पकडना चाहिये। उसने उससे बात करते हुये पहली गाथा कही —

> धुत्तोम्हि सम्म सुमुख जूते अक्ख पराजितो,
> हरेहि अम्बपक्कानि विरियन्ते भक्खयामसे ॥

["मित्र सुमुख! मैं जुए मे हारा हुआ जुआरी हूँ। पके आम लो। तुम्हारे वीर्य (से प्राप्त फल) को खायेंगे।]

यह सुन बन्दर ने शेष गाथायें कही —

> अलिक वत म सम्म अभूतेन पसससि,
> को ते सुतो वा दिट्ठो वा सुमुखो नाम मक्कटो ॥
> अज्जापि मे त मनसि यं मं त्वं अहितुण्डिक,
> धञ्ञापण पविसित्वा मत्तो छातं हनासि म ॥

ताहं सरं दुखसेय्य अपि रज्जम्पि कारये,
नेवाहु याचितो दज्ज तथा हि भयतज्जितो ॥
यञ्च जञ्ञा कुलेजातं गब्भे तित्तं अमच्छरिं,
तेन सखिञ्च मित्तञ्च धीरो सधातुमरहति ॥

[मित्र ! तू मेरी झूठ-मूठ की प्रशसा करता है । बता, तूने किस बन्दर को सुमुख देखा या सुना है ? हे सपेरे आज भी वह मेरे मन मे है जो तूने धान्य की दुकान मे घुसकर मस्ती मे मुझ भूखे को मारा था । उस दुख को याद करके मैं ऐसा भयभीत हूँ कि यदि तू राज्य भी कराये तो भी मैं मागने

पर भी (आम) नही दूँगा । धीर आदमी को उसे ही सखा बनाना चाहिये और उसीसे मैत्री करनी चाहिये जिसे जाने की वह (अच्छे) कुल मे पैदा हुआ है, (माता के) गर्भ से ही सतोषी है और है मात्सर्य-रहित ।]

यह कह बन्दर तुरन्त जगल मे घुस गया । शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय सपेरा वृद्ध स्थविर था । बन्दर श्रामणेर । धान्य व्यापारी तो मैं ही था ।

३६६. गुम्बिय जातक

"मधुवण्ण मधुरस " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही ।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न चित्त है ?" "भन्ते ! सचमुच" कहने पर पूछा—क्या देखकर उद्विग्न-चित्त हुआ है ? उत्तर मिला—अलकृत स्त्री को देखकर । शास्ता ने "भिक्षु ! यह पाँच काम-भोग गुम्बिय यक्ष द्वारा हलाहल विष मिलाकर रास्ते मे रखे मधु की तरह हैं" कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व बजारो के नेता के कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर वाराणसी से पाँच सौ गाडियाँ सामान लेकर व्यापार के लिये जाते समय उसने महामार्ग मे जगल-द्वार पर पहुँच बजारो को इकट्ठा किया और कहा—भो! इस रास्ते मे विषैले पत्ते, फूल फलादि हैं। तुम किसी ऐसी चीज को जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझे पूछे मत खाना। अमनुष्य भी विष मिलाकर भात की पोटली, शहद के छत्ते तथा फलादि रास्ते पर रख देते है। वह भी बिना मुझे पूछे न खाना। यह उपदेश दे रास्ते पर चला।

गुम्बिय नाम का एक यक्ष जगल के बीच मे रास्ते पर पत्ते फैला, उन पर विष मिले मधु-पिण्ड रखकर स्वय रास्ते के पास ही शहद एकत्र करता हुआ, वृक्षो को छीलता हुआ घूमता था। अजानकार समझते थे कि पुण्यार्थ रखे होगे। वे खाकर मर जाते थे। अमनुष्य आकर उन्हे खाते थे।

बोधिसत्व के सार्थ के आदमियो मे से भी कुछ लोभी सयम न कर सकने के कारण उन्हे खा गये। बुद्धिमान लोग लिये खडे रहे कि पूछ कर खायेंगे। बोधिसत्व ने देखते ही जो हाथ मे लिये थे उनसे फिकवा दिये। जिन्होंने पहले ही खा लिये वे मर गये। जिन्होने आधे खाये थे, उन्हे वमन-विरेचन करा चतुर्मधु[1] दिये। उसके प्रताप से उन्हे जीवन मिला। बोधिसत्व सकुशल जहाँ जाना था वहाँ पहुँचे और सामान बेच अपने घर लौटे। यह बात सुनाकर शास्ता ने ये अभिसम्बुद्ध गाथायें कही —

मधुवण्ण मधुरस मधुगन्ध विस अहु,
गुम्बियो घासमेसानो अरञ्ञे ओदही विस ॥
मधु इति मञ्ञमाना ये त विसमसायिसु,
तेस त कटुकं आसि मरणं तेनुपागमुं ॥
ये च खो पटिसङ्खाय विसन्त परिवज्जयुं,
ते आतुरेसु सुखिता डय्हमानेसु निब्बुता ॥

---

१ शहद, मक्खन, घी तथा खाण्ड।

एवमेव मनुस्सेसु विस कामा समोहिता,
आमिस वन्धनञ्चेत मच्चुवासो गुहासयो ॥
एवमेव इमे कामे आतुरा परिचारिके,
ये सदा परिवज्जेन्ति सङ्ग लोके उपच्चगु ॥

[गुम्बिय ने (मृत मनुष्यो के) आहार की खोज करते हुये जङ्गल मे मधु-वर्ण मधु-रस तथा मधु-गन्ध का विष डाला ॥१॥ जिन्होंने उसे मधु समझ चखा, उन्हे यह बडा तीक्ष्ण लगा और उससे वे मर गये ॥२॥ जिन्होने बुद्धि-पूर्वक उस विष को ग्रहण नही किया, वे उन दुखियो मे सुखी रहे और (विष से) दग्ध होते हुओ मे शान्त ॥३॥ उसी प्रकार मनुष्य-लोक मे जो यह काम भोग बिखरे पडे हैं—वे विष है, लौकिक-बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं और गुह्याशय है ॥४॥ इसी प्रकार क्लेश-परिचारको वाले इन काम भोगो को जो (मरणासन्न) बुद्धिमान जानकर छोड देते हैं, वे सङ्ग से मुक्त हो जाते है ॥५॥

शास्ता ने सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय सार्थ का नेता मैं ही था।

३६७. सालिय जातक

"य्वाय सालियछापो" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय 'आयुष्मान् देवदत्त त्रास-कारक भी नही हो सका' वचन के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने 'न केवल अभी भिक्षुओ, पहले भी यह मेरा त्रास-कारक भी नही हो सका' कह पूर्व जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गाँव मे एक गृहस्थ के घर मे पैदा हुए। तरुण होने पर (वह) लगोटिया यारो के साथ ग्राम-द्वार पर ही गूलर के पेडपर खेलता था। एक दुर्बल वैद्य को जब गाँव मे कुछ काम न मिला तो उसने वृक्ष के खोडर मे से सिर निकाल कर सोये एक सर्प को देखकर सोचा—मुझे गाँव मे कुछ नही मिला। इन लडको को ठग कर, साँप से डसवा कर (फिर) चिकित्सा कर कुछ भी प्राप्त करूँगा। उसने बोधिसत्व से पूछा—यदि मैना का बच्चा मिले तो लोगे ?

"हाँ, लूँगा।"

"देख, यह खोडर मे सोया है।"

उसने बिना यह जाने कि वह साँप है वृक्ष पर चढ उसे गर्दन से पकड लिया। जब ज्ञात हुआ कि सर्प है तो उसे मुडने न देकर अच्छी तरह पकडे रहकर जोर से फेक दिया। वह जाकर वैद्य की गर्दन पर गिरा और उसकी गर्दन मे लिपट 'कर कर' डस, उसे वही गिरा भाग गया। आदमियो ने घेर लिया। बोधिसत्व ने इकट्ठे हुए आदमियो को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कही —

> य्वायं सालियछापोति कण्हसप्पं अगाहयि,
> तेन सप्पेनयं दट्ठो हतो पापानुसासको॥
> अहन्तारमहन्तार यो नरो हन्तुमिच्छति,
> एवं सो निहतोसेति यथायं पुरिसो हतो॥
> अहनन्तमघातेन्तं यो नरो हन्तुमिच्छति,
> एवं सो निहतो सेति यथायं पुरिसो हतो॥
> यथा पंसुमुट्ठि पुरिसो पटिवातं पटिक्खिपे,
> तमेव सो रजो हन्ति तथायं पुरिसो हतो॥
> यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
> सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स,
> तमेव बाल पच्चेति पाप
> सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो॥

[जिसने कृष्ण सर्प को 'मैना का बच्चा' कह कर पकड़वाया, वह बुराई करने वाला उसी सर्प से डसा जाकर मर गया ॥१॥ जो नर उसकी हत्या करना चाहता है, जो किसी की हत्या नही करता, वह इस पुरुष की ही तरह मर कर सोता है ॥२॥ जो नर उसका घात करना चाहता है, जो किसी का घात नही करता वह इस पुरुष की ही तरह मर कर सोता है ॥३॥ जैसे आदमी बालू की मुट्ठी को हवा के विरुद्ध फेंके, वह उसी आदमी को चोट पहुँचाती है, वैसे ही यह आदमी मारा गया ॥४॥ जो शुद्ध, निर्मल, दोष-रहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोषी ठहराने वाले मूर्ख को ही पाप लगता है। जैसे हवा की दिशा के विरुद्ध फेंकी हुई सूक्ष्म धूलि फेंकने वाले पर ही पड़ती है ॥५॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दुर्बल वैद्य देवदत्त था। बुद्धिमान लड़का तो मैं ही था।

३६८. तचसार जातक

"अमित्तहत्थगता" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रज्ञा पारमिता के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने 'न केवल अभी भिक्षुओ, किन्तु पहले भी तथागत प्रज्ञावान तथा उपाय-कुशल थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व गाँव मे एक गृहस्थ के कुल मे पैदा हो (सब कुछ पूर्व जातक की तरह कहना चाहिए)। इस कथा मे वैद्य के मरने पर ग्रामवासियो ने उन लड़को

को मनुष्य की हत्या करने वाला समझा और डण्डे से बाँध राजा के सामने पेश करने के लिये वाराणसी ले गये। बोधिसत्व ने रास्ते मे ही शेष सब लडको को उपदेश दिया—तुम डरना नही। राजा के सामने जाने पर भी सन्तुष्ट-चित्त तथा प्रसन्न वदन ही रहना। राजा पहले हमसे बात करेगा। तब उसके बाद मैं जानूंगा (क्या करना चाहिये?)। उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वैसा ही किया। राजा ने उन्हे निर्भीक, प्रसन्न-चित्त देख सोचा—"यह 'मनुष्य हत्यारे' माने जाकर डण्डे से बाँध कर लाये गये हैं, इस प्रकार के दु ख मे पडे हुए भी डरते नही हैं, प्रसन्न-वदन ही है। इनके चिन्ता न करने का क्या कारण है? पूछूंगा।"

उनसे प्रश्न करते हुए उसने पहली गाथा कही —

अमित्तहत्थत्थगता तचसारसमप्पिता,
पसन्नमुखवण्णात्थ कस्मा तुम्हे न सोचथ॥

[अमित्रो के हाथ मे पडे हुए, बाँस के डण्डे से बंधे हुए भी तुम प्रसन्न-वदन ही हो? तुम्हे चिन्ता क्यो नही है?]

यह सुन बोधिसत्व ने शेष गाथायें कही—

न सोचनाय परिदेवनाय
अत्थो च लब्भा अपि कप्पकोपि,
सोचन्तमेन दुखित विदित्वा,
पच्चत्थिका अत्तमना भवन्ति॥
यतो च खो पण्डितो आपदासु
न वेधती अत्थ विनिच्छयञ्ञू,
पच्चत्थिकास्स दुखिता भवन्ति
दिस्वा मुख अविकारं पुराणं॥
जप्पेन मन्तेन सुभासितेन
अनुप्पदानेन पवेणिया वा,
यथा यथा यत्थ लभेथ अत्थ
तथा तथा तत्थ परक्कमेय्य॥
यतो च जानेय्य अलब्भनेय्यो
मया व अञ्ञेन वा एस अत्थो,

असोचमानो अधिवासपेय्य
कम्म दळहं किन्ति करोमिदानि ॥

[न चिन्ता करने से, न रोने पीटने से ही थोडा भी लाभ होता है। इसे चिन्तित और दु खी देखकर शत्रु प्रसन्न होते है ॥१॥ जब भी अर्थ-विनियम का ज्ञाता पण्डित आपत्ति मे अस्थिर नही होता, तो इसके शत्रु इसके पूर्ववत् अविकारी मुँह को देखकर दु ख को प्राप्त होते हैं ॥२॥ जिस जिस उपाय से भी जहाँ अर्थ सिद्ध होवे, वह वह उपाय करे—चाहे (मन्त्र) जाप से चाहे मन्त्रणा से, चाहे सुभाषण से, चाहे (रिश्वत आदि ?) देने से और चाहे कुलागत सम्बन्ध करने से ॥३॥ जब समझ ले कि मेरे अथवा अन्य के द्वारा इस अर्थ की प्राप्ति नही हो सकती तो चिन्ता न करते हुए यह समझ कर कि (पूर्व) कर्म दृढ है, क्या करूँ ? सहन करे ॥४॥]

राजा ने बोधिसत्व की धार्मिक-कथा सुन, मुकद्दमे कर, लडको को निर्दोष जान उन्हे खुलवा दिये और बोधिसत्व का बहुत सत्कार कर उसे अपना अर्थधर्मानुशासक अमात्यरत्न बना लिया। शेष लडको का भी सत्कार कर उन्हे दूसरे दूसरे पद दिये।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया, उस समय वाराणसी राजा आनन्द था। लडके स्थविरानुस्थविर। पण्डित लडका तो मैं ही था।

३६९. मित्तविन्दक जातक

"क्याहं देवानमकर " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के बारे मे कही।

ख. अतीत कथा

कथा महामित्तविन्दक जातक[1] मे आएगी । लेकिन यह मित्त-विन्दक समुद्र मे फेंका जाने पर अति-लोभी हो, आगे जा नरक-गामी प्राणियो के (आग मे) पकने के स्थान उस्सद-नरक को देख सोचने लगा कि यह एक नगर है । उसने उसमे प्रवेश कर खुर-चक्र का दु ख भोगा । उस समय बोधिसत्व देव-पुत्र की योनि मे उस्सद-नरक मे घूमते थे । उसने उन्हे देख प्रश्न करते हुए पहली गाथा कही—

क्याहं देवामनकर किं पाय पकतं मया,
य मे सिरस्मि ओहच्च चक्क भमति मत्थके ॥

[स्वामी ! मैंने देवताओ का क्या (अपराध) किया ? मेरे द्वारा कौनसा पाप किया गया, जिसके फलस्वरूप मेरे सिर मे लगकर मेरे मस्तक पर चक्र घूमता है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

अतिक्कम्म रमणकसदामत्तञ्चदूभकं,
ब्रह्मत्तरञ्च पासाद केनट्ठेन इधागतो ॥

[तू रमणक, सदामत्त, दूभक तथा ब्रह्मत्तर प्रासाद छोड कर यहाँ क्यो आया ?]

तब मित्तविन्दक ने तीसरी गाथा कही—

इतो बहुतरा भोगा अत्र मञ्ञे भविस्सरे,
इति एताय सञ्ञाय पस्स म व्यसन गत ॥

[इन सब प्रासादो से अधिक भोग यहाँ होगे । इस समझ के कारण देख मैं (किस) दु ख मे आ पडा हूँ ।]

तब बोधिसत्व ने शेष गाथायें कही —

चतुब्भि अट्ठज्झगमा अट्ठका हि च सोळस,
सोळसाहि च बत्तिस अत्रिच्छ चक्कमासदो,
इच्छाहतस्स पोसस्स चक्क भमति मत्थके ॥

---

१. महामित्तविन्दक जातक (४३९)

उपरि विसाला दुप्पूरा इच्छा विसदगामिणी,
येतं अनुगिज्झन्ति ते होन्ति चक्कधारिनो[1] ॥

[चार से आठ, आठ से सोलह, सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमने वाला चक्र प्राप्त हुआ। इच्छा (लोभ) से ताडित मनुष्य के सिर पर चक्र घूमता है।]

[यह तृष्णा ऊपर की ओर चढती जाने वाली, पूरी न हो सकनेवाली, तथा फैलती जाने वाली है। जो इस तृष्णा मे लुब्ध होते है, वे ही चक्रधारी होते हैं।]

मित्तविन्दक के बोलते रहते ही वह चक्र उसे मरोड कर स्वय भी लुप्त हो गया। इससे वह फिर कुछ न कह सका। देवपुत्र अपने देवस्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मित्त-विन्दक बात न मानने वाला भिक्षु था। देवपुत्र तो मैं ही था।

३७० पलास जातक

"हसो पलासमवच " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कामुकता के निग्रह के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पञ्ञासजातक[2] मे आएगी। उस कथा मे शास्ता ने भिक्षुओ को बुलाकर 'भिक्षुओ, कामुकता मे सशङ्कित ही रहना चाहिये। थोडी भी बट

---

१ मित्तविन्द जातक (१०४)

२ पञ्ञा जातक भी पाठ है, किन्तु यह पञ्ञा जातक कौनसी है, निश्चित रूप से कहना कठिन है।

के वृक्ष की तरह विनाश का कारण होती है। पुराने पण्डितो ने भी शङ्कनीय विषयों में शङ्का की ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व स्वर्ण (वर्ण) हस की योनि मे पैदा हुए। बडे होने पर चित्र-कूट पर्वत पर स्वर्ण-गुफा मे रह (वह) हिमालय-प्रदेश के जलाशय मे अपने से उत्पन्न धान खाकर आता। उसके आने जाने के मार्ग मे पलास का महान् वृक्ष था। वह जाता हुआ भी वहाँ विश्राम करके जाता और आता हुआ भी वहाँ विश्राम करके आता। उस वृक्ष पर रहने वाले देवता से उसकी मैत्री हो गई। आगे चल कर एक चिडिया एक वट के पेड से पका गोदा खाकर आई और उस पलास वृक्ष पर बैठ, शाखाओ के बीच बीट कर दी। उसमे से बट का वृक्ष पैदा हो गया। वह जब चार अगुल मात्र था, तब लाल-लाल पत्ते होने से शोभा देता था। हस राजा ने उसे देख वृक्ष-देवता को आमन्त्रितकर कहा—मित्र! बड (का पौधा) जिस वृक्ष पर पैदा होता है, बढने पर उसे नष्ट कर देता है। इसे बढने मत दे। तेरे विमान को नष्ट कर देगा। इसे तुरन्त ही उखाड डाल। जो सशङ्कित बात हो, वहाँ शङ्का करनी चाहिए। उसने पलास-देवता से मन्त्रणा करते हुए पहली गाथा कही—

हंसो पलासमवच[1] निग्रोधो सम्म जायति,
अङ्कस्मिं ते निसिन्नोव सो ते मम्मानि छेच्छति॥

[हस ने पलास से कहा—मित्र, बट पैदा हो रहा है। वह तेरी गोद मे बैठा हुआ ही तेरा प्राण ले लेगा।]

यह सुन उसका कहना अस्वीकार करते हुए वृक्ष-देवता ने कहा—

वड्ढतामेव निग्रोधो पतिट्ठस्स भवामहं,
यथा पिता च माता च एवमेसो भविस्सति॥

[यह बट बढे। मैं इसका आधार होऊँगा। जैसे माता पिता होते हैं, (वैसा ही) इसका। (और मेरा) सम्बध होगा।]

---

1. इस गाथा का पहला पद शास्ता द्वारा कहा गया है।

तब हम ने तीसरी गाथा कही—

यं त्व अङ्कस्मि वड्ढेसि खीररुक्ख भयानक,
आमन्त खो त गच्छामि बुड्ढिमस्स न रुच्चति ॥

[मैं तुझे यह जताकर जाता हूँ कि तू जिस भयानक दुग्ध-वृक्ष (बट) को गोद मे पालता है, मुझे इसका बढना अच्छा नही लगता ।]

यह कह हसराज पख पसार कर चित्र-कूट पर्वत पर ही चला गया । इसके बाद फिर नही आया । आगे चलकर वट बढा । उसपर एक वृक्ष देवता भी रहने लगा । उसने बढते हुए पलास को तोडा । शाखाओ के साथ (पलास-) देवता का विमान भी गिर गया । उसने उस समय हस-राजा के वचन को याद किया कि इसी भावी-भय को देख कर हसराज कहता था । लेकिन मैंने उसका कहना नही माना । उसने रोते-पीटते चौथी गाथा कही—

इदानि खो मं भायति महानेरुनिदस्सन,
हसस्स अनभिञ्ञाय महा मे भयमागत ॥

[अब यह मुझे डराता है । हस की बात न समझने से मुझ पर यह महानेरु [पर्वत] के समान महान् आपत्ति आई ।]

वट ने बढते हुए सारे पलास को तोड ठूँठ मात्र कर दिया । देवता का सारा विमान नष्ट हो गया ।

पाँचवी गाथा अभिसम्बुद्ध-गाथा है—

न तस्स वुड्ढि कुसलप्पसत्था
यो वड्ढमानो घसते पतिट्ठ,
तस्सूपरोध परिसङ्कमानो
पतारयी मूलवधाय धीरो ॥

[जो बढता हुआ उसी को खाता है जिस पर वह प्रतिष्ठित है, उसकी बढती कुशल लोगो द्वारा प्रशसित नही है । उससे उत्पन्न हुए उपरोध की शङ्का कर धीर उसके मूल को ही नष्ट करने का प्रयत्न करे ।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो के अन्त मे पाँच सौ भिक्षुओ को अर्हत्व प्राप्त हुआ । उस समय स्वर्ण हस मैं ही था ।

पाँचवाँ परिच्छेद

३ अड्ढ वर्ग

३७१ दीधिति जातक

"एव भूतस्स ते राजा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय कोसम्बी के झगडालुओ के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उनके जेतवन आकर क्षमा याचना करने के समय शास्ता ने उन्हे आमन्त्रित कर कहा—भिक्षुओ, तुम मेरे पुत्र हो, मुँह से उत्पन्न पुत्र हो। पुत्रो को चाहिये कि पिता के दिये गये उपदेश का उल्लंघन न करें। लेकिन तुम उपदेश के अनुसार नही चलते। पुराने पण्डितो ने अपने माता-पिता को मार, राज्य प्राप्त करने वाले चोरो को, जङ्गल मे हाथ आ जाने पर भी केवल इसलिये नही मारा कि माता-पिता की आज्ञा का उलङ्घन नही करेंगे। यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

इस जातक की दोनो कथायें सघभेदक जातक[1] मे विस्तार से आयेंगी। उस दीर्घायुकुमार ने जङ्गल मे अपनी गोद मे पडे वाराणसी राजा को बालो से पकड तलवार उठाई कि अब मैं अपने माता पिता की हत्या करने वाले के चौदह टुकडे करूँगा, लेकिन उसी क्षण माता-पिता द्वारा दिये गये उपदेश को याद कर सोचा कि प्राण जाने पर भी उनकी आज्ञा का उलङ्घन नही करूँगा। इसे केवल धमका भर दूँगा। यह सोच उसने पहली गाथा कही—

---

१ सघ-भेदक जातक अनिश्चित है।

एवं भूतस्स ते राज आगतस्स वसे मम,
अत्थि नु कोचि परियायो यो त दुक्खा पमोचये ॥

[हे राजन् ! इस प्रकार मेरे वश मे आ पडने पर क्या कोई ऐसी बात है, जो तुझे दु ख से छुडा सके ?]

राजा ने दूसरी गाथा कही —

एव भूतस्स मे तात आगतस्स वसे तव'
नत्थि नो कोचि परियायो यो म दुक्खा पमोचये ॥

[हे तात ! इस प्रकार तेरे वश आ पडने पर कोई ऐमी बात नही है, जो दु ख से छुडा सके ।]

तब बोधिसत्व ने शेष गाथायें कही —

नाञ्ञ सुचरित राज नाञ्ञ राज सुभासित,
तायते मरणकाले एवमेवितर धन ॥
अक्कोच्छि म अवधि म अजिनि म अहासि मे,
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥
अक्कोच्छि मं अवधि म अजिनि म अहासि मे,
ये त न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन,
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

[राजन ! सुचरित या सुभाषित् को छोड और कुछ इस मरने के समय रक्षा नही कर सकता, इसी प्रकार इतर धन भी (निरर्थक) है ॥१॥ 'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें सोचते रहते है उनका वैर कभी शान्त नही होता ॥२॥ 'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें नही सोचते, उन्ही का वैर शान्त होता है ॥३॥ वैर, वैर मे कभी शान्त नही होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है—यही ससार का सनातन नियम है ॥४॥

यह कह बोधिसत्व ने उसके हाथ मे तलवार देते हुए कहा—महाराज ! मैं तुम से द्वेष नही करता हूँ । तुम मुझे मार डालो । राजा ने भी शपथ की—मैं तुम से द्वेष नही करता हूँ । उसके साथ नगर जा उसने अमात्यो को दिखाकर कहा—भणे ! यह कोशल-नरेश का पुत्र दीर्घायुकुमार है ।

इसने मुझे जीवन दान दिया है। मैं इसका कुछ बदला नही दे सकता। उसने उसे अपनी लडकी दे, पिता के राज्य पर प्रतिष्ठित किया। तब से दोनो परस्पर मेल मे राज्य करने लगे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय माता-पिता महाराज-कुल थे। दीर्घायु कुमार तो मैं ही था।

३७२. मिगपोतक जातक

'अगारा पच्चुपेतस्स " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय *एक वृद्ध के बारे मे कही—*

क. वर्तमान कथा

उसने एक लडके को प्रव्रजित किया। श्रामणेर उसकी अच्छी तरह सेवा करते रह कर, रोगी हो मर गया। उसके मरने से वृद्ध शोकाभिभूत हो बडे जोर से रोता-चिल्लाता फिरता था। भिक्षुओ ने समझाने मे असमर्थ हो धर्मसभा मे बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अमुक वृद्ध श्रामणेर के मरण से रोता-पीटता फिरता है। यह मरणानुस्मृति-भावना से बाहर होगा। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?

"अमुक बातचीत।"

"न केवल अभी, पहले भी यह इसके मरने पर रोता-पीटता फिरता था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने शक्रत्व (लाभ) किया। उसी समय काशी राष्ट्र निवासी किसी एक आदमी ने हिमालय मे जा ऋषि-प्रव्रज्या ली। वह फल-मूल खाकर रहता था। एक

दिन उसने जगल मे एक मृगी का बच्चा देखा, जिसकी मा मर गई थी। वह उसे आश्रम मे ले आया और चारा खिलाकर पालपोस लिया। मृगी का बच्चा बडे होने पर बडा सुन्दर लगने लगा। तपस्वी उसे अपने पुत्र की तरह रखता था। एक दिन मृगी का बच्चा बहुत अधिक तृण खाकर अजीर्ण से मर गया। तपस्वी 'मेरा पुत्र मर गया' कहता हुआ रोता-पीटता फिरने लगा। तब देवराज शक्र ने लोक का विचार करते हुए उस तपस्वी को देखा। उसने उसके मन मे सवेग पैदा करने के लिये आकर आकाश मे खडे हो पहली गाथा कही—

अगारा पच्चुपेतस्स अनागारस्स ते सतो,
समणस्स न त साधु य पेतमनुसोचसि ॥

[तू घर से बेघर हुआ है, अनगारिक है, श्रमण है, तेरे लिये यह अच्छा नही कि तू किसी के मरने पर चिन्तित हो।]

इसे सुन तपस्वी ने दूसरी गाथा कही—

सवासेन हवे सक्क मनुस्सस्स मिगस्स वा,
हदये जायते पेम न त सक्का असोचितुं ॥

[हे शक्र! साथ रहने से चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु, हृदय मे प्रेम पैदा हो जाता है। यह सम्भव नही कि मैं उसके लिये चिन्तित न होऊँ।]

तब शक्र ने दो गाथायें कही —

मत मरिस्स रोदन्ति ये रुदन्ति लपन्ति च,
तस्मा त्व इसि मारोदि रोदित मोघमाहु सन्तो ॥
रोदितेन हवे ब्रह्मे मतो पेतो समुट्ठहे,
सब्बे सङ्गम्म रोदाम अञ्ञमञ्ञस्स ञातके ॥

[वे मरो और मरने वालो को रोते है, जो रोते हैं और प्रलाप करते हैं। इसलिये हे ऋषि तू मत रो। सन्त पुरुष रोने को बेकार कहते हैं ॥१॥ हे ब्रह्म! यदि रोने से मरा प्रेत उठ जाये, तो हम सब एक दूसरे के रिश्तेदार इकट्ठे होकर रोयें ॥२॥

इस प्रकार शक्र के कहते-कहते तपस्वी ने यह समझ कि रोना बेकार है, शक्र की स्तुति करते हुए तीन गाथायें कही —

आदित्त वत मसन्त घतसित्त व पावकं,
वारिना विय ओसिञ्च सब्ब निब्बापये दरं ॥१॥

अब्बूळ्ह वत मे सल्ल यमासि हृदयनिस्सित,
यो मे सोकपरेतस्स पुत्तसोक अपानुदि ॥२॥
सोह अब्बूळ्हसल्लोस्मि वीतसोको अनाविलो,
न सोचामि न रोदामि तव सुत्वान वासव ॥३॥

[घी पडी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे (हृदय के) दु ख को पानी से अग्नि शान्त कर देने की तरह शान्त करदे ॥१॥ मेरे हृदय मे लगे हुए शोक शल्य को निकाल दिया, जो यह मुझ शोकातुर का पुत्र-शोक दूर कर दिया ॥२॥ हे इन्द्र ! तेरी बात सुन कर मैं शोक-रहित हो गया हूँ। चञ्चलता रहित हो गया हूँ, शल्य-रहित हो गया हूँ। अब मैं न चिन्ता करता हूँ, न रोता हूँ ॥३॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय तपस्वी बूढा था। शक्र तो मैं ही था।

३७३ मूसिक जातक

"कुहिं गता कत्थ गता " यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय अजात-शत्रु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

कथा पूर्वोक्त थुस जातक[1] मे विस्तारपूर्वक आ ही गई है। इस कथा मे भी राजा को जरा देर पुत्र के साथ खेल, फिर जरा देर धर्म सुनते देख और यह जान कि इसी पुत्र के कारण राजा पर आपत्ति आयगी शास्ता ने राजा को कहा—महाराज ! पुराने राजाओ ने सन्देह करने की जगह

---

१. थुस जातक (३३८)

पर सन्देह कर, हमारा पुत्र हमारे चितारोहण के वाद राज्य करे, सोच उसे एक ओर कर दिया है।

यह कह शास्ता ने पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वोधिसत्व तक्षशिला मे ब्राह्मण-कुल मे पैदा हो प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। उसके पास वाराणसी राजा के यव नाम के पुत्र ने सब विद्यायें सीखी। अभ्यास कर चुकने पर, जाने की इच्छा से उसने आज्ञा मागी। आचार्य्य ने अङ्ग विद्या से जाना कि इसे अपने पुत्र से खतरा होगा। सोचा—इसका खतरा दूर करूँगा। आचार्य्य एक उपमा सोचने लगे।

उस समय आचार्य्य के पास एक घोडा था। उसके पाँव मे जखम हो गया। उसके जखम की हिफाजत के लिए उसे घर मे ही रखा था। वही पास मे एक जलाशय भी था। एक चूहिया घर से निकल कर उसके पाँव के जखम को खाती। घोडा उसे हटा न सकता।

एक दिन जब वह वेदना नही सह सका तो जखम खाने के लिये आई चूहिया को उसने पाँव से मार जलाशय मे गिरा दिया। घोडे का साईस चूहिया को न देख, वोला—और दिन चूहिया आकर जखम खाती थी, अब नही दिखाई देती। कहाँ गई?

वोधिसत्व ने उस बात को प्रत्यक्ष देख सोचा—दूसरे नही जानते कि चूहिया कहाँ गई, इसीलिये पूछते है कि वह कहाँ गई? मैं ही जानता हूँ कि चूहिया को मार जलाशय मे फेंक दिया गया है। उसने इसी वारे मे पहली गाथा बनाकर राजकुमार को दी।

एक दूसरी उपमा खोजते हुए उसने उसी घोडे को देखा कि उसका जखम अच्छा होगया है और वह निकल कर एक जौ के खेत मे जौ खाने जाकर खेत की वाड मे से मुँह डाल रहा है। उसने उसी उपमा को ले दूसरी गाथा बना, उसे दी।

तीसरी गाथा उसने अपनी ही सूझ से बनाई और वह भी उसे देकर कहा—तात! राज्य पर प्रतिष्ठत होकर शाम को स्नान-पुष्करिणी पर

जाते समय अन्तिम सीढी तक पहली गाथा का पाठ करते हुए जाना, अपने रहने के महल मे प्रविष्ट होते समय सीढियो के नीचे तक दूसरी गाथा का पाठ करते हुए जाना और सीढियो के सिरे तक तीसरी गाथा का पाठ करते हुए। यह कह विदा किया।

वह कुमार जाकर उपराज बना और पिता के मरने पर राज्य करने लगा। उसको एक पुत्र पैदा हुआ। उसने सोलह वर्ष की आयु होने पर राज्य-लोभ के वशी-भूत हो सोचा—पिता को मारूँगा। तब उसने अपने सेवको को बुलाकर कहा—मेरा पिता तरुण है। मैं इसके चितारोहण समय की प्रतीक्षा करता हुआ बूढा हो जाऊँगा। जराजीर्ण होने पर उस समय राज्य मिला भी तो उससे क्या प्रयोजन ?

वे बोले—देव! प्रत्यन्त-जनपद मे जाकर विद्रोह नही कर सकते। अपने पिता को किसी न किसी उपाय से मारकर राज्य लें।

उसने 'अच्छा' कहा और महल के अन्दर ही जहाँ राजा की शाम को स्नान करने की पुष्करिणी थी। वहाँ समीप ही जाकर तलवार लेकर खडा हो गया कि यहाँ मारूँगा। राजा ने शाम को मूसिका नाम की दासी को भेजा—जा पुष्करिणी की सफाई करके आ, नहाऊँगा। उसने जाकर पुष्करिणी की सफाई करते समय कुमार को देखा। कुमार को डर हुआ कि उसकी करतूत कही प्रकट न हो जाय। इसलिये उसने उसके दो टुकडे कर उसे पुष्करिणी मे गिरा दिया। राजा नहाने गया। आदमी कहने लगे—आज भी मूसिका दासी लौटी नही, कहाँ गई, किधर गई ? राजा पहली गाथा कहता हुआ पुष्करिणी के किनारे पहुँचा —

कुहिं गता कत्थ गता इति लालपती जनो,
अहमेव एको जानामि उदपाने मूसिका हता ॥

[जनता प्रलाप करती है कि मूसिका कहाँ गई, किधर गई ? मैं ही अकेला जानता हूँ कि मूसिका मरकर जलाशय मे पडी है।]

कुमार ने समझा कि मेरी करनी पिता पर प्रकट हो गई। वह डर कर भाग गया और यह बात सेवको को कही। उन्होने सात आठ दिन के बाद उसे फिर कहा—देव! यदि राजा जान जाता, तो चुप न रहता। अन्दाज से ही उसने वैसा कह दिया होगा। उसे मारें। वह फिर एक दिन हाथ मे

तलवार ले सीढियो के नीचे खडा हुआ और राजा के आने के समय इधर-उधर प्रहार करने का अवसर देखने लगा। राजा दूसरी गाथा का पाठ करता हुआ आया—

यञ्चेत इतिच्चितिव गद्रभोव निवत्तसि,
उदपाने मूसिक हन्त्वा यव भक्खितुमिच्छसि ॥

[यह जो तू गधे की तरह इधर उधर (देखता हुआ) खडा है। (इस से मालूम होता है) शलाशय मे मूसिका को मार कर अब यव (जौ) को खाना चाहता है।]

कुमार ने समझा—मुझे पिता ने देख लिया है। वह डर के मारे भाग गया। फिर आधे महीना पर 'राजा को लाठी की मार से मारूँगा' सोच एक लम्बी लाठी ले उसके सहारे खडा हुआ। राजा तीसरी गाथा कहता हुआ सीढियो पर चढा—

दहरो चसि दुम्मेध पठमुप्पत्तितो सुसू,
दीघञ्चेत समासज्ज न ते दस्सामि जीवित ॥

[प्रथम उत्पत्ति के दिन से ही तू लडका है, मूर्ख है और बाल है। लम्बी (लाठी) लेकर खडा है। अब मैं तुझे जीता नही छोडूंगा।]

उस दिन वह भाग न सका और जाकर राजा के पाँव पर गिर पडा—देव ! मुझे जीवन दान दें राजा ने उमे धमका, जजीर से बधवा बन्धनागार मे डलवा दिया। फिर श्वेत-छत्र के नीचे अलकृत राजासन पर बैठ सोचा—हमारे आचार्य्य ने, चारो दिशाओ मे प्रसिद्ध ब्राह्मण ने मेरे लिये यह खतरा देख कर ही ये गाथायें कही (होगी)। उसने प्रसन्न हो प्रीति-वाक्य कहते हुये शेष गाथायें कही—

नान्तलिक्खभवनेन नाङ्गपुत्तसिरेनवा,
पुत्तेन हि पत्थयितो सिलोकेहि पमोचितो ॥
सब्ब सुतमधीयेथ हीनमुक्कुट्ठमज्झिम,
सब्बस्स अत्थ जानेय्य न च सब्ब पयोजये,
होति तादिसको कालो यत्थ अत्थावह सुत ॥

[न तो मैं विमान (मे बैठा होने) से बचा हूँ और न अङ्गसदृश पुत्र द्वारा ही बचाया गया हूँ। पुत्र द्वारा ही मुझ पर आक्रमण हुआ। श्लोको द्वारा रक्षा हुई ॥१॥

हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ट सभी विद्याओ को सीखे, सभी के अर्थ को जाने, किन्तु सभी का प्रयोग न करे। ऐसा समय आता है जहाँ श्रुत (ज्ञान) से काम होता है ॥२॥]

आगे चलकर राजा के मरने पर कुमार राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय चारो दिशाओ मे प्रसिद्ध आचार्य्य मैं ही था।

३७४. चुल्लधनुग्गह जातक

"सब्ब भण्ड " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्व-भार्य्या की आसक्ति के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु के यह कहने पर कि भन्ते पूर्व-भार्य्या उसे उद्विग्न करती है, शास्ता ने 'भिक्षु ! यह स्त्री केवल अभी तेरी अनर्थ-कारिणी नही है, इसके कारण पहले भी तू तलवार मे काटा गया है' कह भिक्षुओ के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र हुये। उस समय एक ब्राह्मण-तरुण तक्षशिला मे सभी शिल्प सीख धनुष-विद्या मे पूर्णता प्राप्त कर चुल्ल-धनुग्गह-पण्डित कहलाया। उसके आचार्य्य ने यह देख कि यह मेरे जैसे ही शिल्प जान गया है, उसे अपनी लडकी दे

दी। वह उसे ले वाराणसी आने के लिये रास्ते पर निकला। मार्ग मे एक प्रदेश था, जिसे एक हाथी ने (आदमियो से) शून्य कर दिया था। कोई भी वहाँ जाने का साहस न करता था। चुल्ल-धनुग्गह-पण्डित आदमियो के मना करते रहने पर भी भार्य्या को ले जगल की ओर बढा।

जगल के बीच पहुँचने पर हाथी ने उस पर आक्रमण किया। उसने हाथी के सिर मे तीर मारा। तीर उसे बीध कर पिछली ओर से निकल गया। हाथी वही गिर पडा। धनुग्गह-पण्डित उस स्थान को निष्कण्टक बना आगे दूसरे जगल मे घुसा। वहाँ भी पचास चोर-बट-मारी करते थे। आदमियो ने रोका। तो भी वह उधर बढा। चोर मृगो को मार, रास्ते पर बैठे उनका माँस पकाकर खा रहे थे। सजी सजाई स्त्री के साथ उसे आते देख चोरो ने सोचा—इसे पकडें। चोरो का सरदार पुरुप-लक्षण (विद्या मे) कुशल था। उसने उसे देख और यह जान कि यह उत्तम-पुरुष है किसी एक को भी उठने नही दिया। धनुग्गह-पण्डित ने अपनी भार्य्या को भेजा—जा 'हमे भी एक कबाब दो' कह कर एक कबाब ले आ।

उसने जाकर कहा—एक माँस की सलाई दे दो। चोरो के सरदार ने 'यह बढिया आदमी है' सोच माँस सलाई दिलाई। चोरो ने 'पकी मास-सलाई हम खा चुके' कह कच्ची माँस-सलाई दे दी। धनुग्गह के मन मे मान पैदा हुआ। वह यह सोच कि कच्चा माँस देते है, चोरो पर क्रुद्ध हुआ। चोर भी उठ खडे हुए—क्या यही एक पुरुष है, हम स्त्रियाँ है!

धनुग्गह ने उनचास तीरो से उनचास जनो को बीध कर गिरा दिया। चोरो के सरदार को बीधने को तीर नही रहा। उसके तरकश मे पूरे पचास ही तीर थे। एक तीर से हाथी को बीधा। उनचास तीरो से चोरो को बीध, चोरो के सरदार को गिरा, उसकी छाती पर बैठ सोचा—इसका सिर काटूगा। उसने भार्य्या से तलवार मगाई। उसने उसी क्षण चोरो के सरदार के प्रति आसक्त हो स्वामी के हाथ मे म्यान और चोर के हाथ मे दस्ता दे दिया। चोर ने दस्ता पकड, तलवार निकाल, धनुग्गह का सिर काट दिया।

उसने उसे मार, स्त्री को ले जाते समय उससे जाति-गोत्र पूछा। वह बोली—मैं तक्षशिला के प्रसिद्ध आचार्य्य की लडकी हूँ।

"इसे तू कैसे मिली?"

"मेरे पिता ने इस पर प्रसन्न हो कि इसने भी उसके सदृश शिल्प सीख लिया है, मुझे इसे दे दिया। और मैंने तुझ पर आसक्त हो अपने कुलप्राप्त स्वामी को मरवा दिया।"

चोरो के सरदार ने सोचा—इसने अपने कुल-प्राप्त स्वामी को मरवा दिया। किसी दूसरे को देख मुझसे भी यही वर्ताव करेगी। इसे छोडना चाहिए। रास्ते मे एक छोटी नदी देखी जिसका पाट चौडा था और जो उस समय पानी से लबालब थी। वह बोला—भद्रे। इस नदी के मगर-मच्छ भयानक है। क्या करें ?

"स्वामी ! तुम मेरी चादर मे गहनो की गठरी बाँध दूसरी ओर ले जाओ। फिर दूसरी बार आकर मुझे ले जाना।"

उसने 'अच्छा' कहा और सारे गहनो की गठरी ले, नदी मे उतर, तैर कर, पार कर, दूसरे किनारे पर पहुँच, उसे छोड चला गया। उसने देखा तो बोली "स्वामी ! क्या मुझे छोड कर जा रहे हो ? ऐसा क्यो करते हो। आओ मुझे भी लेकर जाओ।"

इस प्रकार उससे बात चीत करते हुए पहली गाथा कही—

सब्ब भण्ड समादाय पार तिण्णोसि ब्राह्मण,
पच्चागच्छ लहुँ खिप्प मम्पितारेहि दानितो ॥

[ब्राह्मण ! सब सामान लेकर अब तू पार हो गया है। अब तू शीघ्र लौट कर मुझे भी जल्दी पार उतार।]

चोर ने यह सुन दूसरे किनारे पर खडे ही खडे दूसरी गाथा कही —

असन्थुत म चिरसथुतेन
निमीसि भोति अधुवं धुवेन,
मयापि भोति निम्मिनेय्य अञ्ञ
इतो अह दूरतर गमिस्स ॥

[आपने चिरकाल से ससर्ग किये हुए, ध्रुव-स्वामी को छोडकर मुझे जिसका पूर्व ससर्ग नही था, और जो अध्रुव था अपनाया। अब आप मुझ से भी किसी दूसरे को बदल सकतीं हैं। इस लिए मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ।]

चोर 'तू ठहर, मैं यहाँ से भी और दूर जाता हूँ' कह उसके विलाप करते रहते ही गहनो की गठरी ले भाग गया। तब वह मूर्खा इच्छा-बाहुल्यता के कारण इस प्रकार की विपत्ति मे पड, अनाथ हो, पास ही एळगज (?) की झाडी मे बैठ रोने लगी।

उस समय शक्र ने दुनियाँ की ओर देखते हुए उसकी ओर देखा, जो इच्छा-बाहुल्य होने के कारण दु ख-प्राप्त थी और जिसे उसके स्वामी तथा चोर ने छोड दिया था। शक्र ने उसे रोते देख सोचा—इसकी गर्हा कर तथा इसे लज्जित कर आता हूँ। उसने मातलि और पञ्चशिख को साथ लिया, और नदी किनारे खडे हो मातलि को कहा—तू मच्छ बन, पञ्चशिख को कहा—तू पक्षी बन। मैं गीदड होकर मुँह मे माँस का टुकडा ले इसके सामने जाऊँगा। तू मेरे वहाँ पहुँचने पर पानी मे से उछल मेरे सामने गिरना। मै मुँह मे लिए हुए माँस के टुकडे को छोड मछली पकडने के लिए लपकूँगा। उस समय पञ्चशिख तू उस मास के टुकडे को ले आकाश मे उड जाना। उसने मातलि को आज्ञा दी—तू पानी मे उतर।

"देव! अच्छा।"

मातलि मच्छ हो गया। पञ्चशिख पक्षी हुआ।

शक्र गीदड बन, मास का टुकडा मुँह मे ले, उसके सामने आया। मच्छ पानी मे से उछल गीदड के सामने गिरा। वह मुँह मे के मास के टुकडे को छोड मच्छ के लिए लपका। मच्छ उछल कर पानी मे गिरा। पक्षी मास का टुकडा ले आकाश मे उड गया। गीदड को दोनो मे से एक भी नही मिला—वह एळगज (?) की झाडी की ओर देखते हुए दु खित मन हो बैठा।

उसने उसे देख, 'यह इच्छा-बाहुल्य होने के कारण न मास पा सका, न मछली, सोच घडा फूटने की तरह की महान् हँसी हँसी। उसे सुन गीदड ने तीसरी गाथा कही—

काय एळगळागुम्बे करोति अट्टहासियं,
नयिध नच्च वा गीत वा ताळ वा सुसमाहितं,
अनम्हिकाले सुस्सोणि किन्नु जग्घसि सोभने॥

[एळगज झाडी मे बैठी हुई हँसने वाली यह कौन है ? न यहाँ नाचना है, न गाना है, न ताल देना है। हे सुन्दरी ! हे सुश्रोणी ! तू रोने के साथ किस लिये हँसी ?]

यह सुन उसने चौथी गाथा कही—

सिगाल बाल दुम्मेध अप्पपञ्ञोसि जम्बुक,
जिनो मच्छञ्च पेसिञ्च कपणो विय झायसि ॥

[हे शृगाल ! हे जम्बुक ! तू मूर्ख है, दुर्बुद्धि है, प्रज्ञारहित है। मच्छ और मास-पेशी दोनो से रहित होकर कृपण की तरह चिन्ता करता है।]

तब गीदड ने पाचवी गाथा कही—

सुदस्स वज्ज अञ्ञेस अत्तनोपन दुद्दस,
जिना पतिञ्च जारञ्च मम्पि त्वञ्ञेव झायसि ॥

[दूसरो का छिद्र देखना आसान है, अपना छिद्र देखना कठिन। तू भी अपने पति और अपने जार से विहीन होकर मेरी ही तरह चिन्तित होती है।]

उसने उसका कहना सुन गाथा कही—

एवमेत मिगराज यथा भाससि जम्बुक,
सा नूनाह इतो गन्त्वा भत्तु हेस्स वसानुगा ॥

[हे मृगराज ! हे जम्बुक ! जैसा तू कहता है, वैसा ही है। अब मैं यहाँ से जाकर स्वामी की वशवर्तिनी बनूगी।]

उस अनाचारिणी, दुराचारिणी का कहना सुन देव-राज शक्र ने अन्तिम गाथा कही—

यो हरे मत्तिक थाल कसथालम्पि सो हरे,
कतयेव तया पाप पुनपेव करिस्ससि ॥

[जो मिट्टी की थाली चुराता है, वह कांसे की थाली भी चुराता है। तूने पाप किया है, और फिर भी तू करेगी।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय धनुग्गह उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। वह स्त्री पूर्व-भार्य्या। देवराज शक्र तो मैं ही था।

३७५ कपोत जातक

"इदानि खोम्हि " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

लोभी-कथा अनेक प्रकार से आ ही गई है। शास्ता ने उस भिक्षु को 'भिक्षु, क्या तू सचमुच लोभी है?' पूछ, उसके 'भन्ते! हाँ' कहने पर 'भिक्षु! न केवल अभी तू लोभी है, पहले भी लोभी ही रहा है, और लोभ के ही कारण जान गँवाई है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर की योनि मे पैदा हो, वाराणसी सेठ की रसोई मे, पिंजरे मे रहता था। मत्स्य-मास लोभी एक कौवा उसके साथ मैत्री कर वहाँ ही रहने लगा।

एक दिन बहुत सा मत्स्य-मास देख उसे खाने की इच्छा से वह बुड-बुडाता हुआ पिंजरे मे ही पडा रहा। जब कबूतर ने उसे बुलाया कि मित्र चल चुगने चलें, तो बोला तू जा मुझे अजीर्ण हुआ है। उसके चले जाने पर 'मेरा शत्रु-कण्टक चला गया है। अब मैं यथा-रुचि मत्स्य-मास खाऊँगा' सोच पहली गाथा कही—

> इदानि खोम्हि सुखितो अरोगो निक्कटको निप्पतितो कपोतो,
> काहामि दानि हृदयस्स तुट्ठिं तथा हिम मस साक बलेति॥

[अब मैं सुखी हूँ, निरोग हूँ, और निष्कटक हू, क्योकि कबूतर चला गया है। अब मैं हृदय को सन्तुष्ट करूँगा, मेरे लिए मास शाक का ऐसा ही आकर्षण है।]

जिस समय रसोइया मत्स्य मांस पका, रसोई-घर से निकल शरीर से पसीना बहा रहा था, वह पिंजरे से निकला और देगची पर बैठ 'किरी किरी' आवाज की। रसोइये ने जल्दी से आकर कौवे को पकड़ उसके सब पर नोच डाले। और कच्चे अदरक को सरसो के साथ पीस तथा उसमे लहसुन और सड़ा हुआ मठा मिला सारे शरीर मे भाख दिया। फिर एक लकडी के टुकडे को रगड उसमे छेद कर सूत से उसकी गरदन मे बाँधा। और पिंजरे मे ही डाल कर चला गया।

कबूतर ने आकर उसे देख 'यह कौन बगुला है जो मेरे मित्र के पिंजरे मे आकर लेटा है। वह तो बडा प्रचण्ड है। आकर इसे मार डाल भी सकता है' कह हँसी करते हुए दूसरी गाथा कही।

> काय बलाका सिखिनी चोरी लघि पितामहा,
> ओरं बलाके आगच्छ चण्डो मे वायसो सखा।

[यह कौन बगुली है जिसके सिर पर शिखा है, जो चोर है, और जो बादल की पोती है। हे बगुली, इधर आ मेरा मित्र कौवा प्रचण्ड है।]

यह सुन कौवे ने तीसरी गाथा कही।

> अल हिते जग्घिताय मम दिस्वान येदिस,
> विलून सूदपुत्तेन पिट्ठमद्देन मक्खिम।

[मुझे इस हालत मे देख कर मजाक मत कर, मैं रसोइये द्वारा नोच डाला गया हुआ हूँ और पिसे हुए (अदरक आदि) से पोत डाला गया हूँ।]

उसने हँसी मजाक करते हुए चौथी गाथा कही।

> सुन्हातो सुविलित्तोसि अन्नपाणेन तप्पितो,
> कण्ठे च ते वेलुरियो अगमानु कजंगल।

[अच्छी तरह नहाया हुआ है, अच्छी तरह (चन्दनादि का) लेप किया हुआ है, अन्न पान से सन्तुष्ट है, और तेरे गले मे बिल्लौर है, क्या तू क-जंगल (वाराणसी को ?) गया है।]

तब कौवे ने पाँचवी गाथा कही—

> मा ते मित्तो अमित्तो वा अगमाति कजगल,
> पिञ्छानि तत्थ लायित्वा कण्ठे बन्धन्ति वट्टनं।

[तेरा मित्र या शत्रु कोई भी क-जगल न जाय। वहाँ पर नोच कर गले मे लकडी बांध देते हैं।]

यह सुन कबूतर ने अन्तिम गाथा कही—

पुन पापज्जसि सम्मसील हि तव तादिस,
नहि मानुसका भोगा सुभुंजा होन्ति पक्खिना।

[मित्र तू फिर भी ऐसा ही करेगा। तेरा स्वभाव ही ऐसा है, पक्षी के लिए मनुष्यो के भोजन सुभोज्य नही होते।]

इस प्रकार उसे उपदेश दे, वहाँ न रह, पख फैला अन्यत्र ही चला गया। कौवा भी वही मर गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे लोभी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मैं ही था।

छठा परिच्छेद

१. अवारिय वर्ग

३७६. अवारिय जातक

"मास्सु कुज्झि भूमिपति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक घाटवाल के बारे मे कही।

क वर्तमान कथा

वह मूर्ख था अज्ञानी—न बुद्ध आदि के, न औरो के ही गुणो को पहचानता था, प्रचण्ड, कठोर, दुस्साहसी। एक जानपद भिक्षु ने बुद्ध-दर्शन करने की इच्छा से शाम को अचिर-वती के घाट पर पहुँच उसे कहा—उपासक! मुझे नौका दे, पार जाऊँगा।

"भन्ते! अब असमय है, यही किसी जगह रहे।"

"उपासक! यहाँ कहाँ रहूँगा, मुझे लेकर चल।"

उसने क्रोधित हो कहा—आ रे, श्रमण ले चलू, और स्थविर को नौका पर चढा, सीधे न जा, नौका को नीचे की ओर ले जा, (नौका को) हिला-डुला, उसका पात्र चीवर भिगो दिया। (इस प्रकार) उसे कष्ट दे, किनारे पर पहुँचा, अन्धेरा होने पर उतारा। वह विहार पहुँचा। उस दिन बुद्ध की सेवा मे जाने का अवसर न पा वह दूसरे दिन शास्ता के पास गया और प्रणाम करके एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशल-समाचार के बाद पूछा—

"कब आया है?"

'भन्ते! कल।"

"तो बुद्ध की सेवा मे आज कैसे आया है"

उसने वह हाल कहा। शास्ता ने सुन 'भिक्षु! न केवल अभी वह प्रचण्ड तथा कठोर है, पहले भी ऐसा ही रहा है। इस समय उसने तुझे कष्ट

दिया है, पहले भी पण्डितो को कष्ट दिया है' कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल मे पैदा हो, बड़े होने पर तक्षशिला मे सब विद्यायें सीख, ऋषि-प्रव्रज्या ले, चिरकाल तक हिमालय मे फल-मूल खाते रह कर, निमक-खटाई खाने के लिये वाराणसी आ, राजोद्यान मे ठहर, अगले दिन भिक्षा के लिये निकला। उसे राजाङ्गन मे आया देख, राजा ने उसकी चर्य्या पर प्रसन्न हो, अन्त पुर मे ला, भोजन कराया और वचन ले राजोद्यान मे बसाया। राजा प्रतिदिन सेवा मे जाता था। बोधिसत्व उसे 'महाराज ! राजा को चार अगतियगामी-धर्मों मे न पड, अप्रमादी हो, क्षमा, मैत्री तथा दया के साथ धर्मानुसार राज्य करना चाहिये' कह प्रतिदिन उपदेश देते हुए दो गाथायें कहते थे—

मास्सु कुज्झि भूमि-पति मास्सु कुज्झि रथेसभ,
कुद्ध अप्पटिकुज्झन्तो राजा रट्ठस्स पूजितो ॥
गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा थले
सब्बत्थमनुसासामि मास्सु कुज्झि रथेसभ ॥

[हे भूमिपति क्रोध मत कर। हे रथेसभ ! क्रोध मत कर। क्रुद्ध के प्रति भी क्रोधी न होने वाला राजा राष्ट्र मे पूजित होता है। मैं गाँव, जगल, निम्न-स्थान वा (ऊँचे) स्थल पर जहाँ कही भी रहता हूँ, यही अनुशासना करता हूँ कि हे रथेसभ ! क्रोध न करें ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व मे जब-जब राजा आया उस-उस दिन ये गाथायें कही। राजा ने प्रसन्न हो बोधिसत्व को लाख की आमदनी का एक गाँव दिया। बोधिसत्व ने स्वीकार नही किया। इस प्रकार बारह वर्ष तक वहाँ रहते हुए बोधिसत्व ने सोचा—दीर्घकाल तक (एक जगह) रहा। जन-पद मे घूम कर आता हूँ। उसने राजा को सूचना न दे उद्यान पाल को बुलाकर कहा—तात ! मैं जनपद, चारिका के लिये उत्सुक हूँ। घूम कर आऊँगा। तू राजा को कहना। वह चलकर गङ्गा के घाट पर पहुँचा। वहाँ अवारिय-

पिता नाम का नाविक था। वह मूर्ख न गुणवानो के गुण पहचानता था और न ही अपना आमदनी का उपाय जानता था। वह गङ्गा पार जाने की इच्छा करने वालो को पहले गङ्गा-पार उतार देता और तब उतराई माँगता। उतराई न देने वालो के साथ झगडते हुए उसे लाभ तो कम होता अधिक तो गाली और प्रहार ही मिलते। इस प्रकार के अन्धे-मूर्ख के बारे मे शास्ता ने बुद्ध होकर तीसरी गाथा कही—

> अवारिय पिता नाम अहू गङ्गाय नाविको,
> पुब्बे जन तारयित्वा पच्छा याचति वेतन,
> तेनस्स भण्डं होति न च भोगेहि वड्ढति ॥

[गङ्गा पर अवारिय-पिता नाम का नाविक था, जो पहले लोगो को पार उतार कर पीछे उतराई माँगता था। उससे उसका झगडा ही होता था, भोगो मे वृद्धि नही ॥]

बोधिसत्व ने उस नाविक पास जाकर कहा—

"आयुष्मान ! मुझे पार ले चल।"

यह सुन वह बोला —

"श्रमण ! क्या मुझे उतराई देगा ?"

"आयुष्मान ! मैं भोगो मे वृद्धि, अर्थ की वृद्धि तथा धर्म की वृद्धि का उपाय कहूँगा।"

नाविका ने सोचा, यह मुझे निश्चय मे कुछ देगा। पार पहुँचा कर बोला —

"मुझे नौका की उतराई दो"

'अच्छा, आयुष्मान' कह बोधिसत्व ने उसे भोगो मे वृद्धि का उपाय कहते हुए पहली गाथा कही—

> अतिण्णञ्ञेव याचस्सु अपार तात नाविक,
> अञ्ञो हि तिण्णस्स मनो अञ्ञो होति तरेसिनो ॥

[तात नाविक ! पार जाने से पहले इस पार ही उतराई मांगा कर। पार जाने की इच्छा वाले का मन दूसरा होता है, और जो पार पहुँच गया उसका मन दूसरा।]

यह सुन नाविक ने सोचा—यह तो उपदेश हुआ, अब यह मुझे कुछ देगा। बोधिसत्व ने 'आयुष्मान! यह तो भोगो की वृद्धि का उपाय हुआ, अब अर्थ की वृद्धि तथा धर्म की वृद्धि का उपाय सुन' कह उसे उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले,
सब्बत्थमनुसासामि मास्सु कुज्झित्थ नाविक ॥

[गाँव मे, आरण्य मे, निम्न-स्थान वा (ऊँचे) स्थल पर जहाँ कही भी रहता हूँ यही अनुशासन करता हूँ। नाविक! क्रोध न कर।]

अर्थ-धर्म वृद्धि के लिये यह गाथा कह कर कहा—यह तेरी अर्थ-धर्म-वृद्धि के लिये हुई। उस दुष्ट-पुरुष ने इसे कुछ नही समझा। बोला—

"श्रमण! तूने मुझे यही नौका की उतराई दी है?"

"आयुष्मान्! हाँ।"

"मुझे इससे प्रयोजन नही। और दे।"

आयुष्मान्! मेरे पास यह छोड और कुछ नही।

"तब तू क्यो नौका पर चढा?" कह तपस्वी को गङ्गा के किनारे पर गिरा, छाती पर बैठ उसका मुँह पीट दिया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ जो उपदेश देकर तपस्वी ने राजा से गाव पाया, वही उपदेश अन्धे मूर्ख नाविक को देकर मुँह पर चोट खाई। इसलिए उपदेश उसे देना चाहिए जिसे उचित हो, उसे नही जिसे उपदेश देना अनुचित हो' कह अभिसबुद्ध होने पर यह बाद की गाथा कही—

यायेव अनुसासनिया राजा गामवरं अदा,
तायेव अनुसासनिया नाविको पहरी मुख ॥

[जिस अनुशासना से राजा ने श्रेष्ठ गाव दिया, उसी उपदेश के देने पर नाविक ने मुँह पर प्रहार किया।]

उसके उसे मारते समय ही उसकी भार्या भात लेकर आ पहुँची। वह तपस्वी को देखकर बोली—स्वामी! यह तपस्वी राजकुल सम्मानित है। इसे मत मार। उसने क्रोधित हो 'तू ही इस कुटिल तपस्वी को पीटने नही देती है' कह उठकर उसे पीट गिरा दिया। भात की हाडी गिरकर फूट गई। भारी, गर्भ वाली भार्या का गर्भ गिर पडा। मनुष्यो ने उसे पुरुष की हत्या करने वाला

चोर समझ पकड लिया और बाधकर राजा के पास ले गये। राजा ने मुकद्दमा कर उसे राजदण्ड दिया।

शास्ता ने अभिसबुद्ध हो उस बात को प्रकट करते हुये अन्तिम-गाथा कही —

भत्त भिन्न हता भरिया गब्भो च पतितो छमा,
मिगोव जातरूपेन न तेनत्थ अबधिसु ॥

[भात की हाडी टूट गई, भार्या मर गई और पृथ्वी पर गर्भ गिर पडा। जिस प्रकार सोना (फैला रहने) से भी मृग की अभिवृद्धि नही होती वैसे ही उसे कुछ लाभ नही हुआ।]

शास्ता ने धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे भिक्षु स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय नाविक अब का नाविक हुआ। राजा आनन्द था। तपस्वी तो मैं ही था।

३७७ सेतुकेतु जातक

"मा तात कुज्झि नहि साधु कोधो" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक ढोगी भिक्षु के बारे मे कही। वर्तमान-कथा कुद्दाल जातक[1] मे आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वाराणसी मे प्रसिद्ध आचार्य्य हो पाँच सौ ब्रह्मचारियो को मन्त्र बँचवाते थे।

---

१ सिंहल अक्षरो मे मुद्रित मूल-प्रति मे उद्दालक जातक (४८७) के स्थान पर कुद्दाल जातक छप गया है। कुद्दाल जातक (७०) तो प्रथम खण्ड में आ ही चुकी है।

उनमे से प्रधान-शिष्य का नाम था श्वेतकेतु। वह उदीच्य ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुआ था, और उसके मन मे बडा ही जाति-अभिमान था। एक दिन वह दूसरे ब्रह्मचारियो के साथ नगर से बाहर जा रहा था। उसने नगर मे प्रविष्ट होते हुए एक चाण्डाल को देख पूछा—

"तू कौन है?"

"मैं चाण्डाल हूँ।"

उसे डर लगा कि उसके शरीर को छूकर आने वाली हवा कही उसको न लग जाय। वह उस चाण्डाल को 'मनहूस कही के, जिधर हवा जा रही है, उधर होकर चल' कह, भागकर जिधर से हवा आ रही थी, उधर हो गया। चाण्डाल भी शीघ्रता से जाकर उससे भी ऊपर की ओर हो गया।

तब उसने उसे 'वृषल, मनहूस' कहकर अच्छी तरह गालियाँ दी। ये सुन चाण्डाल ने पूछा —"तू कौन है?"

"मैं ब्राह्मण-माणवक हू।"

"भले ही ब्राह्मण हो, मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा?"

"हाँ सकूँगा।"

"यदि नही दे सकेगा तो टागो के बीच से निकलना होगा।"

उसने अपनी सामर्थ्य का अन्दाजा लगा कहा—पूछ। चाण्डाल-पुत्र ने उसकी बात का लोगो को साक्षी बना कर प्रश्न किया—दिशायें कितनी हैं?

"पूर्व आदि चार दिशायें हैं।"

"मैं तुझसे इन दिशाओ के बारे मे नही पूछता। तू इतनी बात भी नही समझता और मेरे शरीर से छूई हवा से घृणा करता है।"

उसने उसे कन्धे से पकड, झुका अपनी टाँगो के बीच मे से निकाला। ब्रह्मचारियो ने यह समाचार आचार्य्य से कहा।

यह सुन आचार्य्य ने पूछा—"तात श्वेतकेतु! क्या सचमुच चाण्डाल ने तुझे अपनी टाँगो मे से निकाला?"

"हाँ आचार्य्य! उस चाण्डाल दासी-पुत्र ने मुझे 'यह दशा मात्र भी नही जानता है' कह अपनी टाँगो के बीच से निकाला। अब मिलने पर उसका जो करना है, करूँगा।"

इस पकार क्रुद्ध हो उसने चाण्डाल-पुत्र को गालियां दी। आचार्य्य बोला—तात श्वेतकेतु। उस पर क्रोधित मत हो। चाण्डाल-पुत्र पण्डित है। वह तुझे यह दिशा नही पूछता है। दूसरी ही दिशा पूछता है। तूने जो देखा, सुना व जाना है, उसकी अपेक्षा न देखा, न सुना, न जाना ही अधिक है।

इस प्रकार उपदेश देते हुए ये दो गाथायें कही —

मा तात कुज्झि नहि साधु कोधो
बहुम्पि ते अदिट्ठं अस्सुतञ्च,
माता पिता दिसता सेतकेतु
आचरियमाहु दिसत पसत्था ॥
अगारिनो अन्नदपाणवत्थदा
अह्वायिका तम्पि दिस वदन्ति,
एसा दिसा परमा सेतकेतु
य पत्वा दुक्खी सुखिनो भवन्ति ॥

[तात! क्रोध मत कर। क्रोध करना अच्छा नही। जो तूने देखा सुना नही, ऐसा बहुत है। हे श्वेतकेतु! माता-पिता (पूर्व-) दिशा है और आचार्य्य श्रेष्ठ (दक्षिण-) दिशा कहलाते हैं॥ अन्न-वस्त्र देने वाले, बुला कर (देने वाले) गृहस्थ उस (श्रमण-ब्राह्मणो की दिशा) को भी एक दिशा कहते हैं। हे श्वेत्र-केतु वह दिशा पर-श्रेष्ठ है, जिसे प्राप्त कर दुखी-जन सुखी होते हैं॥]

कहा भी गया है —

माता पिता दिसा पुब्बा आचरिया दक्खिणादिसा,
पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्तामच्चा च उत्तरा॥
दासकम्मकरा हेट्ठा उद्ध समण ब्राह्मणा,
एता दिसा नमस्सेय्य अप्पमत्तो कुले गिहि॥

[मातापिता पूर्व-दिशा है। आचार्य्य दक्षिण-दिशा। पुत्र तथा दारा पश्चिम-दिशा। यार दोस्त उत्तर-दिशा। दास-कर्मचारीगण नीचे की दिशा और श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। गृहस्थ को चाहिये कि प्रमाद रहित हो इन दिशाओ को नमस्कार करे।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने ब्रह्मचारी को दिशायें समझाईं। वह 'चाण्डाल ने मुझे टागो मे से गुजारा है' सोच वहाँ न रह तक्षशिला चला गया। वहाँ प्रसिद्ध आचार्य्य के पास सब शिल्प सीख, आचार्य्य से आज्ञा ले, तक्षशिला से निकल, सभी सम्प्रदायो की विद्यायें सीखता हुआ विचरने लगा। एक प्रत्यन्त-ग्राम मे पहुँचने पर उसने उसके आश्रित रहने वाले पाँच सौ तपस्वियो को देखा। उनके पास प्रव्रजित हो उसने जो कुछ भी वह शिल्प या मन्त्र या चरण जानते थे सीखा और मण्डली का नेता बन वाराणसी आया। फिर एक दिन भिक्षाटन करता हुआ राजाङ्गण मे पहुँचा।

राजा ने तपस्वियो की चर्य्या पर प्रसन्न हो, उन्हे महल मे बिठा भोजन करा अपने उद्यान मे ठहराया। राजा ने तपस्वियो को भोजन करा चुकने पर कहा—आज शाम को उद्यान मे आकर आर्य्यो को प्रणाम करूँगा।

श्वेतकेतु ने उद्यान मे लौटने पर तपस्वियो को एकत्र कर कहा—मित्रो! राजा ने कहा है कि वह आज आएगा। किसी राजा को एक बार प्रसन्न कर लेने से जीवन भर सुखपूर्वक रहा जा सकता है। आज कुछ लोग चिमगादड-व्रत का आचरण करो, कुछ काटो की शैय्या पर सोओ, कुछ पञ्चाग्नि-ताप करो, कुछ उकड् बैठने का परिश्रम करो, कुछ पानी पर चढने (चलने) का कर्म करो, और कुछ मन्त्रो का पाठ करो। इस प्रकार उन्हे आदेश दे वह स्वय पर्ण-कुटी के द्वार पर एक तकियेदार आसन पर, पाँच वर्णो के चमकते हुए वस्त्र मे लिपटी पोथी को विचित्र-वर्ण की घोडी पर रख, चार पाँच सुशिक्षित विद्यार्थियो के प्रश्नो का उत्तर देते हुए (की तरह) बैठा।

उसी समय राजा ने आकर उन्हे मिथ्या-तप करते देखा और प्रसन्न हो श्वेतकेतु के पास जाकर प्रणाम किया। फिर एक ओर बैठ पुरोहित के साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही —

खराजिना जटिला पङ्कदन्ता
दुम्मुक्खरूपा ये मे जपन्ति मन्ते,
कच्चि नु ते मानुसके पयोगे
इद विदू परिमुत्ता अपाया ॥

[जो ये रुक्ष अजिनचर्म पहने, जटाधारण किये, मैले दाँतो वाले और भोण्डी शकल बनाये मन्त्रो का जप कर रहे है, क्या वे मानुषिक-कृत्यो मे इस (सब) के जानकार होकर अपाय से मुक्त हो गये है ?]

यह सुन पुरोहित ने चौथी गाथा कही —

पापानि कम्मानि करित्वान राज
बहुस्सुतो चे न चरेय्य धम्म,
सहस्सवेदोपि न तं पीटच्च
दुक्खा पमुञ्चे चरण अपत्वा ॥

[राजन ! यदि बहुश्रुत होकर पाप करे और धर्म का आचरण न करे, तो हजार वेद पढा हुआ भी बिना आचरण किये दु ख से मुक्त नही होता ॥]

यह सुन तपस्वियो पर से राजा की श्रद्धा जाती रही। तब श्वेतकेतु सोचने लगा—

इस राजा की तपस्वियो के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, किन्तु इस पुरोहित ने वासी से प्रहार देने की तरह उसे टुकडे-टुकडे कर दिया। मुझे अब उससे बात करनी चाहिये। उसने उससे बात चीत करते हुए पाँचवी गाथा कही—

सहस्सवेदोपि न तं पटिच्च
दुक्खा पमुञ्चे चरणं अपत्वा,
मञ्जामि वेदा अफला भवन्ति
ससयम चरणञ्जेव सच्चं ॥

[यदि हजार वेद पढा हुआ भी, उसके कारण बिना आचरण किये दु ख से मुक्त नही होता, तो क्या मैं मानू कि वेद निष्फल हैं और सयम-सहित आचरण ही सत्य है ?]

यह सुन पुरोहित ने छठी गाथा कही —

न हेव वेदा अफला भवन्ति
ससंयम चरणञ्जेव सच्च,
कित्तिञ्च पप्पोति अधिच्च वेदे
सन्तं पुनेति चरणेन दन्तो ॥

[नही, वेद निष्फल नही होते। सयम-सहित आचरण ही सत्य है। वेद पढने से कीर्ति की प्राप्ति होती है। सयत-आदमी आचरण से शान्त-पद को प्राप्त होता है।]

इस प्रकार पुरोहित ने श्वेतकेतु के सिद्धान्त का खण्डन कर उन सब को गृहस्थ बनवाया और उन्हे ढाल (तथा अन्य) आयुध दिला महन्त बनवा राजा के सेवक बना दिया। यही महतकारको के वश (की उत्पत्ति) है।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय श्वेत-केतु ढोंगी भिक्षु था। चाण्डाल-पुत्र सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

३७८. दरीमुख जातक

"पङ्कोच कामा" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय महाभिनिष्क्रमण के बारे मे कही। (वर्तमान-) कथा पहले आ ही गई है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे राजगृह मे मगध-राज नामक राजा राज्य करता था। तब बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख से गर्भ धारण किया। नाम रखा गया ब्रह्मदत्त कुमार। उनके पैदा होने के दिन ही पुरोहित को भी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका मुँह बडा सुन्दर था इसलिये उसका नाम दरीमुख रखा गया। वे दोनो राज-कुल मे ही पले, और परस्पर बडे प्रेम से रहते थे। सोलह वर्ष की आयु होने पर तक्षशिला जा, सभी शिल्प सीख, सभी मतो की विद्यायें तथा देश-व्यवहार सीखने के लिये ग्राम-निगम आदि मे घूमने लगे। इस प्रकार घूमते घूमते वाराणसी पहुंच देव-कुल (?) मे रह

अगले दिन वाराणसी मे भिक्षार्थ निकले । एक घर मे खीर तैयार थी और आसन बिछे थे कि ब्राह्मणो को भोजन करा कर दक्षिणा[1] देंगे ।

आदमियो ने उन दोनो को भिक्षा माँगते देख सोचा—ब्राह्मण आये है । वे उन्हे घर ले आये और बोधिसत्व के आसन पर श्वेत-वस्त्र तथा दरी-मुख के आसन पर लाल-कम्बल बिछाया । दरीमुख ने यह लक्षण देख जाना कि आज मेरा मित्र वाराणसी का राजा होगा और मैं सेनापति । वे दोनो वहाँ भोजन कर, दक्षिणा ले, आशीर्वाद दे, जाकर राजोद्यान मे रहे ।

वहाँ बोधिसत्व मङ्गल-शिला पर लेटे, दरी-मुख उनके पैर दबाता हुआ बैठा था । उस समय वाराणसी-राज को मरे सातवाँ दिन था । पुरोहित ने राजा का शरीर-कृत्य कर पुत्र-रहित राज्य मे सातवे दिन पुण्य-रथ चालू किया । पुण्यरथ-कृत्य का वर्णन महाजनक जातक[2] मे आयगा । चतुरङ्गिनी सेना से घिरा हुआ पुण्यरथ नगर से निकल सैकडो तुरियो के बजने के साथ उद्यान-द्वार पर पहुँचा ।

दरी-मुख ने तुरिय शब्द सुन सोचा—मेरे साथी के लिये पुण्य-रथ आ रहा । वह आज राजा होकर मुझे सेनापति पद देगा । लेकिन, मुझे गृहस्थी से क्या ? निकलकर प्रव्रजित होऊँगा । वह बिना बोधिसत्व को सूचित किये एक ओर जाकर छिप कर खडा हो गया । पुरोहित उद्यान द्वार पर रथ खडा कर उद्याग मे गया, तो वहाँ उसने बोधिसत्व को मङ्गल शिला पर लेटे देखा । उसके पाँव मे (महापुरुष) लक्षण देख सोचा—यह पुण्यवान् प्राणी है । दो हजार द्वीपो सहित चारो महाद्वीपो का राज्य कर सकता है । इसमे धैर्य कितना है, देखने के लिये सब बाजे जोर से बजवाये ।

बोधिसत्व ने जागकर मुँह पर से कपडा उठाया । जन-समूह को देख कर फिर कपडा मुँह पर ढक, थोडी देर लेटे रह, जब थकावट उतर गई तो उठ कर शिला पर पालथी मार कर बैठा । पुरोहित ने घुटने के बल बैठकर कहा—देव ! आप राज्य के अधिकारी हैं ।

---

१ वाचनक, शब्द अस्पष्ट है । कदाचित किसी प्रकार की पाठ कराई हो ।

२ महाजनक जातक (५३९)

"भणे ! क्या राज्य अपुत्रक है ?"

"देव ! हाँ ।"

तो 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उन्होंने उद्यान मे ही उसका राज्याभिषेक कर दिया ।

महान् वैभव प्राप्त होने मे वह दरी-मुख को भूल गया। रथ पर चढ जनता के साथ उसने नगर मे प्रवेश किया और राजद्वार पर रुक अमात्यो को उनके पद दे प्रासाद पर चढा। तब दरीमुख 'अब उद्यान खाली है' सोच आकर शिला पर बैठा। उसी समय उसके सामने सूखा पीला पत्ता गिरा। उसने उस सूखे पीले पत्ते को ही लेकर क्षय-व्यय का विचार करते हुए त्रिलक्षणो[1] का मनन कर पृथ्वी को गुंजाते हुए प्रत्येक-बोधी को प्राप्त किया। उसी समय उसका गृहस्थ वेष अन्तर्धान हो गया। आकाश से ऋद्धिमय पात्र चीवर उतर कर उसके शरीर पर धारण हो गया। उसी समय वह आठ परिष्कारधारी[2] सम्यक् चर्य्या-युक्त सौ वर्ष के स्थविर जैसा हो, ऋद्धि-बल से आकाश मे उठ, हिमालय प्रदेश मे नन्द-मूलक प्रपात पर पहुँचा।

बोधिसत्व भी धर्मानुसार राज्य करते रहे। लेकिन वैभव की अधिकता मे, वैभव मे मस्त हो चालीस वर्ष तक दरीमुख को याद नही किया। लेकिन चालीसवाँ वर्ष बीतने पर उन्हे उसके देखने की इच्छा हुई—दरीमुख नामक मेरा मित्र कहाँ है ? तब से वे अन्त पुर मे भी तथा सभा मे भी यही कहते—मेरा दरीमुख नामक मित्र कहा है ? जो मुझे उसका निवासस्थान बतायेगा उसे मैं बहुत यश दूँगा। इस प्रकार बार-बार उसकी याद करते-करते और दस वर्ष बीत गए।

दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध ने भी पचास वर्ष बीत जाने पर ध्यान-बल से देखा—उन्हे मित्र याद कर रहा है। यह जान 'अब वह बूढा हो गया है, पुत्र-पुत्रियो से (परिवार) बढ गया है, जाकर धर्मोपदेश दे उसे प्रव्रजित करूँगा' सोच वह ऋद्धि-बल से आकाश मार्ग से आ उद्यान मे उतर स्वर्ण-प्रतिमा की तरह शिला पर बैठे।

---

१ अनित्य, दु ख, अनात्म।

२. भिक्षु की आठ व्यक्तिगत चीजें—तीन चीवर, पात्र, काय बधन, उस्तरा, सूई, धागा तथा पानी छानने का वस्त्र।

उद्यानपाल ने उन्हे देख, जाकर पूछा—"भन्ते ! कहाँ से आये ?"

"नन्दमूलक पर्वत से ।"

"आपका नाम क्या है ?"

"आयुष्मान् ! मुझे दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध कहते है ।"

"भन्ते ! हमारे राजा को जानते है ?"

"हाँ जानता हूँ, जब मैं गृहस्थ था तो वह मेरा मित्र था ।"

"भन्ते ! राजा आप से मिलना चाहता है, मैं उसे आप के आगमन की सूचना देता हूँ ।"

"जा, कह ।"

उसने जल्दी जल्दी जा राजा को सूचना दी—वे शिला पर बैठे है ।

राजा को जब यह पता लगा कि उसका साथी आया है तो वह उसे देखने के लिये रथ पर चढ अनेक अनुयायियों के साथ उद्यान गया और प्रत्येक-बुद्ध को प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा ।

प्रत्येक-बुद्ध ने उसे धर्मोपदेश दिया—ब्रह्मदत्त ! क्या करता है ? धर्मानुसार राज्य करता है ? अगति-गामी कर्म तो नही करता है ? तू धन के लिए लोगो को कष्ट तो नही देता, पुण्य करता है ? फिर कुशल-क्षेम पूछ 'ब्रह्मदत्त ! तू वृद्ध हो गया । अब काम भोगो को छोड प्रव्रजित होने का समय है' कह उसे धर्मोपदेश देते हुए पहली गाथा कही —

पङ्को च कामा पलिपो च कामा
भयञ्च मेत तिमूल पवुत्त,
रजो च धूमो च मया पकासिता
हित्वा तुवं पब्बज ब्रह्मदत्त ॥

[काम-भोग कीचड है, काम-भोग दलदल है, मैंने इस महान् खतरे को कहा है । मैंने इन्हे रज और धुआँ (भी) कहा है । ब्रह्मदत्त ! तू इन्हे छोड प्रव्रजित हो ।]

यह सुन राजा ने काम-भोगो मे अपने आप को जकडा हुआ प्रकट करते हुये दूसरी गाथा —

गथितो च रत्तो अधिमुच्छितो च
कामेस्वाहं ब्राह्मण भिसरूप,
त नस्सहे जीविकत्थो पहातु
काहामि पुञ्ञानि अनप्पकानि ।।

[हे ब्राह्मण ! मैं काम-भोगो मे भयानक रूप से उलझा हुआ हूँ, अनुरक्त हूँ, मूर्छित हूँ । मै उस जीविका की इच्छा करता हुआ भी, उन्हे नही छोड सकता । मैं अनेक पुण्य (-कर्म करूँगा ।]

बोधिसत्व ने उसके 'प्रव्रजित नही हो सकता' कहने पर भी कन्धा न गिरा उसे और भी उपदेश देते हुए दो गाथायें कही—

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
ओवज्जमानो न करोति सासन,
इदमेव सेय्यो इति मञ्ञमानो
पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ।।
सो घोररूप निरयं उपेति
सुभासुभ मुत्तकरीसपूरं
सत्ता सकाये न जहन्ति गिद्धा
ये होन्ति कामेसु अवीतरागा ।

[जो भलाई चाहने वाले, हितेच्छु के उपदेश देने पर उसके अनुसार आचरण नही करता, और समझता है (कि जो मैं करता हू) वही श्रेष्ठ है, ऐसा मूर्ख पुन पुन गर्भ मे आकर पडता है ।

वह भयानक नरक मे जाता है, जिसे योगी-जन अशुभ समझते हैं, जो मल-मूत्र से भरा है, लेकिन जो काम-भोगो के प्रति रागी हैं, आसक्त हैं, चिमटे हुए हैं, वे माता की कोख को नही छोडते है ।]

इस प्रकार दरीमुख प्रत्येक-बुद्ध ने गर्भ-प्रवेश, तथा गर्भ-निवास मूलक -दु ख को कह कर गर्भ से बाहर आने के दु ख को प्रकट करते हुए डेढ गाथा कही —

मीळ्हेन लित्ता रुहिरेन मक्खिता
सेम्हेन लित्ता उपनिक्खमन्ति,

यं यं हि कायेन फुसन्ति तावदे
सब्ब असातं दुक्खमेव केवलं,
दिस्वा वदामि नहि अञ्ञतो सवं
पुब्बेनिवास बहुक सरामि ॥

[गूह मे लिबडे हुए, रुधिर मे माखे हुए तथा श्लेष्म मे लिपटे हुए (गर्भ से बाहर) निकलते हैं ।

उस समय जिस जिस चीज को शरीर से स्पर्श करते है, वह सभी प्रतिकूल ही होता है, केवल दु ख ही होता है । मैं यह (स्वय) देखकर कहता हू, किसी से सुनी सुनाई बात नही । मै बहुत से पूर्व-जन्मो को याद करता हू ।]

अब शास्ता ने अभिसम्बुद्ध होने पर 'इस प्रकार उस प्रत्येक-बुद्ध ने राजा को सुभापित गाथाओ द्वारा उपदेश दिया' कह अन्त मे आधी गाथा कही—

चित्राहि गाथाहि सुभासिताहि
दरीमुखो निज्झापयी सुमेघ ॥

[नाना अर्थ-पूर्ण सुभापित गाथाओ द्वारा दरीमुख ने सुमेघ राजा से अपनी बात स्वीकार कराई ।]

इस प्रकार प्रत्येक-बुद्ध ने काम-भोगो मे दोष दिखा, अपनी बात मनवा, राजा को कहा—महाराज ! अब चाहे आप प्रव्रजित हो, चाहे न हो । मैंने तुम्हे काम-भोगो के दुष्परिणाम और प्रव्रज्या का माहात्म्य कह दिया । तुम अप्रमादी रहो । इतना कह स्वर्ण राजहस की तरह आकाश मे उड, बादलो को चीरते हुए नन्दमूलक पर्वत पर ही गया । बोधिसत्व ने दसो नखो के मेल से प्रकाशमान् अञ्जलि को मस्तक पर रख नमस्कार किया । फिर जब उसका दिखाई देना बन्द हो गया तो ज्येष्ठ पुत्र को बुला उसे राज्य सौंप, जनता के रोते पीटते रहने पर काम-भोगो को छोड हिमालय मे प्रवेश किया । वहाँ पर्ण-कुटी बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, थोडी ही देर मे अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, आयु के अन्त मे ब्रह्मलोक-गामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो के अन्त मे अनेक स्रोतापन्न-आदि हुए । उस समय राजा मैं ही था ।

३७९. नेरु जातक

["काकोळा काकसङ्घा " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह शास्ता से कर्मस्थान (=योग-विधि) ग्रहण कर एक सीमा-पार के गाव मे गया। मनुष्यो ने उसकी चर्य्या से प्रसन्न हो, उसे भोजन करा, बचन ले, जगल मे पर्ण-कुटी बनवा वहाँ बसाया। उसका बहुत सत्कार किया। तब तक दूसरे शास्वत-वादी आ गये। उन्होने उनका सिद्धान्त सुना तो स्थविर के सिद्धान्त को त्याग शास्वत-वाद को स्वीकार कर उनका सत्कार किया। तब तक उच्छेद-वादी आ गये उन्होने शास्वत-वाद छोड उच्छेदवाद स्वीकृत कर लिया। तब तक दूसरे नग्नता-वादी आ गये। उन्होने उच्छेद-वाद छोड नग्नता-वाद स्वीकार कर लिया। वह उन गुणावगुण न समझने वाले लोगो के पास दु ख से रहा। वर्षा-वास के बाद प्रवारणा कर शास्ता के पास पहुँचा। शास्ता ने कुशल-क्षेम पूछने के बाद पूछा—

"वर्षा-वास कहाँ किया ?"

"भन्ते! सीमा-पार के गाँव मे।"

"सुख-पूर्वक रहा ?"

"भन्ते! गुणावगुण न समझ सकने वालो के पास दु ख से रहा।"

"भिक्षु! पुराने पण्डित पशु-योनि मे पैदा होने पर भी गुणावगुण न जान सकने वालो के साथ एक दिन भी नही रहे, तू ऐसी जगह पर जहाँ कोई तेरे गुणावगुण को नही समझता था क्यो रहा ?"

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व स्वर्ण हस की योनि मे पैदा हुए। उसका एक छोटा भाई भी था। वे चित्रकूट पर्वत पर रहते हुए हिमालय-प्रदेश मे अपने से उत्पन्न होने वाला धान खाते थे। एक दिन वहाँ चुगकर चित्रकूट को लौटते समय रास्ते मे नेरु नाम के कञ्चन-पर्वत को देख उस पर बैठे। उस पर्वत पर रहने वाले पक्षी, खरगोश तथा अन्य चौपाये उस गोचर-भूमि मे नाना वर्ण के होते थे, लेकिन पर्वत पर आने के बाद उसके प्रकाश के प्रभाव से स्वर्ण-वर्ण हो जाते। यह देख बोधिसत्व के छोटे भाई ने यह बात न समझ, भाई से 'क्या कारण है ?' पूछते हुए दो गाथायें कही—

> काकोळा काकसङ्घा च मयञ्च पतत वरा,
> सब्बेव सदिसा होम इमं आगम्म पब्बतं ॥
> इध सीहा च व्यग्घा च सिगाला च मिगाधमा,
> सब्बेव सदिसा होन्ति अय को नाम पब्बतो ॥

[जगली कौवे, सामान्य कौवे तथा हम जो पक्षियो मे श्रेष्ठ हैं इस पर्वत पर आकर सभी समान हो जाते हैं। यहाँ सिंह, व्याघ्र और नीच शृगाल सभी समान (वर्ण) हो जाते है, इस पर्वत का क्या नाम है ?]

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही —

> इमं नेरुन्ति जानन्ति मनुस्सा पब्बतुत्तमं,
> इध वण्णेन सम्पन्ना वसन्ति सब्बपाणिनो ॥

[इस उत्तम-पर्वत को मनुष्य 'नेरु' कहते हैं। यहाँ सभी प्राणी (सु-) वर्ण युक्त हो बसते हैं।]

यह सुन छोटे भाई ने शेष गाथायें कही —

> अमानना यत्थसिया सन्तान वा विमानना,
> हीनसम्मानना वापि न तत्थ वसति वसे ॥
> यत्थालसो च दक्खो च सूरो भीरु च पूजिया,
> न तत्थसन्तो निवसन्ति अविसेसकरे नगे ॥

नाय नेरुविभजति हीनमुक्कट्ठमज्झिमे,
अविसेसकरो नेरु हन्द नेरु जहामसे ॥

[जिस जगह शान्त-पुरुषो का मान न हो अथवा अपमान हो तथा हीन-पुरुषो का सम्मान हो वहाँ न वसे ।]

जिस पर्वत पर बिना किसी विशेषता के ख्याल के आलसी होशियार बहादुर तथा डरपोक समानरूप से पूजित होते है वहाँ पण्डित जन नहीं रहते ।

यह नेरु हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ट का भेद नही करता । यह नेरु सभी को समान समझता है । हन्त ! हम नेरु को छोड दें ।]

यह कह वे दोनो हस उड कर चित्रकूट पर्वत को ही चले गये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो के अन्त मे वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ । उस समय छोटा हस आनन्द था । ज्येष्ठ-हस तो मैं ही था ।

३८०. आसङ्क जातक

"आसावती नाम लता" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे मे कही । (वर्तमान-) कथा इन्द्रिय जातक[1] मे आएगी ।

इस कथा मे तो शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित हुआ है ? उसके "भन्ते ! सचमुच" कहने पर शास्ता ने पूछा—किसने उत्कण्ठित किया है ? भिक्षु बोला—पूर्व भार्य्या ने । शास्ता ने कहा—भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है, पहले भी तू इसके कारण चतुरङ्गिनी सेना को छोड हिमालय-प्रदेश मे महान् दु ख भोगता हुआ तीन वर्ष रहा ।

---

१ इन्द्रिय जातक (४२३)

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व स्वर्ण हस की योनि मे पैदा हुए। उसका एक छोटा भाई भी था। वे चित्रकूट पर्वत पर रहते हुए हिमालय-प्रदेश मे अपने से उत्पन्न होने वाला धान खाते थे। एक दिन वहाँ चुगकर चित्रकूट को लौटते समय रास्ते मे नेरु नाम के कञ्चन-पर्वत को देख उस पर बैठे। उस पर्वत पर रहने वाले पक्षी, खरगोश तथा अन्य चौपाये उस गोचर-भूमि मे नाना वर्ण के होते थे, लेकिन पर्वत पर आने के बाद उसके प्रकाश के प्रभाव से स्वर्ण-वर्ण हो जाते। यह देख बोधिसत्व के छोटे भाई ने यह बात न समझ, भाई से 'क्या कारण है ?' पूछते हुए दो गाथायें कही—

> काकोळा काकसङ्घा च मयञ्च पतत वरा,
> सब्बेव सदिसा होम इमं आगम्म पब्बत ॥
> इध सीहा च ब्यग्घा च सिगाला च मिगाधमा,
> सब्बेव सदिसा होन्ति अथ को नाम पब्बतो ॥

[जगली कौवे, सामान्य कौवे तथा हम जो पक्षियो मे श्रेष्ठ हैं इस पर्वत पर आकर सभी समान हो जाते हैं। यहाँ सिंह, व्याघ्र और नीच शृगाल सभी समान (वर्ण) हो जाते है, इस पर्वत का क्या नाम है ?]

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही —

> इमं नेरुन्ति जानन्ति मनुस्सा पब्बतुत्तम,
> इध वण्णेन सम्पन्ना वसन्ति सब्बपाणिनो ॥

[इस उत्तम-पर्वत को मनुष्य 'नेरु' कहते हैं। यहाँ सभी प्राणी (सु-) वर्ण युक्त हो वसते है।]

यह सुन छोटे भाई ने शेष गाथायें कही —

> अमानना यत्थसिया सन्तान वा विमानना,
> हीनसम्मानना वापि न तत्थ वसति वसे ॥
> यत्थालसो च दक्खो च सूरो भीरु च पूजिया,
> न तत्थसन्तो निवसन्ति अविसेसकरे नगे ॥

नाय नेरुविभजति हीनमुक्कट्ठमज्झिमे,
अविसेसकरो नेरु हन्द नेरु जहामसे ॥

[जिस जगह शान्त-पुरुषो का मान न हो अथवा अपमान हो तथा हीन-पुरुषो का सम्मान हो वहाँ न बसे ।]

जिस पर्वत पर विना किसी विशेषता के ख्याल के आलसी होशियार बहादुर तथा डरपोक समानरूप से पूजित होते है वहाँ पण्डित जन नही रहते ।

यह नेरु हीन, मध्यम तथा उत्कृष्ट का भेद नही करता । यह नेरु सभी को समान समझता है । हन्त ! हम नेरु को छोड दें ।]

यह कह वे दोनो हस उड कर चित्रकूट पर्वत को ही चले गये ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो के अन्त मे वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ । उस समय छोटा हस आनन्द था । ज्येष्ठ-हस तो मैं ही था ।

३८० आसङ्क जातक

"आसावती नाम लता " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्व भार्य्या की आसक्ति के बारे मे कही । (वर्तमान-) कथा इन्द्रिय जातक[1] मे आएगी ।

इस कथा मे तो शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित हुआ है ? उसके "भन्ते ! सचमुच" कहने पर शास्ता ने पूछा—किसने उत्कण्ठित किया है ? भिक्षु बोला—पूर्व भार्य्या ने । शास्ता ने कहा—भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है, पहले भी तू इसके कारण चतुरङ्गिनी सेना को छोड हिमालय-प्रदेश मे महान् दु ख भोगता हुआ तीन वर्ष रहा ।

---

१ इन्द्रिय जातक (४२३)

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी के ग्राम मे ब्राह्मण कुल मे पैदा हुआ। बड़े होने पर तक्षशिला जा, शिल्प सीख, ऋषि-प्रव्रज्या ले, जंगल के फल-मूल खाते हुए, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर हिमालय प्रदेश मे रहने लगा।

उस समय एक पुण्यवान् प्राणी त्र्यस्त्रिंश-भवन से च्युत होकर उस जगह कमल-सरोवर मे एक कमल मे लड़की होकर पैदा हुआ। शेष कमलो के पुराने होकर गिर पड़ने पर भी वह फूल बड़ी-कोख वाला होकर लगा ही रहा।

तपस्वी जब नहाने के लिये कमल-सरोवर पर आया तो और कमलो के गिर जाने पर भी उस एक कमल को बड़ी-कोख वाला हो लगा देख उसने सोचा—क्या कारण है? उसने नहाने का वस्त्र पहना और उतर कर वहाँ पहुँचने पर कमल को खोला तो लड़की दिखाई दी। वह उसे पुत्री मान पर्ण-कुटी मे ले आया और पालन-पोषन किया।

आगे चल कर सोलह वर्ष की होने पर वह सुन्दर हुई, उत्तम रूपवान्, मानुषी-रूप तथा देव-रूप के बीच की। उस समय शक्र बोधिसत्व की सेवा मे आता था। उसने इसे देख पूछा—यह कहाँ से? जब उसे उसकी प्राप्ति का क्रम मालूम हो गया, तब उसने पूछा, इसके लिये क्या चाहिये?

"रहने के लिये स्फटिक का महल बना, दिव्य-शयन दिव्य वस्त्रालङ्कार तथा (वैसा ही) भोजन प्रबन्ध (कर) मित्र!"

यह सुन उसने 'भन्ते! अच्छा कह उसके निवास के लिये स्फटिक प्रासाद बना, दिव्य-शयन, दिव्य वस्त्रालङ्कार तथा दिव्य अन्न-पान तैयार किये।

वह प्रासाद उसके चढने के समय जमीन पर उतर आता और उसके चढ जाने पर उछल कर आकाश मे जा ठहरता। वह बोधिसत्व की सेवा करती हुई महल मे रहती। उसे एक जगली-मनुष्य ने देखा तो पूछा—"भन्ते! यह आप की कौन होती है?"

"मेरी लड़की है।"

उसने वाराणसी-राज को सूचना दी—देव ! मैंने एक तपस्वी की इस तरह की कन्या देखी है।

यह सुन राजा सुनना मिलने मात्र से आसक्त हो, जगली-मनुष्य को मार्ग-दर्शक बना, चतुरङ्गिनी सेना को साथ ले वहाँ पहुँचा। उसने वहाँ पडाव डाल दिया और जगली मनुष्य को साथ ले, अमात्यो सहित आश्रम पहुँच, बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कहा—

"भन्ते ! स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य्य के लिये मल (-स्वरूप) हैं, तुम्हारी लडकी का पालन-पोषण मैं करूँगा।"

बोधिसत्व "इस कमल मे क्या है ?" इस प्रकार की आशङ्का कर पानी मे उतर कर लाये थे। इसलिये उन्होने उसका नाम आशङ्का-कुमारी रखा था। इसलिये राजा को सीधे सीधे 'इस कुमारी को ले जायें' न कह बोधिसत्व ने कहा—"यदि कुमारी का नाम जानते हो, तो ले जायें।"

राजा बोला—"भन्ते। आप के बताने पर जान जायेंगे।"

"मैं नही बताऊँगा। तू अपने प्रज्ञा-बल से ही पता लगा कर इसे ले जा।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और तब से मन्त्रियो के साथ विचार करने लगा कि इसका क्या नाम है ? वह जो असाधारण नाम हैं, ऐसे नाम लेकर बोधिसत्व को कहता—"भन्ते ! अमुक नाम होगा, अमुक नाम होगा।" बोधिसत्व ने कहा—"नही, ये नाम नही है।"

इस प्रकार नाम का विचार करते करते ही राजा को एक वर्ष बीत गया। सिंह आदि बनैले-पशु हाथी, घोडो तथा आदमियो को मार डालते। साँपो का खतरा हो गया। (डक मारने वाली) मक्खियो का खतरा हो गया। शीत से कष्ट पाकर बहुत मनुष्य मरने लगे। तब राजा को क्रोध आया—मुझे इस से क्या ? वह बोधिसत्व को कह कर चल दिया।

आशङ्का-कुमारी उस दिन स्फटिक-खिडकी खोल अपने को दिखाती हुई खडी थी। राजा ने उसे देख कर कहा "हम तेरा नाम नही जान सके। तू हिमालय मे ही रह। हम जाते हैं।"

"महाराज कहाँ जाने से मेरे सदृश स्त्री मिलेगी। मेरी बात सुनें। त्र्यस्त्रिंश देवलोक मे, चित्तलतावन में, आशावती नामक लता है। उसके फल

का दिव्य-पान होता है। उसे एक बार पीकर चार महीने तक दिव्य-शैय्या पर सोते रहते हैं। वह हजार वर्ष मे एक बार फलती है। सुरा-प्रेमी देव-पुत्र 'यहाँ से फल मिलेगा' इस आशा से प्यास को सहते हुए हजार वर्ष तक लगातार जाकर देखते रहते हैं कि वह लता ठीक से तो है। तू एक ही वर्ष मे उद्विग्न हो गया है। आशा फलीभूत होने पर सुख देती है। उद्विग्न मत हो।"

यह कह उसने तीन गाथायें कही —

आसावती नाम लता जाता चित्तलतावने,
तस्सा वस्स सहस्सेन एकं निब्बत्तते फलं
तं देवा पयिरूपासन्ति ताव दूरफलंसति॥

[चित्तलता वन मे आशावती नाम की लता पैदा हुई। हजार वर्ष मे वह एक फल देती है। उतना दूर फल होने पर भी देवता उसकी सेवा मे रहते है।]

राजा ने उसकी बात मे आ फिर अमात्यो को इकट्ठा कर दस-दस नामो की कल्पना कराई। इस प्रकार नाम की खोज करते हुए और भी एक वर्ष बीत गया। दस नामो मे भी उसका नाम नही था। 'अमुक नाम की हैं' कहने पर बोधिसत्व ने अस्वीकार किया। राजा ने फिर सोचा कि मुझे इससे क्या, और घोडे पर चढ चल दिया।

उसने भी फिर खिडकी मे खडे होकर अपने को दिखाया। राजा ने उसे देखा तो कहा—तू ठहर हम जाते हैं?"

"महाराज क्यो जाते है?"

"तेरा नाम नही जान सकता हूँ।"

"महाराज! नाम क्यो नही जान सकोगे? आशा फलती ही है। मेरी बात सुनें। एक बगुला पर्वत शिखर पर खडा था। उसकी इच्छा पूरी हुई। तुम्हारी इच्छा क्यो नही पूरी होगी। महाराज सब्र करें। बगुला एक कमल-सरोवर से शिकार पकड उडकर एक पर्वत पर जा बैठा। वह उस दिन वही रहा। अगले दिन सोचा—मैं इस पर्वत शिखर पर सुख से बैठा हूँ। यदि यहाँ से न उतर कर यही बैठे-बैठे शिकार ग्रहण कर, पानी पी, आज का दिन यही रहूँ तो मेरे लिए कितना अच्छा हो! उसी दिन देवेन्द्र शक्र ने असुरो पर विजय प्राप्त की थी। शक्र ने

त्रयोत्रिंश-भवन मे देवैश्वर्य प्राप्त कर सोचा—मेरा मनोरथ पूरा हुआ। क्या कोई ऐसा है जिसका मनोरथ अपरिपूर्ण हो? उसने ध्यान लगाने पर उस बगुले को देख निश्चय किया कि इसका मनोरथ पूरा करूँगा। बगुले के बैठने की जगह के पास ही एक नदी थी। उस नदी मे बाढ लाकर उसे पर्वत शिखर तक पहुँचा दिया। बगुले ने वहीं बैठे-बैठे मछलियाँ खा, पानी पी, वह दिन वही बिता दिया। पानी उतर कर नीचे चला गया। इस प्रकार, महाराज, बगुले की भी आशा पूरी हुई आपकी क्यो न होगी?

उसने ये गाथायें कही —

आसिंसेव तुव राज आसा फलवती सुखा,
आसिंसयेव सो पक्खी आसिंसयेव सो दिजो॥
तस्सचासा समिज्झित्थ तावदूरगता सती,
आसिंसेव तुव राज आसा फलवती सुखा॥

[राजन्! तुम आशा न छोडो। आशा फलवती होने पर सुखदायक होती है। वह पक्षी भी आशा लगाये रहा, वह विहग भी आशा लगाये रहा। उसकी इतनी दूर की भी आशा पूरी हुई। राजन् तुम आशा न छोडो। आशा फलवती होने पर सुखदायक होती है।]

राजा उसकी बात सुन, उसके रूप-पाश मे बँध, उसकी बात मे आ, न जा सका। तब उसने अमात्यो को बुला सौ नामो की कल्पना कराई। सौ-सौ करके नाम की खोज करते हुए भी एक और वर्ष बीत गया। उसने बोधिसत्व के पास जा सौ नामो मे से 'अमुक नाम होगा। अमुक नाम होगा' पूछा।

"महाराज, नहीं जानते हो।"

वह 'हम जाते है' कह बोधिसत्व को प्रणाम कर चल दिया।

आशका-कुमारी फिर स्फटिक-खिडकी पर खडी हुई। राजा उसे देख बोला—तू रह, हम जाते हैं।

"महाराज क्यो?"

"तू मुझे वचन-मात्र से ही सन्तुष्ट करती है, कामरति से नही। तेरी मधुर-वाणी के पाश मे बँध मुझे यहाँ रहते तीन वर्ष बीत गये। अब जाऊँगा।"

उसने ये गाथायें कही —

सम्पेसि खो मे वाचाय न च सम्पेसि कम्मुना,
माला सेरेय्यकस्सेव वण्णवन्ना अगन्धिका ॥
अफल मधुर वाच यो मित्तेसु पकुब्बति,
अदद अविस्सजं भोग सन्धि तेनस्स जीरति ॥
य ह्रि कयिरा त हि वदे य न कयिरा न त वदे,
अकरोन्त भासमान परिजानन्ति पण्डिता ॥
बल च वत्त मे खीण पाथेय्यञ्च न विज्जति,
सङ्के पाणूपरोधाय हन्ददानि वजामह ॥

[वाणी से ही मुझे सन्तुष्ट करना चाहती है, कर्म से नहीं। सेरेय्यक (?) की माला की तरह जिसका वर्ण होता है, किन्तु सुगन्धि नही ॥ जो मित्रो से निष्फल मधुर-वाणी बोलता है (देने को कहता है, किन्तु) न देता है, न त्याग करता है, उसकी मैत्री जाती रहती है ॥ जो करे उसे ही कहे जो न करे उसे न कहे। जो करता नही है, केवल कहता है, उसे पण्डित पहचान लेते है ॥ मेरी सेना क्षीण हो गई, और मेरे पास खर्च भी नही रहा। मुझे अपनी जान जाने की शङ्का होती है। हन्त! मैं अब जाता हूँ।]

आशङ्का कुमारी ने राजा की बात सुनी तो बोली —

"महाराज! आप मेरा नाम जानते है। आप ने जो कहा, वही मेरा नाम है। यही नाम मेरे पिता को कह कर मुझे साथ लेकर जायें।" उसने राजा से बात चीत करते हुए कहा—

एतदेवहि मे नाम य नामस्मि रथेसभ,
आगमेहि महाराज पितर आमन्तयामह ॥

[राजन! जिस नाम वाली मैं हू, वह यही मेरा नाम है। प्रतीक्षा करो। मैं पिता को बुलाती हूँ।]

यह सुन राजा बोधिसत्व के पास गया और प्रणाम करके बोला—आप की लड़की का नाम आशङ्का है। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—जब से नाम जान लिया है, तभी से लेकर जा सकते हो। यह सुन बोधिसत्व को प्रणाम किया और स्फटिक विमान के द्वार पर पहुँच कर बोला—भद्रे! आज तेरे पिता ने भी तुझे मुझ को दे दिया है। आ अब चले। यह सुन वह 'राज प्रतीक्षा करें। मैं पिता से मिल लू' कह प्रासाद से उतरी और पिता

को प्रणाम कर, रो, क्षमा याचना कर राजा के पास आई। राजा उसे ले वाराणसी आया और पुत्र-पुत्रियो के साथ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ प्रेम-पूर्वक रहा। बोधिसत्व घ्यानारूढ रह ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु श्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय आशङ्का कुमारी पूर्व-भार्य्या थी। राजा उद्विग्न-चित्त था। तपस्वी तो मैं ही था।

३८१. मिगालोप जातक

"न मेरुच्चि " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक बात न सह सकने वाले भिक्षु के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच बात न सह सकने वाला है? 'हाँ भन्ते!' कहने पर 'भिक्षु! न केवल अभी तू बात न सह सकने वाला है, तू पहले भी बात न सह सकने वाला ही रहा है। लेकिन बात न सह सकने की आदत के कारण पण्डितो का कहना न कर झञ्झावात मे फँस दु ख को प्राप्त हुआ' कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की योनि मे पैदा हुआ। उसका नाम था अपरण्ण गीध। वह गीधो की मण्डली से घिरा गृध्र-कूट पर्वत पर रहता था। उसका मिगालोप नाम का पुत्र बडा शक्तिशाली था। वह दूसरे गीधो की सीमा लाघ, बहुत ऊँचे पर उडता। गीधो ने गृध्र-राज को कहा—तेरा पुत्र बहुत ऊँचे पर उडता है।

सम्पेसि यो मे वाचाय न च सम्पेसि कम्मुना,
माला सेरेय्यकस्सेव वण्णवन्ना अगन्धिका ॥
अफल मधुर वाच यो मित्तेसु पकुब्बति,
अदद अविस्सज भोगं सन्धि तेनस्स जीरति ॥
य हि कयिरा त हि वदे य न कयिरा न त वदे,
अकरोन्त भासमान परिजानन्ति पण्डिता ॥
बल च वत मे खीण पाथेय्यञ्च न विज्जति,
सङ्को पाणपरोधाय हन्ददानि वजामह ॥

[वाणी से ही मुझे सन्तुष्ट करना चाहती है, कर्म से नही। सेरेय्यक (?) की माला की तरह जिसका वर्ण होता है, किन्तु सुगन्धि नही ॥ जो मित्रो से निष्फल मधुर-वाणी बोलता है (देने को कहता है, किन्तु) न देता है, न त्याग करता है, उसकी मैत्री जाती रहती है ॥ जो करे उसे ही कहे जो न करे उसे न कहे। जो करता नही है, केवल कहता है, उसे पण्डित पहचान लेते है ॥ मेरी सेना क्षीण हो गई, और मेरे पास खर्च भी नही रहा। मुझे अपनी जान जाने की शङ्का होती है। हन्त ! मैं अब जाता हूँ।]

आशङ्का कुमारी ने राजा की बात सुनी तो बोली —

"महाराज ! आप मेरा नाम जानते है। आप ने जो कहा, वही मेरा नाम है। यही नाम मेरे पिता को कह कर मुझे साथ लेकर जायँ।" उसने राजा से बात चीत करते हुए कहा—

एतदेवहि मे नामं य नामस्मि रथेसभ,
आगमेहि महाराज पितर आमन्तयामह ॥

[राजन ! जिस नाम वाली मैं हू, वह यही मेरा नाम है। प्रतीक्षा करो। मैं पिता को बुलाती हूँ।]

यह सुन राजा बोधिसत्व के पास गया और प्रणाम करके बोला—आप की लड़की का नाम आशङ्का है। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—जब से नाम जान लिया है, तभी से लेकर जा सकते हो। यह सुन बोधिसत्व को प्रणाम किया और स्फटिक विमान के द्वार पर पहुँच कर बोला—भद्रे ! आज तेरे पिता ने भी तुझे मुझ को दे दिया है। आ अब चले। यह सुन वह 'राज प्रतीक्षा करें। मैं पिता से मिल लू' कह प्रासाद से उतरी और पिता

को प्रणाम कर, रो, क्षमा याचना कर राजा के पास आई। राजा उसे ले वाराणसी आया और पुत्र-पुत्रियो के साथ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ प्रेम-पूर्वक रहा। बोधिसत्व ध्यानारूढ रह ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु श्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय आशङ्का कुमारी पूर्व-भार्य्या थी। राजा उद्विग्न-चित्त था। तपस्वी तो मैं ही था।

३८१. मिगालोप जातक

"न मेरुच्चि" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक बात न सह सकने वाले भिक्षु के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर पूछा—भिक्षु! क्या तू सचमुच बात न सह सकने वाला है? 'हाँ भन्ते!' कहने पर 'भिक्षु! न केवल अभी तू बात न सह सकने वाला है, तू पहले भी बात न सह सकने वाला ही रहा है। लेकिन बात न सह सकने की आदत के कारण पण्डितो का कहना न कर झझावात मे फँस दु:ख को प्राप्त हुआ' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की योनि मे पैदा हुआ। उसका नाम था अपरण्ण गीध। वह गीधो की मण्डली से घिरा गृध्र-कूट पर्वत पर रहता था। उसका मिगालोप नाम का पुत्र बडा शक्तिशाली था। वह दूसरे गीधो की सीमा लाघ, बहुत ऊँचे पर उडता। गीधो ने गृध्र-राज को कहा—तेरा पुत्र बहुत ऊँचे पर उडता है।

गृध्र-राज ने उनकी बात सुन उसे बुलाकर कहा—तात ! तू बहुत ऊँचे पर उडता है। बहुत ऊँचे पर उडने से जान गँवा बैठेगा।

यह कह तीन गाथाये कही —

न मे रुच्चि मिगालोप यस्सते तादिसा गति,
अतुच्चं तात पतसि अभूमिं तात सेवसि॥
चतुक्कण्णव केदार यदा ते पठवी सिया,
ततो तात निवत्तस्सु मास्सु एत्तो परंगमि॥
सन्ति अञ्ञेपि सकुणा पत्तयाना विहङ्गमा,
अक्खित्ता वातवेगेन नट्ठा ते सस्सतीसमा॥

[मिगालोप ! तेरी यह गति मुझे अच्छी नही लगी। तू बहुत ऊँचे पर उडता है, तू आकाश पर रहता है। तात ! जब यह पृथ्वी तुझे चतुष्कोण खेत जैसी प्रतीत होने लगे, तो वहाँ से तू लौट आ। उससे ऊपर मत जा। और भी पक्षी हैं, जो पह्लो रूपी यान पर चढकर आकाश मे उडे हैं, जिन्होंने अपने आप को पृथ्वी की तरह (दृढ) माना, वे हवा के झोके की चपेट मे आकर नष्ट हो गये।]

उपदेश न मानने वाला होने के कारण मिगालोप ने पिता का कहना न माना। ऊपर जाते हुए पिता की बताई सीमा को देख, उसे पार कर काली-वायु के भी उस पार जा झञ्झावात मे जा कूदा। उसे झञ्झावात की मार पडी। उसकी चोट से टुकडे टुकडे हो वह आकाश मे ही अन्तर्धान हो गया।

ये तीन अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं —

अकत्वा अपरण्णस्स पितु बुद्धस्स सासन,
कालवाते अतिक्कम्म वेरम्भानं वस गतो॥
तस्स पुत्ता च दारा च ये चञ्ञे अनुजीविनो,
सब्बे ब्यसनमापादु अनोवादकरे दिजे॥
एवम्पि इध बुद्धानं यो वाक्य नावबुज्झति,
अतिसीम चरो दित्तो गिज्झो वातीतसासनो,
सब्बे ब्यसन पप्पोन्ति अकत्वा बुद्धसासन॥

[वृद्ध पिता अपरण्ण का कहना न मान काली-वायु को पार कर झझावात के वशीभूत हुआ। उस पक्षी के कहना न मानने के फल स्वरूप उसके पुत्र भार्य्या तथा अन्य जितने भी आश्रित थे, सभी दु ख को प्राप्त हुए। इसी प्रकार जो यहाँ बडो के कहने पर ध्यान नही देते, वे सभी बडो का कहना न मान उसी प्रकार दु ख को प्राप्त होते है, जैसे कहना न मान सीमा के पार जाने वाला अभिमानी गीध।]

शास्ता ने यह धर्म देशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय मिगालोप बात न मानने वाला भिक्षु था। अपरण्ण तो मैं ही था।

३८२ सिरिकालकण्णि जातक

"कानु काळेन वण्णेन" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अनाथ पिण्डिक के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित होने के बाद से अखण्ड पञ्चशीलो का पालन करता था। उसकी भार्य्या भी, बेटी-बेटा भी। दास भी तथा मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूर भी—सभी पालन करते थे। एक दिन भिक्षुओ ने धर्मसभा मे बात चीत चलाई—आयुष्मानो! अनाथ पिण्डिक स्वय पवित्र जीवन व्यतीत करता है। उसका परिवार भी पवित्र जीवन व्यतीत करता है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी पण्डित-जन स्वय भी पवित्र हुए है और उनके परिवार भी' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सेठ (पैदा) हो दान दिया, शील की रक्षा की तथा उपोसथव्रत किये। उसकी भार्य्या भी पञ्चशीलो की रक्षा करती थी, वेटा वेटी तथा दास और नौकर चाकर भी। वह शुचि-परिवार सेठ ही कहलाने लगा। एक दिन उसने सोचा—यदि मुझसे भी अधिक पवित्रता का ख्याल रखने वाला कोई आ जायगा, उसे अपना बैठने का आसन या सोने की शैय्या देना ठीक न होगा, उसे जो उपयोग मे न आया हो वही देना ठीक होगा। उसने अपनी उपस्थान शाला मे ही एक ओर बिना उपभोग मे आया हुआ आसन तथा शैय्या बिछवा दी।

उस समय चातुर्महाराजिक देव-लोक से विरूपक्ष महाराज की कालकण्णी नाम की लडकी तथा धृतराष्ट्र महाराज की सिरी नाम की लडकी—ये दोनो बहुत सुगन्धि तथा मालायें ले अनोतप्त-दह पर क्रीडा करने के लिये अनोतप्त-सरोवर पहुँची। उस अनोतप्त-सरोवर पर बहुत से घाट थे—उनमे बुद्धो के घाट पर बुद्ध ही स्नान करते थे, प्रत्येक-बुद्धो के घाटपर प्रत्येक-बुद्ध स्नान करते थे, भिक्षुओ के घाट पर भिक्षु स्नान करते थे, तपस्वियो के घाट पर तपस्वी स्नान करते थे, चातुर्महाराजिक आदि छ स्वर्गों के देवपुत्रो के घाट पर देव-कन्यायें ही स्नान करती थी।

वहाँ ये दोनो पहुँच घाट के लिये झगडने लगी—मैं पहले स्नान करूँगी, मैं पहले स्नान करूँगी। कालकण्णी बोली—मैं लोक का पालन करती हूँ, विचार करती हूँ, इसलिये मैं पहले स्नान करूँगी। सिरि बोली—मैं लोगो के ऐश्वर्य्य-दायक सम्यक-कर्मों मे रहती हूँ, इसलिए मैं पहले स्नान करूँगी। उन्होने निश्चय किया कि हममे से किसे पहले स्नान करना चाहिये, इसका निर्णय चार-महाराजा करेंगे और चारो महाराजो के पास पहुँच कर पूछा—हम मे से किसे पहले अनोतप्त-सरोवर मे स्नान करना चाहिये ?

धृतराष्ट्र तथा विरुपक्ष ने विरूढक तथा वैश्रवण पर जिम्मेवारी डाल दी—हम निर्णय नहीं कर सकते। उन्होने भी कहा—हम भी निर्णय नही कर

सकते, शक्र के चरणो मे भेजेंगे और उन्हे शक्र के पास भेज दिया। शक्र ने उसकी बात सुन सोचा—ये दोनो ही मेरे आदमियो की कन्यायें हैं, मैं इनका निर्णय नही कर सकता। तब शक्र बोला—वाराणसी मे शुचि-परिवार नाम का सेठ है। उसके घर उपभोग मे न आया हुआ आसन तथा शैय्या है, जो वहाँ उस पर बैठ या सो सके, वही पहले स्नान करने के योग्य है। यह सुन कालकण्णी उसी क्षण नीले वस्त्र पहन, नीला लेप लगा, नीलमणि का गहना पहन, ढेलवाँस की तेजी से देवलोक से उतर, (रात्रि के) मध्यम-याम के बाद ही, सेठ के प्रासाद की उपस्थान-शाला के द्वार पर शैय्या के पास ही नीले रग की किरणे छोडती हुई आकाश मे खडी हुई। सेठ की नजर उस पर पडी। दिखाई देते ही वह सेठ को अच्छी नही लगी, अप्रिय लगी। उसने उससे बातचीत करते हुये पहली गाथा कही—

कानु काळेन वण्णेन न चापि पियदस्सना,
का वा त्व कस्सवाधीता कथ जानेमुत मय ॥

[काले रग वाली तू कौन है? तेरा दर्शन प्रिय नही है। तू कौन है? अथवा किसकी लडकी है? हम तुझे कैसे पहचानें?]

यह सुन काल-कण्णि ने दूसरी गाथा कही—

महाराजस्सह धीता विरूपक्खस्स चण्डिया,
अहकाली अलक्खिका कालकण्णीति मविदू,
ओकास याचितो देहि वसेमि तव सन्तिके ॥

[मैं विरुपक्ष महाराज की प्रचण्ड स्वभाव वाली, काले वर्ण की पुण्य-रहित लडकी हूँ। मुझे कालकण्ण कहते हैं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दें।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

किं सीले किं समाचारे पुरिसे निवससे तुव,
पुट्ठा मे कालि अक्खाहि यथा जानेमु त मय ॥

[हे कालि! हम पूछते है तू बता कि तू किस स्वभाव के और किस आचरण के आदमियो के साथ वास (पसन्द) करती है, जिससे हम तुझे पहचाने।]

तब उसने अपने गुण बताते हुए चौथी गाथा कही—

मक्खी पलासी सारम्भी इस्सुकी मच्छरी सठो,
सो मह्य पुरिसोकन्तो लद्ध यस्स विनस्सति ॥

[मुझे ऐसा पुरुष प्रिय है जो अकृतज्ञ हो, बात न मानने वाला हो झगडालू हो, इर्ष्यालु हो, कजूस हो, शठ हो तथा जो मिले उसे (व्यसनो मे) नष्ट कर देता हो ।]

तब उसने स्वय ही पाँचवी छठी तथा सातवी गाथा कही —

कोधनो उपनाही च पिसुणो च विभेदको,
कण्टकवाचो फरुसो सोमे कन्ततरो ततो ॥
अज्ज सुवेति पुरिसो सदत्थ नावबुज्झति,
ओवज्जमानो कुप्पति सेय्यसो अतिमञ्जति ॥
दवप्पलुद्धो पुरिसो सब्बमित्तेहि धसति,
सो मय्ह पुरिसो कन्तो तस्मि होमि अनामया ॥

[क्रोधी, बद्ध-वैरी, चुगल-खोर, फूट डालने वाला, कटु-भाषी तथा कठोर (आदमी) मुझे पूर्वोक्त से भी अधिक प्रिय है। आज (करने योग्य है) या कल (करने योग्य है) को भी जो नहीं समझता है, नसीहत देने से क्रोध करता है, श्रेष्ठ पुरुषो से अपने को बहुत बडा समझता है, (रूप आदि मे) बुरी तरह आसक्त है तथा सब मित्रो द्वारा परित्यक्त है—वही मेरा प्रिय-स्वामी है, उसे प्राप्त कर मैं सुखी होता हूँ ।]

उसकी निन्दा करते हुए बोधिसत्व ने आठवी गाथा कही—

अपेहि एत्तो त्वं कालि नेत अम्हेसु विज्जति,
अञ्ञ जनपद गच्छ निगमे राजधानियो ॥

[कालि ! तू यहाँ से दूर हो । हमारे मे ये गुण नही हैं । किसी दूसरे जनपद मे जा, दूसरे निगम मे, दूसरी राजधानियो मे ।]

यह सुन कालकण्णि ने दबकर इसके बाद की गाथा कही—

रहम्पि चेत जानामि नेत तुम्हेसु विज्जति,
सन्ति लोके अलक्खिका सङ्करन्ति बहु धन,
अहं देवो च मे माता उभो न विधमामसे ॥

[मैं भी यह जानती हूँ कि ये बातें तुम मे नही है। लोक मे दूसरे अपुण्यवान् प्राणी हैं, जो बहुत धन इकट्ठा करते है। मैं और मेरा भाई देव-पुत्र दोनो उस धन को नष्ट करेंगे।]

वह बोली—हमारे पास देव-लोक मे बहुत दिव्य-परिभोग है, दिव्य शयनासन है, तू दे या न दे, हमे उनसे क्या प्रयोजन ? यह कह चली गई।

उसके चले जाने पर सिरि देव-कन्या स्वर्ण-वर्ण सुगन्धित लेपो से युक्त हो, स्वर्णालङ्कारो को पहन, उपस्थान शाला के द्वार पर पीली किरणें बिखेरती हुई, पृथ्वी पर पैरो के बराबर स्थिर कर, गौरव-युक्त हो खडी हुई। यह देख बोधिसत्व ने पहली गाथा कही—

> का नु दिब्बेन वण्णेन पठव्या सुप्पतिट्ठिता,
> का वा त्व कस्स वा धीता कथ जानेमु त मय ॥

[पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित दिव्य-वर्ण वाली तू कौन है ? तू कौन है ? अथवा किसकी लडकी है ? हम तुझे कैसे पहचाने ?]

यह सुन सिरि ने दूसरी गाथा कही—

> महाराजस्सह धीता धतरट्ठस्स सिरिमतो,
> अह सिरी च लक्खी च भूरिपञ्ञा ति म विदू,
> ओकास याचितो देहि विसेमु तव सन्तिके ॥

[मैं श्रीमान् महाराज धृतराष्ट्र की कन्या हूँ। मेरा नाम सिरि है और लक्ष्मी है। मुझे अति-प्रज्ञावान् समझते हैं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पास रहने दें।]

तब बोधिसत्व ने कहा—

> किं सीले किं समाचारे पुरिसे निविससे तुव,
> पुट्ठो मे लक्खि अक्खाहि यथा जानेसु त मय।

[हे लक्ष्मी ! हम पूछते है, तू बता कि तू किस स्वभाव के, किस आचरण के आदमियो के साथ वास (पसन्द) करती है, जिससे हम तुझे पहचानें।]

वह बोली—

> यो वापि सीते अथवापि उण्हे
> वातातपे डससिरिसपे च,

खुद पिपास अभिभूय्य सब्बं
रत्तिन्दिव यो सतत नियुत्तो,
कालागतञ्च न हापेति अत्थ
सो मे मनापो निवसे वतम्हि ॥

[जो शीत अथवा ऊष्णता, हवा, धूप तथा डाँस (मक्खि) और सर्प आदि, भूख-प्यास सब को जीत कर, रात दिन लगा रह कर, काल के आने पर भी अपने अर्थ को नही छोडता है, वैसा आदमी मुझे प्रिय है और वैसे के साथ रहना मैं (पसन्द) करती हूँ।]

अक्कोधनो मित्तवा चागवा च
सीलूपपन्नो असठोजुभूतो,
सङ्गाहको सखिलो सण्हवाचो
महत्त्पत्तोपि निवातवुत्ति
तस्माह पोसे विपुला भवामि
उम्मी समुद्दस्स यथापि वण्ण ॥
यो चापि मित्ते अथवा अमित्ते
सेट्ठे सरिक्खे अथवापि हीने
अत्थ चरन्त अथवा अनत्थ
आवीरहो सङ्गहमेव वत्ते,
वाचं न वज्जा फरुसं कदाचि
मतस्स जीवस्स च तस्स होमि ॥
एतेस यो अञ्ञतर लभित्वा
कन्ता सिरी मज्जति अप्पपञ्ञो,
त दित्तरूपविसमे चरन्तं
करीसवाचंव विवज्जयामि ॥

अत्तना कुरुते लक्खि अलक्खिं कुवलत्तना,
न हि लक्खि अलक्खि वा अञ्ञो अञ्ञस्स कारको ॥

[जो अक्रोधी है, जिसके मित्र हैं जो त्यागी है, जो शीलवान् हैं, जो शठ नही हैं, जो ऋजु है, जो (मित्रादि का) सग्रह करने वाला है, जो मृदु-भाषी है, जिसकी वाणी विश्वसनीय है तथा जो ऊँचे (पद को) प्राप्त होकर

भी नम्र है ऐसे आदमी को प्राप्त होकर मैं उसी तरह फूल जाती हूँ जैसे समुद्र की लहर। जो मित्र, अमित्र, अथवा श्रेष्ठ, समान वा हीन के प्रति, अर्थ तथा अनर्थ कुछ भी करते हुए, अकेले मे अथवा प्रकट रूप मे, संग्रह ही करता है, जो कभी भी कठोर वाणी नही बोलता, मैं उस आदमी के मरने पर भी उसी की हूँ। इन गुणो मे से किसी एक गुण के प्रति भी जो (प्रिय) कान्ता सिरि को प्राप्त करके प्रमाद करता है, उस अभिमानी, दुराचारी को मैं गूह की तरह त्याग देती हू। अपने से भाग्यवान् होता है, अपने से अभाग्यवान्, एक दूसरे को कोई भाग्यवान् अथवा अभाग्यवान् नही करता।]

बोधिसत्व ने सिरि देवी की इस प्रकार की बात सुन, उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—यह उपभोग मे न आया हुआ आसन और शैय्या तेरे ही योग्य है। तू आसन और पलग पर बैठ तथा लेट। वह वहाँ रह, बहुत प्रात ही निकल चातुर्महाराजिक देव-लोक पहुँची और अनोतप्त-सरोवर मे पहले स्नान किया। वह शैय्या सिरि-देवता के उपयोग मे आने से श्री-शैय्या कहलायी। श्री-शैय्या कहलाने की यही परम्परा है। इसी कारण से आज तक श्री-शैय्या कहते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय सिरि देवी उत्पल वर्णा थी। शुचि-परिवार सेठ तो मैं ही था।

३८३. कुक्कुट जातक

"सुचित्तपत्तच्छदन" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को शास्ता ने पूछा—किसलिये उद्विग्न-चित्त है? 'भन्ते! एक अलङ्कार-युक्त स्त्री को देखकर आसक्ति के कारण।' शास्ता 'भिक्षु!

स्त्रियाँ ठगकर, वहका कर, अपने वश मे होने पर नष्ट कर डालती है। लोभी बिल्ली की तरह होती हैं' कह चुप हो गये। तव उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व जङ्गल मे मुर्गे की योनि मे पैदा हो सैकडो मुर्गो के साथ रहने लगे। उसके पास ही एक बिल्ली भी रहती थी। उसने बोधिसत्व के अतिरिक्त शेष सभी मुर्गो को ढग से खा डाला। बोधिसत्व उसके काबू न आते थे। उसने सोचा—मुर्गा बडा शठ है। हमारी शठता तथा चातुरी नही जानता है। इसे 'हम तेरी भार्य्या होगी' कह वहका कर अपने वशीभूत होने पर खाना चाहिये। वह जिस वृक्ष की शाखा पर वह मुर्गा बैठा था वहाँ पहुँची और उसकी प्रशसा पूर्वक याचना करती हुई बोली—

सुचित्तपत्तच्छदन तम्बचूळ विहङ्गम,
ओरोह दुमसाखाय मुधा भरिया भवामिते ॥

[सुचित्रित पङ्खो से आच्छादित, तम्ब (-वर्ण) शिखा वाले पक्षी ! वृक्ष की शाखा से उतर। हम मुफ्त मे तेरी भार्य्या बनेंगी।"

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—यह मेरे सभी सम्बन्धियो को खा गई। अब मुझे लुभा कर खाना चाहती है। इसे विदा करूँगा। उसने दूसरी गाथा कही—

चतुप्पदी त्व कल्याणि द्विपदाह मनोरमे,
मिगी पक्खी असंयुत्ता अञ्ञ परियेस सामिकं ॥

[हे कल्याणि ! तू चतुष्पदी। हे मनोरमे ! मैं द्विपद हूँ। पशु तथा पक्षी का मेल नही बैठता। तू दूसरा स्वामी खोज।]

तब उसने सोचा, यह अत्यन्त शठ है। इसे किसी न किसी उपाय से ठगकर खाऊँगी ही। वह बोली—

कोमारिका ते हेस्सामि मञ्जुका पिय भाणिनी,
विन्द म अरियेन वेदेन सावयामं यदिच्छसि ॥

[मैं सुन्दर प्रिय भाषिणी (अभी तक) कुमारी हूँ। मैं तेरी भार्य्या बनूंगी। मुझे श्रेष्ठ लाभ जान ग्रहण कर, और यदि मुझे चाहता है, तो (यह मेरी दासी है) इसे सब को सुना दे।]

तब बोधिसत्व ने सोचा—इसे धमका कर भगाना चाहिये। उसने चौथी गाथा कही—

कुणपादिनि लोहितपे चोरि कुक्कुट पोथिनि,
न त्वं अरियेन वेदेन मम भत्तारमिच्छसि॥

[मृतजीवो को खाने वाली! रक्त पायिनी! चोर! मुर्गो को मार डालने वाली! तू मुझे श्रेष्ठ लाभ जान स्वामी नही बनाना चाहती है।]

वह भाग गई। पीछे मुड कर भी नही देखा। ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

एवम्पि चतुरा नारी दिस्वान पवर नरं,
नेन्ति सण्हाहि वाचाहि बिळारी विय कुक्कुटं॥
यो च उप्पतितं अत्थं न खिप्पमनुबुज्झति,
अमित्तवसमन्वेति पच्छा च मनुतप्पति॥
यो च उप्पतितं अत्थं खिप्पमेव निबोधति,
मुच्चते सत्तु सम्बाधा कुक्कुटोव बिलारिया॥

[इस प्रकार भी चतुर नारियाँ श्रेष्ठवर को देख मृदु-वाणी से उसे अपने वश मे करती हैं, जैसे बिल्ली ने मुर्गे को (वश मे करने का प्रयत्न किया)। जो उत्पन्न परिस्थिति को शीघ्र ही नही बूझ लेता है, वह शत्रु के वशीभूत हो जाता है और पीछे अनुताप करता है। जो उत्पन्न परिस्थिति को शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के फदे से बच निकलता है, जैसे मुर्गा बिल्ली के फदे से।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कुक्कुट राज मैं ही था।

३८४. धम्मद्धज जातक

"धम्म चरथ ञातयो " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक ढोगी भिक्षु के बारे मे कही।

उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी यह ढोगी है, पहले भी ढोगी रहा है' कह पूर्वजन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पक्षी की योनि मे उत्पन्न हो, बडे होने पर पक्षियो के झुण्ड के साथ समुद्र मे एक द्वीप पर रहते थे। कुछ काशी राष्ट्र वासी व्यापारी दिशा-काल ले जहाज से समुद्र मे उतरे। समुद्र मे जहाज टूट गया। उस कौवे ने उस द्वीप मे पहुँच सोचा—यह पक्षियो का महान् झुण्ड है, मुझे ढोग करके इनके अण्डे तथा बच्चे समय समय पर खाने चाहिये।

वह पक्षियो के झुण्ड मे उतर कर, चोच खोल, पृथ्वी पर एक पांव से खडा हुआ। पक्षियो ने पूछा—

"स्वामी! तुम्हारा क्या नाम है?"

"मेरा नाम धार्मिक है।"

"एक पांव से क्यो खडे हो?

"मेरे दूसरा पांव रखने पर पृथ्वी (भार) सहन नही कर सकेगी।"

"और चोच खोले क्यो खडे हो?"

"मैं और कुछ नही खाता, केवल हवा खाता हूँ।"

इस प्रकार उत्तर दे, उसने उन पक्षियो को सम्बोधित कर "मैं तुम्हे उपदेश देता हूं, सुनो" कह उपदेश देते हुए पहली गाथा कही—

धम्म चरथ ञातयो धम्म चरथ भद्द वो,
धम्मचारी सुखं सेति अस्मि लोके परम्हि च॥

[रिश्तेदारो ! धर्म करो । धर्म करो, भला होगा । धर्मचारी इस लोक तथा परलोक मे सुख से सोता है ।]

पक्षियो ने यह नही समझा कि यह कौवा अण्डे खाने के लिये इस प्रकार बात बना रहा है । उन्होने उस दुश्शील की प्रशसा करते हुए दूसरी गाथा कही—

> भद्दको वतय पक्खी दिजो परमधम्मिको,
> एकपादेन तिट्ठन्तो धम्ममेवानुसासति ॥

[यह पक्षी भद्र है । यह द्विज परम-धार्मिक है । एक पाँव से खडा होकर धर्म का ही उपदेश देता है ।

पक्षियो ने उस दुराचारी मे श्रद्धावान् हो कहा—स्वामी ! आप और कुछ शिकार नही ग्रहण करते, हवा ही खाते हैं । तो हमारे अण्डे और बच्चो की देख भाल करें । वे स्वय चुगने चले जाते । वह पापी उनकी अनुपस्थिति में उनके अण्डे-बच्चे पेट भर खा उनके आने के समय शान्त-आकृति बना, चोंच खोल एक पाँव से खडा हो जाता । पक्षी आते और बच्चो को न देख बड़े जोर से चिल्लाते—(इन्हे) कौन खा जाता है ? उस कौवे को धार्मिक समझ उस पर तनिक शङ्का न करते ।

एक दिन बोधिसत्व ने सोचा—यहाँ पहले कोई खतरा नही था । इसके आने के समय से ही पैदा हुआ । इसकी जाँच करनी चाहिये । वह पक्षियो के साथ चुगने जाने जैसा हो, लौटकर छिपे स्थान पर खडा रहा ।

कौवे ने भी जब पक्षियो को गया समझा तो उठा और जाकर अण्डे बच्चे खा, लौटकर चोंच खोल एक पाँव से खडा हो गया । पक्षिराज ने पक्षियो के आने पर सभी को इकट्ठा कर कहा—मैंने बच्चो के खतरे की जाँच करते हुए इस पापी कौवे को उन्हे खाते देखा । आज इसे पकडें । उसने सभी पक्षियो को आज्ञा दी—यदि भागे तो धर दबाना । यह कह शेष गाथायें कहीं—

> नास्स सील विजानाथ अनञ्ञाय पससथ,
> भुत्वा अण्डञ्च छापे च धम्मो धम्मोति भासति ॥
> अञ्ञं भणति वाचाय अञ्ञ कायेन कुब्बति,
> वाचाय नो च कायेन न तं धम्म अधिट्ठितो ॥

वाचाय सखिलो मनोविदुग्गो,
छन्नो कूपसयोव कण्हसप्पो
धम्मधजो गामनिगमासु साधुसम्मतो,
दुज्जानो पुरिसेन बालिसेन ॥
इमं तुण्डेहि पक्खेहि पादाचिम विहेठथ,
छव हिम विनासेथ नायं सवासनारहो ॥

[इसके स्वभाव को नही जानते हो। बिना जाने प्रशसा करते हो। यह अण्डो तथा बच्चो को खाकर 'धर्म-धर्म' कहता है। वाणी से दूसरी बात कहता है, शरीर से दूसरी बात करता है। यह वाणी से ही धर्म मे स्थित है, शरीर से नही। वाणी का कोमल, किन्तु मन दु प्रवेश्य, वैसा ही छिपा हुआ जैसे बिल मे सोया हुआ काला सर्प। ऐसा धर्मध्वजी, जो ग्राम-निगम आदि मे 'धर्मात्मा' प्रसिद्ध होता है किसी मूर्ख पुरुष द्वारा नही पहचाना जाता। इसे चोच से, पङ्खो से तथा पैरो से मारो। इस दुष्ट को नष्ट कर डालो। यह साथ रहने योग्य नही है।]

यह कह पक्षिराज ने स्वय ही उछल कर उसके सिर पर ठोग मारी। शेष पक्षियो ने चोच, नख, पैर तथा पखो से प्रहार किया। वह वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का ढोगी कौवा इस समय का ढोगी भिक्षु था। पक्षि-राज तो मैं ही था।

३८५. नन्दियमिगराज जातक

"सचे ब्राह्मण गच्छसि ..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक माता का पालन-पोषण करने वाले भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसे शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच गृहस्थो का पालन-पोषण करता है ? 'भन्ते ! सचमुच ।' 'वह तेरे क्या लगते हैं ?' 'भन्ते ! माता-पिता ।' भिक्षु ! साधु ! तू पुराने पण्डितो की परम्परा की रक्षा करता है । पुराने पण्डितो ने पशु योनि मे पैदा होकर भी माता-पिता को जीवन दान दिया है, कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कोशल राष्ट्र मे साकेत (नगरी) मे कोशल-राज के राज्य करने के समय बोधिसत्व मृग की योनि मे पैदा हुआ । बडे होने पर नन्दिय मृग नाम हुआ । वह सदाचारी हो माता-पिता का पालन-पोषण करने लगा । उस समय कोशल राजा मृगो के पीछे पडा रहता था । वह मनुष्यो को कृषि-कर्म आदि न करने देकर बहुत से आदमियो को साथ ले नित्य शिकार खेलने जाता ।

मनुष्यो ने इकट्ठे हो सोचा—आर्यो ! यह राजा हमारे काम का हर्जा करता है, गृहस्थी नष्ट होती है । क्यो न हम अञ्जनवन उद्यान को घेर कर, दरवाजा लगाकर, पुष्करिणी खोद, घास बो दें । फिर दण्ड मुद्गर आदि हाथ मे ले, जगल मे घुस, झाडियो को पीटते हुए, मृगो को निकाल उन्हे घेर जैसे गौवें ब्रज मे दाखिल होती हैं, वैसे ही उन्हे उद्यान मे दाखिल कर दरवाजा बन्द कर दें । फिर जाकर राजा को सूचना दे दें और अपना काम करें । सभी ने एक मत हो, इस उपाय को स्वीकार कर उद्यान बना, अरण्य मे प्रविष्ट हो एक योजन भर जमीन घेर ली ।

उस समय नन्दिय एक छोटी सी झाडी मे, माता-पिता को लिये जमीन पर पडा था । नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हाथ मे लिये मनुष्यो ने एक दूसरे की बाँह को पकडे हुए उस झाडी को घेर लिया । कुछ आदमी मृगो को ढूँढते हुए उस झाडी की ओर बढे । नन्दिय ने उन्हें देख सोचा । आज अपना जीवन देकर भी मुझे मातापिता की रक्षा करनी चाहिये । वह उठा और माता पिता को प्रणाम करके बोला—अम्मा ! तात ! ये मनुष्य इस झाडी मे दाखिल हो हम तीनो को देख लेंगे । तुम किसी न किसी उपाय,

से जीते रहना। जीवित रहना श्रेष्ठ है। मैं तुम्हे जीवन-दान दे, ज्योहि मनुष्य झाडी के सिरे पर खडे हो, झाडी को पीटेंगे, तुरन्त निकल भागूंगा। वे समझेंगे कि इस छोटी झाडी मे एक ही मृग रहा होगा, और झाडी के अन्दर प्रवेश नही करेंगे। तुम हुशियार रहो। वह माता-पिता को प्रणाम कर चलने को तैय्यार हुआ। ज्योहि मनुष्यो ने झाडी के एक सिरे पर खडे हो, हल्ला करके झाडी को पीटा, वह वहाँ से निकल पडा। उन्होने समझा यहाँ एक ही मृग होगा, और झाडी मे अन्दर नही घुसे। नन्दिय जाकर दूसरे मृगो मे शामिल हो गया। मनुष्यो ने उन्हे घेरा, सभी मृगो को उद्यान मे दाखिल किया, फिर द्वार बन्द कर राजा को सूचना दी और अपने अपने निवासस्थान को चले गये।

तब से राजा स्वय जाकर किसी एक मृग को बीध, किसी को भेजता—उसे ले आ। मृगो ने बारी बाध ली। जिसकी बारी आती वह मृग एक ओर खडा हो जाता। उसे बीधकर ले जाता। नन्दिय पुष्करिणी मे पानी पीता था, घास चरता था किन्तु अभी उसकी बारी नही आई थी। तब बहुत से दिन गुजरने पर उसके माता-पिता के मन मे उसे देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होने सोचा—हमारा पुत्र नन्दिय मृग-राज हाथी के बल का है, शक्तिशाली है, यदि जीता होगा तो अवश्य दीवार लाघ कर भी हम से मिलने आयेगा। हम उसे सन्देशा भेजें। उन्होने रास्ते पर खडे हो, एक ब्राह्मण को जाता देख मानुषी वाणी मे पूछा—आर्य ! कहाँ जाते हो ? वह बोला—साकेत। उन्होने पुत्र को सदेसा भेजने हुए पहली गाथा कही —

> सचे ब्राह्मण गच्छसि साकेत अञ्जनावन,
> वज्जासि नन्दिय नाम पुत्तं अम्हाक ओरस,
> माता पिता च ते वुड्ढा ते त इच्छन्ति पस्सितु ॥

[ब्राह्मण ! यदि तू साकेत (नगरी) के अञ्जन-वन को जाता है, तो वहाँ हमारे नन्दिय नामके ओरस-पुत्र को कहना कि तेरे माता पिता वृद्ध है, और तुझे देखना चाहते हैं।]

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और साकेत पहुँचने पर अगले दिन उद्यान मे जाकर पूछा—नन्दिय मृग कौनसा है ? मृगने आकर उसके पास खडे हो कहा—मैं हू। ब्राह्मण ने वह सन्देसा कहा। नन्दिय ने उत्तर

दिया—ब्राह्मण ! मैं जाऊँ, दीवार फाँद कर भी मैं जाऊँ। लेकिन मैंने राजा के पास (उसका दिया) घास-पानी भोजन किया है। मैं उसका ऋणी हूँ। इन मृगो के बीच मैं चिरकाल से रहता हूँ। मेरे लिये यह उचित नही है कि मैं राजा का तथा इनका कल्याण किये बिना और अपना बल दिखाये बिना चल दूँ। अपनी बारी आने पर मैं इन्हे सकुशल कर आऊँगा। यह बात कहते हुए दो गाथायें कही —

भुत्ता मया निवापानि राजिनो पाणभोजन,
तं राज पिण्ड अवभोत्तु नाह ब्राह्मणमुस्सहे ॥
ओदहिस्सामह पस्स खुरप्पाणिस्स राजिनो,
तदाह सुखितो मुत्तो अपि पस्सेय्य मातर ॥

[मैंने राजा का दिया हुआ अन्न-जल ग्रहण किया है। हे ब्राह्मण ! मैं राज-पिण्ड के प्रति नमक हराम नही होना चाहता। मैं राजा के तीर के सामने अपने आप को कर दूँगा। फिर, सकुशल मुक्त हो कर माता के दर्शन करूँगा।]

यह सुन ब्राह्मण चला गया। आगे चलकर जब उसकी बारी आई तो राजा अनेक अनुयाइयो के साथ उद्यान आया। बोधिसत्व एक ओर खडा था। राजा ने मृग को बीधने के लिये तीर खीचा। जिस प्रकार मृत्यु-भय से डरकर दूसरे मृग भागते थे, बोधिसत्व उस प्रकार भागे नही। वह निर्भीक हो, मैत्री-भावना करते हुए, अपना कोमल पहलू सामने कर निश्चल खडे रहे। राजा उसकी मैत्री भावना के कारण तीर नही छोड सका।

बोधिसत्व ने पूछा—महाराज ! तीर क्यो नही छोडते ? छोडें।

"मृग-राज ! छोड नही सकता हू।"

"महाराज ! तो गुणवानो का गुण पहचानें।"

तब राजा ने बोधिसत्व के प्रति श्रद्धावान् हो धनुष त्याग कहा—यह बेजान लकडी का टुकडा भी तेरे गुणो को पहचानता है, मैं मनुष्य होकर नही पहचानता हूँ। मुझे क्षमा कर। मैं तुझे अभय करता हूँ।

"महाराज ! मुझे तो अभय देते हैं, यह उद्यान के मृग-गण क्या करेंगे ?"

"इन्हे भी अभय देता हूँ।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने मृगराज-जातक मे कहे गये अनुसार सभी जगली मृगो, आकाशचारी पक्षियो तथा जलचारी मछलियो को अभय दिलवा राजा को पाँच-शीलो मे स्थापित किया। फिर राजा को 'महाराज! चार-अगतियो[1] मे न पड, दस-राजधर्मो[2] के विरुद्ध न जा धर्म से, न्याय से राज्य करना चाहिये' कह, कुछ दिन राजा के पास रहा। उसने 'सभी प्राणियो को अभय-दान मिल गया है' को प्रसिद्ध कराने के लिये सुनहरी मुनादी फिराई। तब वह 'महाराज! अप्रमादी रहे' कह माता पिता के दर्शनार्थ गया।

ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

मिगराज पुरे आसिं कोसलस्स निकेतवे,
नन्दियो नाम नामेन अभिरूपो चतुप्पदो ॥
त म वधितुमागञ्छि दायस्मिं अञ्जनावने,
धनुं अदेज्झं कत्वान उसुं सन्धाय कोसलो ॥
तस्साहं ओदहिं पस्सं खुरप्पाणिस्स राजिनो,
तदाहं सुखितो मुत्तो मातरं दट्ठुमागतो ॥

[मैं पहले कोशल-राज के घर (के पास के जङ्गल) मे नन्दिय नाम का सुन्दर चतुष्पाद मृग था। अञ्जन-वन के उद्यान मे मुझे बध करने के लिये कोशल-राज आया और उसने धनुष को तान उस पर तीर चढाया। मैंने उस राजा के सामने, जिसके हाथ मे तीर था अपने आप को कर दिया। तब मैं सकुशल मुक्त हो, माता को देखने आया।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे माता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। तब माता पिता महाराज-कुल थे। ब्राह्मण सारिपुत्र था। राजा आनन्द था। नन्दिय मृगराज तो मैं ही था।

---

१. छन्दागति, दोसागति, मोहागति तथा भयागति।

२. दान, शील, त्याग, ऋजु भाव, मृदुता, तप, अक्रोध, अविहिंसा, क्षमा तथा अविरोध ॥

छठा परिच्छेद

२. सेनक वर्ग

३८६. खरपुत्त जातक

"सच्च किरेवमाहसु " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्व-भार्य्या की आसक्ति के बारे मे कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच उद्विग्न है ?" "भन्ते ! हाँ" कहने पर पूछा—किसने उद्विग्न किया है ? "पूर्व भार्य्या ने।" "भिक्षु ! यह स्त्री अनर्थ-कारिणी है, पहले भी तू इसी के कारण आग मे गिर कर मरता मरता पण्डितो के कारण जीता बचा" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे सेनक नाम के राजा के राज्य करते समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुआ। उस समय सेनक राजा की एक नागराजा के साथ मित्रता थी। वह नाग-राज नागभवन से निकल भूमि पर शिकार पकडता फिरता था। गाँव के लडको ने उसे देख 'यह सर्प है' ढेलो तथा डण्डो से पीटा। राजा ने क्रीडा के लिये उद्यान जाते समय देखकर पूछा—यह लडके क्या कर रहे है ? जब सुना कि एक सर्प को मार रहे हैं तो 'मारने मत दो, इन्हे भगा दो' कह उन्हे भगवा दिया।

नाग-राज जीवित रह नाग-भवन गया। वहाँ से बहुत से रत्न ले आधी रात के समय राजा के शयनागार मे घुस, वह रत्न दे, 'मेरी जान तुम्हारे ही कारण बची' कह राजा के साथ मैत्री स्थापित की। वह बार बार जाकर राजा से भेंट करता था। उसने अपनी नाग-कन्याओ मे से एक काम-भोगो मे

अतृप्तकन्या को राजा की सेवा मे रहने के लिये नियुक्त किया, और राजा को एक मन्त्र दिया कि जब उसे न देखे, तब उस मन्त्र को जपे। एक दिन राजा ने उद्यान मे पहुँच नाग-कन्या के साथ पुष्करिणी मे जल-क्रीडा की। नाग-कन्या ने एक जल सर्प देखा तो रुप बदल कर उसके साथ अनौचित्य का सेवन किया। राजा ने जब उसे नही देखा तो सोचा—कहाँ गई ? मन्त्र जपने पर वह उसे अनाचार करती हुई दिखाई दी। राजा ने उसे बाँस की चपटी से मारा।

वह क्रोधित हो वहाँ ने नाग-भवन पहुँची। 'क्यो लौट आई ?' पूछने पर बोली—तुम्हारे मित्र ने जब देखा कि मैं उसका कहना नही करती हूँ, तो उसने मुझे पीठ पर मारा। उसने पीठ की चोट दिखाई। नागराज ने बिना सच्ची बात जाने ही चार नाग-तरुणो को बुलाकर भेजा—जाओ, सेनक के शयनागार मे घुस फुङ्कार से ही उसे भूसे की तरह जला दो। वे राजा के सोने के समय उसके शयनागार मे प्रविष्ट हुए। उनके प्रवेश करने के समय ही राजा देवी से बोला—भद्रे ! मालूम है नाग-कन्या कहाँ गई ?

"देव ! नही जानती हूँ।"

"आज जिस समय हम पुष्करिणी मे जल-क्रीडा कर रहे थे उसने एक उदक-सर्प के साथ अनाचार किया। मैं ने उसे 'ऐसा न करे' शिक्षा देने के लिये बास की छपटी से मारा मुझे डर लगता है कि वह नाग-भवन जाकर मेरे मित्र को और कुछ कह कर हमारी मैत्री तोडेगी।"

यह सुन नाग-तरुण वही से लौट पडे और नाग-भवन पहुँच उन्होने राजा से वह समाचार कहा। उसके मन मे सवेग उत्पन्न हुआ। वह उसी क्षण राजा के शयनागार मे पहुँचा और वह बात कह क्षमा माँगी। फिर उसने राजा को 'सबकी बोली जानने का मन्त्र' दिया और कहा कि यह मेरा जुर्माना है, साथ ही यह भी कहा कि यह मन्त्र अति मूल्यवान् है, यदि किसी और को देगा तो आग मे जल कर मरेगा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

तब से वह चीटियो की बात-चीत भी समझ सकता था। एक दिन वह महान् तल्ले पर बैठा हुआ मधु-खाण्ड के साथ भोजन कर रहा था। खाते खाते मधु की एक बून्द, खाण्ड की एक बून्द तथा पूए का एक टुकडा

भूमि पर गिर पडा। एक चीटी उसे देख चिल्लाती घूमती थी—राजा के महान् तल्ले पर शहद की मटकी फूट गई, खाण्ड की गाडी और पूओ की गाडी उलट पडी, शहद, खाण्ड तथा पूए खाओ। राजा उसकी आवाज सुनकर हँसा। राजा के पास खडी देवी ने सोचा—राजा क्या देखकर हँसा!

जब राजा खाकर, नहाकर पलग पर बैठा था, तो एक मक्खी से उसके स्वामी ने कहा—भद्रे! आ रमण करें। वह बोली—स्वामी! थोडा सबर करें। अभी राजा के लिये सुगन्धियाँ लायेंगे। उसका लेप करते समय पैरो मे सुगन्धित-चूर्ण गिरेगा। मैं उस मे लोट-पोट कर सुगन्धित शरीर वाली हो जाऊँगी। तब राजा की पीठ पर लेट कर रमण करेंगे। राजा यह भी शब्द सुन कर हँसा। देवी भी फिर सोचने लगी—राजा क्या देख कर हँसा!

फिर शाम को जब राजा भोजन कर रहा था, भात का एक दाना जमीन पर गिर पडा। चीटियाँ चिल्लाईं—राज-कुल मे भात की गाडी टूट (कर बिखर) गई। भात खाओ। यह सुन राजा फिर हँसा। देवी सोने की कडछी लिये राजा को परोस रही थी। वह सोचने लगी कि मुझे देखकर राजा हँसता है। उसने राजा के साथ शैय्या पर लेटने के समय पूछा—देव क्यो हँसे? वह बोला—मेरे हँसने के कारण से तुझे क्या? लेकिन फिर जिद्द करने पर कह दिया।

तब वह बोली—आप जो मन्त्र जानते हैं, वह मुझे दें। "नही दे सकता हूँ" कह इनकार करने पर भी बार बार जिद्द करने लगी। राजा बोला—यदि मैं यह मन्त्र तुझे दूँगा। तो मैं मर जाऊँगा।

"देव! मर भी जायें तो भी मुझे दें।"

राजा ने स्त्री के वशीभूत हो 'अच्छा' कह स्वीकार कर लिया और सोचा इसे मन्त्र दे अग्नि मे प्रविष्ट हो जाऊँगा। वह रथ पर चढ उद्यान गया।

उस समय शक्र ने ससार पर नजर डालते हुए यह बात देखी। उस ने सोचा—मूर्ख राजा स्त्री के लिये आग मे जल मरने जा रहा है। मैं इस की जान बचाऊँगा। उसने 'सुजा' नामकी असुर कन्या को लिया और वाराणसी मे प्रविष्ट हुआ। वह बकरी बनी और शक्र स्वय बकरा। शक्र ने

ऐसा सकल्प किया कि जनता उन्हे न देखे और वे रथ के आगे हो लिये। उस वकरे को राजा और उसके रथ के घोड़े देखते थे, और कोई नही देखता था।

वकरे ने बात-चीत पैदा करने के लिये ऐसा आकार वनाया जैसे वकरी के साथ मैथुन करने जा रहा हो। रथ मे जुते एक घोडे ने उसे देखा तो बोला—मित्र वकरे! हमने पहले सुना था कि बकरे मूर्ख होते हैं, निर्लज्ज होते है, लेकिन देखा नही था। तू छिपकर करने योग्य अनाचार को हमारी इतने जनो की नजर के सामने ही करता है। जो हमने पहले सुना था, उसका यह जो देखने हैं उससे मेल खाता है। उसने पहली गाथा कही —

सच्च किरेवमाहंसु भस्तं वालोति, पण्डिता,
पस्स वालो रहो कम्मं आवीकुब्ब न बुज्झति ॥

[पण्डितो ने सच ही कहा है कि बकरा मूर्ख होता है। देखो! यह मूर्ख छिपकर करने योग्य कर्म को प्रकट रूप से नही करना चाहिए, नही जानता।]

यह सुन वकरे ने दो गाथायें कही—

त्व नुखो सम्म बालोसि खरपुत्त विजानहि,
रज्जुयाहि परिक्खित्तो वङ्कोट्ठो ओहितो मुखो ॥
अपरम्पि सम्म ते वाल्य यो मुत्तो न पलायसि,
सो च बालतरो सम्म य त्व वहसि सेनकं ॥

[हे गर्दभ-पुत्र! यह समझ कि तू भी मूर्ख है, जो रस्सियो से बधा है, टेढे होठ हैं और नीचे मुंह है तथा यह तेरी और भी मूर्खता है जो मुक्त होने पर भागता नहीं है। और तुझ से बढकर मूर्ख यह सेनक (राजा) है जिसे तू (रथ मे) खीचता है।]

राजा उन दोनो की बात समझता था, इसलिये उसे सुनते हुए उसने धीरे धीरे रथ हाका। घोडे ने भी उसकी बात सुन चौथी गाथा कही—

यन्नु सम्म अह बालो अजराज विजानहि,
अथ केन सेनको बालो त मे अक्खाहि पुच्छितो ॥

[हे अजराज! जिस कारण से मैं मूर्ख हूं, वह तू जान, लेकिन मैं पूछता हूं—बता कि सेनक क्यो मूर्ख है?]

यह कहते हुए बकरे ने पाँचवी गाथा कही —

उत्तमत्थं लभित्वान भरियाय यो पदस्सति,
तेन जहिस्सतत्तान सा चेवस्स न हेस्सति ॥

[जो उत्तम-वस्तु को प्राप्त करके भार्य्या को दे देगा, जिससे उसकी अपनी मृत्यु होगी, और वह भी उसकी न रहेगी।]

राजा ने उसकी बात सुन कर कहा—अजराज! तू ही हमारा कल्याण करेगा। हमे बता कि हमे क्या करना चाहिये?

"महाराज! प्राणी के लिये अपने आप से बढकर प्रिय-तर कुछ नही है। एक प्रिय-वस्तु के लिये अपना विनाश करना वा प्राप्त यश को छोडना उचित नही।"

उसने छठी गाथा कही —

नवे पियम्मेति जनिन्द तादिसो
अत्त निरंकत्वा पियानि सेवति,
अत्ताव सेय्यो परमाव सेय्या
लब्भा पिया ओचितत्थेन पच्छा ॥

[हे जनिन्द। तुम्हारे सदृश (आदमी) 'यह मुझे प्रिय है' ऐसा समझ (यदि उसके लिये) अपनी जान दे देता है, तो वह उस प्रिय-वस्तु का सेवन नही करता। अपना-आप ही श्रेष्ठ है, पर श्रेष्ठ है। उचित उपाय से प्रिय-वस्तुओ की प्राप्ति पीछे भी हो जाती है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को उपदेश दिया। राजा ने प्रसन्न हो पूछा—अजराज! कहाँ से आया?

"महाराज! मैं शक्र हूँ, तुम पर दया करके तुम्हे मृत्यु से मुक्त करने के लिये आया हूँ।"

"देवराज! मैंने इसे वचन दिया है कि तुझे मन्त्र दूँगा। अब क्या करूँ?"

"महाराज! तुम्हारे दोनो के नाश को प्राप्त होने की जरूरत नही।"

'यह (मन्त्र-) शिल्प सीखने की तैयारी है' कह इसे कुछ थप्पड लगवाइये। तब यह नही ग्रहण करेगी।

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। बोधिसत्व राजा को उपदेश दे अपने स्थान ही को गया। राजा ने उद्यान पहुँच देवी को बुलाकर कहा—"भद्रे! मन्त्र लेगी?"

'देव ! हाँ।"

"तो तैय्यारी करता हूँ।"

"क्या तैय्यारी ?"

"पीठ पर सौ कोड़े पड़ने पर भी मुँह से आवाज़ नही निकालनी होगी।"

"उसने मन्त्र-लोभ से 'अच्छा' कह स्वीकार किया। राजा ने जल्लाद को बुलवा दोनो ओर चाबुक लगवाये। वह दो तीन चाबुक सहने के बाद बोली—

"मुझे मन्त्र नही चाहिये।"

तब राजा बोला— तू मुझे मार कर भी मन्त्र लेना चाहती थी! उसने उसकी कमर की चमडी उधडवा कर छोडी। उसके बाद फिर वह कुछ नही बोल सकी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा उद्विग्न चित्त भिक्षु था। देवी पूर्व-भार्य्या थी। अश्व सारिपुत्र था। देवराज शक्र तो मैं ही था।

३८७ सूची जातक

"अकक्कस " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे मे कही। (वर्तमान-) कथा उम्मग्ग जातक मे आयेगी।

उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी तथागत प्रज्ञावान् तथा उपाय कुशल हैं' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र मे एक लोहार के घर पैदा हुए, बडे होने पर अपने शिल्प मे खूब

हुशियार। इसके मातापिता दरिद्र थे। उनके गाँव से थोडी ही दूर एक दूसरा हजार घर का लोहारो का गाव था। वहाँ उन हजारो लोहारो मे प्रधान लोहार राजा का बडा प्रिय तथा बहुत धनवाला था। उसकी एक लडकी थी—सुन्दर रूपवाली, देव-अप्सरा सदृश, तथा जनपद सुन्दरी के लक्षणो से युक्त। आस पास के गाँव के मनुष्य छूरी-कुल्हाडो, फरसा, फाल, आदि बनवाने के लिये उस गाँव मे आते और प्राय सभी उस कुमारी को देखते। वे अपने अपने गाँव लौटकर बैठको आदि मे उसके रूप की प्रशसा करते। बोधिसत्व ने सुना तो श्रवण-मात्र से आसक्त हो सोचा कि उसे अपनी चरण-दासी बनाऊँगा। उसने उत्तम जाति का अयस[1] (-धातु) ले एक सूक्ष्म ठोस सूई तैयार कर, उसके एक ओर छेद कर पानी मे डुबाया, और दूसरी उसकी वैसे ही फोफी बना उसे भी एक ओर से बीधा। इस तरह उसकी सात फोकियाँ बनाई। यह नही पूछना चाहिए कि कैसे बनाई? बोधिसत्वो के ज्ञान की अधिकता से काम हो जाता है।

उसने वह सूई नली मे डाली और फेंट मे लगा उस गाँव मे पहुँचा। वहाँ प्रधान-लोहार के रहने की गली पूछ, उसके दरवाजे पर खडा हो, सूई की बडाई करता हुआ 'कौन है जो मुझसे यह सूई खरीदेगा?' कहता हुआ, पहली गाथा बोला —

अकक्कस अफरुस खरधोत सुपासियं,
सुखुम तिखिणग्गञ्च को सूचि केतुमिच्छति ॥

[कौन है जो यह सूई खरीदेगा—अकर्कश, गोल, अच्छे सुन्दर पत्थर से रगडी हुई, चिकनी तथा तीखी नोक वाली।]

यह कह उसी की प्रशसा करते हुए और भी एक गाथा कही—

सुमज्जञ्च सुपासञ्च अनुपुब्ब सुविट्टत,
घनघातिम पटित्थद्ध को सूचिं केतुमिच्छति ॥

[कौन है जो यह सुई खरीदेगा—अच्छी तरह मजी हुई, सुन्दर छेद वाली, क्रमश गोल, (वस्त्र आदि मे) प्रवेश कर जाने वाली तथा मजबूत।]

उस समय वह कुमारी अपने पिता को जो भोजनोपरान्त सुस्ती मिटाने

---

१. अयस का अनुवाद प्राय लोहा कर दिया जाता है।

के लिये छोटी चारपाई पर लेटा था ताड के पत्ते से पखा झल रही थी। उसने बोधिसत्व का मधुर शब्द सुना तो उसे ऐसा लगा मानो उसके हृदय मे गीला मांस-पिण्ड आकर लगा हो अथवा हजार घडो (से नहाने) से थकावट उतर गई हो। उसने सोचा—कौन है जो अत्यन्त मधुर स्वर से लोहारो के गाँव मे सूई बेचता है ? मैं मालूम करूँगी, यह क्यो आया है ? उसने ताड का पखा रख दिया और बरामदे मे बाहर निकल कर उससे बात करने लगी। बोधिसत्वो के सकल्प पूरे होते हैं। वह उसी के लिये उस गाँव मे आया था, और वह ही उसके साथ बात चीत कर रही थी—युवक ! सारे राष्ट्र वासी सूई आदि के लिये इस गाँव मे आते है। तू मूर्खता के कारण लोहारो के गाँव मे सूई बेचना चाहता है। यदि सारे दिन भी सूई की बडाई करता रहेगा, तो भी तेरे हाथ से कोई सूई नही लेगा। यदि कीमत चाहता है तो दूसरे गाँव जा। उसने दो गाथायें कही—

> इतोदानि पतायन्ति सूचियो बलिसानि च,
> कोय कम्मारगामस्मि सूची विक्केतुमिच्छति ॥
> इतो सत्थानि गच्छन्ति कम्मन्ता विविधा पुथू,
> कोय कम्मारगामस्मि सूची विक्केतुमरहति ॥

[इसी गाँव से अब सूइयाँ तथा दूसरे लोहे के उपकरण बाहर जाते है। कौन है यह जो लोहारो के गाँव मे सूई बेचना चाहता है ? इसी गाँव से शस्त्र तथा नाना प्रकार के कर्मान्त (बाहर) जाते हैं। कौन है यह जो लोहारो के गाँव मे सूई बेचना उचित समझता है ?]

बोधिसत्व ने उसकी बात सुन 'भद्रे ! तू न जानने के कारण ही ऐसा कहती है' कह दो गाथायें कही :—

> सूचिं कम्मारगामस्मिं विक्केतब्बा पजानता,
> आचरियाव जानन्ति कम्म सुकतदुक्कत ॥
> इमञ्च ते पिता भद्दे सूचि जञ्जा मया कत,
> तया च म निमन्तेय्य यञ्चत्थञ्ञ घरे धनं ॥

[बुद्धिमान आदमी द्वारा सूई लोहार के गाँव मे ही बेची जानी चाहिये। शिल्प के गुण-दोष को उसके आचार्य ही जान सकते हैं। भद्रे ! यदि तेरा

पिता यह जान ले कि यह सूई मैंने बनाई है, तो वह तुझको मुझे दे दे और जो घर मे धन है।]

ज्येष्ठ लोहार ने उनकी सब बात सुन ली और पूछा—बेटी! तू किसके साथ बात कर रही है?"

"तात! एक पुरुष सूई बेच रहा है, उसके साथ।"

"उसे बुला।"

उसने जाकर बुलाया। बोधिसत्व ने घर मे प्रवेश किया और ज्येष्ठ लोहार को प्रणाम करके एक ओर खडा हो गया। उसने पूछा—किस गाँव मे रहता है?

"अमुक गाँव का वासी हूँ, तथा अमुक लोहार का पुत्र।"

यहाँ किस लिये आया है? ला, तेरी सूई देखें।"

बोधिसत्व ने सबकी उपस्थिति मे अपना गुण प्रकट करने की इच्छा से कहा—क्या अकेले देखने की अपेक्षा सब के साथ देखना अधिक अच्छा न होगा?

उसने 'अच्छा' कह सभी लोहारो को इकट्ठा करवा, उनसे घिर जाने पर कहा—तात! ला हम तेरी सूई देखे।

"आचार्य्य! एक (लोहे का घडा) और एक पानी भरी कासे की थाली मगवाये।"

उसने मगवाई। बोधिसत्व ने फेंट मे से सूई की नली निकाल कर दी। ज्येष्ठ-लोहार ने, उसमे से सूई निकालकर पूछा—तात! यह सूई है?

"यह सूई नही है, यह सूई की फोफी है।"

उसने इधर उधर बहुत देखा, उसे न आरम्भ का पता लगा न सिरे का।

बोधिसत्व ने मँगवा, नख से फोफी हटा, जनता को 'यह सूई है, यह फोफी है' दिखा, सूई आचार्य्य के हाथ पर रख दी और फोफी उसके पैरो मे डाल दी। जब उसने फिर कहा 'तात! यह सूई है?' तो 'यह भी सूई नही है, सूई की फोफी है' कह उसने नख से हटा हटा कर सूई की छ फोफियाँ ज्येष्ठ-लोहार के चरणो मे डाल, सूई उसके हाथ पर रखी। हजारो लोहारो ने (आश्चर्य्य से) अगुलियाँ चटखाईं और वस्त्र ऊपर उछाले।

तब ज्येष्ठ-लोहार ने पूछा तात ! इस सूई की क्या ताकत है ?

"तात ! शक्तिशाली आदमी से घडा उठवाकर, घड़े के नीचे पानी की थाली रखवा कर, इस सूई को घडे के बीच मे मारे।"

उसने वैसा करके घडे के बीच मे सूई की नोक को मारा। वह घडे को बीध पानी के ऊपर बाल-मात्र भी ऊपर-नीचे न हो सीधी खडी हो गई। सभी लोहार बोले—हमने इससे पहले कान से भी यह नही सुना कि लोहार ऐसे भी होते है। उन्होने अगुलियाँ चटखाई और वस्त्र उछाले।

ज्येष्ठ लोहार ने बेटी को बुलवाया और उसी परिषद के बीच मे 'यह कुमारी तेरे ही योग्य है' कह पानी गिराकर उसे दे दिया। आगे चलकर वह ज्येष्ठ-लोहार के मरने पर उस गाँव मे ज्येष्ठ-लोहार हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। *उस समय लोहार-लडकी राहुल-माता थी। पण्डित लोहार-पुत्र तो मैं ही था।*

३८८ तुण्डिल जातक

"नवछन्दके" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक मृत्यु से भयभीत भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-वासी कुल पुत्र (बुद्ध-) शासन मे प्रव्रजित हो मृत्यु से भयभीत था। जरा पत्ता हिलता, कोई टहनी टूटकर गिरती, किसी पशु पक्षी का वा वैसा अन्य किसी का कोई शब्द सुनाई देता तो वह मृत्यु-भय से ऐसे काँपता जैसे खरगोश पेट मे तीर लगने पर। भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बातचीत

चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु मृत्यु से भयभीत है, थोडी सी भी आवाज सुनकर कांपता हुआ भागता है। क्या इसी बात को मन मे रखना नही चाहिये कि इन प्राणियो का जीते रहना अनिश्चित है, मरना ही निश्चित है ? शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर उस भिक्षु को बुलवाकर पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच मृत्यु से भयभीत है ? उसके स्वीकार करने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह भिक्षु मृत्यु से भयभीत रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सूअरी के गर्भ मे प्रवेश किया। गर्भ परिपक्व होने पर सूअरी ने दो पुत्रो को जन्म दिया। वह एक दिन उन्हे लिये एक गढे मे पडी थी। वाराणसी द्वार-वासी एक वृद्धा कपास के खेत से टोकरी भर कपास लिये जमीन पर लाठी टेकती हुई आई। सूअरी उस आवाज को सुन मृत्यु-भय से डरकर बच्चो को छोड भागी। बुढिया ने सूअरी के बच्चो को देखा तो उसके मन मे पुत्र-स्नेह जागा। वह उन्हे टोकरी मे डाल, घर ले आयी और बडे का नाम महातुण्डिल तथा छोटे का चुल्ल-तुण्डिल रख उन्हे पुत्र के समान पोसा।

वे बडे होने पर बडे मोटे हुये। बुढिया से यदि कोई कहता कि इन्हे बेच दें तो वह किसी को न देती। वह कहती—यह मेरे पुत्र हैं। एक उत्सव के अवसर पर जब कि धूर्त लोग शराब पी रहे थे, उनका मास समाप्त हो गया। 'मास कहाँ मिलेगा' सोचते हुये उन्हे पता लगा कि बुढिया के घर मे सूअर है। वे शराब लेकर वहाँ पहुँचे और बुढिया से बोले—मा ! कीमत ले लो और एक सूअर हमे दे दो। उसने 'क्या कोई मास खाने के लिये खरीदने वालो को अपने पुत्र बेचता है ?' कह अस्वीकार किया।

धूर्त बोले—मा ! सूअर आदमियो के पुत्र नही होते। हमे दो। लेकिन जब बार-बार माँगने पर भी नही दिये तो उन्होंने बुढिया को सुरा पिलाई और कहा—माँ ! सूअरो का क्या करेगी ? कीमत लेकर खर्चा चला। उन्होने उसके हाथ पर कार्षापण रख दिये।

तब ज्येष्ठ-लोहार ने पूछा तात ! इस सूई की क्या ताकत है ?

"तात ! शक्तिशाली आदमी से घडा उठवाकर, घड़े के नीचे पानी की थाली रखवा कर, इस सूई को घडे के बीच मे मारे।"

उसने वैसा क ्के घडे के बीच मे सूई की नोक को मारा। वह घडे को बीध पानी के ऊपर बाल-मात्र भी ऊपर-नीचे न हो सीधी खडी हो गई। सभी लोहार बोले—हमने इससे पहले कान से भी यह नही सुना कि लोहार ऐसे भी होते है। उन्होने अगुलियाँ चटखाई और वस्त्र उछाले।

ज्येष्ठ लोहार ने बेटी को बुलवाया और उसी परिषद के बीच मे 'यह कुमारी तेरे ही योग्य है' कह पानी गिराकर उसे दे दिया। आगे चलकर वह ज्येष्ठ-लोहार के मरने पर उस गाँव मे ज्येष्ठ-लोहार हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय लोहार-लडकी राहुल-माता थी। पण्डित लोहार-पुत्र तो मैं ही था।

३८८ तुण्डिल जातक

"नवछन्दके " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक मृत्यु से भयभीत भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-वासी कुल पुत्र (बुद्ध-) शासन मे प्रव्रजित हो मृत्यु से भयभीत था। जरा पत्ता हिलता, कोई टहनी टूटकर गिरती, किसी पशु पक्षी का वा वैसा अन्य किसी का कोई शब्द सुनाई देता तो वह मृत्यु-भय से ऐसे काँपता जैसे खरगोश पेट मे तीर लगने पर। भिक्षुओ ने धर्म-सभा मे बातचीत

चलाई—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु मृत्यु से भयभीत है, थोडी सी भी आवाज सुनकर काँपता हुआ भागता है। क्या इसी बात को मन मे रखना नही चाहिये कि इन प्राणियो का जीते रहना अनिश्चित है, मरना ही निश्चित है ? शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? 'अमुक बातचीत' कहने पर उस भिक्षु को बुलवाकर पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच मृत्यु से भयभीत है ? उसके स्वीकार करने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह भिक्षु मृत्यु से भयभीत रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने सूअरी के गर्भ मे प्रवेश किया। गर्भ परिपक्व होने पर सूअरी ने दो पुत्रो को जन्म दिया। वह एक दिन उन्हे लिये एक गढे मे पडी थी। वाराणसी द्वार-वासी एक वृद्धा कपास के खेत से टोकरी भर कपास लिये जमीन पर लाठी टेकती हुई आई। सूअरी उस आवाज को सुन मृत्यु-भय से डरकर बच्चो को छोड भागी। बुढिया ने सूअरी के बच्चो को देखा तो उसके मन मे पुत्र-स्नेह जागा। वह उन्हे टोकरी मे डाल, घर ले आयी और बडे का नाम महातुण्डिल तथा छोटे का चुल्ल-तुण्डिल रख उन्हे पुत्र के समान पोसा।

वे बडे होने पर बडे मोटे हुये। बुढिया से यदि कोई कहता कि इन्हे बेच दें तो वह किसी को न देती। वह कहती—यह मेरे पुत्र हैं। एक उत्सव के अवसर पर जब कि धूर्त लोग शराब पी रहे थे, उनका मास समाप्त हो गया। 'मास कहाँ मिलेगा' सोचते हुये उन्हे पता लगा कि बुढिया के घर मे सूअर है। वे शराब लेकर वहाँ पहुँचे और बुढिया से बोले—मा ! कीमत ले लो और एक सूअर हमे दे दो। उसने 'क्या कोई मास खाने के लिये खरीदने वालो को अपने पुत्र बेचता है ?' कह अस्वीकार किया।

धूर्त बोले—मा ! सूअर आदमियो के पुत्र नही होते। हमे दो। लेकिन जब बार-बार माँगने पर भी नही दिये तो उन्होने बुढिया को सुरा पिलाई और कहा—माँ ! सूअरो का क्या करेगी ? कीमत लेकर खर्चा चला। उन्होने उसके हाथ पर कार्षापण रख दिये।

वह कार्षापण ले बोली—तात ! महातुण्डिल को नही दे सकती। चुल्लतुण्डिल को ले जाओ।

"वह कहाँ है ?"

"यहाँ इस झाडी मे।"

"उसे आवाज दे।"

"कुछ खिलाने को नही दिखाई देता।"

धूर्त भात की एक थाली खरीद लाये। बुढिया ने वह ले दरवाजे पर रखी हुई सूअर की नाद भर दी और स्वय नाद के पास खडी हुई। तीसो धूर्त भी हाथ मे जाल ले वही खडे हुए।

बुढिया ने आवाज दी—रे चुल्लतुण्डिल आ। यह सुन महातुण्डिल समझ गया—आज तक हमारी माता ने कभी चुल्लतुण्डिल को नही बुलाया, मुझे ही सदा पहले बुलाती रही है। आज हमारे लिये अवश्य ही कोई खतरा पैदा हो गया है।

उसने छोटे भाई को बुलाकर कहा—तात ! मा तुझे बुला रही है। जा, मालूम कर। वह झाडी से निकला तो भात की नाँद के पास उन्हे खडे देख 'आज मुझे मरना होगा' सोच मृत्यु से भय-भीत हो लौटा और काँपता हुआ भाई के समीप पहुँच, सभँल न सकने के कारण काँपता हुआ लडखडा कर गिर पडा। महातुण्डिल ने उसे देख पूछा—तात। तू आज काँपता है, लडखडाता है, छिपने की जगह देखता है, यह क्या कर रहा है ? उसने जो देखा था कहते हुए पहली गाथा कही—

नव छन्दके दानि दिय्यति
पुण्णाय दोणि सुवामिनी ठिता
बहुके जने पासपाणिके,
नो च खो मे पटिभाति भुञ्जितु ॥

[अब नया-आहार दिया जा रहा है, नाँद (भात से) भरी है, स्वामिनी पास खडी है तथा बहुत से दूसरे आदमी भी हाथ मे जाल लिये हैं। मुझे खाना अच्छा नही जँचता।]

यह सुन बोधिसत्व ने 'तात ! इसी उद्देश्य से सूअर पाले जाते हैं, और मेरी माता ने भी जिस मतलब के लिये पाला है, आज उस उद्देश्य की

पूर्ति का समय आ गया। तू चिन्ता मत कर' कह मधुर-स्वर से बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश देते हुये दो गाथायें कही—

तससि भमसि लेणमिच्छसि,
अत्ताणोसि कुहिं गमिस्ससि,
अप्पोस्सुक्को भुञ्ज तुण्डिल,
मंसत्थाय हि पोसियामसे ॥
ओगह रहद अकद्दम,
सब्ब सेदमल पवाहय,
गण्हाहि नव विलेपन,
यस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥

[त्रसित होता है, भटकता है, शरण-स्थान खोजता है। कोई त्राण दाता नही है। कहाँ जायगा ? तुण्डिल ! उत्सुकता छोड कर (भात) खा। माँस के लिये ही हमारा पोषण होता है। कर्दम-रहित तालाब मे उतर। सारे पसीने-युक्त मल को धो। उस नये लेप को लगा, जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नही होती।]

दसो पारमिताओ का ध्यान कर मैत्री पारमिता पूर्वक उसके पहला पद कहते ही वह शब्द सारी बारह योजन की वाराणसी मे फैल गया। जिस-जिसने जब सुना, वाराणसी-राज तथा उप-राज से लेकर सभी वाराणसी निवासी आ पहुँचे। जो नही आ सके उन्हे घर मे बैठे ही बैठे सुनाई दिया। राज-पुरुषो ने झाडियाँ उखडवा, जमीन बराबर करवा बालू बिछवा दिया। धूर्तों का शराब का नशा उतर गया। जाल छोड कर खडे हो धर्म सुनने लगे। बुढिया का भी नशा उतरा। बोधिसत्व ने जनता के बीच मे तुण्डिल को धर्मोपदेश देना आरम्भ किया।

यह सुन चूल्लतुण्डिल ने सोचा—मेरा भाई ऐसा कहता है। पुष्करिणी मे उतर कर स्नान करना, शरीर से पसीना छुडाना तथा पुराना लेप हटा नया लेप लगाना—यह सब कभी हमारी वंश-परम्परा मे तो रहा नही। मेरे भाई के कहने का क्या मतलब है ? उसने चौथी गाथा कही—

कतमो रहदो अकद्दमो,
किंसु सेदमलंति वुच्चति,

कतमञ्च नव विलेपन,
कस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति

[कर्दम-रहित तालाब कौन सा है ? पसीना रूपी मल किसे कहते हैं ? जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नही होती, ऐसा नया लेप कौन सा है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने 'ध्यान देकर सुन' कह बुद्ध की तरह धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कही :—

धम्मो रहदो अकद्दमो
पाप सेदमल वुच्चति
सीलञ्च नव विलेपन
तस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥
नन्दन्ति सरीरघातिनो
न च नन्दन्ति सरीरधारिनो,
पुण्णाय च पुण्णमासिया
रममाना व जहन्ति जीवित ॥

[धर्म कर्दम-रहित तालाब है। पाप पसीना-रूपी मैल है। शील ही वह नया विलेपन है जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नही होती। प्राणी की हत्या करने वाले आनन्द मानते है। शरीर-धारी (मृत्यु-भय होने से) प्रसन्न नही रह सकते है। (गुणो से) पूर्ण प्राणी पूर्णिमा की रात्रि मे आनन्द लेते हुए की तरह प्राण त्याग देते हैं।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने मधुर स्वर से बुद्ध की तरह धर्मोपदेश दिया। जनता के लाखो आदमियो ने आश्चर्य से अगुलियाँ चटखाई। (आकाश मे) वस्त्र फेंके। सारा आकाश 'साधु' 'साधु' की आवाज से गूज उठा।

वाराणसी राजा ने बोधिसत्व को राज्य से पूजित कर, बुढिया को सम्पत्ति दे, उन दोनो को सुगन्धित जल से स्नान करवा, वस्त्र पहनवा गर्दन मे मणि-रत्न कण्ठे डलवा, नगर मे लाकर पुत्र का स्थान दिया। उसने बहुत से नौकरो चाकरो द्वारा उन की सेवा कराई।

बोधिसत्व ने राजा को पञ्चशील दिये। सभी वाराणसी निवासियो तथा काशी राष्ट्र वासियो ने शीलो की रक्षा की। बोधिसत्व ने उन्हे पूर्णिमा

तथा अमावस्या के दिन धर्मोपदेश दिया। न्यायाधीश बनकर न्याय किया। उसके न्यायाधीश रहते समय झूठा मुकद्दमा करने वाले नही थे।

आगे चलकर राजा मर गया। बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा निर्णयो की पुस्तक मे लिखवा कहा—इस पुस्तक को देखकर मुकद्दमो का फैसला करो। फिर जनता को धर्मोपदेश दे, अप्रमाद मे रहने के लिये प्रेरित कर, सभी को रोता पीटता छोड चुल्ल-तुण्डिल के साथ जगल मे प्रवेश किया। बोधिसत्व का उपदेश साठ हजार वर्ष तक चला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। वह मृत्यु से भय-भीत भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा आनन्द था। चुल्ल-तुण्डिल मृत्यु से भय-भीत भिक्षु। परिषद बुद्ध परिषद थी। महा-तुण्डिल तो मैं ही था।

३८९ सुवण्णकक्कटक जातक

"सिङ्गी मिगो" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय आनन्द स्थविर के अपने लिये आत्मोत्सर्ग करने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

धनुष्धारियो को नियुक्त करने तक की कथा खण्डहाल जातक[1] मे आयेगी और धन-पाल (हाथी) का गर्जन चुल्लहंस जातक[2] मे कहा गया है। उस समय धर्मसभा मे बात चीत चली—आयुष्मानो! धर्म-खजानची आनन्द स्थविर ने शैक्षज्ञान प्राप्त कर धन-पालक (हाथी) को देख सम्यक् सम्बुद्ध के लिये आत्मोत्सर्ग किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बात चीत' कहने पर शास्ता ने 'न केवल अभी

---

१ खण्डहाल जातक (५४२) २ चुल्लहंस जातक (५३३)

कलमञ्च नव विलेपन,
कस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति

[कर्दम-रहित तालाव कौन सा है ? पसीना रूपी मल किसे कहते है ? जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नही होती, ऐसा नया लेप कौन सा है ?]

यह सुन बोधिसत्व ने 'ध्यान देकर सुन' कह बुद्ध की तरह धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कही :—

धम्मो रहदो अकद्दमो
पाप सेदमल वुच्चति
सीलञ्च नव विलेपन
तस्स गन्धो न कदाचि छिज्जति ॥
नन्दन्ति सरीरघातिनो
न च नन्दन्ति सरीरधारिनो,
पुण्णाय च पुण्णमासिया
रममाना व जहन्ति जीवित ॥

[धर्म कर्दम-रहित तालाब है। पाप पसीना-रूपी मैल है। शील ही वह नया विलेपन है जिसकी सुगन्धि कभी समाप्त नही होती। प्राणी की हत्या करने वाले आनन्द मानते है। शरीर-धारी (मृत्यु-भय होने से) प्रसन्न नही रह सकते हैं। (गुणो से) पूर्ण प्राणी पूर्णिमा की रात्रि मे आनन्द लेते हुए की तरह प्राण त्याग देते है।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने मधुर स्वर से बुद्ध की तरह धर्मोपदेश दिया। जनता के लाखो आदमियो ने आश्चर्य से अगुलियाँ चटखाई। (आकाश मे) वस्त्र फेंके। सारा आकाश 'साधु' 'साधु' की आवाज से गूज उठा।

वाराणसी राजा ने बोधिसत्व को राज्य से पूजित कर, बुढिया को सम्पत्ति दे, उन दोनो को सुगन्धित जल से स्नान करवा, वस्त्र पहनवा गर्दन मे मणि-रत्न कण्ठे डलवा, नगर मे लाकर पुत्र का स्थान दिया। उसने बहुत से नौकरो चाकरो द्वारा उन की सेवा कराई।

बोधिसत्व ने राजा को पञ्चशील दिये। सभी वाराणसी निवासियो तथा काशी राष्ट्र वासियो ने शीलो की रक्षा की। बोधिसत्व ने उन्हे पूर्णिमा

तथा अमावस्या के दिन धर्मोपदेश दिया। न्यायाधीश बनकर न्याय किया। उसके न्यायाधीश रहते सभ्य झूठा मुकद्दमा करने वाले नही थे।

आगे चलकर राजा मर गया। बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा निर्णयो की पुस्तक मे लिखवा कहा—इस पुस्तक को देखकर मुकद्दमो का फैसला करो। फिर जनता को धर्मोपदेश दे, अप्रमाद मे रहने के लिये प्रेरित कर, सभी को रोता पीटता छोड चुल्ल-तुण्डिल के साथ जगल मे प्रवेश किया। बोधिसत्व का उपदेश साठ हजार वर्ष तक चला।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। वह मृत्यु से भय-भीत भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा आनन्द था। चुल्ल-तुण्डिल मृत्यु से भय-भीत भिक्षु। परिषद बुद्ध परिषद थी। महा-तुण्डिल तो मै ही था।

३८९ सुवण्णकक्कटक जातक

"सिङ्गी मिगो" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय आनन्द स्थविर के अपने लिये आत्मोत्सर्ग करने के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

धनुष्धारियो को नियुक्त करने तक की कथा खण्डहाल जातक[1] मे आयेगी और धन-पाल (हाथी) का गर्जन चुल्लहंस जातक[2] मे कहा गया है। उस समय धर्मसभा मे बात चीत चली—आयुष्मानो! धर्म-खजानची आनन्द स्थविर ने शैक्षज्ञान प्राप्त कर धन-पालक (हाथी) को देख सम्यक् सम्बुद्ध के लिये आत्मोत्सर्ग किया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात चीत कर रहे हो? 'अमुक बात चीत' कहने पर शास्ता ने 'न केवल अभी

---

१ खण्डहाल जातक (५४२) २ चुल्लहंस जातक (५३३)

किन्तु पहले भी भिक्षुओ ! आनन्द ने मेरे लिये आत्मोत्सर्ग किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख अतीत कथा

पूर्व समय मे राजगृह के पूर्व की ओर सालिन्दिय नाम का ब्राह्मण गाँव था। उस समय बोधिसत्व उस गाँव मे एक कृषक-ब्राह्मण परिवार मे पैदा हुये। बडे होने पर कुटुम्ब वाला हो वह उस गाँव की पूर्वोत्तर दिशा मे मगध (राज्य) के खेत मे हजार करीष की खेती करने लगा। एक दिन वह आदमियो के साथ खेत पर गया और मजदूरो को 'हल चलाओ' कह मुँह धोने के लिये खेत के सिरे पर एक बडे तालाब पर पहुँचा। उस तालाब मे एक सुनहरी केकडा रहता था—सुन्दर, मनोज्ञ। बोधिसत्व दातुन करके उस तालाब मे उतरे। उसके मुँह धोने के समय केकडा समीप आ गया।

उसने उसे उठाकर अपनी चादर मे रख लिया ले जाकर, खेत का काम कर चुकने पर वापिस घर जाते समय उसे वही तालाब मे डाल दिया। तब से आते समय पहले उस तालाब पर जा केकडे को अपनी चादर मे लेने के बाद ही खेती को देखता। उनका एक दूसरे के प्रति दृढ विश्वास हो गया।

बोधिसत्व नियमित रूप से खेत पर जाते। उसकी आँख मे पाँच प्रसाद और तीन मण्डल साफ दिखाई देते। उसके खेत के सिरे पर एक ताड का वृक्ष था। उस कौवे के घोसले मे रहने वाली कौवी ने उसकी आँखें देखी तो उन्हे खाने की इच्छा हुई। वह कौवे से बोली—स्वामी मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है।

"क्या दोहद ?"

"इस ब्राह्मण की आँखें खाना चाहती हूँ।"

"बडा कठिन दोहद उत्पन्न हुआ है। इन्हे कौन ला सकेगा।"

"यह मैं जानती हूँ कि तू नही ला सकता। इस ताड से थोडी ही दूर पर उस बाबी मे काला साप रहता है उसकी सेवा कर। वह इसे डसकर मार डालेगा। तब तू इसकी आँखें निकाल कर ला सकेगा।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और तब से काले साप की सेवा करने लगा। बोधिसत्व की बोई हुई खेती मे जब अकुर-फूटा तब तक केकडा भी बडा हो गया।

एक दिन सर्प कौवे से बोला—मित्र तू नित्य मेरी सेवा मे आता है। तेरे लिये मैं क्या करूँ ?

"स्वामी तुम्हारी दासी के मन मे इस खेत के मालिक की आँखो का दोहद उत्पन्न हो गया है। मैं तुम्हारी सेवा मे इसीलिये आता हूँ कि तुम्हारी कृपा से उसकी आँखें मिलें।"

सर्प ने उसे 'हो, यह कोई भारी चीज नही है। मिलेगी, कह उसे आश्वासन दिया। अगले दिन वह खेत के बाध पर घास मे छिप, ब्राह्मण के आने के रास्ते मे उसके आने की प्रतीक्षा करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व आकर पहले तालाब पर गये, मुँह धोया और तब स्नेह के कारण सुनहरी केकडे का आलिगन कर उसे चादर मे लिटा खेत की ओर बढे। सर्प ने उसे देखते ही जल्दी से कूद पिण्डली का मास डसा। वह वही गिर पडा। साप बाँबी की ओर भागा। बोधिसत्व का गिरना, सुनहरी केकडे का चादर मे से निकल पडना तथा कौवे का आकर बोधिसत्व की छाती पर बैठना ठीक एक दूसरे के बाद हुआ। कौवे ने बैठकर आँखो की ओर चोच बढाई। केकडे ने सोचा—इसी कौवे के कारण मेरा मित्र खतरे पडा। इसे पकडूगा तो सर्प आयेगा। उसने सण्डासी से पकडने की तरह कौवे की गर्दन को जोर से पकडा और दबाकर थोडा ढीला कर दिया। कौवा चिल्लाया—मित्र मुझे क्यो छोडे भागे जा रहे हो ? यह केकडा मुझे कष्ट दे रहा है। मेरे मरने से पहले पहले आओ। उसने साप को बुलाते हुए पहली गाथा कही —

सिंगीमिगो आयतचक्खुनेत्तो
अट्ठित्तचो वारिसयो अलोमो,
तेनाभिभूतो कपण रुदामि
हरे सखा किस्सनु म जहासि॥

[स्वर्ण वर्ण, बडी आँखो वाला, अस्थी त्वचा मात्र, पानी मे रहने वाला तथा बालहीन (यह केकडा है) इससे अभिभूत हो मैं, दु ख है, रो रहा हूँ। अरे सखा ! मुझे क्यो छोड रहा है ?]

शास्ता ने इस बात को प्रकट करते हुए अभिसबुद्ध होने पर दूसरी गाथा कही —

सो पस्ससन्तो महता फणेन
भुजङ्गमो कक्कट मज्झपत्तो
सखा सखार परित्तायमानो
भुजङ्गम कक्कटको गहेसि ॥

[मित्र मित्र की सहायता करने के लिये वह सर्प बड़े फन से फुफकारता हुआ केकड़े के पास पहुँचा। केकड़े ने सर्प को पकड़ा।]

उसने उसे कष्ट दे थोड़ा ढीला किया। साँप ने सोचा केकड़े न कौवे का मास खाते है न सर्प मास। इसने हमे क्यो पकड़ा है ? यह पूछते हुए उसने तीसरी गाथा कही —

न वायस नो पन सप्पराजं
घासत्थिको कक्कटको अदेय्य,
पुच्छामि त आयतचक्खुनेत्त
अथ किस्स हेतुम्ह उभो गहीता ॥

[न कौवे को और न सर्प राज को ही केकड़ा खाने के लिये पकड़ता है। हे बड़ी आँखो वाले ! मैं पूछता हूँ कि तूने हम दोनो को किस लिये पकड़ा है।

केकड़े ने पकड़ने का कारण कहते हुए दो गाथायें कही —

अय पुरिसो मम अत्थकामो
यो म गहेत्वान दकाय नेति,
तस्मिं मते दुक्खमनप्प कम्मे
अहञ्च एसोच उभोन होम ॥
ममञ्च दिस्वान पवड्ढकाय
सब्बो जनो हिंसितुमेवमिच्छे,
सादुञ्च थुल्लञ्च मुदुञ्च मस
काकापि म दिस्व विहेठयेय्यु ॥

[यह पुरुष मेरा हितैषी था, मुझे लेकर तालाब ले जाता था। उसके मरने से मुझे बहुत दु ख होगा—यह और मैं दोनो नही रहेगे। मेरे

बढे हुये शरीर को देखकर सभी मेरी हिंसा करना चाहेंगे, कौवे तक भी, यह देख कि इसका मास स्वादु, मोटा तथा कोमल होगा, मुझे कष्ट देंगे।]

यह सुन सर्प ने सोचा कि एक उपाय से इसे ठग कर कौवे की ओर अपने को छुडाऊँ। उसे ठगने के लिये छठी गाथा कही—

सचेतस्स हेतुम्ह उभो गहीता
उट्ठातु पोसो विसमाचमामि,
ममञ्च काकञ्च पमुञ्च खिप्प
पुरे विसगाळ्हमुपेति मच्च ॥

[यदि इसके कारण दोनो को पकडा है तो यह पुरुष उठ खडा हो, मैं इसका विष चूसता हूँ। मुझे और कौवे को शीघ्र छोड। आरम्भ मे आदमी को विष जोर से चढता है।]

यह सुन केकडे ने सोचा—यह ढग बनाकर मुझसे दोनो को छुडा कर भाग जाना चाहता है। मेरी उपाय कुशलता को नही जानता है। मैं अब अपनी सदासी को ढीला करूँगा, जिसमे साप हिल-डोल सके, कौवे को तो नही ही छोडूगा। उसने सातवी गाथा कही—

सप्प पमोक्खामि न ताव काक
पटिबद्धको होहिति ताव काको,
पुरिसञ्च दिस्वान सुखि अरोग
काक पमोक्खामि यथेव सप्प ॥

[सर्प को छोडता हूँ, लेकिन कौवे को नही। कौवा तब तक प्रतिबन्धक रहे। पुरुष को सुखी तथा निरोग देखकर सर्प के समान कौवे को भी छोड दूँगा।]

यह कह उसके सुविधा मे हिल-डोल सकने के लिये 'सदासी' को ढीला कर दिया। साप ने विष चूस कर बोधिसत्व के शरीर को विष रहित कर, दिया। वह सुखी हो स्वाभाविक अवस्था मे खडा हुआ। केकडे ने सोचा यदि ये दोनो जीवित रहेगे तो मेरे मित्र का कल्याण नही। इन दोनो को मार डालूँगा। उसने कैंची से कमल की नाल काटने की तरह अपनी 'सदासी' से दोनो के सिर काट, जान से मार डाला। कौवी भी उस जगह से भाग गयी। बोधिसत्व ने साँप का शरीर लकडी पर लपेट झाडी के पीछे फेंक

दिया। सुनहरी केकडे को तालाब मे छोड, स्नान कर सालिन्दिय ग्राम को ही लौट गया। तब से केकडे के साथ उसका विश्वास और भी अधिक बढ गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बिठा अन्तिम गाथा कही—

काको तदा देवदत्तो अहोसि
मारो पन कण्हसप्पो अहोसि,
आनन्दो भद्दो कक्कटको अहोसि
अहं तदा ब्राह्मणो होमि तत्थ ॥

[कौआ उस समय देवदत्त था, मार काला-साँप था। आनन्द भद्र केकडा था और मैं तब वहाँ ब्राह्मण था।]

सत्य के अन्त मे अनेक स्रोतापन्न आदि हुए। कौवी की बात गाथा मे नही कही गई—वह चिञ्चामाणविका थी।

३९०. मय्हक जातक

"सकुणो मय्हको नाम" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय आगन्तुक-सेठ के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे आगन्तुक-सेठ नाम का एक धनवान रहता था। वह न स्वय खाता-पीता था, न किसी को कुछ देता था। नाना प्रकार के स्वादिष्ट बढिया भोजन सामने लाने पर, उन्हे न खाता, कणाज तथा बिलङ्ग ही खाता। धूप दिये गये सुगन्धि वाले वस्त्र लाने पर उन्हे रखवाकर मोटे, घने बालो वाले वस्त्र पहनता। आजानीय घोडे जुते, मणि तथा स्वर्ण से चित्रित रथ के लाये जाने पर उसे हटवा, पत्तो की छतवाले, लकडी के डण्डो के रथ पर चढ कर जाता।

उसने जन्म भर दानादि पुण्य कर्मों मे से एक भी नही किया और मर कर रौरव नरक मे पैदा हुआ। उस अपुत्र का धन राज-सेना द्वारा सात ही दिन-रात मे राजकुल मे पहुँचा दिया गया। उसके पहुँचा दिये जाने पर प्रात काल का भोजन कर चुकने के बाद राजा जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम कर बैठा। शास्ता ने पूछा—क्यो महाराज! बुद्ध की सेवा मे नहीं आते?

"भन्ते! श्रावस्ती मे आगतुक सेठ मर गया। उसके बिना मालिक के धन को हमारे घर ढोकर लाने मे ही सात दिन लग गये। उसने इतना धन प्राप्त कर न स्वय खाया पिया, न दूसरो को दिया। उसका धन राक्षस द्वारा सुरक्षित पुष्करिणी की तरह रहा। उसने एक दिन भी बढिया भोजन आदि का मजा नही लिया और मर गया। इस प्रकार के कजूस अपुण्यवान् आदमी को इतना धन कैसे मिला? धन को भोगने की इसकी इच्छा क्यो नही हुई?"

'महाराज! धन की प्राप्ति तथा धन का न भोगना दोनो उसी के कर्मों का फल है।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी-सेठ अश्रद्धावान् था, कजूस, किसी को न कुछ देता था, न खिलाता-पिलाता था। उसने एक दिन राज-दरबार जाते समय नगर मे प्रत्येक-बुद्ध को भिक्षाटन करते देखा, प्रणाम कर पूछा—भन्ते! भिक्षा मिली? "सेठ! भिक्षा माँग रहे हैं" कहने पर (अपने) आदमी को आज्ञा दी—जा, इन्हे हमारे घर ले जा, हमारे पलग पर बिठा, हमारे लिये तैयार भोजन मे से पात्र भरवा कर दिलवा।

वह प्रत्येक-बुद्ध को घर ले गया बिठाया और सेठ की भार्य्या को कहा। उसने नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन से पात्र भर कर उसे दिया। वे भोजन ले, सेठ के घर से निकल, रास्ते पर आये।

सेठ ने राज दरबार मे लौटते समय उसे देख, प्रणाम कर पूछा— "भन्ते ! भोजन मिला ?"

"महासेठ ! मिला।"

उसने पात्र देखा तो उसका मन प्रसन्न न रह सका। सोचने लगा— "इस भोजन को मेरे दास या मजदूर खाते तो कोई कठिन काम भी करते। ओह ! मेरी हानि !" वह तीसरी चेतना की पूर्ति नही कर सका। दान उसी को महाफल देता है, जो तीनो चेतनाओ की पूर्ति कर सके।

पुब्बेव दाना सुमना भवाम,
ददम्पि चे अत्तमना भवाम,
दत्वापि चे नानुतपाम पच्छा,
तस्मा हि अम्ह दहरा न मीयरे ॥
पुब्बेव दाना सुमनो दद चित्त पसादये,
दत्वा अत्तमनो होति ऐसा यञ्ञस्स सम्पदा।

[दान (देने) से पहले भी प्रसन्न-मन रहते है, दान देते समय भी प्रसन्न-मन रहते हैं, देकर भी पीछे अनुताप नही करते हैं, इसलिये हमारे (यहा पिता के रहते) पुत्र नही मरते।

दान देने से पूर्व प्रसन्न-मन रहे, देते समय चित्त प्रसन्न रखे, देकर प्रसन्न हो—यही (दान) यज्ञ की सम्पत्ति है।]

"इस प्रकार महाराज। आगन्तुक-सेठ ने तगरसिखी प्रत्येक-बुद्ध को दान देने के कारण बहुत धन प्राप्त किया, लेकिन चेतना को पूर्ण रूप से पवित्र न रख सकने के कारण धन का उपभोग नही कर सका।"

"भन्ते ! उसे पुत्र क्यो नही हुआ !"

"महाराज ! पुत्र न होने का कारण भी वह स्वय ही है।"

उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही —

ग. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अस्सी करोड धनवाले सेठ-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर माता-पिता की मृत्यु के बाद छोटे भाई को खाने-पीने की सुविधा कर, परिवार का पालन-

पोषण करते हुये रहने लगा। उसने गृह-द्वार को दान-शाला बना दिया और महादान देता हुआ घर पर रहने लगा। उसको एक पुत्र हुआ।

जब बच्चा पैर से चलने लगा तो वह काम-भोगो मे दोष तथा अभिनिष्क्रमण मे कल्याण देख पुत्र-दारा सहित सारा वैभव छोटे भाई को सौप, 'अप्रमादी होकर दान देते रहना' उपदेश दे, ऋषि-प्रव्रज्या के ढग पर प्रव्रजित हुआ और समापत्तिया प्राप्त कर हिमालय मे रहने लगा।

छोटे भाई को भी एक पुत्र हुआ। उसने उसे बडे होते देख सोचा—मेरे भाई के पुत्र के जीते रहने से घर के दो हिस्से हो जायेंगे। भाई के पुत्र को मार डालूं। एक दिन उसने उसे नदी मे डुबा कर मार डाला। उसके नहाकर लौटने पर भाई की स्त्री ने पूछा—पुत्र कहा है? "पानी मे जल-क्रीडा कर रहा था। ढूंढने पर नहीं मिला।" वह रोकर चुप हो गई।

बोधिसत्व ने यह समाचार सुन, सोचा—(इसकी) यह करनी प्रकट करूंगा। वह आकाश से आकर वाराणसी मे उतरा और अच्छी प्रकार वस्त्रादि पहन उसके गृहद्वार पर जब उसने दान-शाला नही देखी तो समझ गया कि असत्पुरुष ने दान-शाला भी नष्ट कर दी होगी। छोटे भाई को जब उसके आने का समाचार मिला, तो उसने आकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और महल पर ले जा अच्छी तरह भोजन कराया।

भोजन कर चुकने पर, सुखपूर्वक बातचीत करने के समय उसने पूछा—बच्चा नही दिखाई देता है। वह कहाँ है?

"भन्ते! मर गया।

"कैसे!"

"उदक-क्रीडा के समय। नही कह सकता कैसे?"

"असत्पुरुष! क्या! क्या तू नही जानता? तेरी करतूत तुझे पता है। क्या तूने इस कारण से उसे नही मारा है? क्या तू राजादि से नष्ट हो सकने वाले धन की रक्षा कर सकता है? मय्हक पक्षी का और तुम्हारा क्या अन्तर है?"

बोधिसत्व ने बुद्ध-लीला से उपदेश देते हुये ये गाथायें कही—

सकुणो मय्हको नाम गिरिसानुदरी चरो,
पक्क पिप्फलिमारुय्ह मय्ह-मय्हाति कन्दति ॥

तस्सेव विलपन्तस्स दिज-सङ्घा समागता,
भुत्वान पिप्फलिं यन्ति विलपित्वेव सो दिजो ॥
एवमेव इधेकच्चो सङ्करित्वा बहु धनं,
नेवत्तनो न ञातीन यथोधि पटिपज्जति ॥
न सो अच्छादन भत्त न माल न विलेपन,
अनुभोति सकि किञ्च न सङ्गण्हाति ञातके ॥
तस्सेवं विलपन्तस्स मय्हमय्हाति रक्खतो,
राजानो अथवा चोरा दायदा येव अप्पिया,
धनमादाय गच्छन्ति विलपित्वेव सो नरो ॥
धीरो च भोगे अधिगम्म सङ्गण्हाति च ञातके
तेन सो कित्ति पप्पोति पेच्च सग्गे च मोदति ॥

[पर्वत, जङ्गल तथा कन्दराओ मे रहता हुआ 'मय्हक' पक्षी पके पिप्फलि वृक्ष पर चढ 'मेरा मेरा' पुकारता है । उसके इस प्रकार चिल्लाते रहते पक्षी-गण आकर पिप्फलि-फल खा जाते हैं । वह पक्षी रोता ही रहता है । इसी प्रकार यहाँ कोई कोई आदमी बहुत धन इकट्ठा करके न स्वय खाता है, न अपने रिश्तेदारो को यथोचित ढग से देता दिलाता है—न पहनना, न खाना, न माला, न लेप किसी भोग को भी न वह स्वय भोगता है, न रिश्तेदारो को खिलाता-पिलाता है । इस प्रकार उसके 'मेरा मेरा' करके सँभालते और रोते पीटते रहते हुए ही या तो धन राजा ले जाते हैं, या चोर ले जाते है, या अप्रिय-दायाद ले जाते हैं । वह नर रोता-धोता रह जाता है । धीर-पुरुष भोग्य-वस्तुओ को एकत्र कर रिश्तेदारो को खिलाता-पिलाता है, इससे उसे कीर्ति की प्राप्ति होती है और मरने पर स्वर्ग जाता है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे धर्मोपदेश दे पूर्ववत दान चालू कराया और हिमालय जा ध्यानावस्थित हो ब्रह्म-लोक गामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला "महाराज ! इस प्रकार आगन्तुक सेठ ने क्योकि अपने भाई के पुत्र को मार दिया था, इसलिये उसे इतने समय तक न पुत्र हुआ, न पुत्री, कह जातक का मेल बैठाया । उस समय छोटा भाई आगन्तुक सेठ था । बडा तो मैं ही था ।

३९१. घजविहेठ जातक

"दुब्बणरूप " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय लोकोपकार के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा महा कण्ह जातक मे आयेगी। उस समय शास्ता ने "भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पूर्व (-जन्म) मे भी तथागत ने लोकोपकार किया है" कह पूर्वजन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र था। उस समय एक विद्याधर मन्त्र-बल से आधी रात के समय आकर वाराणसी राज की पटरानी के साथ अनाचार करता था। उसकी परिचारिकायें जान गईं। तब उसने स्वय ही राजा के पास जाकर कहा—

"देव! एक आदमी आधी रात के समय शयनागार मे प्रवेश कर मुझे दूषित करता है।"

"उसको कोई चिन्ह लगा सकेगी?"

"देव सकूँगी।"

उसने प्राकृतिक हल्दी की थाली मँगा, जिस समय वह आदमी रमण करके जाने लगा उसकी पीठ पर पचागुलि चिन्ह बना राजा से कहा।

राजा ने आदमियो को आज्ञा दी—जाओ चारो दिशाओ मे ढूँढो। जहाँ कोई आदमी ऐसा मिले जिसकी पीठ पर प्राकृतिक हल्दी का पाँच अँगुलियो का चिन्ह हो, उसे पकडो। विद्या-धर भी रात को अनाचार कर दिन मे सूर्य्य को नमस्कार करता हुआ एक पाँव से खडा था। राज-पुरुषो ने देख उसे घेर लिया। उसे जब पता लगा कि उसकी करनी प्रकट हो गई तो वह मन्त्र-बल से आकाश मे उड गया। राजा ने उन आदमियो से जो उसे देखकर आये थे पूछा—

"देखा ?"

"हाँ ! देखा ।"

"वह कौन है ?"

"देव ! प्रव्रजित है । वह रात को अनाचार कर दिन मे साधु वेश से रहता है ।"

राजा को साधुओ पर क्रोध आया—ये दिन मे साधु वेश मे रहते है और रात को अनाचार करते है । उसने मिथ्या-सकल्प कर मुनादी करा दी—मेरे राज्य से सभी साधु भाग जायें, अन्यथा जो कोई दिखाई देगा, उसे ही राज-दण्ड भोगना होगा । तीन सौ योजन के काशी-राष्ट्र मे से भाग कर सभी साधु दूसरी दूसरी राजधानियो मे चले गये । सारे काशी-राष्ट्र मे आदमियो को उपदेश दे सकने वाला एक भी श्रमण-ब्राह्मण नही रहा । उपदेश न मिलने से आदमी कठोर स्वभाव के हो गये । दान-शील से विमुख होने के कारण मरने पर अधिकतर नरक मे पैदा हुए । स्वर्ग मे पैदा होने वाले ही नही रहे ।

शक्र ने जब नये देवता नही देखे तो ध्यान लगाकर सोचा—क्या कारण है ? उसे पता लगा कि विद्याधर के कारण वाराणसी-राज ने क्रुद्ध हो, मिथ्या-सकल्प कर प्रव्रजितो को देश से निकाल दिया है । शक्र ने सोचा कि उसे छोडकर और कोई राजा के मिथ्या-आग्रह को नही छुडा सकता । उसने निश्चय किया कि वह राजा तथा देशवासियो का उपकार करेगा । तब शक्र तक्रमूलक पर्वत के प्रत्येक-बुद्धो के पास गया और बोला—भन्ते ! मुझे एक वृद्ध प्रत्येक-बुद्ध दें । मैं काशी-राज को प्रसन्न करूँगा ।

उसे सघ-स्थविर ही मिले ।

उनका पात्र चीवर ले, उन्हे आगे-आगे कर, स्वय पीछे हो, सिर पर हाथ जोड प्रत्येक-बुद्ध को नमस्कार करते हुये शक्र सुन्दर तरुण के रूप मे सारे नगर के ऊपर तीन बार घूम, राज-द्वार पर पहुँच, आकाश मे ठहरा । राजा को सूचना मिली—देव ! एक सुन्दर तरुण एक श्रमण को लाकर राज द्वार पर आकाश मे खडा है ।

राजा ने आसन से उठ, खिडकी मे खडे हो, 'तरुण ! तू स्वय सुन्दर है, इस कुरूप श्रमण का पात्र चीवर लिये प्रणाम करता हुआ क्या खडा है ?' पूछते हुए पहली गाथा कही —

दुब्बण्णरूप तुवमरियवण्ण
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्ससि,
सेय्योनु तेसो उदवा सरिक्खो
नाम परस्सत्तनो चापि ब्रूही ॥

[हे सुन्दर रूप ! तू इस कुरूप को आगे कर हाथ जोड नमस्कार करता है। यह तुझसे श्रेष्ठ है अथवा समान ? इसका तथा अपना नाम कह।]

शक्र बोला—महाराज, श्रमण आदरास्पद होते हैं इसलिए मैं इनका नाम नही कह सकता। अपना नाम बताता हूँ। उसने दूसरी गाथा कही —

न नामगोत्त गण्हन्ति राज
सम्मग्गतानुज्जुगता न देवा,
अह च ते नामधेय्य वदामि
सक्कोहमस्मि तिदसानमिन्दो ॥

[राजन्, देवता अरहत्व-प्राप्त तथा निर्वाण-प्राप्त जनो का नाम या गोत्र मुँह से ही नहीं लेते हैं। हाँ मैं अपना नाम तुझे बताता हूँ। मैं (त्रयस्-) त्रिश देवो का इन्द्र शक्र हूँ।]

यह सुन राजा ने तीसरी गाथा द्वारा भिक्षुओ को नमस्कार करने का फल पूछा —

यो दिस्वा भिक्खु चरणूपपन्न
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्सति,
पुच्छामि तं देवराजेतमत्थ
इतो चुतो किं लभते सुखं सो ॥

[हे देवराज ! मैं तुझसे यह जानना चाहता हूँ कि जो सदाचारी भिक्षु को आगे कर, हाथ जोड नमस्कार करता है, उसे यहाँ से मरने पर क्या सुख मिलता है ?]

शक्र ने चौथी गाथा कही —

यो दिस्वा भिक्खुं चरणूपपन्न
पुरक्खत्वा पञ्जलिको नमस्सति
दिट्ठेवधम्मे लभते पसस
सग्गं च सो याति सरीरभेदा ॥

[जो सदाचारी भिक्षु को देख, आगे कर, हाथ जोड प्रणाम करता है उसकी इस जन्म मे प्रशसा होती है, तथा मरने पर स्वर्ग लाभ।]

राजा ने शक्र की बात सुन अपना मिथ्यामत छोड प्रसन्न-चित्त हो पाँचवी गाथा कही —

लक्खी वत मे उदपादि अज्ज
य वासव भूतपतद्दसामे,
भिक्खुञ्च दिस्वान तवज्ज सक्क
काहामि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥

[आज भूतपति इन्द्र का दर्शन होने से मुझे प्रज्ञा प्राप्त हुई। हे शक्र आज मैं तुम्हारे भिक्षु को देखकर बहुत पुण्य करूँगा।]

यह सुन शक्र ने पण्डित की प्रशसा करते हुए छठी गाथा कही —

अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा
बहुस्सुता ये बहुट्ठानचिन्तिनो,
भिक्खुञ्च दिस्वान ममञ्च राज
करोहि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥

[निश्चय मे जो बहुश्रुत हैं, जो बहुत बातो का विचार कर सकते हैं, तथा जो प्रज्ञावान है उनकी सेवा करनी चाहिए। राजन्! मुझे तथा भिक्षु को देखकर बहुत पुण्य करो।]

यह सुन राजा ने अन्तिम गाथा कही —

अक्कोधनो निच्चपसन्नचित्तो
सब्बातिथीयाचयोगो भवित्वा,
निहच्चमान अभिवादयिस्स
सुत्वान देविन्द सुभासितानि ॥

[हे देवेन्द्र, तुम्हारे सुभाषित सुनकर मैं अक्रोधी, नित्य-प्रसन्नचित्त तथा सब अतिथियो के प्रति यथायोग्य करनेवाला हो अपने मान का मर्दन कर अभिवादन करूँगा।]

ऐसा कह प्रासाद से उतर प्रत्येक-बुद्ध को नमस्कार कर एक ओर बैठा। प्रत्येक-बुद्ध ने आकाश मे पालथी मार राजा को उपदेश दिया— महाराज, विद्याधर श्रमण नही है। अब से तू यह जान कर कि लोक धार्मिक

श्रमण-ब्राह्मणो से खाली नही है दान दे शील रख तथा उपोसथ कर्म कर। शक्र ने भी शक्र के प्रताप से आकाश मे खडे हो नगरवासियो को उपदेश दिया कि अप्रमादी रहो और मुनादी कर दी कि भागे हुए श्रमण-ब्राह्मण लौट आएँ। वे दोनो भी अपनी-अपनी जगह गये। राजा ने उपदेशानुसार चल पुण्य किये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। उस समय के प्रत्येक-बुद्ध परिनिर्वृत हो गये। राजा आनन्द था। शक्र तो मैं ही था।

३९२. भिसपुप्फ जातक

"यमेत " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक भिक्षु के बारे मे कही।

क वर्तमान कथा

उसने जेतवन से निकल कोशल राष्ट्र मे एक आरण्य के आश्रय विहार करते समय एक दिन पद्म-सरोवर मे उतर फूले-कवल देख जिधर वायु जा रही थी, उधर खडे हो सुगन्धि ली। उस वन-खण्ड मे रहने वाले देवता ने उसे धमकाया—मित्र! तू गन्ध-चोर है। यह तेरी चोरी का एक अङ्ग है। वह उससे धमकाया जाकर जेतवन लौट आया और शास्ता को प्रणाम करके बैठा। शास्ता ने पूछा—भिक्षु! कहा रहा? "अमुक वन-खण्ड मे, और वहाँ देवता ने मुझे इस प्रकार धमकाया।" "भिक्षु! फूल सूघने पर देवता ने केवल तुझे ही नही धमकाया है, पुराने पण्डितो को भी धमकाया है" कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक निगम मे ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। बडे होने पर तक्षशिला मे शिल्प सीख, और आगे चलकर ऋषियो के ढग की प्रव्रज्या ले, एक पद्म-सरोवर के पास रहने लगे। एक दिन तालाब मे उतर खिले फूल को खडे सूघते थे। एक देव-कन्या ने वृक्ष-स्कन्ध के विवर मे खडे हो धमकाते हुए पहली गाथा कही—

यमेत वारिज पुप्फ अदिन्न उपसिङ्घसि,
एकङ्गमेतं थेय्यानं गन्धथेनोसि मारिस॥

[यह जो तू बिना दिये हुए कवल-फूल को सूघता है, यह भी चोरी का एक प्रकार है। मित्र! तू गन्ध-चोर है।]

तब बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

न हरामि न भञ्जामि आरा सिङ्घामि वारिज,
अथ केन नु वण्णेन गन्धथेनोति वुच्चति॥

[न ले जाता हूँ, न तोडता हूँ, केवल दूर से सूघता हूँ। मैं किस प्रकार गन्धचोर कहला सकता हूँ?]

उसी समय एक आदमी उस तालाब मे भिसें उखाड रहा था और कवल तोड रहा था। बोधिसत्व ने उसे देख 'दूर खडे होकर सूँघने वाले को चोर कहती है, इस आदमी को क्यो कुछ नही कहती' कह उसके साथ बात-चीत करते हुए तीसरी गाथा कही—

यो यं भिसानि खणति पुण्डरीकानि भञ्जति,
एव आकिण्णकम्मन्तो कस्मा एसो न वुच्चति॥

[जो यह भिस उखाडता है और कमलो को तोडता है, वह ऐसा दारुण-कर्म करता है। उसे कुछ क्यो नही कहती?]

उसे कुछ न कहने का कारण बताते हुये देव-कन्या ने चौथी तथा पाँचवी गाथा कही—

आकिण्णलुद्दो पुरिसो धातिचेळं'व मक्खितो,
तस्मिं मे वचन नत्थि तञ्च अरहामि वत्तवे॥

अनङ्गणस्स पोसस्स निच्च सुचिगवेसिनो,
वळग्गमत्त पापस्स अब्भामत्तव खायति ॥

[जो लोभ मे डूबा हुआ आदमी है, जो दाई के वस्त्र की तरह मैला है, उसे कुछ कहने के लिये मेरे पास वचन नहीं है। लेकिन श्रमण को कहना उचित समझती हूँ। जो निर्दोष पुरुप है, जो नित्य पवित्रता के लिये प्रयत्न-शील है, उसका बाल की नोक के समान पाप भी महा-मेघ के समान प्रतीत होता है।]

उस देव-कन्या द्वारा सविग्न-हृदय बोधिसत्व ने छठी गाथा कही—

अद्धा म यक्ख जानासि अथो म अनुकम्पसि,
पुनपि यक्ख वज्जासि यदा पस्ससि एदिस ॥

[हे देवते ! तू मुझे जानती है। इसलिये मुझ पर अनुकम्पा करती है। यदि फिर भी इस प्रकार का कोई दोप देखे, तो सावधान करना।]

तब देव-कन्या ने सातवी गाथा कही—

नेव त उपजीवाम नपिते भतकम्हसे,
त्वमेव भिक्खु जानेय्य येन गच्छेय्य सुग्गति ॥

[न हम तुझ पर निर्भर करते हैं, न तेरी मजदूरी करते हैं। हे भिक्षु ! तू ही जान कि किस सुकर्म से सुगति की प्राप्ति होती है।]

इस प्रकार वह उसे उपदेश दे अपने विमान मे चली गई। बोधिसत्व भी ध्यान-प्राप्त कर ब्रह्म लोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के प्रकाशन के अन्त मे वह भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय देव-कन्या उत्पल-वर्णा थी। तपस्वी तो मैं ही था।

३९३ विघास जातक

सुसुख वत जीवन्ति " यह शास्ता ने पूर्वाराम मे विहार करते समय क्रीडा-शील भिक्षुओं के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

महामौद्गल्यायन स्थविर ने जब प्रासाद को कँपाकर उनके मन मे संवेग उत्पन्न कर दिया तो धर्म-सभा मे बैठे भिक्षु उनके दोष कहने लगे। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह क्रीडा-शील ही थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र हुये। एक काशी-गाव मे सात भाई काम-भोगो को दोष-पूर्ण समझ, निकल, ऋषियो की प्रव्रज्या के ढंग पर प्रव्रजित हुए। वे मेध्यारण्य मे रहते समय योगाभ्यास मे न लग, शरीर को ही दृढ बनाने मे लगे रहकर नाना प्रकार की क्रीडायें करते रहते थे। शक्र देवराज ने सोचा, इनके मन मे संवेग पैदा करूगा। वह तोते का रूप बना उनके निवास-स्थान पर आया और एक वृक्ष पर बैठ उनके मन मे संवेग पैदा करते हुये पहली गाथा कही—

सुसुख वत जीवन्ति ये जना विघासादिनो,
दिट्ठेव धम्मे पासंसा सम्पराये च सुग्गति ॥

[जो खाये हुये अवशिष्ट भोजन को खाते है, वे सु[illegible] [illegible]ने हैं। इसी जन्म मे उनकी प्रशंसा होती है और परलोक मे सुगति [illegible]

उनमे से एक ने उनकी [illegible] शेष सब जनो [illegible] कर दूसरी गाथा कही —

सुकस्स [illegible] पण्डिता,
इद सुणाथ [illegible] स [illegible] ॥

[पण्डितो ! क्या तोते का कहना नही सुनते हो ? भाइयो ! इसे सुनो, यह हमारी ही प्रशसा करता है ।]

उसका विरोध करते हुये शक्र ने तीसरी गाथा कही —

नाहं तुम्हे पससामि कुणपादा सुणाथ मे,
उच्छिट्ठभोजिनो तुम्हे न तुम्हे विघासादिनो ॥

हे मुर्दार खाने वालो ! मैं तुम्हारी प्रशसा नही करता हूँ । तुम जूठन खाने वाले हो, बचा हुआ खाने वाले नही ।]

उसकी बात सुन उन सब ने चौथी गाथा कही —

सत्तवस्सा पब्बजिता मेज्झारञ्ञे सिखण्डिनो,
विघासेनेव यापेन्ता मय चे भोतो गारह्या,
कोनु भोतो पससिया ॥

[सात वर्ष से हम शिखा-धारी साधु हो मेध्यारण्य मे रहते हैं, और बचा हुआ ही खाकर जीते है । यदि आप हमारी निन्दा करते हैं तो आप के प्रशसित कौन है ?]

उन्हे लज्जित करते हुये बोधिसत्व ने पाँचवी गाथा कही —

तुम्हे सीहान ब्यग्घान वाळानञ्चावसिट्ठक,
उच्छिट्ठेनेव यापेन्ता मञ्जिह्वा विघासदिनो ॥

[तुम सिंह, व्याघ्र तथा अन्य जगली पशुओ का उच्छिष्ट खाकर जीते हो और अपने को अवशिष्ट खाने वाले मानते हो !]

यह सुन तपस्वियो ने पूछा—यदि हम विघासादी नही हैं, तो विघासादी कौन होते हैं ?

उसने उन्हे यह समझाते हुये छठी गाथा कही —

ये ब्राह्मणस्स समणस्स अञ्ञस्स च वणिब्बिनो,
दत्वाव सेस भुञ्जन्ति ते जना विघासादिनो ॥

[जो ब्राह्मण, श्रमण अथवा अन्य किसी याचक को देकर ही खाते है, वे जन विघासादी कहलाते हैं ।]

इस प्रकार उन्हे लज्जित कर बोधिसत्व अपने स्थान पर चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । उस समय वह सात भाई ये क्रीडा-शील भिक्षु थे । शक्र तो मैं ही था ।

३९३ विघास जातक

"सुसुख वत जीवन्ति ..." यह शास्ता ने पूर्वाराम मे विहार करते समय क्रीडा-शील भिक्षुओ के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

महामौद्गल्यायन स्थविर ने जब प्रासाद को कँपाकर उनके मन मे सवेग उत्पन्न कर दिया तो धर्म-सभा मे बैठे भिक्षु उनके दोष कहने लगे। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह क्रीडा-शील ही थे' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व शक्र हुये। एक काशी-गाव मे सात भाई काम-भोगो को दोष-पूर्ण समझ, निकल, ऋषियो की प्रव्रज्या के ढग पर प्रव्रजित हुए। वे मेध्यारण्य मे रहते समय योगाभ्यास मे न लग, शरीर को ही दृढ बनाने मे लगे रहकर नाना प्रकार की क्रीडायें करते रहते थे। शक्र देवराज ने सोचा, इनके मन मे सवेग पैदा करूँगा। वह तोते का रूप बना उनके निवास-स्थान पर आया और एक वृक्ष पर बैठ उनके मन मे सवेग पैदा करते हुये पहली गाथा कही—

> सुसुख वत जीवन्ति ये जना विघासादिनो,
> दिट्ठेव धम्मे पासंसा सम्पराये च सुग्गति ॥

[जो खाये हुये अवशिष्ठ भोजन को खाते है, वे सुख से जीते हैं। इसी जन्म मे उनकी प्रशसा होती है और परलोक मे सुगति मिलती है।]

उनमे से एक ने उनकी बात सुन शेष सब जनो को सम्बोधित कर दूसरी गाथा कही —

> सुकस्स भासमानस्स न निसामेथ पण्डिता,
> इद सुणाथ सोदरिया अम्हे वाय पससति ॥

[पण्डितो ! क्या तोते का कहना नही सुनते हो ? भाइयो ! इसे सुनो, यह हमारी ही प्रशसा करता है ।]

उसका विरोध करते हुय शक्र ने तीसरी गाथा कही —

नाह तुम्हे पससामि कुणपादा सुणाथ मे,
उच्छिट्ठभोजिनो तुम्हे न तुम्हे विघासाविनो ॥

हे मुर्दार खाने वालो ! मैं तुम्हारी प्रशसा नही करता हूँ । तुम जूठन खाने वाले हो, बचा हुआ खाने वाले नही ।]

उसकी बात सुन उन सब ने चौथी गाथा कही —

सत्तवस्सा पव्वजिता मेज्झारञ्ञे सिखण्डिनो,
विघासेनेव यापेन्ता मय चे भोतो गारह्या,
कोनु भोतो पससिया ॥

[सात वर्ष से हम शिखा-धारी साधु हो मेध्यारण्य मे रहते हैं, और बचा हुआ ही खाकर जीते है । यदि आप हमारी निन्दा करते है तो आप के प्रशसित कौन हैं ?]

उन्हे लज्जित करते हुये बोधिसत्व ने पाँचवी गाथा कही —

तुम्हे सीहान व्यग्घान वाळानञ्चावसिट्ठक,
उच्छिट्ठेनेव यापेन्ता मञ्जिह्वा विघासविनो ॥

[तुम सिंह, व्याघ्र तथा अन्य जगली पशुओ का उच्छिष्ट खाकर जीते हो और अपने को अवशिष्ट खाने वाले मानते हो !]

यह सुन तपस्वियो ने पूछा—यदि हम विघासादी नही हैं, तो विघासादी कौन होते हैं ?

उसने उन्हे यह समझाते हुये छठी गाथा कही —

ये ब्राह्मणस्स समणस्स अञ्ञस्स च वणिब्बिनो,
दत्वाव सेस भुञ्जन्ति ते जना विघासादिनो ॥

[जो ब्राह्मण, श्रमण अथवा अन्य किसी याचक को देकर ही खाते हैं, वे जन विघासादी कहलाते है ।]

इस प्रकार उन्हे लज्जित कर बोधिसत्व अपने स्थान पर चला गया ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया । उस समय वह सात भाई ये क्रीडा-शील भिक्षु थे । शक्र तो मैं ही था ।

३९४. वट्टक जातक

"पणीत " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक लोभी भिक्षु के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

उसे शास्ता ने पूछा—भिक्षु ! क्या तू सचमुच लोभी है ? 'भन्ते ! हाँ' कहने पर "भिक्षु ! केवल अभी नही पहले भी तू लोभी ही रहा है। लोभ के कारण ही वाराणसी मे हाथी, बैल, घोडा, तथा मनुष्य के मुर्दार से अतृप्त रह 'इससे बढ कर मिलेगा' सोच जगल मे प्रविष्ट हुआ था।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व बटेर की योनि मे पैदा हुए। वह आरण्य मे रूखे तिनके तथा दाने खाकर रहता था। उस समय वाराणसी मे रहने वाला एक लोभी कौवा हाथी आदि के मुर्दार से अतृप्त रह 'इससे बढकर मिलेगा' सोच जगल मे गया। वहाँ उसने फल मूल खाते हुए बोधिसत्व को देख सोचा—यह बटेर बडा मोटा है। मालूम होता है मधुर-चोगा चुगता है। इसका खाना पूछकर, वही खाकर मैं भी मोटा होऊँगा। वह बोधिसत्व से ऊपर की शाखा पर जा बैठा और बोला—भो बटेर ! आप कौन सा बढिया भोजन करते हैं जिससे खूब मोटाये हैं ? बोधिसत्व ने उसके पूछने पर उसके साथ बातचीत करते हुये यह गाथा कही—

> पणीतं भुञ्ज से भत्त सप्पितेलञ्च मातुल,
> अथ केन नु वण्णेन किसो त्वमसि वायस ॥

[हे मातुल ! तू मक्खन-तेल के साथ बढ़िया भोजन करता है। हे कौवे ! तू किस कारण से दुबला है ?]

उसकी बात सुन कौवे ने तीन गाथायें कही—

अमित्तमज्झे वसतो तेसु आमिसमेसतो,
निच्चं उब्बिग्गहदयस्स कुतो काकस्स दळिहय ॥
निच्चं उब्बेधिनो काका धङ्का पापेन कम्मुना,
लद्धो पिण्डो न पीणेति किसो तेनस्मि वट्टक ॥
लूखानि तिणबीजानि अप्पस्नेहानि भुञ्जसि,
अथ केननु वण्णेन थूलो त्वमसि वट्टक ॥

[शत्रुओ के बीच मे रहने वाले, उनका भोजन चुराचुरा कर खाने वाले, नित्य ही उद्विग्न-हृदय मुझ कौवे मे (शरीर की) दृढता कहाँ से आ सकती है ? हे बटेर ! पाप-कर्म के कारण कौवे नित्य उद्विग्न रहते हैं। इसी लिये उन्हे जो भोजन मिलता है वह उनके शरीर को नही लगता। बटेर ! इसी लिये मैं दुर्बल हू। हे बटेर ! तू तो घास-तिनके खाता है, जिनमे कुछ स्निग्धता नही रहती। हे बटेर ? तू किस कारण से मोटा है ?]

यह सुन बटेर ने अपने मोटे होने का कारण कहते हुये ये तीन गाथायें कही—

अप्पिच्छा अप्पचिन्ताय अविदूरगमनेन च,
लद्धा लद्धेन यापेन्तो थूलो तेनस्मि वायस ॥
अप्पिच्छस्स ही पोसस्स अप्पचिन्ति सुखस्सच,
सुसगहितपमाणस्स वुत्ती सुसमुदानिय ॥

[हे कौवे ! मैं अल्पेच्छा, अल्प चिन्ता, अधिक दूर न जाना पड़ने तथा जो भी मिल जाये उसी से गुजारा कर लेने के कारण मोटा हूँ ॥ जो अल्पेच्छुक है, जिसे अल्प-चिन्ता रूपी सुख प्राप्त है, तथा जिसे अपने भोजन की मात्रा का ठीक ज्ञान है, उस आदमी की जीवन-चर्य्या सुख पूर्वक चल सकती है ॥]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त मे लोभी भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। बटेर तो मैं ही था।

३९५ काक जातक

"चिरस्स वत पस्साम " यह भी शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय लोभी भिक्षु के बारे में कही। (वर्तमान) कथा उक्त कथा की तरह से है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर वाराणसी-सेठ की रसोई मे छीके पर रहते थे। कौवा भी उसके साथ दोस्ती करके वही रहता था सब विस्तार से कहनी चाहिये। रसोइये ने कौवे के पङ्ख नोच, उसकी पीठ को माख, एक कौडी मे छेद कर उसकी माला बनाई और कौवे के गले मे पहना उसे छीके मे डाल दिया। बोधिसत्व ने जगल मे आ, उसे देख मजाक करते हुए पहली गाथा कही—

चिरस्सं वत पस्साम सहाय मणिधारिनं,
सुकताय मस्सु कुत्तिया सोभते वत मे सखा॥

[अपने मणि धारण किये हुये मित्र को बडी देर के बाद देखते हैं। अच्छी बनी हुई मानुषी डाढी के साथ मेरा सखा सुशोभित होता है।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही —

परूळ्हकच्छनखलोमो अहं कम्मेसु ब्यावटो,
चिरस्सं नहापितं लद्धा लोमन्त अपहारयि॥

[काम मे व्यावृत होने के कारण मेरे शरीर के बाल, नख तथा केश बढ गये थे। देर मे नाई मिला। आज, उससे हजामत बनवाई।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

यन्नु लोमं आहारेसि दुल्लभं लद्धकप्पकं,
अथ किञ्चरहि ते सम्म कण्ठे किणकिणायति॥

[बडी मुश्किल मे मिले नाई को पाकर तूने हजामत तो बनवाई है, लेकिन मित्र ! तेरे गले मे यह क्या घण्टी सी बजती है ?]

तब कौवे ने दो गाथायें कही —

मनुस्स सुखुमालान मणि कण्ठेसु लम्बति,
तेसाहमनुसिक्खामि मा त्व मञ्ञी दवाकत ॥
सचेपिम पिहयसि मस्सु कुत्ति सुकारित,
कारयिस्सामि ते सम्म मणिञ्चापि ददामिते ॥

[सुकुमार मनुष्यो के कण्ठ मे मणि लटकती है, उनकी मैंने नकल की है। यह मत मान कि मैंने अभिमान से पहनी है ॥ यदि तू मेरी, जिसके चेहरे पर अच्छी तरह से बनाई गई दाढी है, ईर्ष्या करता है, तो हे मित्र ! मैं तुझे दाढी करवा दूंगा और मणि दे दूंगा ॥]

यह सुन बोधिसत्व ने छठी गाथा कही—

त्वञ्ञेव मणिना छन्नो सुकताय च मस्सुया,
आमन्त खो त गच्छामि पियम्मे तवदस्सन ॥

[हे मित्र ! तू ही मणि के योग्य है और इस अच्छी प्रकार बनाई गई दाढी के। मैं तुझे कह कर जाता हू। मुझे तो तेरा अदर्शन प्रिय है ॥]

यह कह उडकर अन्यत्र चला गया। कौवा वही मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे लोभी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मैं ही था।

---

३९५ काक जातक

"चिरस्स वत पस्साम " यह भी शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय लोभी भिक्षु के ही बारे मे कही। (वर्तमान) कथा उक्त कथा की तरह से है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कबूतर होकर वाराणसी-सेठ की रसोई मे छीके पर रहते थे। कौवा भी उसके साथ दोस्ती करके वही रहता था सब विस्तार से कहनी चाहिये। रसोइये ने कौवे के पङ्ख नोच, उसकी पीठ को माख, एक कौडी मे छेद कर उसकी माला बनाई और कौवे के गले मे पहना उसे छीके मे डाल दिया। बोधिसत्व ने जगल मे आ, उसे देख मजाक करते हुए पहली गाथा कही—

चिरस्सं वत पस्साम सहाय मणिधारिनं,
सुकताय मस्सु कुत्तिया सोभते वत मे सखा॥

[अपने मणि धारण किये हुये मित्र को बडी देर के बाद देखते है। अच्छी बनी हुई मानुषी डाढी के साथ मेरा सखा सुशोभित होता है।]

यह सुन कौवे ने दूसरी गाथा कही —

परूळहकच्छनखलोमो अह कम्मेसु ब्यावटो,
चिरस्सं नहापितं लद्धा लोमन्त अपहारयि॥

[काम मे व्यावृत होने के कारण मेरे शरीर के बाल, नख तथा केश बढ गये थे। देर मे नाई मिला। आज, उससे हजामत बनवाई।]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

यन्नु लोम आहारेसि दुल्लभ लद्धकप्पक,
अथ किञ्चरहि ते सम्म कण्ठे किणकिणायति॥

[बडी मुश्किल मे मिले नाई को पाकर तूने हजामत तो बनवाई है, लेकिन मित्र ! तेरे गले मे यह क्या घण्टी भी बजती है ?]

तब कौवे ने दो गाथायें कही —

मनुस्स सुखुमालान मणि कण्ठेसु लम्बति,
तेसाहमनुसिक्खामि मा त्व मञ्ञी दवाकत ॥
सचेपिम पिहयसि मस्सु कुत्ति सुकारित,
कारयिस्सामि ते सम्म मणिञ्चापि ददामिते ॥

[सुकुमार मनुष्यो के कण्ठ मे मणि लटकती है, उनकी मैंने नकल की है। यह मत मान कि मैंने अभिमान से पहनी है ॥ यदि तू मेरी, जिसके चेहरे पर अच्छी तरह से बनाई गई दाढी है, ईर्ष्या करता है, तो हे मित्र ! मैं तुझे दाढी करवा दूंगा और मणि दे दूंगा ॥]

यह सुन बोधिसत्व ने छठी गाथा कही—

त्वञ्ञेव मणिना छन्नो सुकताय च मस्सुया,
आमन्त खो त गच्छामि पियम्मे तवदस्सन ॥

[हे मित्र ! तू ही मणि के योग्य है और इस अच्छी प्रकार बनाई गई दाढी के। मैं तुझे कह कर जाता हू। मुझे तो तेरा अदर्शन प्रिय है ॥]

यह कह उडकर अन्यत्र चला गया। कौवा वही मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे लोभी भिक्षु अनागामी फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय कौवा लोभी भिक्षु था। कबूतर तो मैं ही था।

सातवाँ परिच्छेद

१. कुक्कु वर्ग

३९६. कुक्कु जातक

"दियड्ढकुक्कु" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय राजा को उपदेश देने के बारे में कही। (वर्तमान) कथा तेसकुण-जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे। राजा अनुचित-मार्ग में लग अधर्म से राज्य करने लगा। जन-पद को कष्ट देकर केवल धन ही इकट्ठा करता था। बोधिसत्व राजा को उपदेश देने के लिये कोई न कोई उपमा खोज रहे थे। उद्यान में राजा का निवास-स्थान अधूरा बना था, छत पूरी नहीं हुई थी, शहतीरों पर कड़ियाँ रखी थीं। राजा खेलने के लिये उद्यान में गया, तो वहाँ घूमते हुए उसने उस घर में प्रवेश किया। फिर शहतीरों के घेरे को देख इस डर से कि कहीं वह उस पर न गिर पड़े बाहर निकल आया। बाहर खड़े हो कर देखते हुए उसने यह सोचकर कि शहतीर और कड़ियाँ किसके सहारे खड़ी हैं, बोधिसत्व से पूछने के लिये पहली गाथा कही—

दियड्ढकुक्कु उदयेन कण्णिका
विदत्थियो अट्ठ परिक्खिपन्ति नं,
ससिंसपा सारमया अफेग्गुका
कुहिं ठिता उपरितो न धंसति॥

---

१ तेसकुण जातक (५२१)

[डेढ रतन ऊँची शहतीर है, और आठ बालिश्त का घेरा है। ये सारवान्, मजबूत सिरीस लकडी की बनी है। ये कहा स्थित है जो ऊपर नही गिरती है?]

तब बोधिसत्व ने यह सोच कि अब मुझे राजा को उपदेश देने का अवसर मिला है, ये गाथायें कही—

य तिसति सारमया अनुज्जुका
परिकिरिय गोपाणसियो समट्ठिता,
ता सङ्गहीता बलसा च पीळिता
समट्ठिता उपरितो न धसति ॥
एव मित्ते हि दळ्हेहि पण्डितो
अभेज्जरूपेहि सुचीहि मन्तिहि,
सुसङ्गहीतो सिरिया न धसति
गोपाणसी भारवहाव कण्णिका ॥

[जो तीस, मजबूत, टेढी कडियाँ घेर कर खडी हैं, वे अच्छी प्रकार इकट्ठी होने से तथा बल-युक्त होने से खडी हैं, तथा ऊपर नही गिरती ॥ इसी प्रकार राजा यदि वह ऐसे मन्त्रियो से युक्त हो, जो उसके दृढ मित्र हो, जो अभेद्य हो, तथा जो शुचि-परायण हो तो वह राज्य-श्री से रहित नही होता जैसे छज्जे का शिखर जो घुड मुँहे पर टिका है ॥]

राजा ने बोधिसत्व के कहते कहते ही अपने कर्म का विचार कर सोचा—शहतीर के न रहने पर कडिया नही ठहरती है और कडियो से न मिला रहने पर शहतीर नही ठहरता। शहतीर के टूटने पर कडिया टूटकर गिर पडती हैं। इसी प्रकार जो अधार्मिक राजा अपने मित्र-अमात्य, सेना तथा ब्राह्मण-गृहपतियो का ख्याल नही करता, वह उनके पृथक हो जाने के कारण उनकी अवहेलना होने से ऐश्वर्य्य से पतित हो जाता है। राजा को धार्मिक होना चाहिये।

उस समय राजा को भेंट देने के लिये जबीर-नीबू लाये। राजा ने बोधिसत्व से कहा—मित्र! यह नीबू खा। बोधिसत्व ने लेकर कहा—महाराज! जो खाना नही जानते वे इसे कड्वा कर देते हैं खट्टा, लेकिन जानकार पण्डित कडवाहट निकाल, बिना खटाई निकाले, बिना नीबू का रस

बिगाडे खाते है। इस प्रकार राजा को धन-सग्रह का उपाय बताते हुए ये दो गाथायें कही —

खरत्तच मेल्ल यथापि सत्थवा
अनामसन्तोपि करोति तित्तक,
समाहरं सादुकरोति पत्थिवा
असादुकयिरा तनुवट्टमुद्धर ॥
एवम्पि गामनिगमेसु पण्डितो
असाहस राज धनानि संहरं,
धम्मावती पटिपज्जमानो
सफाति कयिरा अविहेठय पर।

[जैसे शस्त्र हाथ मे लिये आदमी कठोर छिलके वाले नीबू को बिना छीले ही कडुआ कर देता है, और हे राजन्! बाहर के छिलके को उतार कर स्वादु तथा थोडा उतार कर अस्वादु कर देता है, उसी प्रकार राजन्! पण्डित-पुरुष ग्राम निगमो मे बिना जबरदस्ती किये, धन सग्रह करता हुआ, धर्मानुसार चलता हुआ, बिना दूसरो को कष्ट दिये वृद्धि करता है।]

राजा ने बोधिसत्व से बातचीत करते हुए पुष्करिणी तट पर पहुँच बाल-सूर्य के समान पानी से अलिप्त खिला हुआ कमल देखा। वह बोला— मित्र यह फूल जल मे पैदा हुआ है तो भी जल से, अलिप्त है। बोधिसत्व ने 'महाराज! राजा को भी ऐसा ही होना चाहिये' उपदेश देते हुए यह दो गाथायें कही :—

ओदातमूलं सुचिवारिसम्भवं
जात यथा पोक्खरिणीसु अम्बुजं,
पदुम यथा अग्गिनिकासिफालिमं
नकद्दमो नरजो न वारिलिम्पति ॥
एवम्पि वोहारसुचिं असाहसं
विसुद्धकम्मन्तमपेत पापक
न लिम्पति कम्मकिलेस तादिसो
जात यथा पोक्खरणीसु अम्बुज ॥

[जैसे श्वेत मूल वाले, पवित्र जलोत्पन्न, पुष्करिणियो मे पैदा हुआ तथा सूर्य किरण से पुष्पित कमल न कीचड से लिप्त होता है, न धूलि से न पानी से, उसी प्रकार जो जबरदस्ती नही करता, जिसका व्यवहार पवित्र है, जो विशुद्धकर्मा है तथा जो निष्पाप है वह कर्म-मैल से लिप्त नही होता।]

राजा बोधिसत्व का उपदेश सुन, तबसे धर्मानुसार राज्य कर, दानादि पुण्य कर्म करके स्वर्गगामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

३९७ मनोज जातक

"यथा चापो निन्नमति" यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय विपक्षी भिक्षु के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा महिलामुख जातक[1] मे विस्तार से आ ही गई है। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी किन्तु पहले भी यह विपक्षी रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही —

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व सिह की योनि मे पैदा हुए। सिहनी के साथ रहते हुए उससे दो बच्चे हुए—पुत्र और पुत्री। पुत्र का नाम मनोज रक्खा गया। उसने भी बडे होकर एक सिह बच्ची रक्खी। इस प्रकार वे पाँच जने हो गये। मनोज जगली भैसे आदि को मार मास लाता और माता-पिता, बहन तथा भार्य्या को पोसता। एक दिन वह शिकार खेलने गया तो भागने मे असमर्थ गिरी

---

१ महिलामुख जातक (२६)

नाम के एक शृगाल को छाती के बल लेटा देखा। उसने पूछा—"सौम्य! क्या है?"

'स्वामी। सेवा मे रहना चाहता हूँ।'

उसने 'अच्छा' कहा और अपने साथ गुफा मे ले आया।

बोधिसत्व ने उसे देखा तो मना किया—तात मनोज शृगाल दुश्शील होते है, पापी होते हैं, अनुचित कर्म मे लगा देते हैं। इसे अपने पास मत रख। किन्तु वह मना न कर सका।

एक दिन शृगाल ने अश्वमास खाने की इच्छा से मनोज से कहा—"स्वामी! घोडे का मास छोड कोई ऐसा मास नही जो हमने न खाया हो। घोडे को पकडें।"

"घोडे कहाँ होते हैं?"

"वाराणसी मे नदी के किनारे।"

उसने उसकी बात सुन घोडो के नदी पर नहाने के समय वहा पहुँच एक घोडे को पकडा और पीठ पर चढा जल्दी से अपने गुहा-द्वार पर आ पहुँचा। उसके पिता ने घोडे का मास खा चकने पर कहा—तात! घोडे राजा का भोग होते हैं। राजा अनेक माया वाले होते है। वे कुशल धनुर्धारियो द्वारा विंधवा देते है। घोडे का मास खाने वाले सिंह दीर्घायु नही होते। अब से अश्व को मत पकडना।

सिंह ने पिता का कहना न माना और घोडे पकडे ही। राजा ने जब सुना कि सिंह घोडे ले जाता है तो उसने नगर के भीतर अश्व पुष्करिणी बनवाई। वहाँ से भी आकर ले जाता। राजा ने घुडसाल बनवाई और उसके अन्दर ही घोडो को घास पानी दिलाने लगा। सिंह प्राकार के ऊपर से जाकर घुडसाल मे से भी ले ही जाता। राजा ने एक अचूक निशाना लगाने वाले धनुर्धारी को बुला कर पूछा—तात! सिंह को तीर से बींध सकेगा?

वह बोला 'सकता हूँ' और सिंह के आने के रास्ते मे, प्राकार के पास मचान बनाकर उस पर रहा। सिंह आया और शृगाल को बाहर श्मशान मे छोड, घोडे को उठा लाने के लिये नगर मे कूदा। धनुर्धारी ने आने के समय सिंह का वेग बहुत होने के कारण उसे न बींध, घोडे को उठा कर ले जाने के समय भार से शिथिल-वेग सिंह को तेज तीर से पिछले हिस्से मे बींधा।

तीर अगले हिस्से से आर पार हो आकाश मे जा उडा । शेर चिल्लाया । मैं मारा गया । धनुषधारी ने उसे बीण त्रिजन्त्री की तरह धनुष की डोरी की आवाज की । शृगाल ने सिंह तथा डोरी की आवाज सुनी तो समझ गया कि उसका मित्र बीध कर मार डाला गया है । उसने सोचा—जो मर गया उससे दोस्ती क्या ? अब मैं अपने निवास-स्थान को जाता हूँ । तब उसने अपने से ही बात करते हुए दो गाथाये कही —

यथाचापो निन्नमति जियाचापि निकूजति,
हञ्जते नून मनोजो मिगराजा सखा मम ॥
हन्ददानि वन ताण पक्कमामि यथासुख,
नेतादिसा सखा होन्ति लब्भा मे जीवतो सखा ॥

[जैसे धनुष झुकता है और जैसे उसकी डोरी की आवाज आती है उससे यह निश्चित है कि मेरा सखा मृगराज मनोज मारा जा रहा है । अब मेरे लिये वन मे ही त्राण है । मैं सुख पूर्वक जाता हूँ । ऐसे (मरे हुए प्राणी) सखा नही होते । जीते रहते (और) सखा प्राप्य है ।]

सिंह भी बहुत तेज दौडकर गुफा के द्वार पर पहुँचा और वहा घोडे को गिरा स्वय ही गिर कर मर गया । तब उसके सबधियो ने बाहर निकल कर देखा कि वह खून मे सना है, घाव से खून बह रहा है और कुसगति के कारण मर गया है । यह देख उसके पिता, माता, बहन तथा भार्या ने क्रमश चार गाथायें कही—

न पापजनससेवी अच्चन्त सुखमेधति,
मनोज पस्स सेमान गिरियस्सानुसासनी,

[दुर्जन की सगति करने वाले को चिरकाल तक सुख नही मिलता । (तीर खाकर) पडे हुए मनोज की ओर देखो—यह गिरिय की अनुशासना है ।]

न पाप सम्पवङ्केन माता पुत्तेन नन्दति,
मनोज पस्स सेमान अच्छन्न सम्हि लोहिते ॥

[कुसगति करने वाले पुत्र से माता को आनन्द नही होता । स्वय रक्त बहते हुये, (तीर खाकर) लेटे हुये मनोज को देखो ।]

एवमापज्जती पोसो पापियो च निगच्छति,
यो वे हितान वचन न करोति अत्थदस्सिन ॥

[इस प्रकार मनुष्य दुरवस्था को प्राप्त होता है और दु.ख भोगता है जो अपने हितैषी बुद्धिमानो का कहना नही करता ।]

एवञ्च सो होति ततोव पापियो
यो उत्तमो अधम जनूपसेवी,
पसुत्तमं अधमजनूपसेवित
मिगाधिप सरवर वेगनीधुतं

[जो उत्तम पुरुष अधमजन की सगति करता है उसकी अवस्था उससे भी बुरी होती है । श्रेष्ठ मृगेन्द्र की अवस्था देखो जो अधमजन की कुसङ्गति के कारण शर से मारा गया ।]

अन्तिम सम्बुद्ध गाथा—

निहीयति पुरिसो निहीन सेवी,
न च हायेथ कदाचि तुल्य सेवी,
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं
तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथ ॥

[नीच की सगति करने वाले पुरुष का ह्रास होता है । (अपने) समान की सगति करने वाले का कभी ह्रास नही होता । श्रेष्ठ की सगति करने वाले की शीघ्र उन्नति होती है । इसलिये अपने से श्रेष्ठ की ही सगति करनी चाहिये ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो के अन्त मे विपक्षी स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ । उस समय शृगाल देवदत्त था । मनोज विपक्षी की सगति करने वाला । बहन उत्पल-वर्णा । भार्या क्षेमा भिक्षुणी । माता राहुल-माता । पिता तो मैं ही था ।

३९८. सुतनु जातक

"राजा ते भत्त " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय माता का पोषण करने वाले भिक्षु के बारे मे कही। (वर्तमान) कथा साम जातक[1] मे आयगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक दरिद्र कुल मे उत्पन्न हुये। नाम रखा गया सुतनु। वह बडे होने पर मजदूरी कर माता पिता को पालता था। पिता के मरने पर माता का पोषण करने लगा।

उस समय वाराणसी राजा शिकार का बडा प्रेमी था। एक दिन वह बहुत से लोगो के साथ योजन-दो योजन के जगल मे गया और घोषणा की कि जिसके पास से मृग भाग जायगा वह उसी मृग (के मूल्य) को हारेगा।

अमात्यो ने राजा के लिये (मृगो के) निश्चित रास्ते पर एक कोठा बनवा दिया। मृगो के निवास-स्थानो को घेरकर हल्ला मचाने वाले लोगो के कारण उठकर भागने वाले मृगो मे से एक बारासिंगा वहा पहुँचा जहाँ राजा खडा था। राजा ने उसे बीधने के लिये तीर छोडा। मृग माया जानता था। जब उसने देखा कि उसके अत्यन्त कोमल पार्श्व की ओर तीर चला आ रहा है तो वह पलट कर तीर से बिंधे की तरह होकर गिर पडा। राजा ने समझा, मैंने मृग मार लिया और पकडने के लिये दौडा। मृग उठकर हवा की तेजी से भाग गया। अमात्य आदि राजा पर हँसने लगे।

उसने मृग का पीछा किया। जब वह थक गया तो तलवार से उसके दो टुकडे कर एक डण्डे पर टाँग बैहँगी उठाते हुए की तरह लाया। आते हुए थोडा विश्राम लेने के लिये सडक के किनारे स्थित एक वट के वृक्ष के नीचे पहुँचा और लेट कर सो गया।। उस वट वृक्ष पर रहने वाले

---

1 साम जातक (५४०)

मखादेव यक्ष को कुबेर से यह अधिकार मिला था कि वहाँ जो आयें वह उन्हे खा सकता है । निम मम। राजा उठकर जाने लगा उसने उसे हाथ से पकड लिया—ठहर ! तू मेरा भोजन है ।

"तू कौन है ?"

"मैं यहाँ रहने वाला यक्ष हूं । जो इस स्थान पर आते हैं, उन्हे खाने का मुझे अधिकार है ।"

राजा ने होश सभाले रख पूछा—क्या आज ही खायेगा, अथवा प्रतिदिन खाना चाहेगा ।

"मिलें तो रोज खाऊँगा ।"

"आज इस मृग को खाकर मुझे छोड़ । मैं कल से तेरे लिये एक भात की थाली के साथ एक आदमी भेजूंगा ।"

"तो भूल मत करना । जिस दिन नही भेजेगा, उस दिन तुझे ही खाऊँगा ।"

"मैं वाराणसी का राजा हूँ । मेरे पास सब कुछ है ।"

यक्ष ने प्रतिज्ञा करा उसे छोड़ दिया ।

उसने नगर मे प्रवेश कर अपने निजी मन्त्री से सारा हाल कह कर पूछा—क्या करना चाहिये ? मन्त्री बोला—देव ! क्या दिनो की मर्य्यादा बाधी है ?

"नही बाधी ।"

"यदि ऐसा किया तो अनुचित किया । तब भी चिन्ता न करें । कारागार मे बहुत मनुष्य हैं ।"

"तो तू ही यह काम कर मुझे जीवनदान दे ।"

अमात्य ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया । वह प्रतिदिन कारागार से एक आदमी को निकाल भोजन की थाली के साथ बिना उसे कुछ जताये यक्ष के पास भेज देता । यक्ष भोजन कर आदमी को खा जाता । आगे चलकर कारागारो में कोई आदमी न रहा । राजा को जब कोई भोजन ले जाने वाला न मिला तो वह मृत्यु-भय से कांपने लगा । अमात्य ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—देव ! जीने की तृष्णा मे धन की तृष्णा अधिक बलवान होती है । हाथी के कधे पर हजार की थैली रखवा मुनादी

करायें—कौन है जो यह [illegible] लेकर यक्ष के पास भोजन ले जायगा ? उसने वैसी घोषणा कराई। बोधिसत्व ने सोचा मैं मजदूरी कर मासा, आधा-मासा कमा कठिनाई से माता का पोषण करता हूँ। यह धन ले माता को दे यक्ष के पास जाऊँगा। यदि यक्ष का दमन कर सकूँगा तो अच्छा, यदि नहीं कर सकूँगा तो भी मेरी माता सुख से जीवन बितायेगी।

उसने यह बात मा से कही तो उसने दो बार मना किया—तात् ! मुझे धन नहीं चाहिये। तीसरी बार उसने माता से बिना पूछे ही कहा—आर्यो ! हजार लाओ। मैं भोजन ले जाऊँगा। उसने हजार ले, जा माता को दिये और प्रणाम करते हुए कहा—माँ ! चिन्ता न कर। मैं यक्ष का दमन कर जनता को सुखी बना आज ही तुझ रोती हुई को हँसाता हुआ लौटूँगा। वह राज-पुरुषो के साथ राजा के पास जा खडा हुआ।

राजा ने पूछा—"तात ! भात ले जायगा ?"

"देव हाँ"

"तुझे क्या चाहिये ?"

"देव ! आपकी सोने की खडाऊँ।"

' किसलिये।"

"देव ! वह यक्ष वृक्ष के नीचे भूमि पर खडे हुओ को खा सकता है, मैं उसके पास भूमि पर खडा न रह खडाऊँ पर खडा होऊँगा।"

"और क्या चाहिये ?

"देव ! आपका छाता।"

"यह किसलिये ?"

"देव ? यक्ष अपने वृक्ष की छाया मे खडे होने वालो को ही खा सकता है, मैं उसके वृक्ष की छाया के नीचे खडा न रह छत्र की छाया के नीचे खडा होऊँगा।"

"और क्या चाहिये ?"

"देव ! आपकी तलवार।"

"इसका क्या काम ?"

"देव शस्त्रधारियो से अमनुष्य भी डरते हैं।"

"और क्या चाहिये।"

"देव ! सोने की थाली मे रखना हुआ आपका खाना ।"

"तात् ! किसलिये ।"

"देव ! मेरे जैस पण्डित आदमी के लिए यह योग्य नही कि वह मिट्टी के वर्तन मे रूखा भोजन ले जाये ।"

राजा ने स्वीकार कर सब सामान दिलवा अपने नौकरो को उसकी सेवा मे नियुक्त किया । बोधिसत्व ने राजा को प्रणाम किया—'महाराज ! डरें मत । आज मैं यक्ष का दमन कर आपका मगल कर लौटूंगा । वह सामान लिवा वहाँ पहुँचा । उसने मनुष्यो को वृक्ष से दूर खडा किया और स्वय स्वर्ण पादुका पर चढ, तलवार बाध, श्वेत छत्र धारण कर, सोने की थाली मे भोजन ले यक्ष के पास पहुँचा ।

यक्ष प्रतीक्षा कर रहा था । उसे देख यक्ष ने सोचा—यह आदमी दूसरे दिन आने वालो की तरह नही आता है । क्या कारण है ? बोधिसत्व ने भी वृक्ष के पास पहुँच वृक्ष की छाया के किनारे खडे हो तलवार की नोक से भोजन की थाली को छाया के अन्दर कर पहली गाथा कही—

राजा ते भत्त पाहेसि सुचिमसूपसेचन,
मखा देवस्मिस अधिवत्थे एहि निक्खम्य भुञ्जस्सू ॥

[हे मखा देव ! (वृक्ष) पर रहने वाले (यक्ष) ! राजा ने तेरे लिये पवित्र मास युक्त भोजन भेजा है । आ बाहर निकल कर खा ।]

यक्ष ने यह सुना तो उसे छाया के भीतर बुला कर खाने की नियत से ठगने के लिये दूसरी गाथा कही—

एहि माणव ओरेन भिक्खमादाय सूपित,
त्वञ्च माणव भिक्खा च उभो भक्खा भविस्सथ ॥

[हे माणवक ! सूप सहित भिक्षा लेकर इधर आ । हे माणवक ! तू और भोजन दोनो मेरे भोजन बनेंगे ।]

तब बोधिसत्व ने दो गाथायें कही—

अप्पकेन तुवं यक्ख थुल्लमत्थ जहिस्ससि,
भिक्खं ते माहरिस्सन्ति जना मरणसञ्ञिनो ॥
लद्धाय यक्ख तव निच्चभिक्ख
सुचिं पणीत रससा उपेत,

भिक्ख च ते आहरियो नरो इध,
सुदुल्लभो होहिति खादिते मयि ॥

[हे यक्ष तू अल्प लाभ के लिये महान् लाभ को छोड दे रहा है। (यदि तू मुझे खा जायगा) तो आगे से मृत्यु से भयभीत (लोग) तेरे लिये भोजन नही लायेंगे। हे यक्ष ! तुझे यह पवित्र, बढिया, सरस भोजन नित्य प्राप्य है। लेकिन मेरे खा लेने पर इस भोजन को यहाँ लाने वाला आदमी दुर्लभ हो जायगा ॥]

यक्ष ने 'माणवक ठीक कहता है' सोच दो गाथायें कही —

ममेस सुतनो अत्थो यथा भाससि माणव,
मया त्वं समनुञ्ञातो सोत्थि पस्ससि मातर ॥
खग्ग छत्तञ्च पातिञ्च गच्छेवादाय माणव,
सोत्थि पस्सतु ते माता त्वञ्च पस्साहि मातर ॥

[हे माणव ! जैसे तू कहता है, यह मेरे ही हित मे है। मैं तुझे जाने देता हूँ। तू सकुशल लौट माता को देखेगा। हे माणव ! तू तलवार, छतरी तथा थाली लेकर जा। तू अपनी माता को सकुशल देखे और तेरी माता तुझे सकुशल देखे।]

यक्ष की बात सुन यह सोच कि मेरा काम पूरा हो गया, मैंने यक्ष का दमन कर लिया, मुझे बहुत धन प्राप्त हुआ तथा राजा का कहना हो गया। बोधिसत्व ने प्रसन्न-चित्त हो यक्ष की बात का समर्थन करते हुये अतिम गाथा कही —

एव यक्ख सुखी होहि सह सब्बेहि ञातिहि,
धनञ्च मे अधिगत रञ्ञो च वचन कतं ॥

[हे यक्ष ! अपने सभी सम्बन्धियो सहित तू सुखी हो। मुझे धन मिला है, और राजा का कहना हो गया है।]

इतना कह चुकने पर यक्ष को सम्बोधित कर फिर कहा—मित्र ! तू ने पहले अकुशल कर्म किये। उसी के परिणाम स्वरूप तू कठोर, परुष, दूसरो का रक्त-माँस खाने वाला यक्ष हो पैदा हुआ। अब से प्राणातिपात आदि मत कर। इस प्रकार सदाचार का सुपरिणाम तथा दुश्शीलता का दुष्परिणाम कह यक्ष को पचशील मे प्रतिष्ठित किया। उसने यक्ष को 'जगल मे रहने से

तुझे क्या लाभ । आ तुझे नगरद्वार पर बिठा श्रेष्ठ-भोजन का लाभी बनाऊँ" कहा और उसे साथ ले, निकल, खड्ग आदि यक्ष से ही उठवाकर वाराणसी पहुँचा । राजा को सूचना दी गई—सुतनु माणव यक्ष को लिये आता है । अमात्यो सहित राजा ने बोधिसत्व का स्वागत किया । यक्ष को नगर-द्वार पर बिठाया और उसे श्रेष्ठ-भोजन मिलने की व्यवस्था की । फिर नगर मे प्रविष्ट हो, मुनादी करा, नगरवासियो को एकत्र किया और बोधिसत्व के गुणो की प्रशसा कर उसे सेनापति बना दिया । उसने स्वय बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, दानादि पुण्य कर्म कर स्वर्ग-लाभ किया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यो के अन्त मे माता का पोषण करने वाला भिक्षु स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुआ । उस समय यक्ष अङ्गुलि-माल था । राजा आनन्द । माणव तो मैं ही था ।

३९९ गिज्झ जातक

"ते कथन्नु करिस्सन्ति " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक माता का पोषण करने वाले भिक्षु के बारे मे कही ।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीध की योनि मे पैदा हुये । बडे होने पर वह बूढे अन्धे माता-पिता को गृद्ध (-गुफा) मे रख गोमास आदि लाकर पोसने लगा । उस समय वाराणसी की श्मशान भूमि मे एक निषाद ने लगभग सभी जगह गीधो को फँसाने के लिए जाल फैलाया । एक दिन बोधिसत्व गोमास खोजते-खोजते श्मशान मे दाखिल हुआ । वहा जाल मे पैर फँस गये । उसे अपनी चिन्ता न थी । किन्तु बूढे माता-पिता की याद कर और यह सोच कि मेरे माता-पिता कैसे जियेंगे,

उन्हे मेरे जाल मे फँसने तक का ज्ञान न होगा, वे निराश्रय हो पर्वत-गुफा मे ही सूखकर मर जायँगे उसने रोते हुये पहली गाथा कही —

ते कथन्नु करिस्सन्ति वुद्धा गिरिदरिसया,
अह बद्धोस्मि पासेन नीलियस्स वसङ्गतो ॥

[पहाड की दरार मे रहने वाले वृद्ध क्या करेंगे ? मैं बन्धन मे बँधकर नीलिय नामक चिडीमार के वशीभूत हो गया ।]

तब चिडीमार पुत्र ने गृद्धराज का विलाप सुन दूसरी गाथा कही —

किं गिज्झ परिदेवसि कानुतेपरिदेवना,
न मे सुतो वा दिट्ठो वा भासन्तो मानुसि दिजो ॥

[हे गीध किसके लिये विलाप करता है और क्या विलाप करता है ? मैंने (इससे पूर्व) मानुषी बोली बोलने वाला पक्षी न सुना, और न देखा ।]

गीध बोला—

भरामि माता पितरो वुद्धे गिरिदरिसये,
ते कथन्नु करिस्सन्ति अह वसङ्गतो तव ॥

[मैं पर्वत की दरार मे रहने वाले माता-पिता का पोषण करता रहा । अब जब मैं तेरे वशीभूत हो गया हूँ तो वे क्या करेंगे ?]

चिडीमार बोला—

यन्नु गिज्झो योजनसत कुणपानि अपेक्खति,
कस्मा जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जो गीध सौ योजन ऊपर से मुर्दार को देख लेता है वह पास के ही जाल और बन्धन को क्या नही देख सकता ?]

गीध बोला —

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसङ्खये,
अथ जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जब मनुष्य का जीवन क्षीण होता है तो वह पास होने पर भी जाल और बन्धन को नही देखता ।]

चिडीमार बोला —

भरस्सु माता पितरो वुद्धे गिरिदरीसये,
मया त्व समनुञ्ञातो सोत्थि पस्साहि ञातके ॥

[पर्वत की दरार मे रहने वाले अपने वृद्ध मातापिता का पालन-पोषण कर। मैंने तुझे मुक्त किया। सकुशल अपने सबधियो को देख।]

गीध बोला —

एव लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिभि,
भरिस्स मातापितरो वुद्धे गिरिदरीसये॥

[इसी प्रकार हे चिडीमार! तू भी सब रिश्तेदारो के साथ आनन्द कर। मैं पर्वत की दरार मे रहने वाले बूढे माता पिता का पालन करूँगा।]

बोधिसत्व मरण-दुख से मुक्त हो, शिकारी के सुखी रहने की कामना कर, अन्तिम गाथा कह, मुँह भर मास लेकर गये और माता पिता को दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यो के अन्त मे माता का पोषण करनेवाला भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय चिडीमार पुत्र छन्न था। मातापिता महाराज-कुल थे। गीध-राज तो मैं ही था।

४००. दब्भ पुप्फ जातक

"अनुतीरचारि भद्दन्ते" यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उपनन्द शाक्य पुत्र के बारे मे कही।

क. वर्तमान कथा

वह बुद्धशासन मे प्रव्रजित हो अल्पेच्छता आदि गुणो को छोड अत्यधिक तृष्णा वाला हुआ। वर्षा वास करने के समय दो तीन विहारो मे वर्षा वास करना स्वीकार कर एक मे छाता या जूता रख देता, एक मे हाथ की लाठी या पानी का तूबा और एक मे स्वय रहता। एक बार उसने वर्षाऋतु मे एक जनपदीय विहार मे वर्षा-वास करना स्वीकार कर 'भिक्षुओ को अल्पेच्छु होना चाहिये' कह आकाश मे चन्द्रमा को प्रकट करते हुये की तरह भिक्षुओ

को परिभोग-वस्तुओं मे सन्तोषी रहने की प्रेरणा करने वाली आर्य वंश प्रतिपदा कही। उसे सुन भिक्षुओ ने सुन्दर पात्र-चीवर छोड, मिट्टी के पात्र तथा फटे पुराने चीथडो के चीवर ले लिये। उसने सुन्दर पात्र-चीवरो को अपने निवास स्थान मे रक्खा। वर्षा-वास समाप्त होने भर गाडी भर जेतवन ले चला। रास्ते मे एक आरण्य विहार था। पाव मे लता लिपटे हुए उसके पीछे से गुजरते समय उसने सोचा, निश्चय से यहाँ कुछ मिलेगा और विहार मे प्रवेश किया। उस विहार मे दो बूढे भिक्षु वर्षा वास करते थे। उन्हे दो स्थूल वस्त्र और एक बारीक कम्बल मिला। न बाँट सकने के कारण उसे देख वे प्रसन्न हुए कि स्थविर हमे बाँट कर देगा। बोले—भन्ते ! हम वर्षा वास मे मिले इस वस्त्र को बाँट नही सकते हैं। इसके कारण हमारा विवाद होता है। इसे बाँट कर दें। उसने बाटना स्वीकार कर दो स्थूल वस्त्र दोनो को दे दिये और यह कह कि कम्बल हम विनयधरो को मिलना चाहिये कम्बल ले चल दिया। उन स्थविरो का कम्बल से प्रेम था। वे भी उसके साथ जेतवन पहुँचे। और विनयधर भिक्षुओ को वह बात सुना पूछा—भन्ते क्या विनयधर इस प्रकार लूट खा सकते हैं ?

भिक्षुओ ने उपनन्द स्थविर द्वारा लाये गये पात्र, चीवर के ढेर को देख कर कहा—आयुष्मान् ! तू बहुत पुण्यवान है। तुझे बहुत पात्र चीवर मिले।

"आयुष्मानो ! पुण्य कहा—इस उपाय से यह प्राप्त हुए है" सारी कथा कह सुनाई। धर्म-सभा मे बातचीत चली—आयुष्मान् उपनन्द शाक्य-पुत्र बडी तृष्णा वाला है। महालोभी है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?

"अमुक बात-चीत" कहने पर 'भिक्षुओ उपनन्द ने दूसरो को आर्य-चर्या का उपदेश दे अनुचित किया। दूसरो को उपदेश देने वाले भिक्षु को चाहिये कि वह पहले जो उचित है उसे करे तब दूसरे को उपदेश दे। इस प्रकार धम्मपद की गाथा से उपदेश देते हुए "भिक्षुओ न केवल अभी उपनन्द महान-लोभी है, यह पहले भी महालोभी रहा है। और न केवल अभी इनकी चीजे लूटी है, किन्तु पहले भी लूटी हैं" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व नदी तट पर वृक्ष-देवता हुए। उस समय मायावी नामक भार्या के साथ एक शृगाल नदी के किनारे एक जगह रहता था। एक दिन शृगाल से कहा—स्वामी ! मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है। ताजी रोहित मछली खाना चाहती हूँ। शृगाल बोला—व्यग्र न हो तेरे लिये लाऊँगा। पाँव मे लता लपेटे वह नदी के साथ साथ घूमता हुआ ठीक किनारे पर पहुँचा। उस समय गम्भीर-चारी तथा अनुतीर-चारी नामक दो ऊदबिलाव किनारे पर खडे मछलियाँ खोज रहे थे। उनमे से गम्भीरचारी ने एक बडी मछली देख जल्दी से पानी मे उतर उसे पूँछ से पकडा। बलवान मछली उसे खीचती ले गई। उस गम्भीरचारी ऊदबिलाव ने दूसरे को 'यह महा मछली हम दोनो से पार नही पा सकेगी, आ मदद कर' बुलाते हुए पहली गाथा कही—

अनुतीरचारि भद्दन्ते सहायमनुधाव म,
महामेगहितो मच्छो सोमं हरति वेगसा ॥

[हे अनुतीरचारी ! तेरा भला हो। आ मेरी मदद कर। मैंने बडी मछली पकडी है। वह मुझे जोर से खींच लिये जाती है।]

यह सुन उसने दूसरी गाथा कही—

गम्भीरचारि भद्दन्ते दळ्ह गण्हाहि थामसा,
अहं तं उद्धरिस्सामि सुपण्णोउरगम्मिव ॥

[हे गम्भीरचारी ! तेरा भला हो। उसे दृढता पूर्वक जोर से पकडा। मैं उसे खीच कर निकालूगा जैसे गरड साप को।]

दोनो ने इकट्ठे हो रोहित मछली को बाहर निकाल जमीन पर रक्खा। उसे मार कर 'तू बाँट, तू बाँट' कह झगडा करने लगे। जब न बाँट सके तो रखकर बैठ गये। उसी समय गीदड वहाँ आ पहुँचा।

उसे देख उन दोनो ने उसका स्वागत कर निवेदन किया—मित्र दब्भपुप्फ ! यह मछली हम दोनो ने इकट्ठे होकर पकडी है। उसे बाट न सकने के कारण हम दोनो मे विवाद छिड गया है। हमे ये बराबर बराबर बाँट दे। उन्होने तीसरी गाथा कही—

विवादो नो समुप्पन्नो दब्भपुप्फ सुणोहिमे,
समेहि मेधग सम्म विवादो उपसम्मतु ॥

[हे दब्भपुप्फ! हमारी बात सुन। हममे विवाद छिड गया है। मित्र मारा न्याय कर जिससे विवाद शान्त हो।]

उनकी बात सुन शृगाल ने अपना बल प्रकट करते हुए कहा :—

धम्मट्ठोह पुरे आसि बहु अत्थ मेतीरित,
समेमि मेधग सम्मा विवादो उपसम्मतु ॥

[मैं पहले न्यायाधीश था। मैंने बहुत मुकद्दमो का निर्णय किया है। मैं तुम्हारे झगडे का भली प्रकार निर्णय करता हू जिससे विवाद शान्त हो।]

और बांटते हुए यह गाथा कही —

अनुतीरचारि नङ्गुट्ठ सीस गम्भीरचारिनो,
अथाय मज्झिमो खण्डो धम्मट्ठस्स भविस्सति ॥

[अनुतीर-चारी के लिये पूछ, और गम्भीर-चारी के लिये सिर और यह जो बीच का हिस्सा है यह न्यायाधीश का होगा।]

इस प्रकार इस मछली को बांट 'तुम झगडा न कर पूछ और सिर खाओ' कह बीच का हिस्सा मुंह मे ले, उनके देखते देखते ही भाग गया। वे (जुये मे) हजार हजार हारे की तरह बुरी शकल बना कर बैठे और छठी गाथा कही —

चिरम्पि भक्खो अभविस्स सचे न विवेदेमसे,
असीसिक अनङ्गुट्ठ सिगालोहरति रोहितं ॥

[यदि झगडा न करते तो चिर काल तक भोजन हो सकता था। बिना सिर और पूंछ की रोहित मछली को गीदड लिये जा रहा है।]

शृगाल भी आज भार्या को रोहित मछली खिलाऊँगा सोच प्रसन्नता पूर्वक उसके पास गया। उसने आते देख स्वागत किया—

यथापि राजा नन्देय्य रज्ज लद्धान खत्तियो,
एवाहमज्ज नन्दामि दिस्वा पुण्णमुखपति ॥

[जिस प्रकार क्षत्रिय राजा राज्य प्राप्त कर प्रसन्न होता है उसी प्रकार मैं भी आज पति को भरेमुंह आते देख प्रसन्न हूँ।]

और वह प्राप्ति का उपाय पूछती हुई बोली—

कथन्नु थलजो सन्तो उदके मच्छ परामसि,
पुट्ठो मे सम्म अक्खाहि कथ अधिगत तया ॥

[सौम्य ! मुझे बताओ कि स्थलचारी होकर पानी मे मछली को कैसे पकडा ? इस मछली की प्राप्ति कैसे हुई ?]

शृगाल ने उसकी प्राप्ति का उपाय बताते हुए यह गाथा कही —

विवादेन किसा होन्ति विवादेन धनक्खया,
जिना उद्दाविवादेन भुञ्ज मायावी रोहितं ।

[विवाद से दुर्बल होते है । विवाद से धन-क्षय होता है । विवाद से ही ऊद-बिलाव मछली से वञ्चित हुए । हे मायावी ! रोहित मछली खा ।]

यह अभिसम्बुद्ध गाथा हे—

एवमेव मनुस्सेसु विवादो यत्थ जायति,
धम्मट्ठ पटिधावन्ति सोहि नेस विनायको ।
धनापि तत्थ जीयन्ति राजकोसोपवड्ढति ॥

[इसी प्रकार मनुष्यो मे जहाँ विवाद पैदा होता है, वे न्यायाधीश के पास दौडते हैं । वह उनका न्याय करता है । उनके धन की हानि होती है और राजकोष बढता है ।]

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । उस समय शृगाल उपनन्द था । ऊदबिलाऊ दो बूढे । उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था ।